

रिसर्च जर्नल ऑफ आर्ट्स मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal
UGC Journal No. (Old) 2138 Impact Factor 4.875 (IIFS)
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory
ProQuest, U.S.A. Title Id : 715204

अंक - 22, हिन्दी संस्करण, वर्ष-11, अक्टूबर-मार्च 2022

2022

www.researchjournal.in



आई. एस. एस. एन. 0975-4083

रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal

UGC Journal No. (Old) 2138

Impact Factor 4.875

Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest,
U.S.A. Title Id : 715204

अंक-22

हिन्दी संस्करण

वर्ष-11

अक्टूबर -मार्च 2022

प्रोफेसर ब्रजगोपाल

प्रधान सम्पादक

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित

profbrajgopal@gmail.com

डॉ. अखिलेश शुक्ल

ऑनरेरी सम्पादक

प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित

akhileshtrscollge@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल

अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा

shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा

rnsharmanehru@gmail.com



सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
की मुख्य शोध पत्रिका

Experts & Members of Advisory Board

- Prof. Hemanta Saikia, Assistant Professor, Department of Rural Development, Debraj Roy College, Circuit House Road, Golaghat, Assam, India. Pin-785621
jio84hemant@gmail.com
- Dr. K. S. Tiwari, Professor, Regional Director, Regional Centre Bhopal, IGNOU, Bhopal
kripashankar19954@gmail.com
- Dr. Puran Mal Yadav, Department of Sociology, Mohan Lal Sukhadia University
UDAIPUR – 313001 (Rajasthan)
pnyadav1964@gmail.com
- Dr. Ram Shankar. Professor of Political Science, RDWVV Jabalpur University, (M.P.)
rs_dubey@yahoo.com
- Prof. Anjali Bahuguna, Department of Economics, School of Humanities and Social Sciences (SHSS), HNB Garhwal University, (A Central University), Srinagar-246174 (Garhwal)
anjali shss@gmail.com
- Dr. Sanjay Shankar Mishra, Professor of Commerce, Govt. TRS PG College, Rewa (M.P.)
ssm6262@yahoo.com
- Dr. Pramila Shrivastava, Associate Professor, Department of Economics, Govt. Arts College Kota (Raj),
dr21pramila@gmail.com
- Dr Alka Saxena, D. B. S. College, Kanpur (U.P.)
alknasexna65@yahoo.com
- Dr. Deepak Pachpore, Journalist
deepakpachpore@gmail.com
- Dr. C. M. Shukla, Professor of History Government Maharaja College, Chhatarpur District Chhatarpur(M.P.),
rajan.19shukla@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract, Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स एण्ड मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेज (ISSN-0975-4083) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है।
शोध पत्रिका उलरिच इंटरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड है।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च तथा सितंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस. एस.एन प्राप्त है। शोध पत्रिका Peer-Reviewed है।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है।
- शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक, मोबाइल नं., ई-मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50-100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट- पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिपि फॉन्ट 010 (फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए-4 साइज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- researchjournal97@gmail.com,
- researchjournal.journal@gmail.com
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई-मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00	-सदस्यता शुल्क -	
अवधि	व्यक्तिगत सदस्यता	संस्थागत सदस्यता
वर्ष एक	2000-00	2500-00
वर्ष दो	2500-00	4000-00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच-रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय, नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशक: गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)

मुद्रक: ग्लोरी ऑफसेट
नागपुर

संपादकीय कार्यालय

186/1, विन्ध्य विहार कालोनी
रीवा- 486001 (म.प्र.)

E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com

www.researchjournal.in

दूरभाष - 7974781746

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

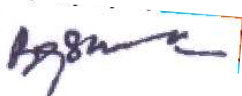
सम्पादकीय

भारतीय शिक्षा क्षेत्र के स्वरूप में सुधार करने के लिए वर्तमान सरकार ने एक व्यापक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी-2020) प्रस्तुत की है, जो अकादमिक जगत में सराहनीय कदम है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा संस्थानों को समस्या की तलाश में समाधान के स्थान पर समस्याओं के समाधान की दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया गया है, जो निश्चित रूप से भारत में उच्च शिक्षा के परिदृश्य को बदलने में सक्षम होगा और छात्रों को एक बेहतर इंसान बनाने की दिशा में कारगर होगा। स्वामी विवेकानंद जी ने भी कहा था की जनता को शिक्षित बनाओ और उनका सर्वांगीण विकास करो, तभी समाज और राष्ट्र का विकास संभव है। भारतीय संदर्भ में जो व्यवसायिक भविष्यवाणियां इशारा कर रही हैं, उससे सन 2032 तक भारत दुनिया की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बन सकता है। यह तभी संभव है जब हमारे छात्रों का सर्वांगीण विकास हो और उन्हें रोजगार के अवसर उपलब्ध हो। जब तक हम ज्ञान के विकसित संसाधन अपने युवाओं को उपलब्ध नहीं कराएंगे, तब तक हम संपूर्ण लक्ष्य की तरफ कदम नहीं बढ़ा सकते हैं और राष्ट्रीय शिक्षा नीति में ज्ञान के विकसित संसाधनों को उपलब्ध कराने की बात को प्रमुखता से लिया गया है, जो प्रशंसनीय है। नई शिक्षा नीति युवाओं में पढ़ाई के प्रति बुनियादी बदलाव और उनके नजरिए को विकसित करेगी। स्कूल शिक्षा से लेकर महाविद्यालय और विश्वविद्यालय शिक्षा तक छात्रों के पास अनेक प्रकार के विकल्प उपलब्ध होंगे, जो उन्हें रोजगार और उनके व्यक्तित्व परिमार्जन में सहायता करेंगे। निश्चित रूप से एक नए भारत का आगाज नई शिक्षा नीति के माध्यम से हुआ है।

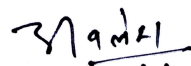
नई शिक्षा नीति की मूलभूत विशेषता यह है कि यह भारतीय दर्शन पर केंद्रित है और इसके माध्यम से हम एक ऐसे समाज की संकल्पना को साकार रूप दे सकते हैं, जिसमें संतुलित विकास हो। नई शिक्षा नीति नई तकनीकों, नई विधियों, नए पेटेंट, नए प्रकाशन पर भी ध्यान दे रही है, जिससे हमारे छात्रों का उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त हो, रोजगार परक सर्टिफिकेट डिप्लोमा एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी प्रारंभ किए गए हैं। इससे निश्चित ही विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के परिमार्जन के साथ-साथ उनका कौशल संवर्धन भी होगा और रोजगार के विभिन्न विकल्प उन्हें उपलब्ध होंगे। इस नीति में पर्यावरण, योग, मानवीय मूल्य, नैतिकता, महिला सशक्तिकरण आदि विषयों को भी शामिल किया गया है, जिससे समाज में एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो सके।

नई शिक्षा नीति का दृष्टिकोण छात्रों को अनुसंधान परक बनाना है। महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों ने पाठ्यक्रमों में इस का दृष्टिकोण को विशेष रूप से शामिल किया है कि विद्यार्थी अनुसंधान परक का दृष्टिकोण विकसित हो। नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन से हम उम्मीद कर सकते हैं, एक नए भारत की, एक नए समाज की, एक नए भविष्य की, जिसमें हम अपने युवाओं को एक नया भारत, सशक्त भारत दे सकें। इस दिशा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति ब्रह्मस्त्र के रूप में कार्य करेगी।

मध्य प्रदेश सरकार के माननीय मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान और माननीय शिक्षा मंत्री श्री मोहन यादव के नेतृत्व में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को प्रदेश में लागू किया है। यहां विद्यार्थी को अनेक विकल्प उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आप कला स्नातक पाठ्यक्रम में अध्ययन कर रहे हैं। एक साल बाद विद्यार्थी का कला स्नातक पाठ्यक्रम करने में मन नहीं लगा तो नई नीति के मुताबिक आपका यह एक वर्ष खराब नहीं जाएगा और आपको एक वर्ष का सर्टिफिकेट मिल जाएगा। अब अगर आप कोई दूसरी डिग्री में अध्ययन कर रहे हैं और दो साल बाद उसे भी छोड़ देते हैं, तो आपको इन दो सालों का डिप्लोमा मिल जाएगा। स्नातक स्तर का पूरा पाठ्यक्रम 3 वर्ष में पूरा होगा। राष्ट्रीय नीति में दो तरह के विकल्प विद्यार्थी को प्रदान किए गए हैं। 3 वर्ष में ग्रेजुएशन और दूसरा जो अनुसंधान में जाना चाहते हैं, उन्हें 4 साल का अध्ययन करना होगा। अब स्नातकोत्तर भी 1 वर्ष का होगा। विद्यार्थियों को ऑफलाइन के साथ-साथ ऑनलाइन सुविधाओं का भी विकल्प उपलब्ध रहेगा। ऑनलाइन पाठ्यक्रम से प्राप्त अंकों अथवा ग्रेड को अंकसूची में प्रदर्शित किया जाएगा। यहां एक बात और उल्लेखनीय है कि वार्षिक परीक्षा 2 घंटे की होगी। मूल्यांकन अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप क्रेडिट प्रणाली पर आधारित होगा। विद्यार्थी एक से अधिक विषयों की पढ़ाई कर सकता है, विज्ञान का विद्यार्थी कला या वाणिज्य का विषय भी ले सकता है। उसे पहले और दूसरे साल में विषय परिवर्तन का विकल्प भी उपलब्ध कराया गया है और साथ ही साथ व्यावसायिक पाठ्यक्रम की सुविधा भी इसी के अंतर्गत छात्रों को उपलब्ध है। निश्चित ही इससे विद्यार्थियों का कौशल संवर्धन होगा और रोजगार के कई अवसर उपलब्ध होंगे।



प्रोफेसर ब्रजगोपाल
प्रधान संपादक



डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

01.	महिला पुलिस की पारिवारिक एवं सामाजिक प्रस्थिति (रीवा संभाग के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन) अखिलेश शुक्ल, प्रियंका तिवारी	09
02	भारतीय ग्रामीण समाज में जजमानी व्यवस्था का महत्व: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन मीरा कुमारी	20
03	शिक्षित एवं अशिक्षित कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) शशांक पाण्डेय, प्रीतम सिंह, किरण पटेल	26
04	कोविड-19 महामारी के दौरान बेरोजगार हुये युवकों कि मनोसामाजिक समस्याओं का अध्ययन (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) शालिनी शर्मा, सुनीत कुमार द्विवेदी, आशीष सिंह पटेल	34
05	कोविड-19 के दौरान कामकाजी महिलाओं पर घरेलू हिंसा का प्रभाव (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) रुचि सिंह	41
06	स्वास्थ्य पर राज्य के सार्वजनिक व्यय के प्रभाव का अध्ययन मेघा डड्सेना, ए. के. पाण्डेय	48
07	किन्नरों की सामाजिक स्थिति: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण अंजू शुक्ला	53
08	महिला अपराधिता "प्रकृति और पुनर्वास" गजानन मिश्र	58
09	भ्रष्टाचार (भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक सामाजिक विश्लेषण) रश्मि दुबे	67
10	भ्रष्टाचार एवं कालाधन: एक वैश्विक समस्या का अध्ययन अनिल द्विवेदी	74
11	विभिन्न अवस्थाओं में बालक का विकास रवेन्द्र राजपूत	85
12	आर्टिकल 370 और कश्मीर समस्या अर्चना दीक्षित	101
13	कृषि वित्तीयकरण तथा रूपांतरण (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में (1991 से 2010 तक) सौरभी गुप्ता	109
14	स्वतंत्रता-संग्राम में दलित नायकों का योगदान: एक समीक्षात्मक अध्ययन आशीष कुमार	122
15	महात्मा गांधी का समाज के उत्थान में भूमिका सिद्धार्थ मिश्र	129
16	अकबर की सेना में राजपूत सैन्य अधिकारियों का योगदान मीनाक्षी सिंह कर्चुली	133
17	अकबर एवं जहांगीर कालीन धार्मिक नीति: उत्तर भारतीय समाज के विशेष संदर्भ में प्रियंका भारती	138
18	मैहर तहसील का पुरातत्व धीरजलाल विश्वकर्मा	148
19	मनरेगा में महिलाओं के समावेशी विकास का अध्ययन मिर्जा शहाब शाह, सद्दाम खान, रामलखन सिंह	151

20	छत्तीसगढ़ में सार्वजनिक व्यय का शिक्षा पर उसके प्रभाव का अध्ययन मेघा डड्सेना, ए. के. पाण्डेय	157
21	छत्तीसगढ़ राज्य के योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय का तुलनात्मक विश्लेषण शशिकिरण कुजूर	162
22	भारत की राजकाशीय नीति की प्रवृत्तियाँ: वर्तमान सन्दर्भ में कुमुद श्रीवास्तव	168
23	कृषि विपणन की दशा का समीक्षात्मक मूल्यांकन (रीवा जिले के विशेष सन्दर्भ में) पुरुषोत्तम प्रसाद बाल्मीकि, भानु साहू	175
24	जनपद प्रतापगढ़ के औद्योगिक विकास में आंवला (एक भौगोलिक अध्ययन) इंदु मिश्रा	182
25	भारतीय लोक कला के विविध आयाम उपासना राज	187
26	भारतीय परम्पराओं में बसी विभिन्न प्रकार की लोक कलाएँ निशा गुप्ता	194
27	दिव्यांग तथा संगीत का परस्पर संबंध निशा पाठक	200
28	महाकवि कालिदास की कृतियों में संगीत निष्ठा शर्मा	205
29	संगीत में विद्युतीय उपकरणों की भूमिका खुशब	212
30	कोविड-19 के ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा- चुनौतियाँ स्मिता मसीह	217
31	उच्च शिक्षा में परिवर्तन एवं अवलोकन प्रत्यूष वत्सला द्विवेदी	225
32	मुगल काल में राजपूतों की सामाजिक स्थिति मीनाक्षी सिंह कर्चुली, एस.एस. चौहान	230
33	उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति एवं विकास निशा राठौर, जितेन्द्र सिंह	236
34	राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 1986 की शैक्षिक जगत को देन रवेन्द्र राजपूत	242
35	प्रवासी साहित्यिक परिदृश्य में उषा प्रियंवदा का साहित्य अमित शुक्ल	255
36	हिन्दी मीडिया सामाजिक उपादेयता संकट और संभावनाएँ सूरजमुखी	262
37	रामभक्ति व विधायक भावनाओं का आकर ग्रन्थ-रामचरित मानस सुनीता द्विवेदी	270
38	'गो' पद की अर्थ मीमांसा ज्योत्स्ना द्विवेदी	276
39	मृच्छकटिक कालीन सामाजिक प्रथा एवं कुरीतियाँ लक्ष्मीकान्त मिश्र, कमलेश कुमार थापक, आदित्य तिवारी	280
40	साहित्य के संवर्धन में महिलाओं का योगदान (संस्कृत साहित्य के संदर्भ में) मधु	287
41	पंचायती राज संस्थाओं में पटना जिला की महादलित महिलाओं की बढ़ती भागीदारी एवं भूमिका: एक अध्ययन पुष्पा	291

महिला पुलिस की पारिवारिक एवं सामाजिक प्रस्थिति (रीवा संभाग के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन)

• अखिलेश शुक्ल

• प्रियंका तिवारी

सारांश- समाज में पुलिस का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, बिना पुलिस के समाज में कानून व्यवस्था और आंतरिक सुरक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है। सेना के जवान देश की बाहरी सीमाओं में हमारी सुरक्षा करते हैं और पुलिस हमारी आंतरिक शांति व्यवस्था को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है, किंतु पुलिस की छवि के संबंध में जब प्रश्न उठता है तो अधिकांश लोगों का जवाब नकारात्मक ही पाया जाता है और ऐसे विभाग में महिलाओं की भागीदारी, उनकी भूमिका का निर्वाह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर को जानने के लिए यह आवश्यक है कि महिला पुलिस कर्मियों की पारिवारिक एवं सामाजिक प्रस्थिति को जानने और समझने का प्रयास किया जाए। मैंने अपने शोध पत्र में महिला पुलिस की पारिवारिक एवं सामाजिक प्रस्थिति रीवा संभाग के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है।

मुख्य शब्द- समाज, कानून व्यवस्था, पारिवारिक एवं सामाजिक प्रस्थिति

वर्तमान समसामयिक समाज में अपराधों पर रोकथाम के लिए जनता महिला पुलिस से प्रभावी अपेक्षाएं रखने लगी है। गंभीर अपराधों को करने की दिशा में अब पुरुषों के साथ साथ महिलाओं का भी प्रतिशत बढ़ा है। आज महिलाएं भी गंभीर अपराध कार्य करने लगी हैं और नई नई तकनीक का प्रयोग भी करने लगी हैं। अपराधी महिलाओं से निपटने के लिए आज महिला पुलिस की आवश्यकता समाज में और ज्यादा प्रतीत होने लगी है। भारतीय पुलिस आयोग ने महिलाओं के प्रति अपराध और महिलाओं द्वारा किए जा रहे अपराध को रोकने की दिशा में महिला पुलिस की भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण निरूपित किया है।¹ भारतीय पुलिस आयोग कि इस अनुशंसा को देखते हुए केंद्र शासित प्रदेशों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में महिला पुलिस कर्मियों की भर्ती अधिकाधिक की जाने लगी। महिला सेल का अलग से गठन किया गया।² प्रत्येक राज्यों में महिला पुलिस थाने अलग से स्थापित किए गए हैं। म.प्र. में इस दिशा में उल्लेखनीय विकास हुआ है। वर्तमान परिवेश में आज महिलाएं पुलिस की नौकरी किसी दबाव में या आवश्यकता के कारण नहीं बल्कि स्वयं चुनौती के रूप में स्वीकार कर रही हैं। महिलाएं आज पुलिस

• प्राध्यापक, समाजशास्त्र शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

• पीएच.डी शोधार्थी समाजशास्त्र, शोध केंद्र शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

विभाग में आरक्षक से लेकर पुलिस के उच्च पदों पर आसीन हैं और अपनी भूमिका का दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन कर रही हैं। आज अधिकांश महिला आरक्षक भी उच्च शिक्षा प्राप्त हैं।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र के मुख्य उद्देश्यों में यह पता लगाना है कि महिला पुलिस की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति कैसी है इन तथ्यों से संबंधित आंकड़ों को एकत्रित कर समाज वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना शोध का मुख्य उद्देश्य है।

परिकल्पनाएँ- अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर शोध अध्ययन के संदर्भ में शोधार्थी की परिकल्पनाएँ निम्नानुसार हैं-

1. पुलिस बल में युवा पुलिस महिलाओं का प्रतिशत ज्यादा है।
2. अधिकांश महिला पुलिसकर्मी हिंदी भाषा का प्रयोग करती हैं।
3. अधिकांश महिला पुलिस हिंदू धर्म को मानती हैं।
4. महिला पुलिस कर्मियों में विवाह की आयु 25 से 30 वर्ष में अधिक है।

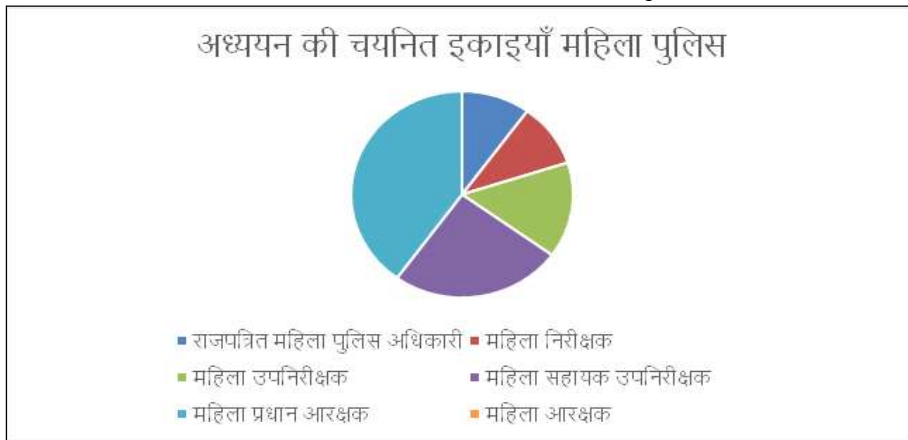
शोध पद्धति- शोध अध्ययन में तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के उपयोग किया गया है। शोध अध्ययन का अध्ययन का क्षेत्र रीवा संभाग है। शोध क्षेत्र के लिए रीवा संभाग का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि महिला पुलिसकर्मियों की संख्या रीवा संभाग में 1500 है, जिसमें से 300 महिला पुलिस कर्मियों का चयन उद्देश्य पूर्ण सविचार निदर्शन प्रणाली से किया गया और साक्षात्कार अनुसूची द्वारा इनका साक्षात्कार लेकर तथ्यों का संकलन किया गया है। रीवा संभाग भारत के मध्य प्रदेश राज्य की एक प्रशासनिक भौगोलिक इकाई है, जो उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बूंदेलखंड क्षेत्र से लगी हुई है। जिला रीवा, संभाग का प्रशासनिक मुख्यालय है। यह अध्ययन समाजशास्त्र की वैज्ञानिक शोध पद्धति के अन्तर्गत किया गया है। जिसमें अवलोकन, साक्षात्कार विधि का प्रयोग करते हुये अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संग्रहण किया गया है। अध्ययन की चयनित इकाइयों का विवरण निम्नवत है-

तालिका क्रमांक 01

अध्ययन की चयनित इकाइयाँ (महिला पुलिस)

पद	चयनित इकाइयाँ (निदर्श)
राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारी	10
महिला निरीक्षक	10
महिला उपनिरीक्षक	15
महिला सहायक उपनिरीक्षक	25
महिला प्रधान आरक्षक	40
महिला आरक्षक	200
योग	300

ग्राफ क्र. 01
अध्ययन की चयनित इकाइयाँ (महिला पुलिस)



तथ्यों का विश्लेषण एवं सारणीयन- इस अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु महिला पुलिस है। इन अधिकारियों में राजपत्रित पुलिस अधिकारी, पुलिस निरीक्षकों, उपनिरीक्षकों, सहायक उपनिरीक्षकों, प्रधान आरक्षकों और आरक्षकों का चयन किया गया है, जिनका आमना-सामना जनता से अनेक दायित्वों के निर्वहन के समय होता है। महिला पुलिसकर्मियों और उनके परिवारजनों से उनकी व्यक्तिगत समस्याओं का संबंध में साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्रश्न पूछे गए जिनका विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

महिला पुलिस की आयु- समाजीकरण की प्रक्रिया का आयु के साथ अत्यंत करीबी रिश्ता है, व्यक्ति की आयु उसके अनुभव और उसके क्रियाकलाप उसके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। महिला पुलिस के संबंध में उनकी आयु के स्वरूप को जानना अति आवश्यक था। निम्नलिखित तालिका में महिला पुलिस कर्मियों की आयु के संबंध में प्राप्त तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है।

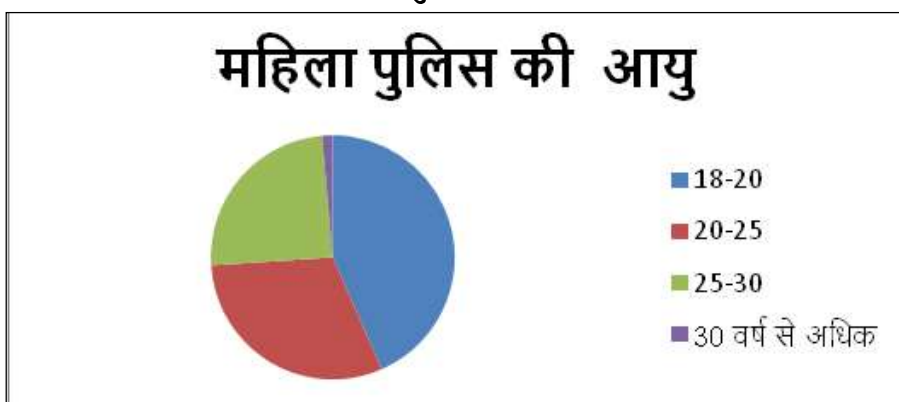
तालिका क्र. 02
महिला पुलिस की आयु

पद	चयनित इकाइयाँ (निदर्श)	महिला पुलिस की आयु (वर्ष)			
		18-20	20-25	25-30	30 वर्ष से अधिक
राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारी	10		04	04	02
महिला निरीक्षक	10			04	06
महिला उपनिरीक्षक	15		06	06	03
महिला सहायक उपनिरीक्षक	25			14	11
महिला प्रधान आरक्षक	40		07	16	17
महिला आरक्षक	200	110	60	20	10
योग	300	110	77	64	49
प्रतिशत	100	37	26	21	16

पुलिस विभाग में सेवा करना अपने आप में एक सम्मान की स्थिति है। मध्यप्रदेश में पुलिस सेवा में तीन स्तरों पर सीधी भर्ती होती है। प्रथम, आरक्षक पद पर,

द्वितीय उप निरीक्षक पद पर और तृतीय पुलिस उप अधीक्षक स्तर पर। आई.पी.एस. स्तर पर भर्ती केंद्र सरकार के द्वारा की जाती है। तथ्यों को एकत्रित करते समय यह जानने का प्रयास किया गया कि मध्यप्रदेश में महिला पुलिसकर्मियों और अधिकारियों की आयु उनकी भर्ती के समय क्या थी। तालिका क्रमांक 02 का विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि 18 से 20 वर्ष की आयु में 37 प्रतिशत, 20 से 25 वर्ष की आयु में 26 प्रतिशत, 25 से 30 आयु समूह की स्थिति में 21 प्रतिशत और 30 वर्ष से अधिक आयु हो जाने पर 16 प्रतिशत महिलाओं ने पुलिस सेवा ज्वाइन की थी। राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारियों की आयु की स्थिति का विश्लेषण करने पर यह स्थिति सामने आई की 40 प्रतिशत महिला पुलिस अधिकारी 18 से 20 वर्ष के अंदर, 40 प्रतिशत 20 से 25 और उसके अंदर और 20 प्रतिशत 25 से 30 वर्ष की आयु समूह हो जाने पर पुलिस सेवा ज्वाइन की थी। महिला निरीक्षक की भर्ती के समय आयु की स्थिति 20 से 25 वर्ष आयु समूह में 40 प्रतिशत और 25 से 30 वर्ष आयु समूह में 60 प्रतिशत पाई गई है। यहां यह उल्लेखनीय है की महिला निरीक्षक की सीधी भर्ती नहीं होती है, उन्हें यह पद प्रमोशन पर प्राप्त होता है, इसलिए ज्यादा आयु में महिलाओं ने यह पद प्राप्त किया है। उप निरीक्षक स्तर पर 40 प्रतिशत महिलाओं ने 18 से 20 वर्ष तथा 20 से 25 वर्ष आयु समूह में या पद प्राप्त किया था सिर्फ 20 प्रतिशत महिलाओं ने 30 वर्ष आयु समूह की स्थिति में महिला उप निरीक्षक का पद प्राप्त किया था। महिला उपनिरीक्षक की भर्ती सीधे स्तर पर होती है, इसलिए युवाओं की सहभागिता इसमें ज्यादा पाई गई है। महिला सहायक उपनिरीक्षक का पद प्रमोशन से प्राप्त होता है, इसलिए 25 से 30 वर्ष आयु समूह की 56 प्रतिशत तथा 30 वर्ष से ऊपर आयु समूह की 44 प्रतिशत महिलाओं ने इस आयु में पद को प्राप्त किया है। महिला प्रधान आरक्षक का भी पद प्रमोशन द्वारा ही प्राप्त होता है, इसलिए ज्यादा आयु समूह में ही महिलाओं ने इस पद को प्राप्त किया है। आरक्षक की भर्ती सीधे स्तर पर होती है, इसलिए 55 प्रतिशत लड़कियों ने 18 से 20 वर्ष की आयु समूह में ही इस पद को प्राप्त कर लिया था। उपरोक्त विश्लेषण से यह तथ्य भी सामने आया है की महिलाओं की युवा पीढ़ी का रुझान पुलिस विभाग की तरफ बढ़ रहा है। उक्त स्थिति को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्राफ क्र. 02
महिला पुलिस की आयु



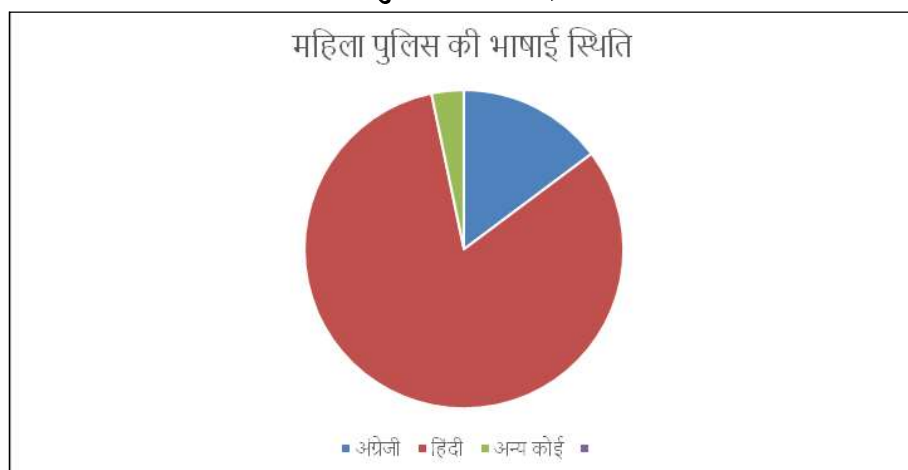
महिला पुलिस की भाषाई स्थिति-भाषा अभिव्यक्ति और ज्ञान की अभिव्यक्ति का एक मूलभूत माध्यम है, यह एक मान्य अवधारणा है या युं कहें कि एक स्वीकृत सत्य है। परन्तु चार्ल्स टेलर के शब्दों में इससे भी बड़ा सत्य है कि भाषा ज्ञान का निर्माण भी करती है। भाषा सत्य की संरचना में भी अहम भूमिका निभाती है।³ निम्नलिखित तालिका में महिला पुलिस की भाषाई स्थिति के संबंध में प्राप्त तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्र. 03
महिला पुलिस की भाषाई स्थिति

पद	चयनित इकाईयाँ (निदर्श)	महिला पुलिस की भाषाई स्थिति		
		अंग्रेजी	हिंदी	अन्य कोई
राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारी	10	10	10	02
महिला निरीक्षक	10	08	10	01
महिला उपनिरीक्षक	15	08	15	00
महिला सहायक उपनिरीक्षक	25	05	25	00
महिला प्रधान आरक्षक	40	03	40	00
महिला आरक्षक	200	25	200	08
योग	300	59	300	11
प्रतिशत	100	19	100	04

रीवा संभाग में कार्यरत सभी महिला पुलिस अधिकारी एवं कर्मचारी को हिंदी का ज्ञान है और वह अपने कार्य व्यवहार और जीवन शैली में हिंदी भाषा को अपनाती है। 19 प्रतिशत अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान है और 4 प्रतिशत ऐसी महिला पुलिसकर्मों एवं अधिकारी पाई गई है, जिन्हें अन्य भाषा जैसे छत्तीसगढ़ी, बिहारी, निमाड़ी आदि का ज्ञान है। उक्त स्थिति को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्राफ क्र. 03
महिला पुलिस की भाषाई स्थिति



महिला पुलिस की धार्मिक स्थिति-सामाजिक नियंत्रण के एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में धर्म प्राचीन काल से हर एक समाज में विद्यमान रहा है, धर्म न केवल सामाजिक

नियंत्रण का प्रभावशाली माध्यम है अपितु मनुष्य के व्यवहार को दिशा देने में भी सबसे प्रभावी कारक के रूप में सामने आया है। व्यक्ति के जीवन में उसका धर्म उस की जीवन शैली को भी प्रभावित करता है। धर्म के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए महिला पुलिसकर्मियों और अधिकारियों के संबंध में तथ्य एकत्रित किए गए और उन्हें निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका क्र. 04
महिला पुलिस की धार्मिक स्थिति

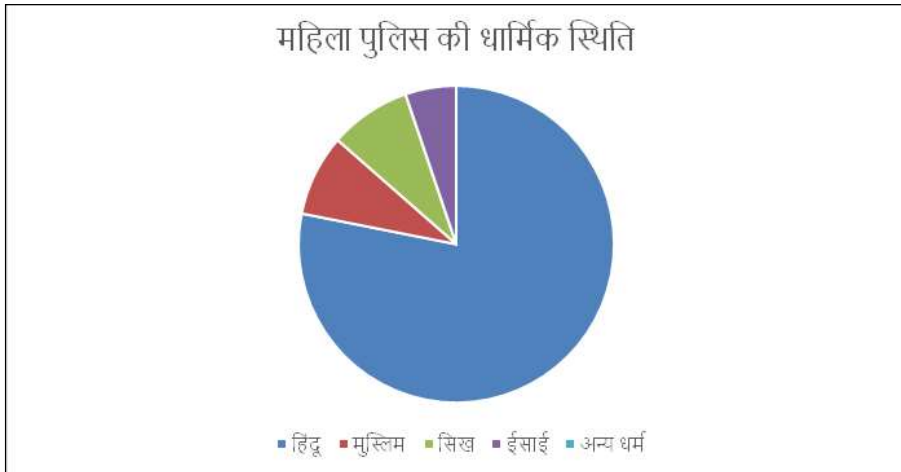
पद	चयनित इकाईयाँ (निदर्श)	महिला पुलिस की धार्मिक स्थिति				
		हिंदू	मुस्लिम	सिख	ईसाई	अन्य धर्म
राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारी	10	08	01	00	01	00
महिला निरीक्षक	10	07	01	01	01	00
महिला उपनिरीक्षक	15	10	02	01	01	01
महिला सहायक उपनिरीक्षक	25	20	02	02	00	01
महिला प्रधान आरक्षक	40	30	04	04	02	00
महिला आरक्षक	200	150	15	15	10	10
योग	300	225	25	23	15	11
प्रतिशत	100	75	08	08	05	04

भारत विविध धर्मों वाला देश है, जिसकी विशेषता उसकी विभिन्न धार्मिक प्रथाएं और विश्वास है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ धार्मिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता को कानून तथा समाज, दोनों द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है। भारत के पूर्ण इतिहास के दौरान धर्म का यहाँ की संस्कृति में एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीयों का एक विशाल बहुमत स्वयं को किसी न किसी धर्म से सम्बन्धित अवश्य बताता है।। भारत के संविधान की प्रमुख विशेषता है कि हम अनेक होते हुए भी एक हैं। भारत की इस आध्यात्मिक भूमि ने कई धर्मों को जन्म दिया है, जैसे हिंदू धर्म, सिख धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म। भारतीय समाज के लोगों को धर्मों पर बहुत ज्यादा विश्वास है और वो मानते हैं कि यह उनके जीवन को एक अर्थ और उद्देश्य देते हैं। यहां पर धर्म सिर्फ मान्यताओं तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि इनमें नैतिकता, रिवाज, संस्कार, जीवन दर्शन के अलावा और भी बहुत कुछ है। भारत में विविध धर्मों का पालन किया जाता है। महिला पुलिस कर्मियों के संबंध में यह तथ्य एकत्रित करने का प्रयास किया गया कि उनकी धार्मिक स्थिति क्या है। तालिका क्रमांक 04 का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं-

- 75 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी हिंदू धर्म को मानती है।
- 08 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी इस्लाम धर्म का अनुसरण करती है।
- 08 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी सिख धर्म की अनुयाई है।
- 05 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी ईसाई धर्म की पाई गई है।
- 04 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मियों में जैन, बौद्ध एवं अन्य धर्मों को मानने वाली महिला पुलिसकर्मी पाई गई है।

रीवा संभाग में हिंदू धर्मावलंबियों की जनसंख्या ज्यादा है और इसी कारण हिंदू धर्मावलंबी महिला पुलिसकर्मियों और अधिकारियों की संख्या भी ज्यादा पाई गई है। उक्त स्थिति को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्राफ क्र. 04
महिला पुलिस की धार्मिक स्थिति



महिला पुलिस की वैवाहिक आयु -लड़कियों के विवाह से संबंधित विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों के अब तक अपने स्वयं के मानक थे। लड़कियों की न्यूनतम उम्र में आखिरी संशोधन सन 1978 में किया गया था और इसके लिए शारदा एक्ट 1929 में परिवर्तन कर उम्र 15 से 18 की गई थी।⁴ इसके बाद 2006 में बाल विवाह रोकथाम कानून लाया गया था। हिंदू विवाह अधिनियम ने लड़कियों के लिए 18 वर्ष और पुरुषों के लिए 21 वर्ष की शादी की आयु तय की है। इंडियन क्रिश्चियन मैरिज एक्ट 1872, पारसी मैरिज एंड डिवोर्स एक्ट 1936, स्पेशल मैरिज एक्ट 1954, मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) आवेदन अधिनियम, 1937, हिंदू मैरिज एक्ट 1955 और हिंदू माइन, रिटी एंड गार्जियनशिप एक्ट, 1956, सभी के अनुसार शादी करने के लिए लड़के की उम्र 21 साल और लड़कियों की 18 वर्ष होनी चाहिए। इसमें धर्म के हिसाब से कोई बदलाव या छूट नहीं दी गई है। फिलहाल बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006 लागू है, जिसके मुताबिक 21 और 18 से पहले की शादी को बाल विवाह माना जाएगा। ऐसा करने और करवाने पर 2 साल की जेल और एक लाख तक का जुर्माना हो सकता है। लैंगिक समानता की दिशा में केंद्र सरकार क्रियाशील है और वह एक ऐसा विधेयक संसद में पेश करना चाहती है, जिसमें लड़कियों के विवाह की आयु 21 वर्ष सभी के लिए हो। महिला पुलिस की वैवाहिक आयु के संबंध में तथ्यों को एकत्रित किया गया।

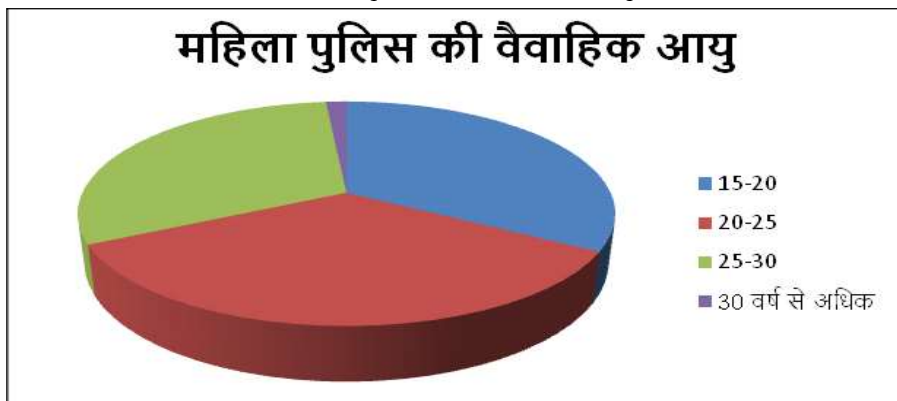
तालिका क्र. 05
महिला पुलिस की वैवाहिक आयु

पद	चयनित इकाईयाँ (निदर्श)	महिला पुलिस की वैवाहिक आयु (वर्ष)			
		18-20	20-25	25-30	30 वर्ष से अधिक
राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारी	10		04	04	02
महिला निरीक्षक	10			06	04
महिला उपनिरीक्षक	15		05	06	04
महिला सहायक उपनिरीक्षक	25			13	12
महिला प्रधान आरक्षक	40		06	15	19
महिला आरक्षक	200	80	70	30	20
योग	300	80	85	74	61
प्रतिशत	100	27	28	25	20

तालिका क्रमांक 05 का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने प्रकट होते हैं-

- 27 प्रतिशत महिला पुलिस ने 18 से 20 वर्ष आयु समूह में विवाह किया है, यहां यह उल्लेखनीय है कि यह प्रतिशत महिला आरक्षक में ज्यादा पाया गया है।
- 20 से 25 वर्ष आयु समूह में 28 प्रतिशत महिला पुलिस ने विवाह किया है।
- 25 से 30 वर्ष आयु समूह के बीच 25 प्रतिशत महिला पुलिस ने विवाह किया है।
- 30 वर्ष से अधिक की उम्र में विवाह की आयु में 20 प्रतिशत महिला पुलिस की स्थिति पाई गई है।
- राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारियों में 40 प्रतिशत ने 20 से 25 वर्ष आयु समूह में 40 प्रतिशत 25 से 30 वर्ष आयु समूह में तथा 20 प्रतिशत 30 वर्ष से अधिक की उम्र में विवाह किया है।
- महिला निरीक्षकों ने 25 वर्ष आयु समूह में 60 प्रतिशत 25 से 30 वर्ष आयु समूह में तथा 40 प्रतिशत 30 वर्ष से अधिक की उम्र में विवाह किया है।
- 34 प्रतिशत महिला उप निरीक्षकों ने 20 से 25 वर्ष आयु समूह 40 प्रतिशत 25 से 30 वर्ष आयु समूह तथा 26 प्रतिशत 30 वर्ष से अधिक की उम्र में विवाह किया है।
- 40 प्रतिशत महिला आरक्षक ने 18 से 20 आयु समूह 20 से 25 वर्ष आयु समूह में 42 प्रतिशत 25 से 30 वर्ष आयु समूह में 15 प्रतिशत तथा 03 प्रतिशत 30 वर्ष से अधिक की उम्र में विवाह किया है।

ग्राफ क्र. 05
महिला पुलिस की वैवाहिक आयु



महिला पुलिस की वैवाहिक स्थिति-विवाह का समाज में अत्यंत महत्व है। वंशानुक्रम को आगे बढ़ाने में विवाह नामक संस्था की महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यक्तिगत रूप से भी प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में विवाह का अत्यधिक महत्व होता है। विवाह जीवन का एक ऐसा मोड़ होता है, जहां आकर व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आता है। भारतीय समाज में अभी भी महिलाओं को विवाह के बाद अनेक परिवर्तनों को स्वीकार करना पड़ता है और यदि यह कहा जाए कि उनका व्यक्तित्व ही बदल जाता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। उनके ऊपर अनेक प्रकार के अनुशासन और नियमों को लागू किया जाता है, जिससे विवाह पूर्व जो उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त रहती है उस पर प्रायः अंकुश लग जाता है और अधिकांश महिलाओं के व्यक्तित्व में परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है। विवाह संस्था से गृहस्थी का निर्माण होता है और गृहस्थी एक तपोवन होती है। पति और पत्नी रथ के दो पहिए होते हैं, अगर दोनों में सामंजस्य होता है तो गृहस्थी की गाड़ी बड़ी आसानी से चलती है।¹ महिला पुलिस कर्मियों के वैवाहिक स्थिति के संबंध में तथ्यों को एकत्रित किया गया उन्हें निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत किया जा रहा है।

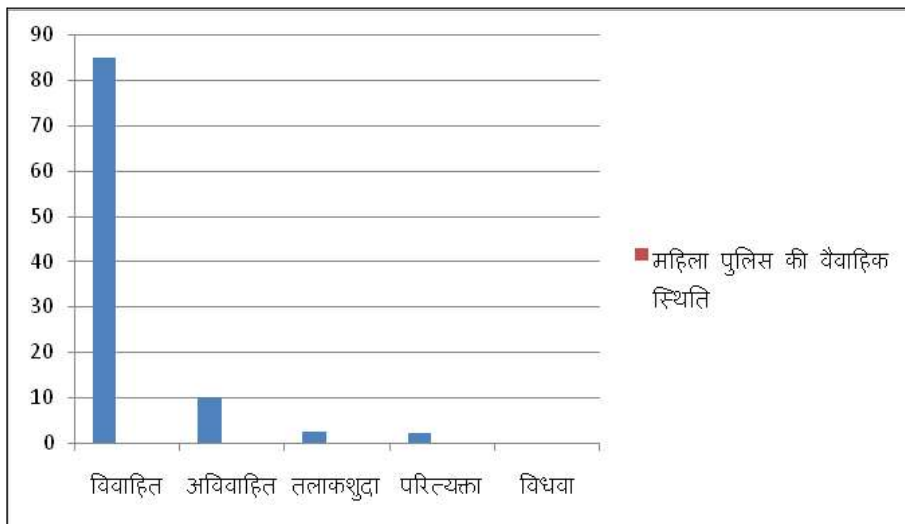
तालिका क्र. 06
महिला पुलिस की वैवाहिक स्थिति

पद	चयनित इकाईयाँ (निदर्श)	महिला पुलिस की वैवाहिक स्थिति				
		विवाहित	अविवाहित	तलाकशुदा	परित्यक्ता	विधवा
राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारी	10	08	02	00	00	00
महिला निरीक्षक	10	07	03	00	00	00
महिला उपनिरीक्षक	15	12	02	01	00	00
महिला सहायक उपनिरीक्षक	25	22	01	01	01	00
महिला प्रधान आरक्षक	40	35	02	01	01	01
महिला आरक्षक	200	170	20	05	04	01
योग	300	254	30	08	06	02
प्रतिशत	100	85	10	2.4	02	0.6

उक्त तालिका से निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं-

1. 85 प्रतिशत महिला पुलिस अधिकारी एवं कर्मचारी विवाहित है और वर्तमान में सफल वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही है।
 2. 10 प्रतिशत महिला पुलिस अविवाहित है। इनमें से कुछ के विवाह के संबंध में प्रक्रिया चल रही है। अविवाहित महिला पुलिस वर्ग में गतिशीलता, क्रियाशीलता और पुलिस की नौकरी में आने वाले खतरों तथा असामाजिक तत्वों एवं अपराधियों से निपटने की क्षमता की भावना विवाहित उम्र के वर्ग की अपेक्षा अधिक पाई गई है।
 3. 2.4 प्रतिशत महिला पुलिस अधिकारी एवं कर्मचारी तलाकशुदा स्थिति में है।
 4. 2 प्रतिशत महिला पुलिस अधिकारी एवं कर्मचारी परित्यक्ता की स्थिति में अपना जीवन व्यतीत कर रही है। इन्होंने अपने साक्षात्कार में यह बताया की परिवार में अनेक तनाव और उत्पीड़न के कारण आज वह इस स्थिति में है। इस वर्ग की महिलाओं ने अब अपने कार्य को ही सेवा मान लिया है और बेहतर तरीके से अपनी सेवा कर रही है।
 5. 0.6 प्रतिशत महिला पुलिस विधवा की स्थिति में अपना जीवन यापन कर रही है जो अत्यंत नाम मात्र की है।
- उक्त स्थिति को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्राफ क्र. 06
महिला पुलिस की वैवाहिक स्थिति



निष्कर्ष-

- तालिका क्रमांक 02 से परिकल्पना क्रमांक 02 सिद्ध होती है कि पुलिस बल में युवा पुलिस महिलाओं का प्रतिशत ज्यादा है।
- तालिका क्रमांक 03 से परिकल्पना क्रमांक 03 सिद्ध होती है कि अधिकांश महिला पुलिसकर्मी हिंदी भाषा का प्रयोग करती है।

- तालिका क्रमांक 04 से परिकल्पना क्रमांक 04 सिद्ध होती है कि अधिकांश महिला पुलिसकर्मी हिंदू धर्म की हैं।
- तालिका क्रमांक 05 से परिकल्पना क्रमांक 05 सिद्ध होती है कि महिला पुलिसकर्मियों में विवाह की आयु 20 से 25 वर्ष में अधिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ. एस. अखिलेश, (1995) पुलिस और समाज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 12
2. अवस्थी डॉ. अमरेश, (1995) भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 77
3. Charlton, Sue Ellen M, SEM (2004), Comparing Asian Politics: India, China, and Japan. Westview Press. ISBN 0-813-34204-X, Page 02
4. शारदा एक्ट 1929
5. डॉ. एस. अखिलेश, (1995) आधुनिक भारत और पुलिस की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 62

भारतीय ग्रामीण समाज में जजमानी व्यवस्था का महत्व: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

• मीरा कुमारी

सारांश- भारतीय ग्रामीण समाज में जजमानी व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जजमानी व्यवस्था ने एक जाति से दूसरे जाति के बीच सामाजिक संबंध स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्रामीण समाज में लोग अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए सभी कार्यों को नहीं करते थे, बल्कि जिस जाति के लोगों के लिए जो कार्य निर्धारित किया गया है, उस कार्य से संबंधित सेवा वे लिया करते थे। बदले में जिस कार्य के लिए उनको दायित्व दिया गया है, उसकी सेवा उस जाति के लोगों को प्रदान करते थे। यह पूरी प्रक्रिया विनिमय सिद्धांत पर आधारित थी। इस तरह से देखा जाए तो भारतीय ग्रामीण समाज में जब मुद्रा का चलन नहीं था या कम था, उस वक्त जजमानी व्यवस्था ही समाज संरचना की आर्थिक व सामाजिक रीढ़ थी। भारतीय ग्रामीण समाज में जजमानी व्यवस्था विभिन्न जातियों के बीच आपसी भाईचारा व सामाजिक संबंध स्थापित करने का महत्वपूर्ण व्यवस्था थी। जजमानी व्यवस्था ने जहां समाज को सामाजिक भाईचारे से बांधा, वही सभी जातियों को एक दूसरे पर आर्थिक रूप से निर्भर बना दिया। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय ग्रामीण समाज, जिसे भारत की आत्मा कहा जाता है, अनेकता को एकता में बांधने का काम जजमानी व्यवस्था ने किया है। भारतीय ग्रामीण समाज को सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक रूप से सशक्त बनाने में जजमानी व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। मेरा यह शोध आलेख इसी जजमानी व्यवस्था पर आधारित है।

मुख्य शब्द- ग्रामीण समाज, जजमानी व्यवस्था, जाति व्यवस्था, परंपरा, संस्कृति, संस्तरण, कर्मकांड, विनिमय

भारत में जाति व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न जातियों के बीच एक संस्तरण का ही निर्माण नहीं किया गया, बल्कि इस संस्तरण को स्थायी बनाए रखने के लिए विभिन्न जातियों के पारस्परिक संबंधों की संस्थागत प्रणाली को हम अंतरजातीय संबंध कहते हैं। यह अंतरजातीय संबंध अनेक रूपों तथा अनेक क्षेत्रों में विद्यमान है, लेकिन इनका सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति हमें 'जजमानी व्यवस्था' के अंतर्गत देखने को मिलती है। हमारी संपूर्ण जाति व्यवस्था कार्यात्मक आधार पर बहुत सी जातियों तथा उपजातियों में विभाजित है। परंपरागत रूप से प्रत्येक जाति के लिए एक निश्चित व्यवस्था अथवा पेशा निर्धारित है तथा एक जाति के सभी सदस्यों के लिए यह अनिवार्य है कि वे अपने

अनुवांशिक व्यवसाय के द्वारा ही आजीविका का उपार्जित करे। ऐसी परिस्थिति में अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रत्येक जाति समूह को अनिवार्य रूप से अन्य जातियों द्वारा किए जाने वाले सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके अलावा खानपान, शिष्टता, वस्तुओं का उपयोग, धार्मिक समारोह तथा कर्मकांडों में व्यक्ति के सहभाग एवं विवाह के क्षेत्र में भी प्रत्येक जाति के संबंध अन्य जातियों के संदर्भ में सुनिश्चित है। इसका अर्थ होता है कि जाति व्यवस्था के अंतर्गत अनेक ऐसे आदर्शों और निषेदों को स्पष्ट किया गया है, जिनके अंतर्गत ही प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे जातियों के व्यक्तियों से अपना संबंध स्थापित करना पड़ता है।¹ इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विभिन्न जातियों के बीच पाए जाने वाले संस्थात्मक संबंधों को प्रणाली को हम अंतरजातीय संबंध कहते हैं।

अंतरजातीय संबंध स्वयं में एक संस्था है तथा इसका उद्देश्य व्यक्ति को नियंत्रित स्वतंत्रता देखकर उसे अन्य जातियों के साथ एक विशेष रूप से संबंध स्थापित करने का अवसर प्रदान करता है। इसका दूसरा प्रमुख उद्देश्य सभी जातियों को परंपरागत जातीय स्थिति को बनाए रखना और संपूर्ण जाति व्यवस्था को प्रभावपूर्ण बनाए रखना है। भारत के सभी क्षेत्रों में अंतरजातीय संबंध की व्यवस्था प्रभावपूर्ण हो रही है। अंतरजातीय संबंधों को सर्वप्रमुख आधार आर्थिक है। कोई भी व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताएं को पूर्ति अकेले ही पूरा नहीं कर सकता है। इसके लिए अंतरजातीय संबंधों की व्यवस्था समाज में होना आवश्यक था। उदाहरण के लिए ब्राह्मण की स्थिति समाज में सर्वोच्च होने के बावजूद भी उसे आर्थिक आधार पर नाई, धोबी, कहार, माली, तेली, धानुक और अन्य जातियों से संबंध स्थापित करना आवश्यक है।²

हिंदू जीवन बहुत से संस्कारों तथा कर्मकांड की पूर्ति से बंधा हुआ है। व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक धार्मिक क्रियाओं को पूरा करते रहना अनिवार्य है। जाति संस्तरण में किसी व्यक्ति की स्थिति चाहे कितनी भी ऊंची अथवा नीचे क्यों ना हो, इन सभी धार्मिक क्रियाओं को वह अकेले पूरा नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिए विवाह संस्कार की पूर्ति के लिए व्यक्ति को जहां एक और ब्राह्मण, पुरोहित की सेवा लेना आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर माली, नाई, धोबी, कहार, धानुक और अन्य जातियों के व्यक्तियों की सेवा भी आवश्यक है, इसके बिना कार्य नहीं संपन्न हो सकता है। किस प्रकार धार्मिक संस्कारों को विधिवत पूरा करने के लिए अंतरजातीय संबंधों को विकसित करना बहुत आवश्यक समझा गया है।³

जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत सभी जातियों का सामाजिक निर्भरता एवं संबंध एक दूसरे से जुड़ा था। ग्रामीण समाज में हर एक जाति को अपने अधिकार और कर्तव्य समाज द्वारा दे दिए गए थे। इस व्यवस्था की कोई आयु निर्धारित नहीं थी बल्कि यह व्यवस्था एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होकर स्वतः चलने वाली थी। उदाहरण के तौर पर ब्राह्मण हर जाति के लोगों के विवाह एवं अन्य धार्मिक कर्मकांडों को पूरा कराने का सेवा प्रदान करते थे, बदले में उन्हें जजमानों से उन्हें दान दक्षिणा दिया जाता था। धोबी को कपड़े धोने का कार्य भी जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत आता था, एक तो भी सभी जातियों के घर के कपड़े को धोने का काम करता था, बदले में उसे अलग-अलग

जातियों के जजमानों से अलग-अलग वस्तुएं एवं सेवाएं प्राप्त होते थे। जजमानी व्यवस्था पूर्ण रूप से वस्तु विनिमय एवं सेवा विनिमय पर आधारित था।⁴ हर एक जाति अपने सामाजिक दायित्व के अनुसार अपने कार्यों को करके दूसरी जातियों को सेवा प्रदान करता था, बदले में दूसरे जाति के लोग भी उस जाति के लोगों को अपने जाति के हिसाब से वस्तु एवं सेवाएं प्रदान करते थे। अंतर्जातीय संबंधों की आवश्यकता सामाजिक आधार पर भी आधारित है। यदि सभी जातियां एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् रहती तो विभिन्न जातियों के बीच ऊंच-नीच का संस्तरण ही नहीं रहता। इस प्रकार सभी जातियों को अपनी एक विशेष सामाजिक स्थिति का बोध कराने के लिए अंतरजातीय संबंधों की एक निश्चित व्यवस्था का होना आवश्यक था।⁵ इस आधार पर प्रत्येक जाति समूह द्वारा एक दूसरे को अपनी सेवाएं देना आवश्यक समझा गया, ताकि विभिन्न जातियों के बीच सेवाओं का आदान-प्रदान होते रहने के बाद भी सामाजिक आधार पर उनके बीच ऊंच-नीच का स्तर स्पष्ट विभाजन बना रहे। न्यायिक क्षेत्र में भी अंतरजातीय संबंधों का निर्धारण किस प्रकार किया गया जिसमें परंपरागत जाति संस्तरण के अंतर्गत विभिन्न जातियों के बीच उच्चता और निम्न नेता के क्रम को स्थायी रखा जा सके।⁶

जजमानी व्यवस्था भारत की ग्रामीण सामाजिक संरचना की एक प्रमुख विशेषता है। भारत में जाति व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय और पारस्परिक कर्तव्य परंपरा के द्वारा ही निर्धारित है तथा किसी भी जाति समूह को अपनी व्यवसाय और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन करने की अनुमति दी गई। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक समझा गया कि एक ऐसी व्यवस्था विकसित किया जाए जिसकी सहायता से विभिन्न विभिन्न व्यवसायियों के द्वारा आजीविका का उपार्जित करने वाली जातियों को भी कार्यात्मक रूप से एक दूसरे का सहयोगी बनाया जा सके। दूसरा तथ्य यह है कि भारतीय ग्रामों की अर्थव्यवस्था सदैव से ही पिछड़ी हुई है। जीवन की परंपरागत प्रणाली के कारण यहां ना तो मुद्रा का ही अधिक प्रचलन रहा और ना ही ग्रामीणों के पास इतना साधन था कि वह मुद्रा के द्वारा अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। इसके फलस्वरूप बहुत आरंभिक काल से ही भारत को ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वस्तु विनिमय के द्वारा आवश्यकता की पूर्ति का प्रचलन रहा है। धीरे-धीरे वस्तु विनिमय के साथ ही ग्रामों में सेवाओं का भी विनिमय होने लगा। जैसे-पुरोहित, लोहार, तेली, धोबी, नाई व अन्य छोटी जातियों के व्यक्तियों ने किसानों को अपनी सेवाएं प्रदान की, जबकि किसान ने फसल उपजाते ही उनकी सेवाओं के आधार पर उन्हें एक निश्चित मात्रा में अन्न दे दिया।⁷ इस प्रकार बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय ग्रामों में सेवा के विनिमय के आधार पर व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति की जाने लगी थी। धीरे-धीरे यह अनुभव किया जाने लगा कि सेवाओं के विनिमय द्वारा विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना एक उपयोगी परंपरा बन सकती है क्योंकि इसका लाभ धनी और निर्धन सभी व्यक्तियों के लिए है। इसके फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में भी सेवाओं का विनिमय आरंभ हो गया। भारत में स्मृति काल से ही धर्म के अंदर तरह-तरह के कर्मकांडों का समावेश होने लगा था। यह धार्मिक कर्मकांड इतने जटिल थे कि इन्हें पूरा करने के लिए अनेक व्यक्तियों की सेवाओं की आवश्यकता

होती थी।⁸ इन सेवाओं में भी कुछ सेवाएं दूसरी सेवाओं की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती थी, इसलिए विभिन्न सेवाओं के बदले में मिलने वाले पुरस्कार की मात्रा भी भिन्न भिन्न निर्धारित कर दी गई। भारतीय ग्रामीण सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत सेवाओं के पारंपरिक आदान-प्रदान तथा उनके कार्यात्मक महत्व को सभी जातियों ने स्वीकार कर लिया। इसी व्यवस्था को संक्षेप में 'जजमानी व्यवस्था' कहा जाता है।

भारत में जजमानी व्यवस्था की व्यापकता तथा इसकी विशेषताओं को देखते हुए डॉ. वाइजर ने लिखा है कि उत्तर भारत के सभी गांवों को विभिन्न जातियां सेवा संबंधों के आधार पर एक दूसरे से संबंधित हैं तथा प्रत्येक जाति दूसरी जाति को अपनी सेवाएं प्रदान करती है। यदि एक समय पर कोई व्यक्ति नियुक्ति करता है तो दूसरी समय पर वह व्यक्ति सेवा करने वाला है। प्रत्येक व्यक्ति के पास विभिन्न जातियों के अनेक जजमान होते हैं। इस प्रकार हिंदू समुदाय में सेवा को अंतःसंबंधता की इसी व्यवस्था को जजमानी व्यवस्था कहा जाता है।⁹

जजमानी व्यवस्था ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का एक व्यवसायिक स्वरूप है, जिसके द्वारा प्रत्येक जाति से एक विशेष व्यवसाय करने तथा उसके द्वारा अन्य जातियों की सेवा करने की आशा की जाती है। यह व्यवस्था प्रत्येक जाति को एक दूसरे साथ विभिन्न अधिकार और कर्तव्य प्रदान करती है। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि आवश्यकता होने पर वह अपने जजमान की सभी प्रकार से सेवा करेगा तथा उसके पुरस्कार के रूप में कुछ वस्तुएं अथवा मुद्रा प्राप्त करेगा। जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति की व्यवसायिक स्थिति उस के जन्म पर आधारित है। इसका अर्थ यह होता है कि काम करने वाली जातियों को जजमानी हक उत्तराधिकार के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर प्राप्त होता रहता है। जजमानी व्यवस्था के द्वारा एक गांव अथवा समूह को सभी जातियां एक दूसरे के जजमान होता है अथवा विभिन्न अवसरों पर एक दूसरे को अपनी सेवाएं प्रदान करती है। इस प्रकार सभी जाति समूहों के बीच सेवाओं के आधार पर एक स्पष्ट अंतर संबंधता देखने को मिलती है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि इस व्यवस्था का उद्देश्य मुद्रा विनिमय के अभाव की पूर्ति है। वास्तव में जजमानी व्यवस्था समाजवादी व्यवस्था का एक उप संकुल है जिसका उद्देश्य वस्तु एवं पारस्परिक सेवा के महत्व को स्पष्ट करना है। स्पष्ट है कि भारत में जजमानी व्यवस्था यहां के जातिगत संरचना को स्थायी बनाए रखने वाला एक महत्वपूर्ण प्रतिमान है। इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण उद्देश्य विभिन्न जातियों के बीच कार्यात्मक निर्भरता बनाए रखना तथा विभिन्न जातियों को एक दूसरे से समीप लाना है। जजमानी व्यवस्था जाति व्यवस्था से संबंधित है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसका उद्देश्य सभी जातियों के लिए एक विशेष व्यवसाय सुनिश्चित करना तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसी व्यवसाय के द्वारा आजीविका उपार्जित करने के लिए बाध्य करना है। जजमानी व्यवस्था की प्रकृति अनुवांशिक है। इसके द्वारा एक विशेष सेवा देने का अधिकार प्राप्त होता है तथा इसके द्वारा अनेक पीढ़ियां व्यतीत हो जाने के बाद भी जजमानों और काम करने वाली जातियों के बीच संबंध समाप्त नहीं होते हैं।¹⁰

जजमानी अधिकार एक संपत्ति के समान है। इसका तात्पर्य है कि कमीन (जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत सेवा करने वाला किसी भी जाति का सदस्य व्यक्ति) के लिए जजमान एक संपत्ति है और वह अपने जजमान के एक अधिकार के रूप में विभिन्न प्रकार के पारितोषिक प्राप्त करता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसके जजमान उसके विभिन्न पुत्रों में उसी प्रकार विभाजित हो जाते हैं जिस प्रकार पैतृक संपत्ति का विभाजन विभिन्न पुत्रों में होता रहता है। जजमानी व्यवस्था परंपरागत अर्थव्यवस्था का एक विशेष स्वरूप है। जजमानी व्यवस्था में खुले बाजार की अर्थव्यवस्था मुद्रा के चलन के निर्धारण की व्यवस्था नहीं पाई जाती है। इसके अंतर्गत समाजवादी अर्थव्यवस्था का यह सिद्धांत सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि पारितोषिक का स्वरूप व्यक्ति को आवश्यकता के अनुकूल होनी चाहिए। जजमानी व्यवस्था मुद्रा पर आधारित नहीं है, इसके सेवाओं का भुगतान सेवा, अथवा वस्तुओं के रूप में किया जाता है। इस—ष्टिकोण से यह व्यवस्था वस्तु विनिमय से भी पूर्णतया भिन्न है। जजमानी व्यवस्था के अंतर्गत पारिवारिक अधिकारों एवं कर्तव्यों का एक निश्चित रूप विद्यमान है।¹¹ जजमान और काम करने वाली जातियों के अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के संदर्भ में सुनिश्चित हैं तथा कोई भी पक्ष साधारणतया इसमें अपनी इच्छा अनुसार परिवर्तन नहीं कर सकता। प्राथमिक संबंध जजमानी व्यवस्था की एक मुख्य विशेषता है। सभी जजमानों तथा काम करने वाले लोगों के बीच संबंध अनौपचारिक, प्रत्यक्ष तथा घनिष्ठ होते हैं। इन संबंधों में पारस्परिक हितों की पूर्ति की भावना प्रबल होती है तथा अक्सर जजमान से संबंध विभिन्न काम करने वाली जातियों के बीच सामुदायिकता की भावना विकसित हो जाती है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. अटल, योगेश; दी चौजिंग, फ्रॉन्टियर ऑफ कास्ट, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली- 1968, पृ. 40
2. हार्पर, ई.बी.; द सिस्टम अ, फ इकनोमिक एक्सचेंज इन विलेज इंडिया, अमेरिकन, एंथ्रोप, लजिस्ट, व, ल्यूम 61, नवंबर 5, पार्ट 1, 1959, पृ. 115
3. बुड, इभेलयान; कास्ट लेटेस्ट इमेज, इकोनामिक वीकली 1964, 16 (14), पृ. 951-953
4. श्रीनिवास, एम. एन.; सोशल चेंज इन म, डर्न इंडिया, मीडिया प्रमोटर्स एंड पब्लिशर्स प्राइवेट, बम्बई 1966, पृ. 106
5. रेड्डी, जी. आर.; सोशल कंपोजीशन अ, फ पंचायती राज: बैकग्राउंड ऑफ पॉलीटिकल एंजीन्यूटिव आंध्रा इकोनामिक एंड पॉलीटिकल, वीकली वॉल्यूम 11, नं. 50, 23 दिसंबर 1967, पृ. 211
6. रेड्डी, जी. आर.; पंचायती राज एंड रूरल डेवलपमेंट इन आंध्र प्रदेश, मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली- 1974, पृ. 52
7. परमात्मा, सी.; इलकजन्हा एंड ट्रेडिशनल लीडरशिप इन ए मैसूर विलेज, इकोनामिक वीकली, नं. 11, 1964, पृ. 476-481
8. झा, चेतकर; कास्ट इन बिहार कांग्रेस प, लिटिक्स, इंकलाब नारायण स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया 1967, पृ. 776-778

9. माथुर, पी.सी.; सोशल रसेस ऑफ इंडियन पॉलिटिक्स, अलग पब्लिशर जयपुर- 1984, पृ. 47-49
10. अग्रवाल, जी.के.; ग्रामीण समाजशास्त्र, आगरा बुक स्टोर, आगरा, 1983, पृ. 225-227
मुखर्जी, आर.के.; भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, प्रकाश बुक डिपो, 1975, पृ. 209-210

शिक्षित एवं अशिक्षित कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

• शशांक पाण्डेय
.. प्रीतम सिंह
... किरण पटेल

सारांश- इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य शिक्षित एवं अशिक्षित महिलाओं के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन करना था, इसमें जो परिकल्पनाएँ निर्मित की थी वह यह है कि अशिक्षित महिलाओं की अपेक्षा शिक्षित महिलाओं के आत्मविश्वास का स्तर अधिक होगा तथा दोनों वर्ग की कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास के मध्यमानों में सार्थक अंतर पाया जाएगा। यह अध्ययन 50 कामकाजी महिलाओं पर किया गया जिसमें से 25 महिलाओं शिक्षित वर्ग में आती थी, 25 अशिक्षित वर्ग की थी। अनुसंधान में परिकल्पना के परिक्षण के लिये आकड़ों का संग्रह आत्मविश्वास की प्रश्नावली द्वारा किया गया, जिसका निर्माण साशास्त्र तथा भावालकर (2011) द्वारा किया गया था। इस अध्ययन में प्राप्त परिणामों ने परिकल्पनाओं की पुष्टि की जिसकी विवेचना संपूर्ण शोध पत्र में की गई है।

मुख्य शब्द- आत्मविश्वास, शिक्षित एवं अशिक्षित कामकाजी महिलाएँ

महिलाओं के कामकाजी होने का इतिहास बहुत पुराना नहीं है, पाश्चात्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति के बाद इस प्रक्रिया में काफी तेजी आयी लेकिन भारत में यह प्रक्रिया अन्य देशों की तुलना में कुछ देरी से प्रारम्भ हुई। महिलाओं का कार्यक्षेत्र में प्रवेश, उनकी आर्थिक आवश्यकता, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा, आर्थिक विवशता, उपयोगी व उच्चतर जीवन स्तर अनेक कारणों से रहा होगा।

भारत में प्राचीन समय में कई स्त्रियाँ विद्वान थी और समाज के लिए कार्य करती थी। लेकिन उस दौर में पैसे कमाने को आज जैसा महत्व नहीं था। आज पुरुष प्रधान समाज से बाहर निकल के स्त्री पढ़ लिख के विद्वान बनती हैं और इस मिले ज्ञान को घर की चार दिवारी में रखना उचित नहीं।

वर्तमान समय में यह देखा जा रहा है कि शिक्षण सेवा क्षेत्र ने महिलाओं को

-
- अतिथि विद्वान, समाज कार्य विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
 - .. अतिथि विद्वान, समाज कार्य विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
 - ... एम.फिल. छात्रा, समाज कार्य विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

अत्यधिक आकर्षित किया है। निश्चित अवधि तक कार्य, निश्चित नियम, राजनीतिक हस्तक्षेप का अभाव, सापेक्ष सुरक्षा आदि अनेक ऐसे कारक हैं, जिससे महिलाओं का आकर्षण शिक्षण क्षेत्र की तरफ बढ़ा है। हमारे देश की आबादी का लगभग आधा भाग महिलाएँ हैं। संविधान में इन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिए हैं किन्तु अनेक पूर्वाग्रह और लिंग-भेद के परिणाम स्वरूप अनेक असमानताओं का सामना करना पड़ता है। लगभग सभी महिलाओं को शोषण व हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

महिला और शिक्षा को अनिवार्य रूप से जोड़ने वाली अवधारणा है। इसका एक रूप शिक्षा में स्त्रियों को पुरुषों की ही तरह शामिल करने से सम्बन्धित है। दूसरे रूप में यह स्त्रियों के लिए बनाई गई विशेष शिक्षा पद्धति को सन्दर्भित करता है। भारत में मध्य और पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्रियों को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी। वर्तमान दौर में यह बात सर्वमान्य है कि स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिये जितना कि पुरुष हो। यह सिद्ध सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की सन्तानों का कदापि कल्याण नहीं हो सकता।

शिक्षा वयस्क जीवन के प्रति स्त्रियों के विकास के लिए एक आधार के रूप में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा अन्य अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए लड़कियों और महिलाओं को सक्षम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बहुत सी समस्याओं को पुरुषों से नहीं कह सकने के कारण महिलाएँ कठिनाई का सामना करती रहती हैं। अगर महिलाएँ शिक्षित हों तो वे अपने घरों की सभी समस्याओं का समाधान कर सकती हैं। स्त्री शिक्षा राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय विकास में मदद करता है। महिला शिक्षा एक अच्छे समाज के निर्माण में मदद करती है।

महिलाओं को परिवार और समाज में अपना सम्मान पाने के लिए आर्थिक रूप से निर्भर होने की सलाह दी जाती है। प्राचीन काल से मजदूर वर्ग की महिलाएँ अनेक प्रकार के काम काज करती रही हैं, परन्तु कुछ क्षेत्रों में जैसे घरों, सड़कों इत्यादि की साफ सफाई, कपड़े धोना, नर्सिंग, दाई, सिलाई बुनाई, खेती बाड़ी सम्बन्धी कार्य इत्यादि में तो इनका एकाधिकार रहा है। अतिशिक्षित परिवारों एवं उच्च शिक्षित परिवारों की महिलाएँ पहले से ही उच्च पदों पर आसीन होकर कामकाज करती रही हैं। जहाँ तक उच्च शिक्षित परिवारों की महिलाओं की बात की जाय तो उन परिवारों में महिलाएँ अपेक्षाकृत हमेशा से ही सम्मान प्राप्त कर रही हैं।

आत्मविश्वास का संप्रत्यय- आत्मविश्वास दो शब्दों से मिलकर बना है आत्म अर्थात् खुद और विश्वास अर्थात् भरोसा। यदि सरल शब्दों में कहाँ जाये तो इसका तात्पर्य खुद पर भरोसा होना से है जो किसी भी चीज का सफलता का मूल मंत्र है। आत्मविश्वास एक प्रकार की अभिवृत्ति है, जो व्यक्ति को स्वयं पर विश्वास और भरोसा दिलाता है। इससे व्यक्ति का अपने जीवन पर पूरा नियंत्रण होता है। साथ ही वह अपने क्षमताओं और कमजोरियों को बखूबी जानता है और स्वयं को सकारात्मक नजरिये से देखता है जिसका असर उसके जीवन में पड़ता है और वह अपने लक्ष्य, समप्रेक्षण, कौशल और सकारात्मक परिणाम पर पूरा नियंत्रण कर पाता है और इसके विपरीत निम्न आत्मविश्वास वाला व्यक्ति स्वयं पर संदेह करता है, स्वयं को

तुच्छ, अप्रिय समझता है इस कारण वह कभी-कभी व्यक्ति अपने आत्मविश्वास का उच्च स्तर महसूस करता है और कभी-कभी उसके आत्मविश्वास का स्तर बहुत कम हो जाता है।

आत्मविश्वास की परिभाषा-(Trusting in one's abilities, qualities and Judgement) “स्वयं की क्षमताओं, गुणों और निर्णय पर भरोसा करना। मनोवैज्ञानिक के अनुसार, “आत्मविश्वास स्वयं में एक विश्वास है, व्यक्ति को जीवन की चुनौतियों को सम्पन्न करने और सफल होने का संकेत देता है तथा आत्मविश्वास होना व्यक्ति की योग्यता पर खुद का विश्वास है।”

साहित्य पुनरावलोकन-कामकाजी महिलाओं से सम्बन्धित अनेक अध्ययन अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किये गये हैं। पपोला (1982), सारादमिनी, कपूर, देसाई आदि (1985) द्वारा कार्योंजन में आने वाली महिलाओं के कार्योंजन में आने से सम्बन्धित कारकों तथा कामकाजी महिलाओं की समस्याओं सम्बन्धी विवरण दिया गया है। दुबे एवं पटरीवारा (1990) ने कार्यरत महिलाओं के परिवार की संरचना तथा परिवार का इन महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण से सम्बन्धित वि'लेषण प्रस्तुत किया है। परिवार की भूमिका से सम्बन्धित अन्य अध्ययनों में माथुर (1992) आदि के अध्ययन भी महत्वपूर्ण हैं। कार्योंजन में आने वाली महिलाओं की दोहरी भूमिका का निर्वहन करना पड़ता है। व्यास (2002) ने अपने अध्ययन में 'मध्यम एवं निम्न वर्गीय स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति' में बताया कि महिलाओं की शिक्षा और स्वास्थ्य रोजगार के मामले में लिंग सम्बन्धी अड़चनें दूर करना और लोकतन्त्र में महिलाओं की पूर्ण भागीदारी पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

रूवाली एवं वन्दना (2019) ने कामकाजी महिलाओं की प्रस्थिति एवं समस्याओं का: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन किया। उस अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि वर्तमान समय में भी अधिकांश अनुसूचित जाति की महिलाएँ अशिक्षित हैं या कम शिक्षित हैं। फलस्वरूप वह उच्च पदों पर कम संख्या में आसीन हैं। नौकरी हेतु अभी भी ये महिलाएँ घर परिवार छोड़ कर जाने की स्थिति में नहीं हैं। जिसका प्रमुख कारण घर के बाहर सुरक्षा का अभाव होना प्रमुख है। इन महिलाओं की प्रगति में मुख्य भूमिका का निर्वहन माता-पिता एवं भाई द्वारा ही किया गया है। अनुसूचित जाति की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में बदलाव के लिए ये महिलाएँ आरक्षण की भूमिका को महत्वपूर्ण मानती हैं। नौकरी करने के कारण इन महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक प्रस्थिति बढ़ी है।

सचदेवा (2000) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि घरेलू महिलाओं का बेकार बैठे रहना सामाजिक रूप से अवांछित माना जाता है ऐसी महिलायें जिन्हें उनके कार्य के लिए पारिश्रमिक प्राप्त होता है उनमें आत्मविश्वास बढ़ा है।

ढौडियाल (2004) ने सतत शिक्षा कार्यक्रम में साक्षर हो रही महिलाओं का अध्ययन किया तथा अध्ययन से ज्ञात हुआ कि साक्षरता महिलाओं में निरक्षर महिला की तुलना में आत्मविश्वास अधिक है।

कुमार (2006) के अध्ययन में पाया गया कि शिक्षा से ही महिलाओं में आत्मनिर्भरता आत्मसम्मान व आत्मविश्वास बढ़ता है।

स्मृतिकण मित्र घोष (2016) ने राँची की महिलाओं में सामाजिक स्वतन्त्रता का अध्ययन उनके शैक्षिक कामकाजी, गैर कामकाजी तथा वैवाहिक स्तर के आधार पर किया अध्ययन में पाया गया कि उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं की तुलना में सामाजिक रूप से अधिक स्वतन्त्र है।

शर्मा (2016) ने अपने शोध में महिलाओं के शैक्षिक स्थिति, वैवाहिक स्थिति व कामकाजी व गैर कामकाजी आधार पर महिलाओं में सामाजिक स्वतन्त्रता का अध्ययन किया गया अध्ययन में पाया गया कि क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण व शहरी विवाहित व अविवाहित महिलाओं शिक्षित व अशिक्षित तथा कामकाजी व गैर कामकाजी महिलाओं की सामाजिक स्वतन्त्रता में अन्तर नहीं है।

समस्या का कथन- शिक्षित एवं अशिक्षित कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध के उद्देश्य

- कामकाजी महिलाओं में आत्मविश्वास के स्तर का अध्ययन करना।
- शिक्षित तथा अशिक्षित कामकाजी महिलाओं में आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ

- अशिक्षित महिलाओं की अपेक्षा शिक्षित महिलाओं का आत्मविश्वास का स्तर अधिक होगा।
- शिक्षित तथा अशिक्षित कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास के मध्यमानों में सार्थक अन्तर पाया जायेगा।

शोध में प्रयुक्त प्रश्नावली का वर्णन- अनुसंधान में परिकल्पना के परीक्षण के लिए आंकड़ों का संग्रह आत्मविश्वास की प्रश्नावली द्वारा किया गया जिसका निर्माण सनशास्त्र तथा भावालकर (2011) द्वारा किया गया है। ये एक विश्वसनीय तथा वैध प्रश्नावली है, जिसमें 23 परिस्थिति पर प्रयोज्यकर्ता को विकल्प अ, ब, स किसी एक पर अपनी प्रतिक्रिया देनी पड़ती है और उन सभी प्रतिक्रियाओं को जोड़कर प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है। इस प्रश्नावली द्वारा निम्न, सामान्य और उच्च आत्मविश्वास का स्तर ज्ञात किया जाता है।

शोधविधि

प्रतिदर्श- प्रस्तुत अध्ययन में 50 कामकाजी महिलाओं को लिया गया है जिसमें से अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा में ग्रेस्ट फैकल्टी के रूप में कार्यरत 25 महिलाये थी जो शिक्षित वर्ग में आती है और 25 अशिक्षित महिलाये जो दूसरे के घर के कार्यों में संलग्न थी जैसे, साफ-सफाई, बर्तन धोना, पोछा लगाना इत्यादि के कार्य।

प्रदत्त संकलन- सर्वप्रथम 25 शिक्षित कामकाजी महिलायें तथा 25 अशिक्षित कामकाजी महिलाओं को चिन्हित किया गया। इन महिलाओं पर प्रदत्त संकलन

व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क करके किया गया। सर्वप्रथम उन्हें आत्मविश्वास कि मापनी पर उल्लेखित निर्देशों को पढ़ कर अपना सहयोग प्रदान करने के लिये कहा। निर्देशों के आधार पर प्रयोज्य ने अपने प्रत्येक कथन पर अनुक्रिया दी। अशिक्षित महिलाओं को एक-एक कथन पढ़ के बताया गया और उनकी प्रतिक्रिया शोधार्थी ने स्वयं ली। प्रदत्त का संकलन 50 महिलाओं पर किया गया और आत्मविश्वास मापनी के मैनुअल के अनुसार प्राप्तांक की गणना की। अनुसंधान की प्रक्रिया में आंकड़ों के विश्लेषण तथा निष्कर्ष निकालने के लिए सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया।

- माध्यमान
- प्रमाणिक विचलन
- 'टी' अनुपात

इस अध्ययन में कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास के स्तर का अध्ययन किया गया। प्रदत्त का संकलन कर उसका विश्लेषण किया गया। प्राप्तांक, मध्यमान तथा प्रमाणिक विचलन की गणना की गई जो तालिका 01 में दी गई है।

तालिका 01

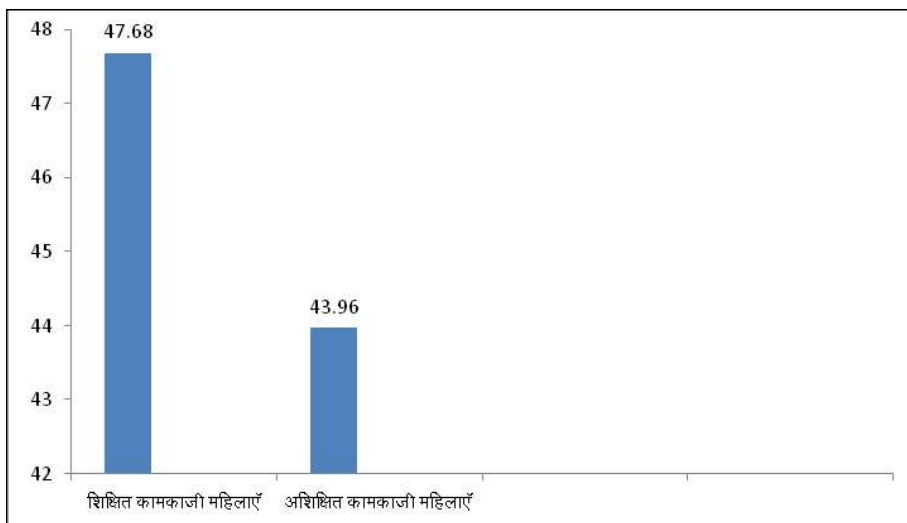
शिक्षित और अशिक्षित महिलाओं के प्राप्तांक, मध्यमान तथा प्रमाणिक विचलन

		Total	Mean	SD
शिक्षित कामकाजी महिलाएँ	N=25	1192	47.68	5.26
अशिक्षित कामकाजी महिलाएँ	N=25	1099	43.96	4.36

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षित कामकाजी महिलाओं में आत्मविश्वास अशिक्षित कामकाजी महिलाओं की अपेक्षा अधिक पाया गया। शिक्षित कामकाजी महिलाओं का अध्ययन 47.68 तथा अशिक्षित महिलाओं का मध्यमान 43.96 आया है, मानक विचलन शिक्षित कामकाजी महिलाओं का 5.26 तथा अशिक्षित कामकाजी महिलाओं का 4.32 आया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि आत्मविश्वास का स्तर शिक्षित कामकाजी महिलाओं का अशिक्षित कामकाजी महिलाओं का अधिक है। इस शोध में प्रथम परिकल्पना (H1) अशिक्षित महिलाओं की अपेक्षा शिक्षित महिलाओं का आत्मविश्वास का स्तर अधिक होगा की पुष्टि प्राप्त परिणाम द्वारा की गई। (ग्राफ 1 का अवलोकन करें।)

ग्राफ 01
शिक्षित और अशिक्षित महिलाओं के मध्यमान



इस अध्ययन में दूसरी परिकल्पना थी जो शिक्षित तथा अशिक्षित कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास के मध्यमानों में सार्थक अन्तर पाये जाने से सम्बन्धित थी। H2 के अनुसार शिक्षित तथा अशिक्षित कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास के मध्यमानों में सार्थक अन्तर पाया जायेगा। परिणामों द्वारा इसकी भी पुष्टि हुई और ये सत्य पाई गई। टी परीक्षण अनुपात का सूत्र लगाया गया तो t-ratio 2.06 आया है जिसका मूल्य $df=48$ पर दी गई t सारणी में -05 मूल्य से अधिक पाई गई। अतः ये कहा जा सकता है कि शिक्षित और अशिक्षित कामकाजी महिलाओं के आत्मविश्वास के मध्यमान में सार्थक अन्तर पाया जाता है। परिणाम के आधार पर शिक्षित कामकाजी महिलाओं और अशिक्षित कामकाजी महिलाओं में आत्मविश्वास भिन्न पाया गया।

अध्ययनों के आधार पर कामकाजी महिलाओं में आत्मविश्वास का स्तर अधिक होता है। इस अध्ययन के आधार पर ये देखा गया कि शिक्षित कामकाजी महिलाओं का आत्मविश्वास उच्च श्रेणी के अन्तर्गत आया और अशिक्षित कामकाजी महिलाओं का सामान्य श्रेणी में पाया गया।

महिला के कामकाजी होने से उसका आत्मविश्वास का स्तर बढ़ता है। इस अध्ययन में अशिक्षित महिलाओं का सामान्य आत्मविश्वास स्तर पाया गया जबकि शिक्षित कामकाजी महिला का अधिक पाया गया। जैसा की हम जानते हैं कि आत्मविश्वास का अर्थ है की आप ने अपने आप को अपना लिया है। आप जैसे हैं आप उसमें खुश हैं। जब एक बार आप इस स्थिति में आ जाते हैं जहाँ आपको दुनिया क्या सोचती है उसका अधिक फर्क नहीं पड़ता वास्तव में जीवन में फर्क तभी से दिखना शुरू हो जाता है। हम खुले मन से आजाद होकर खुद को अभिव्यक्त कर सकते हैं। खुले मन की ऐसी आजादी हमें शांति प्रदान करती है।

देश में आज कामकाजी महिलाओं की संख्या लगभग एक करोड़ हो गई है। कृषि और निर्माण कार्यों में तो पहले से महिलाएं सक्रिय हुआ करती थी, लेकिन अब उनका कार्य क्षेत्र आर भी विस्तृत हो गया है। अब कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है, जहां महिलाएं कुशलता से अपने दायित्वों को कुशलता से निभा रही हैं। स्वतंत्र भारत के तीसरे दशक और चौथे दशक में तो इन्हें आर्थिक क्षेत्रों में आरक्षण भी मिलने लगा। बैंक ऋण तथा अन्य अनेक सुविधाओं के कारण हजारों नई महिला उद्यमी अपने-अपने रोजगार भी लगाने लगीं। आर्थिक क्षेत्रों में आई इन महिलाओं के और कामकाजी महिलाओं के कारण सामाजिक क्षेत्रों में कुछ नई समस्याएं पैदा हुईं। कामकाजी महिलाओं की विभिन्न प्रकृतियों एवं आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में इन्हें निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है। लगभग 80 प्रतिशत मध्यवर्गीय परिवारों की महिलाएं केवल आर्थिक संबल के लिए घर से बाहर नौकरी के लिए निकलती हैं।

एक नवीन अध्ययन में कुमारी, (2020) ने कामकाजी महिलाएं: समस्याएं एवं समाधान (वर्तमान परिवेश के संदर्भ में) अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुये कहा है कि भारत में यदि नारी मुक्ति का बिगुल बजा है तो केवल एक ही सुर में, यानी महिलाओं को घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर कामकाज में संलग्न कर दीजिए और समझ लीजिए कि बहुत बड़ा अहसान महिलाओं के ऊपर कर दिया है, किंतु यह यक्ष प्रश्न हमेशा रहेगा कि क्या सचमुच महिलाओं के घर से निकलने तथा कामकाजी होने मात्र से उनकी समस्याओं का निदान हो जाएगा? या क्या वे वास्तव में शोषण से मुक्त हो जाएंगी? आजादी के बाद नारी शिक्षा की स्थिति में सुधार के कारण उच्च मध्यवर्गीय के साथ-साथ आम शहरी मध्यवर्गीय परिवारों की नारियाँ भी शिक्षित हुईं और उन्होंने अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश की। कई महिलाओं ने उसमें सफलता भी प्राप्त की, लेकिन पितृवादी सोच हमेशा उनके आड़े आती है, जो उनकी परेशानियों का कारण बनती है। घर के बाहर की समस्या ऑफिस में अभी भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या कम। फलतः वे पूरी तरह से सहज नहीं हो पाती हैं।

सुझाव-यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति कमजोर होती है। वे शारीरिक रूप से भी पुरुष से कमजोर होती हैं। उन्हें अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को प्रकट करने के उतने अवसर नहीं मिलते, वे अपनी वस्तुस्थिति और मानसिक सौख को भी सरलता से प्रकट नहीं कर पातीं। संकोच और नारी सुलभ सहज लज्जा के कारण भी सत्य को उस प्रकार से प्रकट नहीं कर पातीं। इसलिए महिलाओं की इस कमजोरी का लाभ हमेशा पुरुष वर्ग को मिलता आया है। इस दीवार को नहीं तोड़ सकतीं, क्योंकि इस में भी शिष्टता, शालीनता के वही गुण हैं।

निष्कर्ष- भारतीय कामकाजी महिला की स्थिति दो पाटों में फँसे धुन के समान हो गई है। उसे कार्यालय और घर दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। यदि वह दोनों में सन्तुलन स्थापित करने में असमर्थ होती है, तो उसे भारी निंदा का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक कामकाजी महिला का घरेलू जीवन दयनीय होता है, यह अवधारणा पूर्णतः औचित्यपूर्ण नहीं है। आज भारतीय महिला सजगता और जिम्मेदारी से कार्यालय और घर के कार्यों को संभाले हुए है। घर को चलाने, पति के भार को कम करने और सुख

सुविधाओं से सम्पन्न जीवन जीने के प्रति भारतीय कामकाजी महिलाओं के प्रयत्न स्तुत्य है। अर्थात् उन्हें अपने घर-परिवार, रिश्ते-नाते के साथ-साथ ऑफिस सबको ठीक से चलाना पड़ता है और इन सबमें प्रमुख है दोनों के बीच संतुलन, क्योंकि किसी एक पक्ष को गलती से भी इग्नोर करने पर जीवन की गाड़ी डगमगाने लगती है।

इस अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मविश्वास का जीवन में बहुत अधिक महत्व है। शिक्षा आत्मविश्वास को बढ़ाने में मदद देती है। कामकाजी शिक्षित महिलाओं का आत्मविश्वास का स्तर अशिक्षित कामकाजी महिलाओं की अपेक्षा अधिक होता है।

परिसीमाएँ- इस शोध में समय व उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए कुछ परिसीमाएँ थी जो निम्नवत हैं-

1. इस शोध में केवल विश्वविद्यालयों में कामकाजी महिलाओं, गेस्ट फैकल्टी महिलाओं को लिया है।
2. घरेलू कार्य कर रही अशिक्षित महिलाओं को लिया है।
3. प्रस्तुत शोध में केवल सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।
4. शोध में केवल 50 कामकाजी महिला को ही लिया गया है।
5. प्रस्तुत अध्ययन में सांख्यिकी में माध्यमान, प्रमाणिक विचलन व टी अनुपात का प्रयोग किया है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

- Dube L. and Patriwala. R (1990) Structural and strategies: Women work and family Sage New Delhi Publication.
- Kapoor Pramila (1968) The Study of Marital Adjustment of educated working women in India, Agra Publication.
- Mather, D. (1992) Women, Family and Work, Rawat Publication, Jaipur.
- Pappola T.S. (1982) Woman works in an urban Labour Market : A study of Segregation and discrimination in employment Lucknow Publication P- 116.
- World Bank Report: 6 April 2009, Hindustan Times New Delhi Comparative study of Working Women P-11. www.techgurukagyon.com
- रूवाली, प्रियंका एवं वन्दना (2019) ने कामकाजी महिलाओं की प्रस्थिति एवं समस्याओं का: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन Journal of Acharaya Narendra Dev Research Institute I ISSN : 0976-3287
- कुमारी, संगीता (2020) कामकाजी महिलाएँ: समस्याएँ एवं समाधान (वर्तमान परिवेश के संदर्भ में) International Journal of Applied Research; 6(10): 94-96, ISSN Print: 2394-7500
- नई शिक्षा 30 दिसम्बर (2015) “महिला सशक्तिकरण का भविष्य” मनोज माथुर, जयपुर।
- दुबे, श्याम सुन्दर (2007) “समसामयिक निबंध” “उभरती हुई नारी शक्ति और हमारा समाज” विधा विहार, नई दिल्ली।

कोविड-19 महामारी के दौरान बेरोजगार हुये युवकों को मनोसामाजिक समस्याओं का अध्ययन (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

• शालिनी शर्मा
•• सुनीत कुमार द्विवेदी
••• आशीष सिंह पटेल

सारांश- प्रस्तुत शोध अध्ययन कोविड-19 महामारी के दौरान बेरोजगार हुये युवकों कि मनोसामाजिक समस्याओं पर आधारित है। इस अध्ययन में रीवा नगर के बेरोजगार युवकों की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दशा पर स्व निर्मित अनुसूची द्वारा प्रदत्त संकलन 25 बेरोजगार युवकों पर किया गया। ये वह बेरोजगार युवक थे, जिनकी कोविड महामारी के दौरान लॉकडाउन के समय रोजगार छूट गया था और उनकी आयु 30 वर्ष से 38 वर्ष की थी। यह सभी शिक्षित पुरुष युवा थे। परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि कोविड-19 के दौरान बेरोजगार युवकों को मनोसामाजिक समस्याओं का अत्यधिक सामना करना पड़ा जिससे उनका व्यक्तित्व प्रभावित हुआ। इस अध्ययन के परिणाम के आधार पर सबसे अधिक इस काल में उनमें अप्रसन्नता दिखाई पड़ी, फिर निम्न समायोजन, फिर अनुपयोगिता का भावना, फिर अकेलापन, उसके पश्चात जीवन सन्तोष में कमी और अन्त में स्तर में कमी पाई गई। परिणामों की विस्तृत विवेचना सम्पूर्ण शोध पत्र में की गई है।

मुख्य शब्द- कोविड-19 महामारी, बेरोजगारी, युवक एवं मनोसामाजिक समस्याएँ

आज बेरोजगारी की समस्या विश्वव्यापी समस्या बन गयी है, लेकिन इसकी विकरालता विकासशील देशों में अधिक देखने को मिलती है। एक ओर जनसंख्या की रफ्तार तेज है और दूसरी ओर रोजगार की गति धीमी है, अर्थात जनसंख्या एवं रोजगार के बीच अन्तराल बढ़ता जा रहा है। इस समस्या पर काबू पाना तो दूर रहा, उल्टे उसकी जटिलता और भी बढ़ती जा रही है। भारत में यह समस्या अत्यधिक जटिल हो गयी है। अब इस समस्या ने आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक एवं नैतिक समस्या का भी रूप धारण कर लिया है। बेरोजगारी की समस्या मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त है; शहरी

-
- अतिथि विद्वान, समाज कार्य विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
 - अतिथि विद्वान, समाज कार्य विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
 - एम.फिल. छात्र, समाज कार्य विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

बेरोजगारी ग्रामीण बेरोजगारी का परिणाम है। बेरोजगारी को समझने के लिये पूर्ण रोजगार पर विचार करना आवश्यक है।

आज भारत के युवा तिहरी चुनौती का सामना कर रहे हैं। उन्हें नौकरी के बाजार के खराब हालात के कारण बेरोजगारी से जूझना पड़ रहा है, तो शिक्षा व्यवस्था में व्यवधान से पढ़ाई छोड़ने का दबाव भी बढ़ गया है और डिजिटल फ़ासले के कारण आने वाली मुश्किलें भी देश के युवा झेल रहे हैं। परीक्षा में लगातार देर के चलते, उन्हें न तो डिग्रियां मिल पा रही हैं और न ही वो नौकरी की तलाश के लिए स्वतंत्र हो पा रहे हैं।

कोविड-19 की महामारी ने न केवल देश के आर्थिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डाला है, बल्कि उसे अपने युवाओं की शक्ति का लाभ ले पाने से भी वंचित कर दिया है। अब भारत के हाथ से समय निकलता जा रहा है और देश बड़ी तेज़ी से बुजुर्गों का राष्ट्र बनने की ओर अग्रसर हो रहा है। ऐसे में त्वरित क़दम उठाए जाने की आवश्यकता है जिससे कि देश अपनी सबसे बड़ी पूंजी-यानी देश के युवाओं को बोझ बनने से रोक सके। अगर हम बेरोजगारी, घटिया नौकरी और लगातार ख़ाली बैठे युवाओं (NELT) के मौजूदा पथ पर चलते रहे, तो युवा पूंजी देश पर बोझ बन जाएगी।

अध्ययन से सम्बन्धित पूर्व शोध अध्ययन- स्वतंत्रता के गत चार दशकों में हमारे राष्ट्र ने अनेकानेक समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना किया है, लेकिन बेरोजगारी की समस्या को आज तक हल नहीं किया है, लेकिन बेरोजगारी की समस्या को आज तक हल नहीं किया जा सका है। इस समस्या को सुलझाने का जितना प्रयास किया जाता है उतनी ही वह जटिल होती जाती है।

रमेश (2016), की पुस्तक रूरल वेज्स ऑन डेवलपिंग एन्डअॅनालिटिकल फेमवर्क में बाबू पी रमेश ने युवाओं में बेरोजगारी का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं की मजदूरी शोषण पर केन्द्रित है। इस पुस्तक में बाबू पी. रमेश ने उल्लेख किया है कि युवा मजदूरों को वाजिब मजदूरी नहीं मिल पाती है।

पिछले एक दशक में जिन सेक्टर पर अधिक रोजगार सृजन होता देखा गया है, वो हैं। मैन्यूफैक्चरिंग, कंस्ट्रक्शन, ट्रेड, होटल और ट्रान्सपोर्ट। इस महामारी के कारण, अर्थव्यवस्था के इन्ही सेक्टर पर सबसे बुरा प्रभाव देखने को मिला है। इन सेक्टरों में नई जान डालने के लिए भारी मात्रा में सरकारी निवेश और खास तौर से युवा आबादी को मदद करने का लक्ष्य बनाकर सघन प्रयास करने की ज़रूरत है। युवाओं को भयंकर बेरोजगारी की मार से बचाने के लिए शहरी रोजगार गारंटी योजना जिसका प्रस्ताव ज़्यादा देर ने दिया था, वो लाने की ज़रूरत है। इसमें युवाओं को रोजगार देने पर अधिक जोर देने के लिए सम्मानजनक कार्य की व्यवस्था करना बेहद आवश्यक है।

विश्व आर्थिक परिदृश्य (अक्टूबर 2020) की रिपोर्ट के मुताबिक, कोविड-19 की महामारी, मध्यम अवधि में भारत को गहरे ज़ख्म और धीमी विकास दर देकर जाएगी, क्योंकि श्रम के बाज़ार को बेहतर होने में काफी समय लग जाता है। अनिश्चितता और बैलेंस शीट की समस्या के कारण निवेश कम हो जाता है और शिक्षा में कमी आने से मानवीय पूंजी का भी अभाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे माहौल में भारत

अपने युवाओं की अपेक्षाओं को तोड़ने का जोखिम नहीं ले सकता है। भारत पहले ही अपने डेमोग्राफिक डिविडेंड का अधिकतम लाभ उठाने के लिए काफी समय गंवा चुका है और अब रोजगार सृजन के लिए त्वरित कदम उठाने की आवश्यकता है। शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र की कमियां दूर करने के लिए उचित प्रयासों और व्यवस्था बेहतर बनाने के लिए असरदार उपाय न करने से भारत आबादी के संकट की ओर बढ़ चलेगा। फिर वो पूर्वी एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था के बराबर की तरक्की का स्तर हासिल नहीं कर पाएगा। पूर्वी एशिया के इन टाइगर देशों ने आर्थिक प्रगति का जो मुकाम हासिल किया है, वो अपने युवाओं के कारण ही किया है।

न्यूयॉर्क में 20 वर्षों से निजी प्रैक्टिस कर रहे मनोवैज्ञानिक एडम बेन्सन कहते हैं, आज के हालात में कई लोग कंट्रोल मोड में चले गए हैं और वे चीजों को नियंत्रित करना चाहते हैं। लेकिन हमें इस सच्चाई को स्वीकार करना होगा कि हम कितना भी चाहें, आज की हमारी स्थितियों पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि रोजगार जाने का दुख किसी अपने को खोने के दुख के बराबर ही होता है और व्यक्ति रोजगार जाने की स्थिति में भी दुख को महसूस करने और उससे निपटने के किसी भी चरण- यानि सदमा लगना और परिस्थिति को स्वीकार न करना, फिर गुस्सा और अंत में स्वीकार भाव और आगे की उम्मीद-से गुजर सकता है। अध्ययनों से पता चलता है कि महामंदी के दौरान जिन लोगों को वित्तीय या नौकरी संबंधी दिक्कतों या आवास की समस्या का सामना करना पड़ा, उन्हें मानसिक बीमारियों का खतरा अधिक था। अब ऐसे में सवाल यह है कि इस अभूतपूर्व परिस्थिति की मार झेल रहे लोग अपना संतुलन कैसे बनाए रखें।

मनोसामाजिक अनुसूची का विवरण- राय के अनुकूलन मांडल पर आधारित एक प्रश्नावली का निर्माण जो किया गया था उसमें से 24 एकांश को लिया गया जो मनोसामाजिक समस्याओं के 6 विमाओं से संबंधित थे। प्रत्येक विमा में चार-चार कथन लिए गए जो अप्रसन्नता, अनुप्रयोगिता, जीवन संतोष में कमी, अकेलापन, निम्न समायोजन, स्तर में कमी से सम्बन्धित थे।

सभी 24 पद तीन बिन्दु मापनी पर आधारित हैं। परिशिष्ट का अवलोकन करें। प्रत्येक पद के तीन उत्तर सहमत, असहमत और अनिश्चित हैं। सहमत अनुक्रियाओं को 3 अंक, अनिश्चित को 2 अंक और असहमत को 1 अंक प्रदान किया गया। इस तरह से 6 विमाओं पर प्राप्तांक प्राप्त किया गया। प्रत्येक विमा का न्यूनतम प्राप्तांक 4 और अधिकतम 12 था और कुल प्राप्तांक 24 पदों पर न्यूनतम चौबिस तथा अधिकतम 96 हो सकता था।

प्रतिदर्श- इस अध्ययन में 25 बेरोजगार युवक जिनकी कोविड महामारी के दौरान लाकडाउन के समय रोजगार छूट गया था और उनकी आयु 30 वर्ष से 38 वर्ष की थी जो सभी शिक्षित पुरुष युवा थे उन पर प्रदत्त संकलन किया गया सभी युवक शहर के निवासी थे और निजी संस्थानों में पूर्व में कार्यरत थे। इन सभी युवकों को एक-एक करके चिन्हित कर व्यक्तिगत सम्पर्क कर विश्वास में लिया गया कि उनके द्वारा दिये गये उत्तर पूर्णतः गोपनीय रखे जायेंगे और केवल शोध कार्य में उपयोग में लाये जायेंगे। मनोसामाजिक

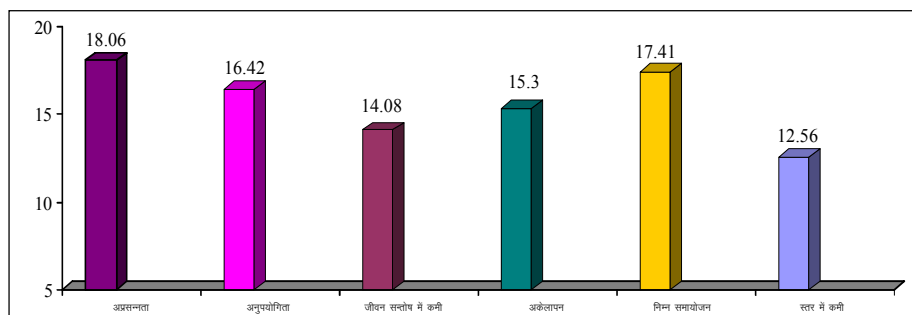
अनुसूची जो इनके द्वारा निर्मित थी उसको 25 युवकों पर एक-एक करके प्रशासित किया गया। अनुसूची के ऊपर अंकित निर्देशों को अनुसंधानकर्ता ने पढ़ा उसके बाद प्रयोज्य ने प्रत्येक कथन पर अपना उत्तर दिया। प्रयोज्य द्वारा दिये गये उत्तरों का ग्रहणता से अवलोकन किया गया कि कोई भी कथन छूटा न हो जिस पर कोई भी प्रतिक्रिया न दी गई हो। अंत में उन्हें सहयोग के लिए धन्यवाद दिया गया। प्रयोज्य द्वारा दिये गये उत्तरों को स्कोरिंग प्रक्रिया द्वारा अंक दिये गये और प्रदत्त का विश्लेषण किया गया।

परिणाम एवं विवेचना- इस शोध में कोविड-19 महामारी में बेरोजगार हुये युवकों की मनोसामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया गया। परिणामों को सुव्यवस्थित ढंग से तालिका तथा ग्राफ में अंकित किया गया है।

तालिका 01
विभिन्न मनोसामाजिक समस्याओं
की विमाओं पर प्राप्त मध्यमान तथा मानक विचलन

क्र.	विमाएँ	मध्यमान	मानक विचलन
1.	अप्रसन्नता	18.06	2.10
2.	अनुपयोगिता	16.42	1.08
3.	जीवन सन्तोष में कमी	14.08	1.34
4.	अकेलापन	15.30	2.03
5.	निम्न समायोजन	17.41	3.16
6.	स्तर में कमी	12.56	1.16

ग्राफ 01
विभिन्न मनोसामाजिक
समस्याओं की विमाओं पर प्राप्त मध्यमान



उपरोक्त तालिका 01 एवं ग्राफ 01 में जो परिणाम दिये गये हैं, उससे यह स्पष्ट होता है कि कोविड-19 के दौरान बेरोजगार युवकों की सामाजिक समस्याओं का काफी सामना करना पड़ता है जिससे उनका व्यक्तित्व प्रभावित हुआ। सबसे अधिक इस काल में उनमें अप्रसन्नता दिखाई पड़ी (18.06) फिर निम्न समायोजन (17.41) फिर अनुपयोगिता का भावना (16.42) फिर अकेलापन (15.30) उसके पश्चात जीवन सन्तोष में कमी (14.08) और अन्त में स्तर में कमी (12.56)।

यह कोई नई बात नहीं है कि किसी का रोजगार जब छूटता है तो वह प्रसन्न नहीं रह सकता। उसमें हीनता की भावना तथा असुरक्षा की भावना आती है। वह अपने आप को दूसरों से समायोजित भी नहीं कर पाता है। उसकी छवि समाज में पूर्व की तरह नहीं रह

पाती है और उसे लगता है कि वह परिवार, मित्र तथा समाज के अन्य लोगों के लिये उपयोगी उतना नहीं रह गया जो रोजगार में रहने पर था। जीवन के सन्तोष के प्रति भी उसमें कमी आती है। अपने को वह समाज का एक महत्वपूर्ण प्राणी नहीं मानता है। अतः वह अवसाद, चिन्ता, तनाव तथा प्रतिबल से अपने आप को हमेशा गिरता हुआ पाता है।

अग्रवाल (2021) कहती है कि कोरोना ने किशोर और युवाओं के भावनात्मक और व्यवहारिक स्वास्थ्य पर लघु और दीर्घकालिक प्रभाव डाला है।

किशोर और युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड-19 महामारी के दीर्घ और लघुकालीन पर प्रभाव पड़ा है। हम सभी शताब्दी की सबसे बड़ी त्रासदी का सामना कर रहे हैं। किशोर भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं, परिस्थितियों के साथ सामंजस्य करना उनके लिए भी मुश्किल हो रहा है, इसका असर उनकी नियमित दिनचर्या पर पड़ रहा है। जैसे कि या तो वे बहुत अधिक खा रहे हैं या बिल्कुल भी नहीं। कुछ किशोर व्यवहार में बहुत आक्रामक हो गए हैं, कुछ युवाओं के व्यवहार में गंभीर ओसीडी (अब्सेसिव कंपलसिव डिसऑर्डर) का असर दिख रहा है क्योंकि उन्हें बाहर आने जाने की मनाही है। घर पर भी नियमित दिनचर्या नहीं है, इसलिए मोबाइल स्क्रीन पर औसतन बिताए जाने वाले समय की अवधि बढ़ रही है, स्क्रीन टाइम बढ़ने से एकाग्रता और ध्यान की कमी आदि समस्या भी बढ़ी हैं। जिन परिवारों में किसी अपने प्रियजन को खोया उनमें यह दिक्कत अधिक बढ़ गई और ऐसी स्थिति से उपजे तनाव का मुकाबला करना अधिक मुश्किल हो जाता है।

नए कोरोना वायरस ने भारत में भारी तबाही मचाई है। हमारे सकल घरेलू उत्पाद जी.डी.पी. के पूर्वानुमान नकारात्मक वृद्धि दर की ओर चले गए हैं। देश पर बेरोजगारी की भयंकर मार पड़ रही है। गरीबी उन्मूलन कि दिशा में हुई प्रगति के उलटी गति पकड़ने का डर है। हालांकि, इस महामारी के बुरे प्रभाव सबसे युवाओं (15-29 वर्ष) पर पड़ते दिख रहे हैं। वो एक साथ तिहरी चुनौती का सामना कर रहे हैं। भयंकर बेरोजगारी और शिक्षा में खलल के साथ-साथ असफल होती शिक्षा व्यवस्था की मार भी झेल रहे हैं।

भारत के युवाओं पर महामारी के तुलनात्मक रूप से अधिक बुरे असर से निपटने के लिए जरूरत इस बात की है कि सरकार, युवाओं को राहत देने के लिए खास उनके लिए प्रयास करे। सरकार की कोशिश ये होनी चाहिए कि वो युवाओं को न केवल मौजूदा आर्थिक संकट से निजात पाने में मदद करें, बल्कि ये प्रयास भी करे कि इस समय भारत जिस आबादी के संकट से दो-चार है, उससे भी बच सके।

इस महामारी से पहले से ही युवाओं के बीच लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन रेट लगातार बढ़ी तेजी से घट रहा था। वर्ष 2004-05 में जहाँ ये 56.4 प्रतिशत था, तो 2018-19 में युवाओं का लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन रेट घट कर केवल 38.1 प्रतिशत ही रह गया था। इससे भी चिन्ताजनक बात तो एन.एल.ई.टी. के आंकड़े थे। एन.एल.ई.टी. यानी नॉट इन लेबर फोर्स, एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग के तहत उन लोगों की संख्या का आकलन किया जाता है, जो न तो कोई काम कर रहे हैं, न ही काम की तलाश में हैं और न ही वो किसी तरह की शिक्षा या प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

भारत में ऐसे युवाओं की संख्या दस करोड़ से अधिक है और ये आंकड़ा तब है जबकि सरकार ने देश के बेकार बैठे युवाओं को नए हुनर सिखाने, उनके बीच उद्यमिता को बढ़ावा देने और रोजगार सृजन के लिए कई प्रयास किए हैं। पूर्व के वित्तीय और आर्थिक संकटों ने हालात और खराब कर दिए हैं। इसका नतीजा ये हुआ है कि आज देश के युवा आर्थिक रूप से बेहद कमजोर हैं और तमाम आर्थिक चुनौतियों के दौरान युवाओं के बीच ही बेरोजगारी की दर सबसे अधिक हो जाती है। कोविड-19 महामारी भी इसका अपवाद नहीं है।

दुनिया भर में फैले कोविड-19 महामारी ने पूरे जगत में लोगों के मानसिक स्वास्थ्य को काफी प्रभावित किया है। (CDC 2020) इस बढ़ते वायरस के संक्रमण से बचने के लिए संयुक्त राष्ट्र की अंतर-एजेंसी गठन की स्थायी समिति मानसिक स्वास्थ्य और मनोसामाजिक समर्थन की टीम ने कहा है कि अगर इससे बचना चाहते हैं तो आपको इस दौरान मानसिक स्वास्थ्य सहायता के मुख्य सिद्धांतों को अपनाना होगा। ("Inter-Agency Standing Committee Guidelines on Mental Health and Psychosocial support" 2020) ये मुख्य सिद्धांत इस कोरोना काल में मानव अधिकारों और समानता को बढ़ावा देते हैं, अगर लोग आज इन सिद्धांतों को अच्छे ढंग से अपनाते हैं तो यह सिद्धांत आज इस महामारी संकट से बचने के लिए लोगों की भागीदारी का हिस्सा बनते हैं और अच्छे भविष्य निर्माण करते हैं। कोविड-19 की वजह से आज लोगों में दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं, जिस कारण विभिन्न प्रकार की संस्थान चाहे वह कॉलेज हो या फिर फैक्टरी सब कुछ बंद है। इस कारण लोगों की आय का साधन भी खत्म हो चुका है, जो कि दुनिया भर के लोगों के लिए चिंता का विषय बना है इस कारण लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है। (OECD, 2020)

निष्कर्ष एवं सुझाव- यह शोध कोविड-19 महामारी के दौरान बेरोजगार हुये युवकों कि मनोसामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित था। इस अध्ययन के द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि बेरोजगार युवकों को बहुत सारी सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनमें नकारात्मक सोच उत्पन्न हो जाती है। उनका मन प्रसन्न नहीं रहता है और कुल समायोजित हो जाते हैं। साथ ही साथ वह अपने आप को अनुपयोगी व्यक्ति पाते हैं। दूसरों के साथ में मेल-मिलाप में कमी आते हैं और अन्तर्मुखी हो जाते हैं। वह अपने आप में ही रहना चाहते हैं और जीवन के प्रति सन्तोष तथा स्तर में भी कमी आती है।

प्रदेश में बेरोजगारी की समस्या के प्रमुख कारण के रूप में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं तकनीकी कारण रहे हैं। जिसमें व्यवसाय प्रधान शिक्षा का अभाव, तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली, नियोजन में दोष, कृषि की मौसमी प्रकृति, ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त निरक्षरता, सहायक उद्योग धर्मों का अभाव, रोजगार मार्गदर्शन का अभाव, व्यक्तियों में उचित दृष्टिकोण का अभाव रूढ़िवादी व परम्परागत समाज, कृषि की प्रधानता, लघु कुटीर उद्योगों का पतन, पूँजी प्रधान तकनीकों का प्रयोग, इत्यादि प्रमुख कारण रहे हैं।

प्रदेश को बेरोजगारी की समस्या से निजात पाने के लिए निम्न उपाय अपनाने चाहिए। जैसे- व्यवसाय प्रधान शिक्षा को बढ़ाना, जनसंख्या वृद्धि में कमी, श्रम

प्रधान तकनीक को बढ़ावा, संरचान्तक विकास को बढ़ाना, निवेश के ढांचे में परिवर्तन, लघु व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा, तकनीकी चुनाव में सर्तकता, रोजगार कार्यक्रमों का सफल संचालन, शिक्षा प्रणाली में व्यवहारिता आदि प्रमुख हैं।

संदर्भग्रन्थ सूची-

- ["Novel Coronavirus \(2019-nCoV\) Situation Report 6 26 tuojh 2020"](#) (PDF). मूल से 7 फरवरी को पुरालेखित (PDF). अभिगमन तिथि 2 February 2020.
- [ArcGIS Dashboards](#) (अंग्रेजी भाषा में) मूल से 29 जनवरी 2020 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 1 मई 2020.
- CDC (2020) Coronavirus Disease 2019 (COVID-19)". Centers for Disease Control and Prevention.
- [Centre for Health Protection, Department of Health Severe Respiratory Disease associated with a Novel Infectious Agent](#) Government of Hong Kong. मूल से 22 मार्च 2020 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 1 फरवरी 2022.
- [Coronavirus About Symptoms and Diagnosis Centers for Disease Control and Prevention](#) (CDC). United States. 30 जनवरी 2020 मूल से 30 जनवरी 2020 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 1 फरवरी 2020
- [Coronavirus Update \(Live\): 37,554 Cases and 813 Deaths from the Wuhan China Virus Outbreak - Worldometer](#) www.worldometers.info अंग्रेजी में मूल से 22 मार्च 2020 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 2020.02.09.
- Emergency Responders: Tips for taking care of yourself". emergency.cdc.gov 2020.
- ICN COVID-19 Update: New guidance on mental health and psychosocial support will help to alleviate effects of stress on hard-pressed staff". ICN - International Council of Nurses 2020.
- Inter-Agency Standing Committee Guidelines on Mental Health and Psychosocial support" (PDF). MH Innovation. 2020
- [Novel Coronavirus \(2019-nCoV\) Situation Summary Centers for Disease Control and Prevention](#) (CDC). 31 जनवरी 2020 मूल से 26 जनवरी को पुरालेखित अभिगमन तिथि 1 फरवरी 2020
- मुखर्जी, रविन्द्रनाथ (1994) - सामाजिक शोध एवं सांख्यिकीय, विवेक प्रकाशन, दिल्ली,
- सिंह, बी.व्ही. (1992) - सामाजिक अनुसंधान - सर्वेक्षण एवं सांख्यिकीय, राजीव प्रकाशन, मेरठ
- श्रीवास्तव, (1988) - म.प्र. का आर्थिक विकास, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल,
- शर्मा एवं वाणेय (1992) - विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन साहित्य भवन, आगरा
- अग्रवाल, एन (2021) युवाओं पर पड़ा है कोविड का गहरा प्रभाव, विशेषज्ञ बोली, मानसिक और सहयोग की जरूरत, हिन्दी न्यूज 18 डाट कॉम, नई दिल्ली
- ठक्कर, माँ तथा कसलीवाल, आर. (2021) युवा और कोविड-19 एक बेहतर भविष्य का निर्माण अस्थाना, पी.एन., (1987) - भारत में आर्थिक नियोजन, जवाहर पब्लिकेशन, आगरा

कोविड-19 के दौरान कामकाजी महिलाओं पर घरेलू हिंसा का प्रभाव (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

• रुचि सिंह

सारांश- वर्ष 2020 मनुष्य के जीवन में कई बड़े बदलाव लेकर आया, वहीं महिलाओं के जीवन में भी कोरोना वैश्विक महामारी का खासा प्रभाव देखा गया। लॉकडाउन के वक्त लोगों ने अपना सारा वक्त घर पर बिताया वहीं महिलाएँ बिना किसी शिकायत न जाने कितनी भूमिकाएँ निभाते नजर आईं। घर, ऑफिस, बच्चे व बहू न जाने कितने रूपों में महिलाएँ खुद को साबित करती हैं। कोविड-19 के दौर में घर की जिम्मेदारियाँ और ऑफिस के काम का बोझ महिलाओं पर इतना बढ़ गया कि वैश्विक स्तर पर 23 प्रतिशत और भारत में 26 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ अपना काम तक छोड़ने का विचार बना ली, इसका खुलासा हाल ही में जारी एक अन्तर्राष्ट्रीय फार्म डेलायट द्वारा 10 देशों की 5000 महिलाओं का अध्ययन करके किया गया। कामकाजी महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे परिवार को प्राथमिकता दे और कई बार इस प्राथमिकता की कीमत उन्हें पेशेवर जीवन को छोड़कर चुकानी पड़ती है समाज में सदियों से अंतर्निहित रुढ़िवाद कहता है कि पुरुष पैसा कमाएँ और महिलाएँ गृहस्थी संभालने और देखभाल का काम करें। परन्तु सवाल उठता है कि विकसित से लेकर विकासशील देशों तक में क्यों यह सोच आज भी कायम है कि घरेलू जिम्मेदारियाँ सिर्फ महिलाओं की ही हैं। वैश्विक महामारी ने महिलाओं के जीवन में उथल-पुथल ला दी, सीमित या बिना आय के जीवन-यापन करने वाली गरीब महिलाओं को अपनी छोटी सी बचत को खर्च करना पड़ता। साथ ही कोविड के दौरान में घरों में भीड़ बढ़ने से घरेलू हिंसा में भी तेजी आई है। इस शोध पत्र में शोधकर्ता द्वारा रीवा नगर (म.प्र.) में रहने वाली कामकाजी महिलाओं पर कोविड-19 महामारी के प्रभाव को जानने का प्रयास किया है साथ ही घरेलू हिंसा किस स्तर पर इसका भी अध्ययन किया गया।

मुख्य शब्द- कोरोना, वैश्विक महामारी, महिलाएँ, कामकाजी महिला, पेशेवर जीवन, रुढ़िवाद, घरेलू हिंसा

पूरे विश्व में कोविड-19 महामारी के कारण तालाबंदी हुई है और इस महामारी के कारण परिवार को घर के अंदर ही रहना पड़ा, कोविड-19 का

मनोवैज्ञानिक प्रभाव पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर अधिक पड़ा। देशव्यापी लॉकडाउन के दौरान जहां बच्चों को स्कूल से छुट्टी मिल गई और कई नौकरी पेशा लोगों को दफ्तर नहीं जाने और घर से काम करने का मौका मिल गया है, वहीं लाखों की तादाद में नौकरी पेशा महिलाओं की समस्याएँ दोगुनी हो गई हैं। अब उनको घर से काम करने के साथ ही घर का भी सारा काम संभालना पड़ रहा है। कोरोना वायरस का आतंक बढ़ने के बाद महानगरों और शहरों की तमाम हाउसिंग सोसायटियों और कालोनियों में घरेलू काम करने वाली नौकरानियों के प्रवेश में पाबंदी लगा दी गई थी कितनों ने डर के कारण खुद ही आने से मना कर दिया, इसकी वजह से महिलाओं को घर के सारे काम खुद ही करने पड़ रहे हैं। खासकर मध्यमवर्गीय समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता हावी होने की वजह से माना जाता रहा है कि घर की साफ-सफाई, चूल्हा चौका, बच्चों की देखरेख और कपड़े धोने का काम महिलाओं का है, पुरुषों का नहीं हालांकि उक्त कामकाजी दम्पतियों के मामले में यह सोच बदल रही है लेकिन अब भी ज्यादातर परिवारों में यही मानसिकता काम करती है, नतीजन लंबे लॉकडाउन एवं इस वैश्विक महामारी के कारण महिलाएँ कामकाज के बोझ तले पिसने पर मजबूर हैं। कोरोना के चलते कामवालों और ऐसे दूसरे हेल्परों की गैर मौजूदगी ने महिलाओं की मुसीबतें कई गुना बढ़ा दी हैं।

एक महिला संगठन की प्रमुख जानकी नारायण कहती हैं कि, महिलाएँ आर्थिक एवं मानसिक रूप से इस महामारी से प्रभावित हुईं, देश के ग्रामीण इलाकों के पुरुष सदस्य कमाने के लिए बाहरी राज्यों में जाते रहे हैं, लॉकडाउन के कारण उनके वापस नहीं लौट पाने के कारण परिवार में बच्चों और बुजुर्गों की देखरेख और खान-पान की जिम्मेदारी महिलाओं के कंधे पर ही हुई यानी उनको राशन भी लाना था और खाना पकाकर सबको खिलाना भी था इस प्रकार घरेलू हिंसा में भी वृद्धि हुई है। वह कहती हैं कि ग्रामीण इलाकों की महिलाओं को खेती में भी काम करना पड़ता है इसका असर उनके स्वास्थ्य पर हो सकता है, देश में महिलाओं की बड़ी आबादी पहले से ही कुपोषण का शिकार रही है और इस महामारी ने आबादी को और बढ़ा दिया है। साथ ही यह भी सच है कि महिलाएँ तनाव, संघर्ष, गलत फहमियों से बचते हुए तालाबंदी के दौरान अपनी पारिवारिक गतिविधियों और आर्थिक गतिविधियों के बीच अच्छा संतुलन बनाया।

इस शोध पत्र में शोधकर्ता द्वारा रीवा नगर (म.प्र.) में रहने वाली कामकाजी महिलाओं पर कोविड-19 महामारी के प्रभाव को जानने का प्रयास किया है साथ ही घरेलू हिंसा किस स्तर पर इसका भी अध्ययन किया गया।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. शोधार्थी द्वारा कामकाजी महिलाओं को नौकरी और घरेलू कार्य के संतुलन और कोविड-19 महामारी के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. कामकाजी महिलाओं की कोविड-19 महामारी के दौरान आर्थिक स्थिति और मानसिक स्थिति का अध्ययन करना।
3. तालाबंदी के दौरान कामकाजी महिलाओं के दोहरे दायित्व में संतुलन की स्थिति का अध्ययन करना।

शोध पद्धति- कामकाजी महिलाओं पर कोविड-19 महामारी के प्रभाव को समझने के लिए वर्णनात्मक नमूनाकरण विधि का उपयोग शोधार्थी द्वारा किया गया है। उपरोक्त विश्लेषण में शोधार्थी द्वारा रीवा नगर में से 30 कामकाजी महिलाओं का चयन किया गया। आँकड़ों के संग्रहण हेतु टेलीफोनिक साक्षात्कार और प्रतिभागियों के साथ शोधकर्ता के निकट सम्पर्क का उपयोग किया गया जिसमें कोविड-19 गाइडलाइन का भी पालन किया जा सके।

शोधकर्ता द्वारा महिलाओं के समक्ष चार नकारात्मक और चार सकारात्मक प्रभाव रखे गए थे। नकारात्मक प्रभाव में कार्यभार, नीरस दिनचर्या, तनाव, भविष्य की चिंता से संबंधित थे। जबकि सकारात्मक प्रभाव में पारिवारिक समय, काम के घंटे, शिक्षा और स्वास्थ्य पर ध्यान से संबंधित थे।

अधिक कार्यभार- कामकाजी महिलाओं ने कोविड-19 महामारी के कारण तालाबंदी को विशेष रूप से तनावपूर्ण और कठिन पाया, क्योंकि घर का काम करने के साथ-साथ घर के अन्य कार्यों को अपने सहयोगियों के बिना करना, इस प्रकार यह अतिरिक्त भार था। जो पुरुष काम के लिए बाहर जाते थे और बच्चे स्कूल के लिए बाहर जाते थे, वे घर पर हैं, जो महिलाओं के लिए अतिरिक्त बहुत सारे काम की स्थिति पैदा करते हैं।

तालिका क्र० 1
कामकाजी महिलाओं पर
कोविड-19 महामारी के दौरान कार्यभार

क्र.	अधिक कार्यभार	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हाँ	22	73.33
2.	नहीं	08	26.97
	योग	30	100

स्त्रोत-टेलीफोनिक साक्षात्कार

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश महिलाओं ने हाँ कहा 22 (73.33 प्रतिशत) महिलाओं पर अधिक कार्यभार की समस्या रही, जबकि 08 (26.97 प्रतिशत) महिलाओं ने कहा कोविड-19 महामारी के दौरान कामकाजी महिलाओं पर नकारात्मकता का प्रभाव पड़ा है।

नीरस दिनचर्या- कोविड-19 महामारी और तालाबंदी ने एक नीरस जीवन का नेतृत्व किया है जो लोग एक ही दिन बार-बार जी रहे हैं खासतौर पर कामकाजी महिलाएँ, जो घर में फंसी हुई हैं वे घर और ऑफिस के कामों को जरूरतों के बीच कमजोर और थकाऊ हो रही हैं, चूंकि वे अपने कार्यालय में समस्त दिनचर्या की आदि है इसलिए उनका समय कटना मुश्किल साबित हो रहा है।

तालिका क. 02
कामकाजी महिलाओं की कोविड-19 महामारी के दिनचर्या

क्र.	निरस दिनचर्या	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हाँ	20	66.67
2.	नहीं	10	33.33
	योग	30	100

स्त्रोत-टेलीफोन साक्षात्कार

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कामकाजी महिलाओं ने हाँ कहा 20 (66.67 प्रतिशत) महिलाओं की दिनचर्या निरस रही जबकि 10 (33.33 प्रतिशत) कामकाजी महिलाओं ने नहीं कहा इस तालिका से स्पष्ट है कि कोविड-19 महामारी के दौरान उनकी निरस दिनचर्या रही इससे कामकाजी महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

तनाव और भविष्य की अधिक चिंता- जिन महिलाओं ने कोविड-19 महामारी और तालाबंदी से ठीक पहले अपनी नौकरी छोड़ दी, वह मानसिक रूप से प्रभावित हुई, वे काम की तलाश में चिंता कर ही हैं। इस प्रकार हाथ में कोई काम न होने के कारण वे पूरे दिन बहुत तंगी महसूस कर रहे हैं कोविड-19 महामारी के समय लिया गया कर्ज तनाव को बढ़ा रहा है वेतन कटौती अपने आप में बहुत तनाव लेकर आती है। तनाव और चिंता के कारण महिलाओं को आर्थिक संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है संघर्ष यहीं खत्म नहीं होता है। कामकाजी महिलाएँ एकल या विवाहित, एक कठिन वित्तीय भविष्य का सामना करती हैं। एक अकेली माँ ने बेरोजगार होने के कारण अपनी सारी बचत खर्च कर दी अब उन्हें चिंता है कि स्कूल की फीस, किराया और दिन प्रतिदिन के खर्चों का भुगतान कैसे करें। कुछ महिलाएँ जो घंटों के आधार पर काम कर रही हैं वे अपनी नौकरी को लेकर चिंतित हैं।

तालिका क. 03
कामकाजी महिलाओं को कोविड-19
की माहमारी के दौरान तनाव और भविष्य की चिंता

क्र0	तनाव और भविष्य की चिंता	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हाँ	25	83.33
2.	नहीं	05	16.67
	योग	30	100

स्त्रोत-टेलीफोन साक्षात्कार

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कामकाजी महिलाओं 25 (83.33 प्रतिशत) ने हाँ कहा तनाव और भविष्य की चिंता है जबकि 05 (16.67 प्रतिशत) ने नहीं कहा उनका एकमात्र कारण घर के अन्य सदस्य भी आय अर्जित करने में संलग्न थे। इस तालिका से स्पष्ट है कि कोविड-19 कामकाजी महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

पारिवारिक समय और कार्य के घंटे- पति, बच्चों और ससुराल वालों के साथ

गुणत्तापूर्ण समय बिताना, परिवार के सदस्यों के साथ उपयोगी बातचीत करना इससे सकारात्मक वातावरण बनता है क्योंकि उन्हें यह अवसर पर दिन नहीं मिलता बच्चों के साथ संचार बढ़ता है, बहुत सारे संदेह कम होते हैं समय के साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों के बीच गलतफहमी पैदा होती है जो एक-दूसरे के साथ समय बिताने से गलतफहमी कम और उनके रिश्ते मजबूत होते हैं।

तालिका क्र. 04

कामकाजी महिलाओं पर कोविड-19 को महामारी के दौरान पारिवारिक समय

क्र.	पारिवारिक समय और कार्य के घंटे	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हाँ	23	76.67
2.	नहीं	07	23.33
	योग	30	100

स्त्रोत टेलीफोन साक्षात्कार

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कामकाजी महिलाओं 23 (76.67प्रतिशत) ने हाँ कहा, लॉकडाउन के दौरान कामकाजी महिलाओं को परिवार के लिए अधिक समय मिला और घर के कार्यों में बच्चों और पति का पूर्ण सहयोग रहा जिससे भावनात्मक रिश्ते मजबूत हुए जबकि 07(23.33प्रतिशत) महिलाओं ने नहीं में उत्तर दिया, सहयोगियों के बिना कार्य करना मुश्किल होता है इस तालिका से स्पष्ट है कि कोविड-19 महामारी के दौरान सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

शिक्षा और रुचि- कामकाजी महिलाएँ व्यस्त होती थी, लॉकडाउन के दौरान उनके पास खाना पकाने, पेटिंग करने, फिल्में देखने के अपने पुराने शौकों को ताजा करने का समय था जो व्यस्त कार्य और पारिवारिक गतिविधियों के दौरान संभव नहीं था।

तालिका. 05

कामकाजी महिलाओं पर कोविड-19 की महामारी के दौरान शिक्षा और रुचि

क्र.	शिक्षा और रुचि	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हाँ	27	90
2.	नहीं	03	10
	योग	30	100

स्त्रोत- टेलीफोनिक साक्षात्कार

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि महिलाओं 27 (90प्रतिशत) ने हाँ कहा लॉकडाउन के दौरान कामकाजी महिलाओं को अपने लिए समय मिला है, जबकि 03 (10प्रतिशत) कामकाजी महिलाओं ने नहीं में उत्तर दिया इस तालिका से स्पष्ट है कि कोविड-19 महामारी के दौरान सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

स्वास्थ्य पर ध्यान- हर महिला फिट होना चाहती है, लेकिन एक कामकाजी महिला के

लिए काम के साथ फिट रहना बहुत मुश्किल होता है इस प्रकार तालाबंदी के दौरान व्यायाम करने, उचित नींद लेने, स्वस्थ भोजन खाने से अपनी फिटनेस बनाए रखने और स्वास्थ्य संबंधित देखभाल करने का एक अच्छा मौका मिला है।

तालिका क्र. 06

कामकाजी महिलाओं पर

कोविड-19 की महामारी के दौरान स्वास्थ्य का ध्यान

स्त्रोत- टेलीफोनिक साक्षात्कार

क्र.	स्वास्थ्य पर ध्यान	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हाँ	30	100
2.	नहीं	0	0
	योग	30	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कामकाजी महिलाओं 30 (100प्रतिशत) ने हाँ कहा कोविड-19 की महामारी के दौरान कामकाजी महिलाओं ने अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया है।

कामकाजी महिलाओं हेतु सुझाव-

1. कामकाजी महिलाओं को वर्क फ्राम होम के साथ आपदा को अवसर में बदलकर अपनी अतिरिक्त आय में बढ़ोत्तरी हेतु प्रयास करना चाहिए।
2. कोविड-19 महामारी ने कामकाजी महिलाओं के जीवन में काफी बदलाव किए उन्हें अपनी बदलती जीवन शैली में सामंजस्य बनाकर कार्य करना चाहिए।
3. यदि कामकाजी महिलाओं को वर्क फ्राम होम की सुविधा मिलती है तो वह अपने कार्यों के घंटों को निर्धारित कर कार्यालय का काम करें जिससे उनके कार्य समय पर पूरे होंगे और मानसिक चिंता नहीं रहे
4. कामकाजी महिलाओं को अपनी सेहत का ध्यान रखना चाहिए और पर्याप्त नींद लेना चाहिए।

निष्कर्ष- इस अध्ययन का विश्लेषण कामकाजी महिलाओं पर कोविड-19 को समझने का एक प्रयास है। भारत में महिलाओं को शायद ही कभी अपने किए कार्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती हो लेकिन मुख्य रूप से वे अपने परिवार के लिए जिम्मेदार होती हैं इस अध्ययन से पता चलता है कि तालाबंदी के दौरान कामकाजी महिलाएँ वर्क फ्राम होम करती हैं उन्हें ऑफिस और घर के अत्यधिक काम का बोझ होता है। पारिवारिक अपेक्षाओं को पूरा करना और स्वयं के लिए समय न होना कामकाजी महिलाओं के कार्य और जीवन के संतुलन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक होते हैं। परिणामस्वरूप कई महिलाएँ उच्च स्तर के तनाव और चिंता का शिकार होती हैं और पारिवारिक जीवन का आनंद भी नहीं ले पाती हैं। कामकाजी महिलाओं के साथ अनौपचारिक चर्चाओं से पता चला कि जिन कामकाजी महिलाओं के पास परिवार या पति का सहयोग है वह बेहतर कार्य जीवन संतुलन का आनंद लेती हैं। उपरोक्त निष्कर्षों में कामकाजी

महिलाओं के जीवन संतुलन के सकारात्मक और नकारात्मक परिणामों को दिखाया गया है। तालाबंदी के दौरान स्वस्थ कार्य जीवन संतुलन बनाए रखने के लिए सुझाव भी देता है। चूंकि यह अध्ययन एक क्रियात्मक शोध है, कोविड-19 महामारी के कारण आँकड़े एकत्र करने का एक मात्र तरीका टेलीफोनिक साक्षात्कार था नमूना आकार है, जो अध्ययन की पूरी आबादी को सामान्य बनाने के लिए लागू नहीं हो सकता। गुणात्मक डेटा विश्लेषण के लिए समय और धैर्य की आवश्यकता होती है। शोध बहुत कम समय में किया गया है। डेटा समूह तकनीक, टेलीफोनिक साक्षात्कार में बहुत अधिक संचार, साक्षात्कारकर्ता की उपलब्धता और तकनीकी बाधाओं का सामना करना पड़ा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. टीएम और समर्स, डब्ल्यूसी (1871) अवकाश पर काम का प्रभाव एक प्रतिमान 14(3), 310-327
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2020) कोरोना वायरस रोग (कोविड-19) महामारी नवीनतम
3. लाइव प्रेस कॉन्फ्रेंस (जिनेवा) अमेरिकी स्वास्थ्य और मानव सेवा विभाग
4. न्यूमैन, एलडब्ल्यू (2015) सामाजिक अनुसंधान के तरीके गुणात्मक और मात्रात्मक दृष्टिकोण
5. भारत सरकार की (कोविड-19) प्रेस कॉन्फ्रेंस
6. मध्य प्रदेश संदेश पत्रिका- मध्य प्रदेश शासन
7. नई दुनिया, दैनिक भास्कर, रीवा, सतना
8. WWW.Wikipedia.com

स्वास्थ्य पर राज्य के सार्वजनिक व्यय के प्रभाव का अध्ययन

• मेघा डड्सेना
• ए. के. पाण्डेय

सारांश- कहा जाता है स्वास्थ्य ही मनुष्य का असली धन है। किसी राष्ट्र या समाज की अन्नति उसके नागरिकों के स्वास्थ्य पदनिर्भर करती है। यदि वहाँ के निवासी स्वस्थ हैं तो निश्चित रूप से वह देश भी उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। अच्छे स्वास्थ्य के अन्तर्गत शारीरिक शक्ति, क्षमता तथा सहनशीलता का पर्याप्त भंडार और मानसिक सन्तुलन भी आता है। छत्तीसगढ़ राज्य सरकार अपने राज्य के निवासियों के शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ बनाने के लिए सार्वजनिक व्यय के माध्यम से उनके सुविधाएँ तथा अनेक सेवाएँ प्रदान कर रही है। वर्ष 2011 तक प्रदेश में जन्मदर का स्तर 21 प्रति हजार बनाने का लक्ष्य रखा गया था, जोकि वर्तमान में 24.4 प्रति हजार है तथा शिशु मृत्युदर, जोकि वर्तमान में 46 प्रति हजार जीवित जन्म है, उसे 30 प्रति हजार जीवित जन्म तक लाने हेतु राष्ट्रीय जनसंख्या नीति एवं शिशु स्वास्थ्य संवर्धन कार्यक्रमों का पालन छत्तीसगढ़ राज्य में किया जा रहा है।

मुख्य शब्द- सार्वजनिक व्यय, शिशु मृत्यु दर, सामाजिक कल्याण, जन्म दर, मृत्यु दर, मातृत्व मृत्यु दर

परिचय- मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान होता है। स्वास्थ्य व्यक्ति की अमूल्य निधि है। यह केवल व्यक्ति विशेष को प्रभावित नहीं करता बल्कि जिस समाज में वह रहता है उस सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करता है। स्वस्थ मनुष्य ही अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाह कुशलतापूर्वक कर सकता है। यदि धन खो गया तो कुछ नहीं खोया, यदि चरित्र खो गया तो कुछ खो गया।

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थापना 1 नवम्बर 2000 से 26वें राज्य के रूप में हुई है। छत्तीसगढ़ राज्य सरकार राज्य की स्थापना से ही अपने राज्य के निवासीयों के प्रति शतर्क एवं जागरूक हैं। सार्वजनिक व्यय के माध्यम से अपने राज्य की जनता को उनके स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी सुविधाएँ प्रदान कर रही है, अनेक स्वास्थ्य संबंधित योजनाएँ लागू कर रही हैं जैसे - (1) परिवार कल्याण एवं मातृत्व एवं शिशु कल्याण कार्यक्रम (2) जननी सुरक्षा योजना (3) राष्ट्रीय कुष्ठ उनमूलन कार्यक्रम (4) पल्स

-
- शोधार्थी (पीएच.डी.) अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
• प्राध्यापक, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

पोलियों अभियान (5) राज्य एड्स नियन्त्रण कार्यक्रम (6) आयुष्मान योजना (7) वात्सल्य योजना (8) संक्रामक रोग नियन्त्रण कार्यक्रम (9) नसबंदी कार्यक्रम (10) मुख्यमंत्री शहरी कार्यक्रम (11) स्वास्थ्य पंचायत योजना (12) मुख्यमंत्री बाल हृदय सुरक्षा योजना (13) निःशुल्क नमक प्रदाय योजना आदि।

सार्वजनिक व्यय सरकार का एक ऐसा अस्त्र है जिसके माध्यम से वह अर्थव्यवस्था में सुधार कर सकता है और लोककल्याणकारी राज्य के स्वरूप को अपना सकता है। सरकार सार्वजनिक व्यय के माध्यम से निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएँ भी प्रदान कर करती है ताकि जो आर्थिक रूप से ईलाज करवाने में समर्थ नहीं है तथा जो गरीब हैं। सार्वजनिक व्यय के माध्यम से सरकार ने छत्तीसगढ़ में अब तक 27 जिला चिकित्सालय, 31 सिविल डिस्पेंसरी, 158 सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र 801 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, 5167 उप स्वास्थ्य केंद्र आदि की स्थापना की है।

अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. स्वास्थ्य पर किये गये सार्वजनिक व्यय एवं उसके संकेतकों की प्रवृत्तियों एवं परिवर्तनशीलता का अध्ययन करना।
2. शिशु मृत्युदर पर सार्वजनिक व्यय के प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर उपर्युक्त सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति-

(अ) **आँकड़ों का संग्रहण-** प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। स्वास्थ्य पर किये जाने वाले सार्वजनिक व्यय का शिशु मृत्यु दर से संबंधित आँकड़ों को राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित छत्तीसगढ़ का आर्थिक सर्वेक्षण एवं राज्य की जनगणना रिपोर्ट से एकत्रित किया गया है।

(ब) **आँकड़ों का विश्लेषण-** अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जिन सांख्यिकीय तकनीकियों का उपयोग किया गया है वह इस प्रकार है -

(1) **संयुक्त वृद्धि दर-** स्वास्थ्य पर किये गये सार्वजनिक व्यय तथा उनके संकेतक की प्रवृत्ति जानने के लिए संयुक्त वृद्धि दर का प्रयोग किया गया है। इसका सूत्र इस प्रकार है -

जहाँ -	$Y = AB^t$ $Y = \text{प्रवृत्ति दर}$ $A = \text{स्थिरांक}$ $B = (1 + r), r = \text{संयुक्त वृद्धि दर (\%में)}$ $T = \text{समय}$
--------	---

(2) **विचरण गुणांक-** अध्ययन अवधि में एकत्रित आँकड़ों में परिवर्तनशीलता की दर जानने हेतु विचरण गुणांक ज्ञात किया गया है। इसका सूत्र इस प्रकार है -

$$C.V. = \frac{SD}{\bar{X}} \times 100$$

जहाँ -

C.V. = विचरण गुणांक (% में)

S.D. = प्रमाप विचलन

$\bar{X}$ = समांतर माध्य

छत्तीसगढ़ राज्य में सार्वजनिक व्यय का स्वास्थ्य पर प्रभाव

वर्ष	स्वास्थ्य पर सार्वजनिक व्यय (करोड़ रु.)	शिशु मृत्यु दर (IMR)
2004 - 05	578.16	60
2005 - 06	721.34	63
2006 - 07	921.34	61
2007 - 08	1038.78	59
2008 - 09	1299.98	57
2009 - 10	1389.94	54
2010 - 11	1458.27	51
2011 - 12	1826.22	48
2012 - 13	2055.16	47
2013 - 14	2449.33	46

उपर्युक्त तालिका में छत्तीसगढ़ राज्य में सार्वजनिक व्यय का स्वास्थ्य पर प्रभाव का के आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। जिसमें छत्तीसगढ़ सरकार के द्वारा स्वास्थ्य पर किये गये सार्वजनिक व्यय का शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate) पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन आँकड़ों का अध्ययन करेंगे।

शिशु मृत्यु दर 0 से 1 वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु हो जाती है वह शिशु मृत्यु के अन्तर्गत आता है। तालिका में वर्ष 2004-05 में 578.16 करोड़ रु. स्वास्थ्य पर व्यय किया गया है। 2007-08 में स्वास्थ्य पर किये गये सार्वजनिक व्यय बढ़कर 1038.78 करोड़ रु. हो गये हैं तथा वर्ष 2013-14 में बढ़कर 2449.33 करोड़ रु. हो गया है। अर्थात् छत्तीसगढ़ सरकार के द्वारा स्वास्थ्य पर किये गये सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की प्रवृत्ति है तथा दूसरी ओर शिशु मृत्यु दर (IMR) के आँकड़े देखते हैं तो वर्ष 2004-05 में 60 प्रतिशत थी और 2008-09 में घटकर 57 प्रतिशत हो गई है। वर्ष 2013-14 में 46 प्रतिशत तक घट गया है, अर्थात् कम हो रहा है। शिशु मृत्यु दर में घटने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

शिशु मृत्यु दर को बहुत से ऐसे तत्व हैं जो प्रभावित करते हैं माता का स्वास्थ्य प्रसव पूर्व एवं पश्चात् नवजात की देखभाल, बीमारी की दर, समान्य जीवन स्तर, पर्यावरण का स्तर आदि। छत्तीसगढ़ में शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए छत्तीसगढ़ में बहुत सारे प्रभावशाली कार्य किये गये हैं। छत्तीसगढ़ में शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम के कारण राज्य स्थापित होने से अब तक शिशु मृत्यु दर में तेजी से गिरावट दर्ज की गई है।

निष्कर्ष- दर्शाये गये तालिका में स्वास्थ्य पर किये गये सार्वजनिक व्यय तथा शिशु मृत्यु दर के आँकड़ों की प्रवृत्तियों एवं परिवर्तनशीलता के आधार पर कह सकते हैं की स्वास्थ्य पर किये गये राज्य सरकार द्वारा सार्वजनिक व्यय में वर्ष वार निरन्तर वृद्धि होते जा रही है। तथा शिशु मृत्यु दर में वर्षवार कमी आते जा रही है। छत्तीसगढ़ सरकार के द्वारा अपने राज्य में किये गये सार्वजनिक व्यय का स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। शिशु मृत्युदर लगातार घट रही है तथा राज्य में निवास करने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है। सरकार द्वारा विभिन्न स्वास्थ्य सम्बन्धी जो योजनाएँ लागू कर रही है तथा चिकित्सालय की स्थापना कर रही है और नये-नये स्वास्थ्य सम्बन्धी तकनीकों की व्यवस्था कर रही है, इसका प्रभाव राज्य के निवासियों के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव डाल रहा है। जिससे गरीब से गरीब तक तथा जनसामान्य को इसका लाभ मिल रहा है। सरकार निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधाएँ लोगों को प्रदान कर रही है, जिससे की आर्थिक कमजोरी या गरीबी के कारण जो अपना इलाज नहीं करवा पाते हैं। वे अपना इलाज असानी से करवा लेते हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं के माध्यम से सरकार अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। जिससे राज्य निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है। जन्मदर तथा मृत्युदर में कमी आ रही है मातृत्व मृत्यु दर, बाल-मृत्युदर, शिशु मृत्यु दर भी कम होते जा रहा है। छत्तीसगढ़ में अभी भी कई स्थान ऐसे हैं जहाँ स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाएँ तथा सुविधाएँ नहीं पहुँच पाई है जैसे आदिवासी जंगली इलाकों में जो क्षेत्र शहरों से बहुत दूर है दुर्गम स्थान है जहाँ यातायात की सुविधाएँ नहीं है ऐसे जगह में भी सरकार स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाएँ तथा सुविधाओं की व्यवस्था कर रही है।

प्रमुख सुझाव- प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं -

1. राज्य सरकार को टेलीमेडिसिन सेवा का उपयोग करके सुदूर भागों एवं पिछड़े क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा प्रदान करना चाहिए तथा उनके गुणवत्ता में सुधार करना चाहिए।
2. चिकित्सा की ऐलोपैथिक पद्धति के अलावा अन्य चिकित्सीय पद्धति पर भी जोर देना चाहिए जैसे- आयुर्वेद, योग, होम्योपैथिक आदि।
3. देखा गया है की सरकार के द्वारा शहरी क्षेत्रों में ही अच्छे स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान कर रही है। गाँव में तथा पिछड़े इलाकों में इन स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव है। इसलिए सरकार को ग्रामीणों एवं दूरस्थ स्थानों में भी स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिए।
4. सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ काफी सीमित है। बहुत कम बीमारियों का इलाज होता है जिससे लोग महंगी निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर निर्भर रहने को मजबूर हैं। अच्छे से इलाज भी नहीं होता। सरकार को स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि करनी चाहिए।
5. सरकार को सभी को सम्पूर्ण एवं मुक्त स्वास्थ्य सेवाएँ (इलाज और बचाव) उपलब्ध करवानी चाहिए।
6. महत्वपूर्ण बीमारियों जैसे तपेदिक, मलेरिया या हैजा आदि के नियन्त्रण के लिए खास कार्यक्रम बनाने चाहिए।

7. लोगों के उन समूहों के लिए जो स्वास्थ्य की दृष्टि से खतरे में रहते हैं जैसे- गर्भवती महिलाएँ, बच्चे को जन्म देने के तुरन्त बाद महिलाएँ, खतरनाक उद्योगों में काम कर रहे बच्चे और अन्य लोगों के लिए खास तरह की स्वास्थ्य कार्यक्रम लागू करना चाहिए।
8. निवारक स्वास्थ्य सेवा चिकित्सीय शिक्षा का एक हिस्सा होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय छत्तीसगढ़ रायपुर, आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2016-17, पृ. 254, 255.
2. आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय छत्तीसगढ़ रायपुर, आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2019-20 अध्याय 15 स्वास्थ्य पृ. 338, 339.
3. Sonekar, B.L. The Indian Economic Association, The Indian Economic Journal, page no. 14
4. दत्त, रूद्र, सुन्दरम के.पी. एम. एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली, भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ. 41, 42, 43
5. त्रिपाठी, संजय, उपकार प्रकाशन, आगरा-2, उपकार छत्तीसगढ़ वृहद् संदर्भ पृ. 149, 150, 151, 152
6. छत्तीसगढ़ समग्र 2014, छ.ग. जन सम्पर्क विभाग
7. डड्सेना, मेघा, छत्तीसगढ़ राज्य में सार्वजनिक व्यय का समाजिक क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन: शिक्षा एवं स्वास्थ्य के विशेष संदर्भ में, अप्रकाशित लघु शोध, पृ. 16, 18, 19, 20.

किन्नरों की सामाजिक स्थिति: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

• अंजू शुक्ला

सारांश- संख्या की दृष्टि से भारत एक बहुत बड़ा देश माना जाता है। लगभग 1 अरब 35 करोड़ जनसंख्या माना जाता है। इसी के बीच में एक ऐसा भी वर्ग है, जिसकी पहचान पुराने समय से किन्नर के रूप में है। लगभग 50 लाख किन्नरों की संख्या मानी गई है। पुरातन काल से किन्नरों के लिए विभिन्न संबोधनों का प्रयोग किया जाता रहा। वृहन्नलला, हिजड़ा, खुसरा, बूचरा, बजुआ, खोजा, ख्वाजासरा, मनसा, नीलिमा, जनखा, छक्का, अरावनी, नपुंसक आदि। सामाजिक संरचना में स्त्री एवं पुरुष के अतिरिक्त एक वर्ग की पहचान की जाती है, जिसे समाज किन्नर नाम से चिन्हित करता है। शिक्षा के मूलभूत अधिकार से वंचित किन्नर समाज की स्थिति और भी दयनीय है। राजनीति में भागदारी नहीं के बराबर है, सरकार द्वारा भी इस उपेक्षित वर्ग के विकास के लिए कुछ भी काम नहीं हो रहा है। आज सबसे अहम सवाल है आज यदि किन्नर वर्ग उपेक्षित है, तो क्यों ये भीख मांगते हैं तो इसके लिए कौन जिम्मेदार है। जहाँ भी जाते हैं, इन्हें भगा दिया जाता है, माता पिता और परिवार इन्हें घर से बहिष्कृत कर देता है क्यों ?

मुख्य शब्द- किन्नर, सामाजिक संरचना, शिक्षा, लोकतंत्र

परिचय- संख्या की दृष्टि से भारत एक बहुत बड़ा देश माना जाता है। लगभग 1 अरब 35 करोड़ जनसंख्या माना जाता है। इसी के बीच में एक ऐसा भी वर्ग है, जिसकी पहचान पुराने समय से किन्नर के रूप में है। लगभग 50 लाख किन्नरों की संख्या मानी गई है। सामाजिक संरचना में स्त्री एवं पुरुष के अतिरिक्त एक वर्ग की पहचान की जाती है, जिसे समाज किन्नर नाम से चिन्हित करता है। 15 अप्रैल 2014 को माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में एक ऐतिहासिक निर्णय सुनाया। हिजड़ों के लिए थर्ड जेंडर संबोधन घोषित किया गया। वास्तव में यह एक ऐतिहासिक निर्णय है, तब परिवार से समाज, प्रिंट मीडिया से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में किन्नरों से संबंधित एक नई बहस शुरू हो गई।

वैसे भी किन्नर शब्द सुनते ही एक ऐसा चित्र खड़ा होता है जो समाज से बहिष्कृत, ताली बजाकर नाच गा कर लोगों का मनोरंजन कर, बस स्टैंड, रेल्वे स्टेशन, सिनेमा हॉल जैसे सार्वजनिक जगह पर भीख मांगता हुआ अपने आजीविका बिताने के

लिए विवश है। जन्मोत्सव, शादी विवाह में इनके दल गाने बजाने के लिए बुलाए जाते हैं। आज समाज के लिए यह एक यक्ष प्रश्न के रूप में खड़ा हुआ, मानवाधिकार की दुहाई देने वाला पशु संरक्षण अधिनियम का मांग करने वाला, नारी जागृति पर काम करने वाले, नारी अस्मिता के लिए शुभ चिंतको से भरे इस समाज के लोगो का ध्यान इन समाज से उपेक्षित लोगो के तरफ क्यों नहीं जाता है? क्यों इन्हें हिंकारत की नजरो से देखा जाता है? जन्म के कमी में इनका क्या दोष है? परिवार समाज क्यों किन्नर समाज को उपेक्षित, बहिष्कृत कर देता है। आज समाज के लिए यह विचारणीय प्रश्न है, इन्ही तथ्यों को ध्यान में रखकर शोधकर्ता के द्वारा प्रस्तुत विषय पर लेखनी चलाने का प्रयास किया गया है।

वैसे आज इस वर्ग पर बहुत अधिक काम हो रहे हैं। अनेक लेख, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। डॉ. महेन्द्र भीष्म का किन्नर कथा, मै पायल हूँ, डॉ. इकरार अहमद “किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में” चित्रा मुद्गल कृत नाला सोपारा के संदर्भ में (थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ सम्पादक शगुप्ता नियाज), डॉ. एम.फिरोज खान “हम भी इंसान हैं” “तीसरी दुनिया का सच” थर्ड जेण्डर की जिन्दगी 50-50, प्रदीप सौरभ “तीसरी ताली”, नीलम भुराड़िया “गुलाम मंडी” आदि।

समाज के सबसे अधिक उपेक्षित इस वर्ग की सच्चाई को, इनकी पीड़ा को आम लोगो के सामने लाना अनिवार्य है। पुरातन काल से किन्नरो के लिए विभिन्न संबोधनों का प्रयोग किया जाता रहा। वृहन्नलला, हिजड़ा, खुसरा, बूचरा, बजुआ, खोजा, ख्वाजासरा, मनसा, नीलिमा, जनखा, छक्का, अरावनी, नपुंसक आदि। ऐसी मान्यता है कि, हिजड़ा शब्द उर्दु के हिज शब्द से बना है। जिसका अर्थ है कबीले को छोड़ना, इस प्रकार उर्दु में हिजिरा, हिजड़ा, हिजाड़ा, हिजारा, हिजराह शब्द होता है। अंग्रेजी में मनक अथवा हर्मा फ्रोडाइट से जोड़ा जाता है। बंगाली में हिजरा, हिजला, हिजरी, तेलगू में नपुंसकडु, खोजा अथवा नावा, तमिल में अली, अरावनी, पंजाबी में खुसुरा, जंखा, सिंधी में खदरा, गुजराती में पवैया, मराठी में हिजड़ा शब्दों से संबोधित किया जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन के लिए लेख, समाचार पत्र पत्रिकाएँ के साथ-साथ कुछ किन्नरो से अनौपचारिक वार्तालाप के द्वारा जानकारी प्राप्त किया गया। आज सबसे अहम सवाल है आज यदि किन्नर वर्ग उपेक्षित है, तो क्यों ये भीख मांगते हैं तो इसके लिए कौन जिम्मेदार है। जहाँ भी जाते हैं, इन्हें भगा दिया जाता है, माता पिता और परिवार इन्हें घर से बहिष्कृत कर देता है क्यों? शारीरिक कमी में इनका क्या दोष है। इनसे किसी को सहानुभूति नहीं होती। इनकी लाचारी, बेबसी, भूखमरी, पर किसी को तरस नहीं आता? पूरी मानवीयता के साथ इनकी स्थिति पर विचार करना होगा। इनको सामाजिक समानता का अधिकार दिलाना होगा। समाज में इसे सम्मान दिलाना होगा। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्य, संगीत में ऐसे कितने नामी गिरामी किन्नर हुए हैं, जिनकी प्रतिभा समाज को आकर्षित कर रहा है। चित्रा मुद्गल की कृत पोस्ट बाक्स नंबर 203 नाला सोपारा में एक किन्नर की मानसिक स्थिति क्या होती है, अपने से बिछुड़ने का दर्द सबकुछ होते हुए भी अंत में व्यक्तित्व का टूट जाना उस तथ्य को नायक बिनोद के द्वारा इतनी गहराई, मार्मिकता एवं निष्पक्षता के साथ उद्घाटित किया गया है, जो आज संपूर्ण किन्नर समाज के लिए जनमानस को विवश कर रहा है।

अध्ययन से पता चला इनकी सबसे बड़ी पीड़ा, अपनो से दूर होना, अपने परिवार, माता पिता से दूर होना है। एक जन्म लेने वाला बालक को जब अचानक परिवार से दूर होना पड़ता है, तब उसकी मानसिक स्थिति क्या होती होगी, कल्पना से परे है। महेन्द्र भीष्म जी ने लिखा है, प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से समाज का पहला घात यही से उस पर शुरू होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगो द्वारा उसे अपनो से दूर कर दिया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है।

किन्नरों की सबसे बड़ी पीड़ा मानसिक पीड़ा होती है। यह एक ऐसा वर्ग है, जिनकी मानसिक परेशानियों को कोई नाम नहीं दिया जा सकता, किन्तु इन्हें परिवार, समाज से अलग पहचान की जो तकलीफ है, मुख्य धारा से बिछुड़ने का जो दर्द है, अपनो के मोह, आत्मीय जनो की यादें, माँ की गोद, पिता के स्नेह के लिए तड़फते, भाई-बहिनो के साथ खेलने से अलग हुआ किन्नर किसे बताए की वह भी इसी समाज का हिस्सा है, वह भी हंसना चाहता है लेकिन अपनी पीड़ा किसे बताए समाज से बहिष्कृत किन्नर आश्रम जीवन बिताने को विवश है। महेन्द्र भीष्म के उपन्यास मै पायल हूँ में किस तरह भारतीय समाज में किन्नरों का शोषण होता है, इसे डॉ. एम.फिरोज खान के संकलन में, डॉ. कुलभूषण मौर्य के द्वारा महेन्द्र भीष्म के उपन्यास का किन्नर समाज बहिष्कार से मुख्य धारा में आने का संघर्ष शीर्षक में लिखा है। “मै पायल” उपन्यास में महेन्द्र भीष्म भारतीय समाज की कुरूपता को बड़े ही सहज ढंग से सामने लाते हैं। यह तथाकथित प्रगतिशील और सभ्य समाज वैज्ञानिकता और आधुनिकता के बड़े-बड़े दावे करता है। किन्तु एक हिजड़े के जन्म के वास्तविक और वैज्ञानिक कारण को जानते हुए भी उसे अपनाने को इजाजत नहीं देता। दिन के उजाले में सभ्य दिखने वाला पुरुष अंधेरा कोना पाते ही हिंसक जानवर का रूप अख्तियार कर लेता है। एक लड़की या स्त्री को देखते ही उसकी पाशविक प्रवृत्ति जाग उठती है, और वह सारी मर्यादाओं को भूल जाती है। “जुगनी को ट्रेन में अकेला देखकर हरकते बढ़ती जा रही थी। यह एक व्यक्ति की कथा नहीं है। समाज ऐसे लोगो से भरा पड़ा है, जिस रेल्वे स्टेशन के सिपाही को समाज की सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गयी है, वह भी जुगनी को मजबूर देखकर उसे छेड़ता है। यह है हमारा सभ्य समाज जिसमें एक लड़की के वेशभूषा में यात्रा कर रहे 12-15 वर्ष के किन्नर को भी प्रौढ़ अवस्था के व्यक्तियों द्वारा शारीरिक शोषण करने का प्रयास किया जाता है। किन्नर समाज एक तरफ तो समाज से बहिष्कार की पीड़ा झेल रहा है, तो दूसरी तरफ यौन शोषण का शिकार भी यही वर्ग हो रहा है।

सबसे भयंकर और त्रासदीपूर्ण समस्या है आजीविका की “सुधीर पचौरी ने लिखा है असामान्य लिंगी होने के साथ ही समाज के हाशिए पर धकेल दिये गए, इनकी सबसे बड़ी समस्या आजीविका है, जो इन्हें अततः इनके समुदाय में ले जा रही है। अकेले बहिष्कृत ये किन्नर आर्थिक रूप से भी हाशिये पर डाल दिए जाते हैं। नपुंसक लिंगी कहा, कैसे जिएंगें समाज का सहज हिस्सा कब बनेंगे।

आज मीरा परिधा, लक्ष्मी, मनीषा महंत, शबनम मौसी, पद्मनी प्रकाश, रोज व्यंकटेश्वर, मानवी बंधोपाध्याय, पायल सिंह जैसी बड़ी बड़ी हस्तियाँ समाज में किन्नर

समाज को न्याय दिलाने के लिए संघर्षरित है एवं समाज का सोच किन्नरों के हित के अनुकूल हो, इस कोशिश में लगे है।

मनीषा मंहत (थर्ड जेंडर से) डॉ. एम.फिरोज और डॉ. शमीम की बातचीत शीर्षक से लिखित लेख वास्तव में एक किन्नर का सम्पूर्ण जीवन दर्शन है। जैसा मनीषा को घर से बहिष्कृत होना पड़ता है। अपने कोमल भावनाओं से किए गए प्यार से तिरस्कृत होना पड़ता है। परिवार समाज द्वारा प्रदत्त यातनाएँ एवं मानसिक पीड़ा से व्यक्तित्व छलनी हो जाता है। इनकी तकलीफ तो तब और बढ़ जाती है, जब किन्नर समाज को उनके स्वयं के आत्मीयजन पहचानने से इंकार कर देते हैं।

शिक्षा के मूलभूत अधिकार से वंचित किन्नर समाज की स्थिति और भी दयनीय है। राजनीति में भागदारी नहीं के बराबर है, सरकार द्वारा भी इस उपेक्षित वर्ग के विकास के लिए कुछ भी काम नहीं हो रहा है। मनीषा मंहत भी मानती है, कि सरकारी ढंग से किन्नर विकास के लिए कोई प्रभावशाली कार्य नहीं हो रहे हैं, जो एक लोकतंत्रात्मक देश में होना चाहिए।

कुछ किन्नरों से शोधकर्ता द्वारा अनौपचारिक वार्तालाप किया गया, कुछ मोटी-मोटी जानकारी प्राप्त की गई, उनकी स्थिति में सुधार के लिए प्रश्न किये गये तब जो जवाब आया उसका सार है-

1. सबसे पहले किन्नर जन्म को समाज में जो अभिशाप माना जाता है, उसके प्रति सामाजिक जागरूकता लायी जाये। एक आंदोलन चलाया जाये, जैसे ऑख, नाक, कान, हाथ पैर, से दिव्यांग बच्चे को हेय और घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। उसी तरह लैंगिक रूप से दिव्यांग बच्चे के जन्म को हेय और घृणा का कारण ना माना जाये।
2. जैसे आज दिव्यांग बच्चे आम नागरिक की तरह घर परिवार समाज के बीच रहकर सामान्य जीवन जीते हैं। लैंगिक दिव्यांग बच्चों के साथ भी घर परिवार समाज व्यवहार करे।
3. समाज की मुख्य धारा से किन्नरों को जोड़ा जाये। समाज से अलग रह रहे किन्नरों का घर वापसी हो, परिवार में रहने की भी सुविधा हो। किन्नर जन्म को लज्जा का विषय ना मानकर सामान्य बच्चे के जन्म की तरह माता पिता द्वारा उत्साह मनाया जाये।
4. किन्नरों को आम लोगो की तरह शिक्षा का अधिकार मिले, समाज, परिवार में रहकर शिक्षा प्राप्त करें। सरकार के द्वारा दिव्यांग बच्चों की तरह स्कूल कॉलेज में प्रवेश में आरक्षण मिले। नौकरी में इनके लिए सीट आरक्षित किये जाए।
5. कुछ सामाजिक संस्थाएँ जैसे सक्षम ट्रस्ट, अस्तित्व ट्रस्ट, किन्नर माँ ट्रस्ट किन्नरों के अस्तित्व के लिए प्रयासरत हैं, ऐसे ही और सामाजिक संस्थाएँ सामने आये। भारतीय सरकार द्वारा किन्नरों के हित में कानून बनाए जाए, इसे भी आम नागरिक की तरह समाज में सम्मान मिले, सम्मानपूर्वक जीवन यापन का साधन मुहैया कराएँ।
6. राजनीति में किन्नरों की पूरी सहभागिता होनी चाहिए, जैसे आज महिला आरक्षण

की बात उठ रही है, वैसे ही राजनीति में थर्ड जेंडर के लिए सीट आरक्षित होना चाहिए।

7. जातिसूचक कानून की तरह यदि कोई किन्नर समाज का अपमान करता है तो इसके लिए कठोर कानून बने।

मनीषा महंत के साक्षात्कार पर एक प्रश्न संपूर्ण समाज को कटघरे में खड़ा करता है।

प्रश्न- किन्नरों की खराब स्थिति के लिए किसको जिम्मेदार माना जा सकता है, और उसका कोई हल?

उत्तर- किन्नरों की खराब स्थिति के लिए सबसे पहले तो हमारा महिला-पुरुष प्रधान समाज है, क्योंकि ये लोग कभी किन्नरों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करते ही नहीं, मुझे तो ऐसा लगता कहीं न कहीं ये किन्नरों को इन्सान ही नहीं समझते, इनको उनके चेहरे की मुस्कान तो नजर आती है, लेकिन आँखों के सूख चुके आँसुओं का दर्द नहीं, ये लोग कुछ पैसे बधाई के रूप में देकर ये सोच लेते हैं कि, चलो शायद इन पैसों से ही इनका कल्याण हो जाएगा, लेकिन इन लोगो को ये कौन समझाए कि सबकुछ पैसा ही नहीं होता, आप बधाई के अलावा उन्हें अपनापन और प्यार भी दो, जिसके लिए वे बचपन से तरस रहे हैं और कुछ लोग तो उनको बधाई देते हुए भी चिढ़ते हैं, अब इनको ये कौन समझाए कि आपके बच्चों के हर समय दुआ माँगने वाला ये फकीर इन्सान जाए तो जाए कहाँ?

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. डॉ. महेन्द्र भीष्म, किन्नर कथासामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2011
2. डॉ. महेन्द्र भीष्म, मै पायल हूँ, अमन प्रकाशन कानपुर, 2016
3. डॉ. एम. फिरोज खान, हम भी इंसान हैं, वांगमय बुक्स, अलीगढ़ प्रकाशन 2018
4. डॉ. एम. फिरोज खान, थर्ड जेण्डर और जिंदगी 50-50, विकास प्रकाशन कानपुर 2016
5. हिन्दी कहानियाँ, राही मासमू रजा, खलीफ अहमद अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर 2017
6. डॉ. एम. फिरोज खान, तीसरी दुनिया का सच, विकास प्रकाशन 2019
7. डॉ. इकरार अहमद, किन्नर विमर्श, साहित्य के आईने में वांगमय बुक्स अलीगढ़ 2017
8. डॉ. शगुप्ता नियाज, सम्पादक, थर्ड जेण्डर के संघर्ष का यथार्थ (चित्रा मुद्गल कृत पोस्टर बाक्स नंबर 203 नाला सोपारा एक विश्लेषण) विकास प्रकाशन कानपुर 2018
9. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई-दिल्ली 2010
10. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2014
11. नीरजा माधव, यमदीप 2007, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2007

महिला अपराधिता ‘‘प्रकृति और पुनर्वास’’

• गजानन मिश्र

सारांश- कुछ दशकों से भारत में तीव्र सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन बहुत तेजी से हुए हैं किन्तु सांस्कृतिक एवं आदर्शात्मक बिन्दुओं पर परिवर्तन की गति कमजोर रही इसलिए आधुनिक भारत में विलम्बन पाया जाता है। इस विलम्बन का परिणाम पुरुषों और महिलाओं की स्थिति में असमानता का कारक बना। इस असमानता की खाई को मिटाने के लिए महिलाओं ने अपने आपको समाज में उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए विभिन्न तरीकों एवं व्यवहारों को अपनाया। इन व्यवहारों एवं तरीकों का प्रभाव समाज पर सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक भी पड़ा और इस नकारात्मक परिणाम की वजह रही कि वह अपराध की ओर अग्रसर हुई। समाज में व्यक्तित्वहीनता तथा व्यक्तित्व वादिता, आदेश तथा व्यवहार के मध्य विसंगति संस्कृति में समूह निष्ठा की भावना एवं अधिकाधिक आगे निकलने के लिए प्रतिस्पर्धा एवं सफल व्यक्तियों के प्रति जितना अधिक अनादर किया जायेगा, महिला अपराधिता में उतनी ही वृद्धि होगी। प्रस्तुत शोध पत्र इसी विषय पर आधारित है।

मुख्य शब्द- व्यक्तित्व हीनता, विसंगति, सांस्कृतिक विलम्बन

परिचय- महिला अपराध समय सापेक्ष अवधारणा है। सामाजिक व सांस्कृतिक तत्वों एवं परिवर्तनों के कारण यह सदैव बदलता रहता है, यह एक सामाजिक तथ्य भी है, सामाजिक प्रघटना, आपराधिक प्रघटनाओं को भी जन्म देती है। आदिकालीन समाज में जहां कानून सरल थे, सामाजिक संबंधों का दायरा छोटा था और संस्थागत संरचना जनहित की प्राप्ति के लक्ष्य से बनी थी, तब न महिला अपराधिता का बाहुल्य था और न ही आपराधिक घटनायें आज जैसी जटिल थी। आधुनिक समाज में महिलाओं ने उन आदेशों और मूल्यों को खो दिया है जो सामाजिकता को बढ़ावा देते हैं और कानून के प्रति सम्मान रखते हैं। वर्तमान में आधुनिक समाज की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था में अपराध अन्तर्विष्ट है। आज का महिला वर्ग दिगभ्रमित है और उसी भ्रम का परिणाम है अपराध। आज ऐसा कोई समाज नहीं जहां महिलायें आपराधिक कृत्यों में लिप्त न हों। यहां यह भी अपरिहार्य है कि अन्य भिन्नताओं के साथ उनमें से कुछ महिलायें अपराधी मनोवृत्ति की हो जाती हैं। उनको यह स्वरूप प्रदान करने का कार्य प्रदत्त आंतरिक वृत्ति नहीं अपितु सामाजिक चेतना के द्वारा परिभाषित होती है।

अपराध सामाजिक जीवन की मूल अवस्थाओं से संबंधित है और यह स्वतंत्रता के लिए चुकाया हुआ मूल्य है। यह वह तरीका है जिसमें वैयक्तिकता स्वयं ही अभिव्यक्त होती है। महिला अपराध ऐसा अपराध नहीं है जिसका दमन नहीं किया जा सकता। एकता, उचित व्यवहार, उचित संस्कार, समाजीकरण और कानून के माध्यम से इसे समाप्त करने के महत्वपूर्ण साधनों से है।

यह निर्विवाद सत्य है कि महिला अपराध आदर्शों और मूल्यों को खो देने के साथ-साथ संस्कृति का घोर भौतिकतावादी मूल्यों से प्रभावित हो जाना, आपराधिक व्यवहार, सामाजिक संबंधों का अंग तथा परिणाम है। व्यक्ति का व्यवहार इन संबंधों में इतना फसा हुआ है कि स्वयं इनमें एक सक्रियकर्ता के रूप में सहभागी होता है। उसका भूत तथा वर्तमान अनुभवों के परिणामों के रूप में पार्यलौकिक किया जा सकता है। केवल आज के सामाजिक संबंध ही व्यवहार को प्रभावित नहीं करते, बल्कि बीते हुए कल को भी प्रभावित करते हैं। अगर किसी महिला के ऊपर पड़ने वाला इन व्यवहारों का प्रभाव नकारात्मक है तो उसका परिणाम अपराध की ओर अग्रसर ही होता है। कोई भी संस्कृति जितनी अधिक प्रतिभागी तथा भौतिकतावादी होगी, अपराध की दर उतनी ही अधिक होगी। साथ ही इसकी गत्यात्मक जटिलता अपराध की दर को ऊँचा उठाती है। अपराधिता के संदर्भ में जार्ज बी. डोनाल्ड का ये मानना है कि निःसंदेह अपराध सांस्कृतिक संघर्ष का उत्पाद है। सांस्कृतिक संघर्ष महिला अपराधिता का मूल कारण है, क्योंकि समाज के सदस्य आपराधिक विधि संहिताओं को जो आदर्श मापदण्ड में अन्तर्निहित होते हैं, उनके प्रति वे सामान्यतः प्रतिबद्ध नहीं रहते। इन्हीं प्रतिबद्धताओं में मान्यताओं का विभेद, सांस्कृतिक संघर्ष है और यही अपराध को जन्म देता है। इस संबंध में टेफ्ट का ये मानना है कि वह समाज जिसमें सिद्धांत, जनतांत्रिक मूल्यों का समर्थन तो किया जाता है, किन्तु व्यवहारिक रूप में जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति, प्रतिकूल कार्य किया जाता हो जिसमें कानून के प्रति लोगों में आदर की भावना पायी जाती हो किन्तु कानून में अवज्ञा करने वाली महिलाओं से संगठित अपराधियों की तरह संरक्षण दिया जाता है कि वहां महिला अपराधों का प्रतिशत ज्यादा होगा।

प्रत्येक समूह की महिला सदस्य अपने समूह के आदर्शों को श्रेष्ठ मानते हुए आचरण करती हैं। इस आचरण से विभिन्न समूहों के आदर्श आपस में टकराते हैं, उस परिस्थिति में अपराधिता का जन्म होता है। क्योंकि प्रत्येक समाज में महिला सदस्य विभिन्न संहिताओं के जो आदर्श मापदण्ड अन्तर्निहित होते हैं, उनके प्रति वे सामान्यतः प्रतिबद्ध नहीं रहती, इससे विभेदीकरण का स्वाभाविक तौर पर जन्म होता है। जो अपराधों को जन्म देता है। भारत में अभी भी ग्रामीण अंचलों में संयुक्त परिवार रहते हैं, जिसमें बुजुर्ग, अनाथ, बेरोजगार, इत्यादि संबंधियों की पूर्ण जबाबदारी व्यक्ति विशेष पर होती है, जिसके परिणाम स्वरूप आर्थिक तथा भावनात्मक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। असहनीय दबाव एवं तनाव, युवा कमाउ युग्म के ऊपर होता है, इसकी परिणति, जीवनसाथी से कलह के रूप में होती है। तत्संबंध में महिलाओं का ये कथन है कि कलहपूर्ण स्थिति में पति शराब का सेवन करता है,

हिंसक पशु की तरह व्यवहार करता है, नशे की अवस्था में अधिकाधिक भोजन तथा यौन संतुष्टि की अपेक्षा करता है, इससे महिलाओं में असंतोष व्याप्त होता है और वह अन्यंत्रित होकर अपराध की ओर उन्मुक्त होती है।

पूर्ववर्ती अध्ययन

मीड (1957)¹ का कथन है कि स्वतः पति जब ये अनुभव करती है कि उसका पति इतना व्यस्त है कि वह उसके और बच्चों की ओर ध्यान नहीं दे पा रहा है, ऐसी स्थिति में वह कोई भी कदम उठा सकती है, जिसकी परिणति साधारण तौर पर अपराध ही होती है।

कोल्लर (1948)² आपके अनुसार अधिकांश संयुक्त परिवारों में पति के मायके के सदस्य जैसे वृद्ध माता-पिता, भाई साथ रहते हैं, तब उनकी समस्या तथा उनके परिवार के कार्यों में हस्तक्षेप, पति-पत्नी के संबंधों को तनावपूर्ण बना देता है। यह तनाव इतना अधिक बढ़ जाता है कि परिवार टूटते हैं एवं अपराधों का जन्म होता है। कभी-कभी वैवाहिक मतभेद में अन्तरग्रस्त आत्मीकरण की कमी भी संबंधों को संतुष्टि प्रदान नहीं कर पाती एवं परिवार में बिखराव की स्थिति जन्म लेती है। आपने अपने शोध के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि अपराध एवं शराब में भी उच्च संबंध होता है। शराब पीने की आदत समाज में विकराल रूप से फैली हुई है। इसलिए शराबी इसे अत्यंत हल्के रूप में लेते हैं। जब नगण्य कारणों से परिवार में तनाव बढ़ता है, तब शराब पीकर पुरुष पत्नी को डराते, धमकाते, पीटते एवं वस्तुओं को तोड़ते हैं, हिंसक पशु की तरह व्यवहार करते हैं, इससे स्त्रियां रूष्ट हो जाती हैं, जो झगड़े का रूप धारण करती हैं और यहीं से अपराधिता जन्म लेती है।

गिलिन जे.एल. (1945)³ के अनुसार आमदनी तथा हिंसा के बीच घनिष्ठ संबंध है, आमदनी वाले परिवारों में हिंसा अधिक होती है, गरीबी से बोझिल परिवारों में ऐशो आराम का सवाल ही पैदा नहीं होता है तथा इनका प्रतिदिन का जीवन रोटी, कपड़ा और मकान के संघर्ष को लेकर शुरू होता है और उसी में जीवन गुजरता है। इस प्रकार गरीबी में जीवन गुजारने की वजह से अनेकानेक परिवारों में पति-पत्नी के मध्य हीनभावना व कुण्ठा का जन्म होता है और यहीं से वह हिंसा को अपनाते हैं।

विल्सन- (1958)⁴ ने स्पष्ट किया कि व्यक्ति में कार्यों के प्रति परस्पर विरोधी धारणाओं के होने से उनके मन में अनिश्चय, भ्रम, आकुलता तथा निष्फलता के भाव पैदा हो जाते हैं, इसके परिणामस्वरूप उन्हें समायोजन करने में असुविधा होती है, यदि भ्रम के साथ विद्रोह भी रहता है, तब केवल समायोजन की कठिनाई ही नहीं आती बल्कि व्यक्ति के आशानुकूल कार्य करने की अभिप्रमाणिकता भी घट जाती है। इससे व्यक्ति संतोषजनक कार्य नहीं कर पाता व कलह पैदा होती है, जो व्यक्ति को अपराध की ओर अग्रेषित करती है।

पोल्लाक ऑटो (1950)⁵ ने महिला अपराधिता उजागर करते हुए स्पष्ट किया कि महिलाओं द्वारा किये जाने वाले अपराध प्रकाश में नहीं आते व उनका रहस्योद्घाटन भी नहीं किया जाता। अतः महिला अपराधिता के बारे में किसी को जानकारी नहीं हो पाती। गर्भपात, भ्रूण हत्या, मिथ्या शपथ, कूट साक्ष्य, बच्चों के विरुद्ध अपराध, अंग प्रदर्शन,

समलैंगिक कामुकता आदि अपराध इनके द्वारा किये जाते हैं। पोल्लाक ने अपने अनुसंधान परिणामों के आधार पर पारिवारिक सेवा में संलग्न महिलाओं में अपराधिता की दर को छिपाया। जबकि कारखानों में संलग्न महिलाओं में अपराध की दर अपेक्षाकृत कम पायी गई।

राम अहूजा ने अपराधी महिलाओं के अध्ययन के अन्तर्गत पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश की अपराधित महिलाओं की प्रवृत्ति और कारणों की विवेचना करते हुए महिला अपराधों के सैद्धांतिक आधारों को विवेचित किया है। आपने परिवार के कुसुमायोजन व परिवार में भूमिका संघर्ष का समर्थन करते हुए इसे महिला अपराध के लिए प्रमुख माना है।

महिला अपराध के कई कारण हैं, वास्तव में अपराध एक शास्वत सत्य है जैसे कि स्वयं समाज, मानवीय पतन के अनेक रूप प्रत्येक प्रकार के सामाजिक संगठनों में पाये जाते रहे हैं। हर समाज में कुछ न कुछ महिलायें ऐसी होती हैं, जो आचार-विचार को त्याग कर अलग पंक्ति में खड़ी हो जाती हैं और यही अपराधों को जन्म देती हैं। महिला अपराध के कारण एवं निवारण हेतु समय-समय पर चिंतन होता रहा है, परन्तु व्यवस्थित अध्ययन आधुनिक काल से ही प्रारम्भ हुआ है। क्योंकि महिला अपराध का प्रतिशत पूर्व में कम था, यह मूलतः आधुनिकीकरण का परिणाम है, 19वीं शताब्दी तक तो यह अम्यारोहण प्रचलित था कि अपराधी महिला शैतान के वशीभूत होकर न केवल कानून तोड़ती है, बल्कि दैवीय शक्ति एवं आदेशों का उल्लंघन भी करती है। मगर यह मिथक 20 वीं शताब्दी तक आते-आते टूट गया और यह माना जाने लगा कि आपराधिक कृत्य समाज की अन्तर प्रक्रियाओं का उत्पाद है, अर्थात् यह इस मान्यता पर बल देता है कि अपराधी बनते नहीं बल्कि बनाये जाते हैं। अपराध सीखने की प्रक्रिया अधिगम की अन्य प्रक्रियाओं के समान ही होती हैं, महिला अपराध का कोई एकाकीकरण नहीं बल्कि महिला अपराध एक जटिल व्यवहार है और इसके विविध कारण हैं, परिस्थिति संकुल के आधार पर इसका जन्म होता है। अधिकांश विद्वानों तथा समाजशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया कि महिला अपराध सामाजिक एवं आर्थिक पर्यावरण के कारण उपजते हैं, सत्य है कि किसी महिला को उसके परिवार व वंश से समाजीकरण की प्रक्रिया ठीक न होने पर कुछ गुण अपराध के रूप में मिल सकते हैं, किन्तु कोई भी महिला जन्मजात अपराधी नहीं हो सकती। उसके आस-पास का वातावरण उसकी आर्थिक सामाजिक पृष्ठभूमि उसे अपराधी बनाने में सहायक है। कुछ अपराधशास्त्रियों ने अपने अनुसंधान परिणामों के आधार पर परिस्थितिक परिवेश व महिला अपराध के बीच सहसंबंध स्थापित करने का प्रयास किया है। महिला अपराध की विशेष क्षेत्र की विशिष्ट स्थिति तथा आबादी के कारण वहां प्रचुरता से होते हैं। क्योंकि घनी आबादी में अनैतिकता का बोलबाला पाया जाता है, इसके कारण महिलायें उन सामाजिक आदर्शों को अपनाने में असमर्थ हो जाती हैं, जिन आदर्शों पर चलकर एक आदर्श नैतिक समाज की स्थापना होती है। परिणामतः आपराधिक प्रवृत्ति का जन्म होता है। ई फ़ैरी तथा जी.आसफेन वर्ग जैसे विद्वानों ने एक क्षेत्र में अपराध की दर के घटने-बढ़ने की प्रवृत्तियों का विवरण प्रस्तुत किया है। आपका मानना है कि नगरीयकरण महिला अपराधिता में वृद्धि कराता है। आपका ये

मानना था कि समाज के अधिकांश स्वास्थ्य, विकास की बाधाएँ, सांस्कृतिक संघर्ष को पैदा कराती हैं, इससे विघटनकारी व समाज विरोधी मूल्यों का पोषण होता है और यहीं से कानून विरोधी जैसी प्रवृत्तियों का जन्म होता है।

अध्ययन के उद्देश्य -

1. महिला अपराधिता के कारणों को ज्ञात करना।
2. महिला अपराध की प्रकृति को जानना।
3. महिला अपराधिता के पुनर्वास के बिन्दुओं को ज्ञात करना।

अध्ययन क्षेत्र- समाजशास्त्रीय विश्लेषण एवं अपराधी महिलाओं के अन्य पक्षों की विवेचना के लिए उनकी सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि को ज्ञात करना आवश्यक है, इस हेतु मैंने जबलपुर संभाग के 8 जिला की 992 महिला अपराधियों का अध्ययन कर विभिन्न कारकों को स्पष्ट किया जो उनको अपराध की ओर ले जाते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में महिला अपराधियों के निवास स्थान, विवाहित, अविवाहित एवं विधवा महिलाओं के ऊपर अध्ययन तथा पुनर्वास को अध्ययन में शामिल किया गया है।

शोध प्रवधि- शोध कार्यों में प्रदत्तों का संग्रहण या तो प्रामाणिक परीक्षणों द्वारा या स्वनिर्मित अनुसंधान उपकरणों द्वारा किया जाता है जिससे वस्तुनिष्ठ प्रदत्त प्राप्त हो जाते हैं तथा इन प्रदत्तों के सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या के माध्यम से शोध अध्ययन के सही परिणामों तक पहुंचा जा सकता है।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण- इस प्रकार संपूर्ण क्षेत्र से 992 महिला अपराधियों के ऊपर शोध अध्ययन की विषय वस्तु से संबंधित विभिन्न जानकारीयां साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से संकलित की गई तथा प्रदत्तों के संग्रहण, सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या द्वारा वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त की है। निम्नलिखित तालिकाओं के माध्यम से महिला अपराधियों की प्रकृति एवं पुनर्वास को स्पष्ट किया गया है।

तालिका क्रमांक 01 उत्तरदात्रियों के अपराध की प्रकृति एवं निवास स्थान के आधार पर वर्गीकरण

जन्म स्थान						
क्र०	अपराध के प्रकार	ग्रामीण	नगरीय	कस्बाई	कुल	प्रतिशत
1	हत्या	26 1.61	16 2.62	01 0.1	43	4.33
2	हत्या का प्रयास	30 3.02	7 0.71	10 1.01	47	4.74
3	दहेज प्रताड़ना	40 4.03	150 15.12	00 0.0	190	19.15
4	दहेज हत्या	40 4.03	20 2.02	00 0.0	60	6.05
5	आप. गृह अभियोजन	30 3.02	06 0.06	02 0.02	38	3.83
6	दोषपूर्ण अवरोध	20 0.02	6 0.06	01 0.01	27	2.72
7	षड़यंत्र	08 0.81	09 0.91	00 0.00	17	1.71

8	बलात्कार में सहयोग	09 0.91	07 0.71	00 0.00	16	1.61
9	आत्महत्या की प्रेरणा	14 1.41	15 1.51	04 0.04	33	3.33
10	चोट	400 40.32	100 10.08	12 1.21	512	51.61
11	लूट	01 0.01	08 0.01	00 0.0	09	0.9
12	कुल	618	344	30	992	
13	प्रतिशत	62.3	34.68	3.02		100%

स्रोत-प्राथमिक समकों के संकलन के आधार पर

भारतीय सामाजिक ढांचे में ग्राम एक महत्वपूर्ण इकाई है। इस संबंध में डॉ. एम. एन. श्रीनिवासन का कथन है कि ग्राम एक परालम्बित इकाई है जो अधिकांश मात्रा में आत्म सम्पन्न है, वहीं ए.आर.देसाई का यह मानना है कि ग्राम ग्रामीण समाज की इकाई है, यह वह रंगमंच है जहां पर कि ग्रामीण जीवन राशि एवं कार्यों को स्वयं के द्वारा उन्मीलित किया जाता है। प्रत्येक सामाजिक पर्यावरण की भांति ग्राम भी एक ऐतिहासिक श्रेणी है। दूसरी ओर नगरीय संरचना है जहां द्वितीयक संबंधों के साथ सामान्यतः जीवन के एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में महिला अपराधिता के ग्रामीण व नगरीय निवास स्थान को वर्गीकृत किया गया है। तालिका इस बात को स्पष्ट करती है कि 6.23 प्रतिशत महिलायें ग्रामीण, 34.68 प्रतिशत नगरी व 3.02 प्रतिशत कस्बाई हैं। कुल 992 अपराधिताओं में से हत्या के 2.62 प्रतिशत हत्या का प्रयास 3.02 प्रतिशत, दहेज प्रताड़ना 4.03 प्रतिशत, दहेज हत्या 4.03 प्रतिशत, बलात्कार में सहयोग 0.91 प्रतिशत, चोट 40.32 प्रतिशत, षड़यंत्र 0.81 प्रतिशत, नगरीय समाज में दहेज प्रताड़ना 15.12 प्रतिशत, चोट 10.08 प्रतिशत, कस्बाई समाज में रहने वाली महिलाओं का अपराध में प्रतिशत कम है। ग्रामीण व नगरीय दोनों ही संरचना में झगड़े, दहेज प्रताड़ना, दहेज हत्या के भी मामले हैं, सबसे कम मामले लूट के हैं, जो महिलाओं की इस मामले के प्रति अनभिज्ञता दर्शाते हैं। इस संबंध में टेफ्ट ने ग्रामीण व नगरीय महिला अपराध के विवेचन में स्पष्ट किया है कि ग्रामीण जनता में सजातीयता एवं एकता की भावना नगरीय क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक होती है, परन्तु परिवर्तन के दौर में यह अवधारणा धीरे-धीरे खत्म हो रही है और ग्रामीण अपराधों का प्रतिशत बढ़ रहा है।

तालिका क्रमांक- 2

उत्तरदात्रियों द्वारा किये जाने वाले अपराधों के मूल कारण

मूल कारण							
क्र०	अपराध के प्रकार	जमीनी विवाद	घरेलू कलह	परिवार की प्रताड़ना	आर्थिक परिस्थि.	कुल	प्रतिशत
1	हत्या	02 0.2	08 0.81	23 2.32	10 1.01	43	4.33
2	हत्या का प्रयास	03 0.3	09 0.91	26 2.62	9 0.91	47	4.74
3	दहेज प्रताड़ना	00	60 6.05	127 12.8	03 0.3	190	19.15
4	दहेज हत्या	00	15 1.51	40 4.03	05 0.5	60	6.05
5	आप. गृह अभि.	10 1.01	15 1.51	10 1.01	03 0.3	38	3.83

6	दोषपूर्ण अवरोध	6 0.6	20 2.02	01 0.1	00	27	2.72
7	षड़यंत्र	00	9 0.91	8 0.81	00	17	1.71
8	बलात्कार में सह.	9 0.91	7 0.71	00	00	16	1.61
9	आत्महत्या की प्रेर.	00	14 1.41	15 1.51	04 0.4	33	3.33
10	चोट	257 25.91	100 10.08	90 9.07	65 6.55	512	51.61
11	लूट	01 0.1	00	00	8 0.81	09	0.9
12	कुल	27	259	347	107	992	
13	प्रतिशत	28.12	26.11	34.98	10.79	13.61	100

स्रोत- प्राथमिक समंकों के संकलन के आधार पर

महिला अपराध विविध प्रभावों के योग का परिणाम है, पारिवारिक कुसमायोजन पारिवारिक संबंधों का स्वरूप परिवारों में प्रकार्यात्मक समस्याओं के साथ परिवार में कुपरिभाषित या विरोधाभाषी भूमिका, भूमिका संघात, भूमिका असंगति तथा भूमिका संभ्रांति ये महिला के लिये ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं, जो इन्हें विचलन भूमिका के लिए बाध्य कर देती हैं, साथ ही दोषपूर्ण समाजीकरण, अशिक्षा, परिवार की आर्थिक दशा, आत्म नियंत्रण की कमी, इन्हें अपराध की ओर ढकेलती है। कुल निदर्श 992 अपराधी महिलाओं में 34.98 प्रतिशत महिलायें पारिवारिक प्रताड़ना की वजह से अपराध की ओर अग्रसर हुई, जिसमें 2.52 हत्या, 2.62 हत्या का प्रयास 12.8 दहेज प्रताड़ना, 4.03 दहेज हत्या, 0.81 प्रतिशत षड़यंत्र में शामिल हैं। पश्चात् जमीनी विवाद में 28.12 प्रतिशत जिसमें अधिकतम आपराधिक गृह अभियोजन 10.01 व घरेलू कलह में 26.11 महिलायें, जिसमें सर्वाधिक प्रतिशत 0.91 बलात्कार में सहयोग का था। आर्थिक परिस्थितियों से कमजोर परिवारों में सबसे कम प्रतिशत 10.79 है। तालिका इस बात को स्पष्ट करती है कि महिलाओं को अपराध की दुनिया में ले जाने का कार्य परिवार की प्रताड़ना है, जहां सास-ससुर, ननद या अन्य पारिवारिक सदस्यों से सामंजस्य नहीं हो पाने पर भूमिका संगति या विरोधाभाषी प्रत्याशाओं के परिणाम स्वरूप हत्या, दहेज हत्या, जैसे जघन्य अपराध जन्म लेते हैं। द्वितीय अपराधों में घरेलू कलह भी एक महत्वपूर्ण कारक है, सुबह से शाम तक चलने वाला पारिवारिक विवाद इन्हें अपराध की ओर अग्रेषित करता है। तीसरे स्तर पर जमीनी विवाद है जो हत्या व हत्या के प्रयास एवं मारपीट जैसे संघातक अपराध कराता है। विवरण से स्पष्ट है कि परिवार मानवीय व्यक्तित्व का गर्भाशय है, सिरिल बर्ट का मानना है कि पारिवारिक वातावरण में किसी सदस्य का प्रमुखता से पक्षपात, अत्याधिक व्यस्तता, अत्याधिक कठोर अनुशासन, उपेक्षा, ईर्ष्या अधिक हस्तक्षेप करने वाले संबंधियों का बाहुल्य व पारिवारिक सदस्यों में सामंजस्यता का स्थिति का न होना, महिला सदस्यों में बदले की भावना के आचरण का प्रत्यक्ष परिणाम अपराध को जन्म देता है।

तालिका क्रमांक- 3
जेल विमुक्ति पश्चात् सामाजिक
स्त्रोतों से प्राप्त सहायता का वर्गीकरण

पुनर्वास हेतु सहायता						
क्र०	अपराध का प्रकार	हाँ	कोई मदद नहीं	जितनी की वह पर्याप्त नहीं	कुल	प्रतिशत
1	हत्या	61 0.1	15 1.51	27 2.72	43	4.33
2	हत्या का प्रयास	10 1.01	7 0.71	30 3.02	47	4.74
3	दहेज प्रताड़ना	30 3.02	10 1.01	150 15.12	190	19.15
4	दहेज हत्या	10 1.01	10 1.01	40 4.03	60	6.05
5	आप0 गृह अभि0	02 0.2	6 0.6	30 3.02	38	3.83
6	दोषपूर्ण अवरोध	10 1.01	5 0.5	12 1.21	27	2.72
7	षड्यंत्र	7 0.71	5 0.5	5 0.5	17	1.71
8	बलात्कार में सह.	5 0.5	2 0.2	9 0.91	16	1.61
9	आत्महत्या की प्रेर.	5 0.5	10 1.01	18 1.81	33	3.33
10	चोट	104 10.48	200 20.16	208 20.97	512	51.61
11	लूट	00	00	9 0.91	09	0.9
12	कुल	184	270	538	992	
13	प्रतिशत	18.55	27.22	54.23		100%

स्रोत- प्राथमिक समकों के संकलन के आधार पर

अपराधी महिलाओं के बंदी अवस्था में सामाजिक व सामुदायिक जीवन के बारे में प्राप्त जानकारी से स्पष्ट पता चलता है कि अधिकांश उनका जीवन अच्छा नहीं है, बन्दी अवस्था में अच्छी आदतों के साथ-साथ बुरी बातें भी सीखनी पड़ती हैं। निरुद्धीय अवस्था में पुनर्वास हेतु जो व्यवसाय या कार्य सिखाये जाते हैं, उनमें और अधिक शिक्षण प्रशिक्षण की आवश्यकता है, ताकि कम लागत पर वे बाहर निकलकर अपना व्यवसाय कर सकें। जेल विमुक्ति पश्चात् निदर्श 992 अपराधी महिलाओं में से 54.23 प्रतिशत से हत्या के 2.72, हत्या के प्रयास में 3.02 दहेज प्रताड़ना में 15.12, दहेज हत्या में 4.03, आपराधिक गृह अभियोजन में 3.02, दोषपूर्ण अवरोध में 1.21 षड्यंत्र में 0.05, बलात्कार के सहयोग में 0.91, आत्महत्या की प्रेरणा में 1.81, चोट में 20.97, लूट में 0.91 प्रतिशत महिलाओं का ये कहना था कि व्यवसाय को स्थापित करने में जितनी राशि की सहायता राज्य शासन द्वारा की जाती है वह पर्याप्त नहीं है। द्वितीय स्तर पर 27.22 प्रतिशत जिसमें सभी वर्ग की अपराधी महिलायें शामिल हैं, का कहना था कि राज्य शासन ने या अन्य कोई संस्था द्वारा उनकी किसी भी स्तर पर मदद नहीं की है। निदर्श में से कुल 18.55 महिलाओं का ये कहना था कि विमुक्ति पश्चात्

शासन एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा उनके लिये मदद की गई है। तालिका से यह स्पष्ट है कि अपराधी महिलाओं के पुनर्वास हेतु जो मदद की गई है वह पर्याप्त नहीं है, जबकि समाज व राज्य दोनों का नैतिक उत्तरदायित्व है कि अपराधी महिला को पुनर्स्थापित करने में मदद करे। तत्संबन्ध में पीटर जी. गेरावेदियन का मानना है कि समाज जब तक जेल से विमुख व्यक्तियों की उचित रक्षा व सहायता करने में असमर्थ रहेगा तब तक व्यक्ति कारागार या सुधारात्मक संस्थाओं से होकर आयेगा परन्तु पुनः उसी कारागार या संस्था में फिर वापिस हो जायेगा। अतः सुधारात्मक कार्य या अपराधिता को मदद मात्र उपचार न हो बल्कि इन्हें पर्याप्त आर्थिक व संतोषजनक सुविधायें हों ताकि ऐसे व्यक्ति समाज में फिर से पुनर्वासित हो सकें। इसके साथ ही ग्रामीण अंचलों में महिलायें छोटे-मोटे कार्यों में कार्यरत हैं, जैसे कि यदि हम खेती के संदर्भ में चर्चा करें तो खेती के माध्यम से हल्की फसलें जो तीन माह में आ जाती हैं, सब्जियों को उगाने एवं शहरों में बेचने का काम सतत जारी है। कुछ महिलायें छोटी दुकानदारी के माध्यम से अपने परिवार का संचालन कर रही हैं और कुछ महिलायें बूंदे तथा महिलाओं के द्वारा कंधे पर टांगे जाने वाले बैग निर्माण कर उन्हें बेचने का धन्धा कर रही हैं। सारांशतः यह बात निकलकर आती है कि भले ही शासन द्वारा इनके पुनर्वास के लिए बहुत ज्यादा कार्य न किया हो, किन्तु महिलायें अपने स्तर पर कार्य कर परिवार के उदर-पोषण में लगी हैं। यह एक उचित दिशा में उठाया गया सही कदम है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. मीड, माइण्ड एण्ड सोसायटी, 1934- पेज. नं 13-14
2. कोल्लर, अमेरिकन अरबीट्रेशन इट्स हिस्ट्री 1948, पेज 45-46
3. गिलिन जे.एल., क्रमनालॉजी एण्ड पेनालॉजी, थर्ड एडीसन ऐपेलटनकन्ट्री, न्यूयार्क, 1945 पेज- 68-70
4. विल्सन, थ्रियोटिकल क्रमनालॉजी, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1958, पेज- 55-56
5. पोल्लाकऑटो, दा क्रमनालॉजी आफ बोमेन, यूनिवर्सिटी पेनासिलेवेनिया प्रेस, फिलाडेलफिया, 1950, पेज- 1-7
6. थॉमस बी., डोमिस्टिक वायलेंस, बाय थॉमस बी. गेम्स जे.डी., एनालिस प्रेस, नवम्बर 28 2003, पेज- 5-9

भ्रष्टाचार (भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक सामाजिक विश्लेषण)

• रश्मि दुबे

सारांश- भ्रष्टाचार भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में इस सीमा तक अपनी जड़ें जमा चुका है कि कदम-कदम पर लोकतन्त्र के सिद्धान्तों एवं आदर्शों की अवहेलना की जाती है। सिद्धान्त के रूप में संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस से यह अपेक्षा की जाती है कि प्रजातन्त्र की कार्यप्रणाली को सुचारू बनाए रखेंगे। संसद से यह आशा की जाती है कि वह कार्यपालिका को अनियन्त्रित होने से रोकेगी, न्यायपालिका से राज्य की सत्ता से आम नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की आशा की जाती है और संचार माध्यमों से सार्वजनिक जीवन में घूसखोरी तथा अन्याय को रेखांकित करने की अपेक्षा की जाती है। यदि भारतीय प्रजातन्त्र के अस्तित्व को बनाए रखना है तो आवश्यक है कि ये कार्य पूरे किए जाएं।

मुख्य शब्द- भ्रष्टाचार, राजनीति, भारतीय दंड संहिता

परिचय- भ्रष्टाचार से आशय है-भ्रष्टाचार अथवा भ्रष्ट-व्यवहार। यह सर्वविदित है कि समाज और शासन की व्यवस्था को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित होने के लिए सार्वजनिक हित में व्यवहार के कुछ आदर्श प्रतिमान सुस्थापित हैं। उसमें नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा, पद एवं सत्ता का सदुपयोग मुख्य रूप से सन्निहित किए जा सकते हैं। ये प्रतिमान स्वस्थ समाज की परम्पराओं पर आधारित हैं। समाज रूपी व्यवस्था की सुदृढ़ता इन पर ही निर्भर है। अतएव प्रत्येक समाज इनका पक्षधर है। ये प्रतिमान ही नैतिक आदर्शों के प्रतिरूप माने जाते हैं। इनका पालन ही नैतिक आचार अथवा सदाचार है तथा उल्लंघन भ्रष्टाचार है। आशय यह है कि उपरोक्त मान्य एवं सुस्थापित नैतिक आदर्शों के विपरीत किए जाने वाले व्यवहार भ्रष्टाचार के द्योतक हैं। अनैतिकता, असहिष्णुता, कर्तव्यउपेक्षा एवं निजी हित के लिए पद एवं सत्ता का दुरुपयोग आदि इसका प्रतिनिधित्व करते हैं। कन्साईज आक्सफोर्ड शब्दकोश में भ्रष्टाचार का अर्थ है, “रिश्वत अथवा अवैधानिक और अनुपयुक्त साधनों से गलत या अनैतिक कार्य की ओर उन्मुख होना तथा सही और नैतिक कार्यों से विरत होना भ्रष्टाचार है।”¹

उपरोक्त उद्धरण के आलोक में, जहां भ्रष्टाचार को अनैतिकता से जोड़ा गया है, यह कहना ज्यादा सार्थक है कि वास्तव में अनैतिकता भ्रष्टाचार का पर्याय बन चुकी है। इसलिए भ्रष्टाचार को सही अर्थों में समझने के लिए नैतिकता को समझना अनिवार्य प्रतीत होता है। नैतिकता का शाब्दिक अर्थ वैचारिक निर्धारण और अपने कर्तव्यों का समुचित पालन करते हुए अधिकारों का उचित उपयोग है। नैतिकता पर अर्नेस्ट हेमिंग्वे का वक्तव्य है कि “जिस काम को करने के बाद आप सुखद अनुभव करें वह नैतिक और जिसे करने के बाद आप बुरा महसूस करते हैं, वह अनैतिक है।”¹²

हेमिंग्वे का ‘सुख’ सम्बन्धी कथन भौतिक सुख नहीं बल्कि आत्मिक सुख को प्रतिध्वनित करता है। यह आत्मिक सुख स्वहित नहीं बल्कि पर-हित एवं सार्वजनिक हित सम्बन्धी कार्यों को सम्पन्न करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार भ्रष्टाचार का एक सामान्य आशय यह लगाया जा सकता है कि वह व्यवहार जो सार्वजनिक हित में हो, स्वहित का पोषक न हो तथा सुस्थापित मान्यताओं के अनुकूल हो, सदाचार के रूप में जाना जाएगा। लेकिन ऐसा व्यवहार जो स्वहित का पोषक हो, सार्वजनिक हित का विरोधी हो, लोगों को कष्ट देने वाला हो एवं सुस्थापित मान्यताओं का उल्लंघन करता हो, भ्रष्टाचार की श्रेणी में आएगा। नैतिक आदर्शों की उपेक्षा एवं सदाचार का अभाव, भ्रष्टाचार संरक्षण (जो साम्प्रदायिकतावाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद एवं पक्षपात पर आधारित होता है) एवं अनुचित प्रभाव के रूपों में अभिव्यक्त होता है। उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. सम्पूर्णानन्द ने कहा है कि “प्रशासकीय कार्य के सम्पादन में एक के द्वारा दूसरे को धन देना ही सच्चरित्रता के अभाव को अभिव्यक्त करने वाला एकमात्र रूप नहीं है। यह अनेक रूप धारण कर सकता है, जो किसी भी प्रकार कम निन्दनीय नहीं होता। उदाहरण के लिए संरक्षण द्वारा एक व्यापक क्षेत्र का निर्माण किया जा सकता है, जो दायित्वों एवं त्रुटियों की दृष्टि से घातक बुराई का स्रोत सिद्ध हो सकता है। जिसे हम बुरा समझते हैं उसके प्रति आंखें मूंद लेना, अपराधी को अनैतिक कार्यों की छूट देना और अपने दुष्कृत्यों के लिए उसे अपने दण्ड से बचने देना, पद शृंखला में किसी उच्च पदाधिकारी के स्थान पर, जो वास्तव में दोषी है, उसके किसी अधीनस्थ को बलि का बकरा बनाना, गलत सूचना देना या किसी महत्वपूर्ण सूचना या तथ्यों को प्रस्तुत न करके उन्हें पूरी तरह या आंशिक रूप में दबाना और तथ्यों को जानबूझ कर गलत निर्णय हेतु प्रस्तुत करना।”¹³

राजनीतिक चिन्तन में, राजनीतिक भ्रष्टाचार के सन्दर्भ में, आज जो सामान्य-सी अवधारणा विकसित हुई है उसके अन्तर्गत यह माना जाने लगा है कि स्वहित की येन-केन-प्रकारेण पूर्ति की भावना राजनीतिक कार्यों का आधारभूत प्रेरणास्रोत है। मैकियावेली के दर्शन में ‘हित-पोषण’ का यह दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है। स्वार्थ संदर्भित चिन्तन का एक पक्ष हॉब्स के राजनीतिक दर्शन में भी देखने को मिलता है। लेकिन दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि हॉब्स जहां जन सामान्य के हित पर बल देते हुए उसकी पूर्ति के लिए लेबियाथन जैसे निरंकुश शासक की बात करता है, वहीं मैकियावेली प्रिंस (शासक) के स्वहित पर बल देता है।¹⁴ जहां तक भ्रष्टाचार की बात है, सामान्यतः, व्यवहार में इसे निजी आर्थिक हित हेतु सरकारी

पद के दुरुपयोग के रूप में देखा जाता है। पद का दुरुपयोग कर आर्थिक लाभ प्राप्त करने को ही भ्रष्टाचार माना जाता है, क्योंकि यह बहुत स्पष्ट दिखाई देता है तथा उसमें आम आदमी का जीवन शीघ्र प्रभावित होता है। इस तरह वह मंत्री, अधिकारी या सरकारी कर्मचारी भ्रष्ट है, जो अपनी सरकारी स्थिति का लाभ उठा कर अपने पद का दुरुपयोग करते हुए अनुचित आर्थोपार्जन करता है।⁵ भ्रष्टाचार की एक सामान्य-सी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है, कि किसी सार्वजनिक पद पर असीन् किसी व्यक्ति (राजनेता अथवा सरकारी अधिकारी) द्वारा अपने निजी आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए सत्ता का दुरुपयोग करना भ्रष्टाचार कहा जाता है।⁶

राजनीति को विकृत करने में धन तथा भौतिक संसाधनों की तरह नारी सौन्दर्य का प्रयोग के अनेक उदाहरण भी समय-समय पर संज्ञान में आते रहे हैं। इस तरह के अनेक प्रकरणों में यह देखा गया कि सत्ता प्राप्ति की अन्धी दौड़ में सफलता पाने हेतु अनेक राजनीतिक व्यक्तियों ने नारी सौन्दर्य का उपयोग करते हुए अपने राजनीतिक प्रभाव को सफलतापूर्वक बढ़ाया। भारत में राजनीति और राजनेताओं के चरित्र में गिरावट अब आतंक और हिंसा के स्तर तक पहुँच चुकी है। भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री टी. एन. शेषन का कहना है कि, “राजनेता अब मात्र लूट से ही सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि वे पुराने विदेशी आक्रमणकारियों की उस शैली में व्यवहार करते हैं कि यहाँ के वतन को लूटो और उसके बीबी-बच्चों को दास बना लो।”⁷ सत्ता के लिए होने वाले निर्वाचनों में अनैतिक साधन अपनाकर चुनाव लड़ना अब आम बात हो गई है। अब तो इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिल चुके हैं कि राजनीतिज्ञों द्वारा अपने पद का दुरुपयोग करते हुए निजी लाभ के लिए चुनाव में सरकारी तन्त्र का दुरुपयोग किया जाता है। चुनावों में झूठे वादे करके वोट प्राप्त करना, जनता के बीच धोती, साड़ी, कम्बल तथा शराब वितरित करवा कर लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करना तथा साथ ही साथ लोगों में पैसे बाँट कर वोट खरीदना गम्भीर भ्रष्टाचार है। यद्यपि राजनेता इसे राजनीति का एक अंग मानते हुए इसे ‘राजनीतिक चातुर्य’ कहते हैं, लेकिन वास्तव में यह भ्रष्टाचार के अतिरिक्त और कुछ नहीं क्योंकि यह सारा खेल राजनेताओं द्वारा अपने पद सम्बन्धी अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए निजी हित के लिए खेला जाता है।⁸

भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय-9 में भ्रष्टाचार को विस्तृत रूप में परिभाषित किया गया है। इसमें उपबन्धित धारा 161 प्रमुखतः लोक सेवकों में भ्रष्टाचार से सम्बन्धित है जिनकी परिधि में घूस अथवा रिश्वत और सहवर्तों अपराध, विधि विरुद्ध कार्य एवं लोक सेवकों के प्रतिरूपण सम्बन्धी कार्य आते हैं। धारा 161 में उपबन्धित है कि वह व्यक्ति भ्रष्टाचार का दोषी माना जाएगा जो, आज किसी अवैध कार्य को करने के लिए या वैध कार्य को अवैध तरीके से करने के लिए या अपराध को दबाने अथवा छिपाने के लिए प्रायः लोक सेवकों को घूस अथवा रिश्वत दी जाती है। यदि कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि घूस अथवा रिश्वत आज जन सामान्य के जीवन का एक अंग-सा हो गया है। घूस अथवा रिश्वत को ही विधिक भाषा में परितोषण कहा जाता है जिसमें सभी प्रकार के अवैतनिक सम्मान एवं अभिलाषाएं सम्मिलित हैं और वैध पारिश्रमिक से भिन्न किसी भी प्रकार का पारितोषण इसके अन्तर्गत आता है। भारतीय

दण्ड संहिता के 161 से 165 ए की धाराओं को समाप्त करके उसके स्थान पर भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1988 को प्रवर्तन में ला दिया गया है लेकिन भ्रष्टाचार के संबंध में उक्त अधिनियम के अन्तर्गत दी गई परिभाषा को भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1988 में भी उसी रूप में शामिल किया गया है।⁹

वस्तुतः भ्रष्टाचार भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में इस सीमा तक अपनी जड़ें जमा चुका है कि कदम-कदम पर लोकतन्त्र के सिद्धान्तों एवं आदर्शों की अवहेलना की जाती है। सिद्धान्त के रूप में संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस से यह अपेक्षा की जाती है कि प्रजातन्त्र की कार्यप्रणाली को सुचारू बनाए रखेंगे। संसद से यह आशा की जाती है कि वह कार्यपालिका को अनियन्त्रित होने से रोकेगी, न्यायपालिका से राज्य की सत्ता से आम नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की आशा की जाती है और संचार माध्यमों से सार्वजनिक जीवन में घूसखोरी तथा अन्याय को रेखांकित करने की अपेक्षा की जाती है। यदि भारतीय प्रजातन्त्र के अस्तित्व को बनाए रखना है तो आवश्यक है कि ये कार्य पूरे किए जाए।¹⁰

धन आज राजनेताओं के जीवन में प्रभावी भूमिका अदा करने लगा है। विशेषतः चुनावों के पूर्व, उनके मध्य एवं तत्पश्चात् विशेष रूप से सरकारों के बनाने और उन्हें अपदस्थ करने में राजनेता का प्रभाव आज इस तुला पर आंका जाने लगा है कि वह अपने दल के लिए कितना धन एकत्र कर सकता है। धन हमारी राजनीतिक व्यवस्था में आज सभी दुर्गुणों का स्रोत बन गया है। यह वह माध्यम है जो पूरे राजनीतिक तन्त्र को गम्भीरता से प्रभावित एवं विकृत कर रहा है। राजनीतिक तन्त्र में काले धन की सबसे बड़ी आपूर्ति बड़े और मध्यम वर्ग के व्यापारिक घरानों द्वारा जाती है जो सभी दलों को पैसा देते हैं, क्योंकि यथा-स्थिति बनाए रखने में उनका हित है। उद्योग क्षेत्र ने राजनीतिक तन्त्र को भी सभी चुनावों में सभी राजनीतिक दलों को और अनेक स्थानीय दलों को पैसा देकर अपने गिरफ्त में ले लिया है। लाइसेंस-कोटा परमिट राज और प्रत्येक दल के नेताओं द्वारा पैदा किए गए पैसे का परिणाम यह हुआ कि चुनावों में भारी पैसा लगाया जाने लगा। राजनीति में भ्रष्टाचार का पर्याय बने अनैतिक माध्यमों से एवं साधनों से अवैध धन प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने अब संस्थागत रूप धारण कर लिया है। उन्हें सम्मान भी प्राप्त हो रहा है। लूट और अपराध, जो निम्न स्तर पर आरम्भ हुए थे, वे अब नई दिल्ली, मुम्बई और अन्य प्रमुख राज्यों की राजधानियों में उच्च स्तर पर बढ़कर विशालकाय राक्षस की तरह हो गए हैं। भारत वर्ष में भाई-भतीजावाद के पक्षपोषण करने वालों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि जब तक पिछड़े वर्ग अथवा अनुसूचित जाति और जनजाति वर्ग के सदस्य को, जोकि सुविधाविहीन है, उसके किसी सम्बन्धी अथवा उसी जाति के अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा सहयोग नहीं प्रदान किया जाएगा तब तक वे अपने से ज्यादा सुविधा एवं साधन सम्पन्न प्रतियोगियों के रहते कोई अच्छा पद कैसे प्राप्त कर सकेंगे। भारतीय राजनीति में तो इस धारणा ने एक आम समर्थन और वैधानिक स्थिति भी प्राप्त कर ली है। केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न सरकारी नियुक्तियों में मंत्रियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अपने सगे-सम्बन्धियों अथवा जाति के लोगों की नियुक्तियों को वरीयता दी जाती है, लेकिन कभी भी उनका यह आचरण गम्भीर बहस का मुद्दा नहीं बन पाता और न ही जनमानस में

उत्तेजना का संचार करता है। सामान्य जनता इसके प्रति उदासीन-सी लगती है; और अब तो आम लोगों ने भी सम्प्रदाय तथा रक्त-सम्बन्धों को भुनाना प्रारम्भ कर दिया है।¹¹

वर्तमान भारत के लिए भ्रष्टाचार से अधिक प्रासंगिक अन्य विषय की कल्पना शायद ही की जा सके। समाज के हर स्तर और क्षेत्र को भ्रष्टाचार प्रभावित कर रहा है। राजनीति-प्रशासन के गठजोड़ में तीव्र से व्याप्त हो रहे भ्रष्टाचार ने, जिसने धन और प्रतिष्ठा के पर्याय के रूप में स्थान ग्रहण कर लिया, विगत कुछ दशकों से समाज के हर वर्ग में अपनी जड़ों को मजबूती से जमा लिया।¹² भ्रष्टाचार के बारे में एडवर्ड गिब्सन का मत है कि, भ्रष्टाचार संवैधानिक स्वतन्त्रता का लक्षण है।¹³ यह कहना कठिन है कि महान् इतिहासकार गिब्सन का यह वक्तव्य व्यंग्यात्मक है या विश्लेषणात्मक। जो भी हो भ्रष्टाचार के लिए अधिकतम संवैधानिक स्वतन्त्रता न तो किसी देश में उपलब्ध है और न ही इसकी बहुत आशा की जा सकती है।

भारत में भ्रष्टाचार को एक नया आयाम दूसरी पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन के दौरान प्राप्त हुआ। इस योजना में भारी पैमाने पर सार्वजनिक धन के व्यय का प्रावधान था। जिसने भारतीय इतिहास में पहली बार राजनीतिज्ञ, उद्योगपति और नौकरशाह को एक-दूसरे के निकट ला खड़ा किया क्योंकि इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय में समुचित वृद्धि और उद्योग-धन्धों पर विशेष बल आदि बातों को लक्ष्य बनाकर कार्य प्रारम्भ किया गया।

सरकार ने भ्रष्टाचार की समस्या के बारे में कुछ गम्भीरता दिखाई। भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम 1947 को अधिनियमित किया गया और उन्हीं वर्षों में दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (डी.एस.पी.ई.) की स्थापना की गई। यह भ्रष्टाचार विरोधी संगठन बाद में 1963 में स्थापित केन्द्रीय जांच ब्यूरो का अंग बन गया। सरकारी अधिकारियों को ईमानदार बनाए रखने के लिए कई और कानूनी एवं प्रशासनिक उपाय किए गए। इन उपायों में भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम में यह परिवर्तन शामिल है कि, “अपनी ज्ञात वैध आय के अनुपात से अधिक सम्पत्ति रखने के लिए अरोपित अधिकार को ही अपनी बेगुनाही का सबूत देना होगा।”¹⁴ दुर्भाग्य से इन वैधानिक व्यवस्थाओं के बावजूद भ्रष्टाचार काफी तेजी से बढ़ा और यह उस स्तर पर पहुंच गया जिसकी कल्पना संथानम कमेटी ने उन वर्षों में नहीं की थी। भारत में सामान्यतः यह देखा जाता है कि स्वयं व्यवस्था अधिकारियों पर भ्रष्ट होने के लिये दबाव डालती है।¹⁵ माना कि नियम कानून भ्रष्टाचार को रोकना चाहते हैं लेकिन यह भी कहा जाता है कि कानून सम्मत कार्य करने वाले कर्मचारी प्रशासन को अपंग बना देते हैं। कई कानून भारी-भरकम, भ्रामक और अव्यावहारिक हैं। मुख्य बात यह है कि नियमों को प्रत्येक घटना पर सजग होना चाहिए लेकिन अक्सर कोई न कोई कमी निकाल ली जाती है। नए नियम कानून की अधिकता अधिकारियों को केन्द्रोन्मुख कर व्यवस्था को नकारा बना देती है। भारी भरकम कानूनों के चलते प्रशासनिक प्रक्रिया अनिश्चित हो जाती है और विलम्ब को नजरअन्दाज कर दिया जाता भार के क्षेत्र में काम करने वाले अधिकारियों का अपने दायित्व से मुक्त हो पाना असम्भव हो जाता है। इसलिए वे अक्सर नियम कानूनों की परवाह नहीं करते। उदाहरण के लिए, “चूंकि कोई भी ठेकेदार नुकसान में कार्य नहीं करना चाहता इसलिए

वह इंजीनियर को गलत विवरण देता है। जब बजरी निकाली जाती है तो उसे मिट्टी बता देता है, जब मिट्टी खोदी जाती है तो उसे कद्दार मान लिया जाता है और यदि वह कद्दार होता है तो उसे पत्थर मान लिया जाता है। छीजन स्थिति को और भी दुष्कार बना देता है। ठेकेदार अनावश्यक नुकसान उठाने को तैयार नहीं होता। राजनेता भी उनसे धन लेना चाहते हैं। अन्ततः इंजीनियर को गलत विवरण देना पड़ता है। यदि कोई ईमानदार ऐसा नहीं करता तो उसे डराया-धमकाया जाता है। अर्थात् अव्यवहारिक नियम कानून और राजनैतिक हस्तक्षेप भ्रष्टाचार के विस्तार की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।¹⁶

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जो नियम, कानून जाहिर तौर पर जनता के हित के लिए थे, वे व्यक्ति के दैनिक व्यवहार में उन लोगों के हित पोषक बन गए जिनके हाथ में सत्ता थी और जिनके मित्र रिश्तेदार और करीबी थे। देश और जनता की सम्पत्ति को वे अपनी सम्पत्ति के रूप में उपयोग करते हुए एक समानान्तर सत्ता चलाने लगे। उनकी कारगुजारी कानून सम्मत न होने और प्रतिबन्ध लगने योग्य होने के बावजूद आज समाज में स्वीकार्य हैं। यह निर्विवाद है कि आज राजनेता, बड़े नौकरशाह और उनके करीबी रिश्तेदार तथा मित्र सन्देह के घेरे में हैं।¹⁷

आज भारत में भ्रष्टाचार एक सर्वव्यापी समस्या बन कर रह गया है। जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। यह वर्तमान भारत में जीवन शैली बन चुका है। इसकी स्वीकार्यता सामाजिक क्रियाकलापों में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है और वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इसके समाधान के लक्षण दूर-दूर तक अन्धकार का गर्भ में है, लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि समस्या का समाधान हो ही नहीं सकता, इस समय भारत में भ्रष्टाचार की समस्या विकट अवस्था है तथा जहां भ्रष्ट लोग कम होते हैं वहां यह व्यक्तिगत समस्या होती है और भ्रष्टों से व्यक्तिगत स्तर पर निपटा जा सकता है किन्तु जहां भ्रष्टाचार पूरे समाज में फैला हो, जैसा कि आज हमारे देश में है, तो पूरी व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता होती है। कुछ कोशिश से ही देश को इस बुराई से मुक्त नहीं कराया जा सकता। इससे जूझने के लिए राष्ट्रव्यापी संकल्प, व्यापक जन जागृति एवं आम जनता की सोच को बदलने की आवश्यकता है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. कन्साइज आक्सफोर्ड शब्दकोश, पृष्ठ 45
2. श्रीवास्तव, पी. बालेश्वरी, नैतिकता, राजनीति और भारत, पालिटिक्स इंडिया, 1998
3. संपूर्णानंद, इन्ट्राग्रीटि इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बुलेटिन आफ द इन्स्टीट्यूट टू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पटना यूनिवर्सिटी, 1957
4. डोविंग आर. एम. रियलीज्म एंड इन्टरेस्ट एज पोलिटिकली थीम्स, रस्किन हाउस, म्यूजियम स्ट्रीट, 1972
5. पत्रिका, धर्मयुग, 16 अगस्त, 1994
6. भार्गवा, जी. एस., करप्शन पालीटिकल इन इंडिया, पापुलर बुक सर्विसेस, नई दिल्ली, से उद्धृत
7. शेषन टी. एन., भारत पतन की ओर, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, 1995
8. अग्रवाल, बिहारी प्रसाद, भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2005

9. मुखर्जी संदीप, यू.पी. क्रिमिनल माइनर एक्ट, हिन्द पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1996
10. अग्रवाल, बिहारी प्रसाद, भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2005
11. वही
12. धर्मयुग सितम्बर 1995 पृष्ठ 20
13. वही पृष्ठ 21
14. अग्रवाल, बिहारी प्रसाद, भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2005
15. इन्दरसेन, पी.वी, भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष (लेख) पोलिटिक्स इंडिया
16. वही
17. सी.बी.मुथम्मा, भ्रष्टाचार के सुधार की आवश्यकता (लेख) पालिटिक्स इंडिया, 1998

भ्रष्टाचार एवं कालाधनः एक वैश्विक समस्या का अध्ययन

• अनिल द्विवेदी

सारांश- भ्रष्टाचार एक बीमारी की तरह देश में ही नहीं वरन् विदेश में भी फैलता जा रहा है। भारतीय समाज में ये सबसे तेजी से उभरने वाला मुद्दा है। सामान्यतः इसकी शुरुआत और प्रचार-प्रसार मौकापस्त नेताओं द्वारा शुरू होती है जो की देश को खोखला कर रहे हैं वो देश की संपदा को गलत हाथों में बेच रहे हैं, साथ ही इससे बाहरी देशों में भारत की छवि धूमिल हो रही है। व्यापार उद्योग एवं वाणिज्य का वैश्वीकरण होने के साथ ही साथ अनेक समस्याएँ भी एक देश से दूसरे देशों तक फैल रही हैं। इसमें भ्रष्टाचार और कालेधन की समस्या अत्यधिक गंभीर है। जिससे देश और समाज में अनेक समस्याएँ जन्म ले रही हैं।

मुख्य शब्द- भ्रष्टाचार, संपदा, देश, उद्योग, वैश्वीकरण, कालाधन

परिचय- अनैतिक तरीकों का इस्तेमाल कर दूसरो से कुछ फायदा प्राप्त करना भ्रष्टाचार कहलाता है। देश और व्यक्ति के विकास में ये अवरोध का एक बड़ा कारक बनता जा रहा है। भ्रष्टाचार एक जहर है जो देश, संप्रदाय और समाज के गलत लोगों के दिमाग में फैला होता है। इसमें केवल छोटी सी इच्छा और अनुचित लाभ के लिये सामान्य जन के संसाधनों की बरबादी की जाती है। इसका संबंध किसी के द्वारा अपनी ताकत और पद का गैरजरूरी और गलत इस्तेमाल करना है फिर चाहे वो सरकारी या गैर-सरकारी संस्था हो। इसका प्रभाव व्यक्ति के विकास के साथ ही राष्ट्र पर भी पड़ रहा है और यही समाज और समुदायों के बीच असमानता का बड़ा कारण है। साथ ही ये राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से राष्ट्र के प्रगति और विकास में बाधा भी है।

भ्रष्टाचार से व्यक्ति सार्वजनिक संपत्ति, शक्ति और सत्ता का गलत इस्तेमाल अपनी आत्म संतुष्टि और निजी स्वार्थ की प्राप्ति के लिये करता है। इसमें सरकारी नियम-कानूनों की धज्जियाँ उड़ाकर फायदा पाने की कोशिश होती है। भ्रष्टाचार की जड़े समाज में गहराई से व्यापत हो चुकी हैं और लगातार फैल रही हैं। ये कैंसर जैसी बीमारी की तरह है जो बिना इलाज के खत्म नहीं होगी। इसका एक सामान्य रूप पैसा और उपहार लेकर काम करना दिखाई देता है। कुछ लोग अपने फायदे के लिये दूसरों के पैसों का गलत इस्तेमाल करते हैं। सरकारी और गैर-सरकारी कार्यालयों में काम करने वाले भ्रष्टाचार में लिप्त होते हैं और साथ ही अपनी छोटी सी पूर्ति के लिए किसी भी हद तक जा

सकते हैं। हम सभी भ्रष्टाचार से अच्छे तरह वाकिफ हैं और ये अपने देश में नई बात नहीं है। इसने अपनी जड़े गहराई से लोगों के दिमाग में बना ली हैं। ये एक धीमे जहर के रूप में प्राचीन काल से ही समाज में रहा है। ये मुगल साम्राज्य के समय से ही मौजूद रहा है और ये रोज अपनी नई ऊँचाई पर पहुँच रहा है साथ ही बड़े पैमाने पर लोगों के दिमाग पर हावी हो रहा है। समाज में सामान्य होता भ्रष्टाचार एक ऐसा लालच है जो इंसान के दिमाग को भ्रष्ट कर रहा है और लोगों के दिलों से इंसानियत और स्वाभाविकता को खत्म कर रहा है।

भ्रष्टाचार कई प्रकार का होता है जिससे अब कोई भी क्षेत्र छूटा नहीं है चाहे वो शिक्षा, खेल, या राजनीति कुछ भी हो। इसकी वजह से लोग अपनी जिम्मेदारियों को नहीं समझते। चोरी, बेईमानी, सार्वजनिक संपत्तियों की बरबादी, शोषण, घोटाला और अनैतिक आचरण आदि सभी भ्रष्टाचार की ही इकाई हैं। इसकी जड़े विकसित और विकासशील दोनों तरह के देशों में व्याप्त हैं। समाज में लिये अपने देश से भ्रष्टाचार की पूरी तरह से मिटाने की जरूरत है। हमें अपनी जिम्मेदारियों के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और किसी भी प्रकार के लालच में नहीं पड़ना चाहिये।

भ्रष्टाचार दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है क्योंकि अधिकारियों, अपराधियों और नेताओं के बीच में सांठगांठ होती है जो देश को कमजोर करते जा रही है। भारत को 1947 में आजादी को 1947 में आजादी मिली और वो धीरे-धीरे विकास कर रहा था तभी बीच में भ्रष्टाचार रूपी बीमारी फैली और इसने बढ़ते भारत को शुरू होते ही रोक दिया। भारत में एक प्रथा लोगों के दिमाग में घर कर गई है कि सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं में बिना रिश्तों दिये अपना काम नहीं किया जा सकता और इसी सोच की वजह से परिस्थिति और गिरती ही जा रही है।

भ्रष्टाचार हर जगह है चाहे वो अस्पताल, शिक्षा, सरकारी कार्यालय कुछ भी हो कोई इससे अछूता नहीं है। सब कुछ व्यापार हो चुका है पैसा गलत तरीके से कमाया जा रहा है शिक्षण संस्थान भी भ्रष्टाचार के लपेटे में हैं, यहाँ विद्यार्थियों को सीट देने के लिये पैसा लिया जाता है चाहे उनके अंक इस लायक हो या न हो। बेहद कमजोर विद्यार्थी भी पैसों के दम पर किसी भी कॉलेज में दाखिला पा जाते हैं इसकी वजह से अच्छे विद्यार्थी पीछे रह जाते हैं और उन्हें मजबूरन साधारण कॉलेज में पढ़ना पड़ता है।

आज गैर-सरकारी नौकरी से बेहतर साबित हो रही है। प्राइवेट कंपनियों किसी को भी अपने यहाँ क्षमता, दक्षता, तकनीकी ज्ञान और अच्छे अंक के आधार पर नौकरी देती है जबकि सरकारी नौकरी के लिये कई बार घूस देना पड़ता है जैसे टीचर, क्लर्क, नर्स, डॉक्टर आदि के लिये और घूस की रकम हमेशा बाजार मूल्य के आधार पर बढ़ती रहती है। इसलिये कदाचार से दूर रहे और सदाचार के पास रहें तो भ्रष्टाचार अपने-आप समाप्त हो जाएगा।

भ्रष्टाचार को सहने की क्षमता आम जनता के बीच बढ़ चुकी है। इसकी खिलाफत करने के लिये समाज में कोई मजबूत लोक मंच नहीं है, ग्रामीण क्षेत्रों में फैली अशिक्षा, कमजोर आर्थिक ढाँचा आदि कई कारण भी जिम्मेदार हैं भ्रष्टाचार के लिये। सरकारी कर्मचारियों का कम वेतनमान उन्हें क्षेत्रों में फैली अशिक्षा, कमजोर आर्थिक ढाँचा, आदि कई कारण भी जिम्मेदार के लिये। सरकारी कर्मचारियों का कम वेतनमान

उन्हें क्षेत्रों में फैली अशिक्षा, कमजोर आर्थिक ढाँचों आदि कई कारण भी जिम्मेदार हैं। भ्रष्टाचार के लिये सरकारी कर्मचारियों का कम वेतनमान उन्हें भ्रष्टाचार की ओर विमुख करता है। सरकार के जटिल कानून और प्रक्रिया लोगों को सरकारी मदद से दूर ले जाते हैं। चुनाव के दौरान तो ये अपने चरम पर हैं।

आमतौर पर सरकारी सत्ता और संसाधनों के निजी फायदे के लिए किये जाने वाले बेजा इस्तेमाल की भ्रष्टाचार की संज्ञा दी जाती है। एक दूसरी और अधिक व्यापक परिभाषा यह है कि निजी या सार्वजनिक जीवन के किसी भी स्थापित और स्वीकार्य मानक का चोरी-छिपे उल्लंघन भ्रष्टाचार है। विभिन्न मानकों और देशकाल के हिसाब से भी इसमें तब्दीलियाँ होती रहती हैं। मसलन, भारत में रक्षा सौदों में कमीशन खाना अवैध है। इसलिए इसे भ्रष्टाचार और राष्ट्र-विरोधी कृत्य मानकर घोटाले की संज्ञा दी जाती है। लेकिन दुनिया के कई विकसित देशों में यह जायज व्यापारिक कार्रवाई है। संस्कृतियों के बीच अंतर ने भी भ्रष्टाचार के प्रश्न को पेचौदा बनाया है। उन्नीसवीं सदी के दौरान भारत पर औपनिवेशिक शासन थोपने वाले अंग्रेज अपनी विक्टोरियाई नैतिकता के आईने में भारतीय यौन-व्यवहार को दुराचरण के रूप में देखते थे। जबकि बीसवीं सदी के उत्तरार्ध का भारत किसी भी यूरोपवासी की निगाह में यौनिक-शुद्धतावाद का शिकार माना जा सकता है। भ्रष्टाचार का मुद्दा एक ऐसा राजनीतिक प्रश्न है जिसके कारण कई बार न केवल सरकारें बदल जाती हैं। बल्कि यह बहुत बड़े-बड़े ऐतिहासिक परिवर्तनों का वाहक भी रहा है। रोमन कैथलिक चर्च द्वारा अनुग्रह के बदले शुल्क लेने की प्रथा को मार्टिन लूथर द्वारा भ्रष्टाचार की संज्ञा दी गयी थी। इसके खिलाफ किये गये धार्मिक संघर्ष से ईसाई धर्म-सुधार निकले। परिणामस्वरूप प्रोटेस्टेंट धर्म का जन्म हुआ। इस ऐतिहासिक परिवर्तन से सेकुलरवाद के सूत्रीकरण का आधार तैयार हुआ।

भारत में भ्रष्टाचार चर्चा और आन्दोलन का एक प्रमुख विषय रहा है। आजादी के एक दशक बाद से ही भारत भ्रष्टाचार के दलदल में धसा नजर में हो राममनोहर लोहिया ने जो भाषण दिया था वह आज भी प्रासंगिक है। उस वक्त डॉ. लोहिया ने कहा था सिंहासन और व्यापार के बीच संबंध भारत में जितना दूषित, भ्रष्ट और बेईमान हो गया है उतना दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं हुआ।

भ्रष्टाचार से देश की अर्थव्यवस्था और प्रत्येक व्यक्ति पर विपरीत पड़ता है। भारत में राजनीतिक एवं नौकरशाही का भ्रष्टाचार का भ्रष्टाचार बहुत ही व्यापक है। इसके अलावा न्यायपालिका, मीडिया, सेना, पुलिस आदि में भी भ्रष्टाचार व्याप्त है।

2005 में भारत में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल नामक एक संस्था द्वारा किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि 62 प्रतिशत से अधिक भारतवासियों को सरकारी कार्यालयों में अपना काम करवाने के लिये रिश्वत या ऊँचे दर्जे के प्रभाव का प्रयोग करना पड़ा। वर्ष 2008 में पेश की गयी इसी संस्था की रिपोर्ट ने बताया है कि भारत में लगभग 20 करोड़ की रिश्वत अलग-अलग लोकसेवकों को (जिसमें न्यायिक सेवा के लोग भी शामिल हैं) दी जाती है। उन्हीं का यह निष्कर्ष है कि भारत में पुलिस और कर एकत्र करने वाले विभागों में सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार है। आज यह कटु सत्य है कि, किसी भी शहर के नगर निगम में रिश्वत दिये बगैर कोई मकान बनाने की अनुमति नहीं मिलती। इसी प्रकार

सामान्य व्यक्ति भी यह मानकर चलता है कि, किसी भी सरकारी महकमे में पैसा दिये बगैर गाड़ी नहीं चलती। भ्रष्टाचार अर्थात् भ्रष्ट+आचार। भ्रष्ट यानी बुरा या बिगड़ा हुआ तथा आचार का मतलब है आचरण। अर्थात् भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है वह आचरण जो किसी भी प्रकार से अनैतिक और अनुचित हो।

भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार- भ्रष्टाचार एक बीमारी की तरह है। आज भारत देश में भ्रष्टाचार का प्रभाव अत्यंत व्यापक है। जीवन का कोई भी क्षेत्र इसके प्रभाव से मुक्त नहीं है। यदि हम इस वर्ष की ही बात करें तो ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं जो कि, भ्रष्टाचार के बढ़ते प्रभाव को दर्शाते हैं। जैसे आईपील में खिलाड़ियों की स्पॉट फिक्सिंग, नौकरियों में अच्छी पोस्ट पाने की लालसा में कई लोग रिश्वत देने से भी नहीं चूकते हैं। आज भारत का हर तबका इस बीमारी से ग्रस्त है। आज भारत में ऐसे कई व्यक्ति मौजूद हैं जो भ्रष्टाचारी हैं। आज पूरी दुनिया में भारत भ्रष्टाचार के मामले में 94 वें स्थान पर है। भ्रष्टाचार के कई रंग-रूप हैं जैसे रिश्वत, काला-बाजारी, जान-बूझकर दाम बढ़ाना, पैसा लेकर काम करना, सस्ता सामान लाकर मंहगा बेचना आदि। भ्रष्टाचार के कारण: भ्रष्टाचार के कई कारण हैं। असंतोष- जब किसी को अभाव के कारण कष्ट होता है तो वह भ्रष्ट आचरण करने के लिए विवश हो जाता है। जब कोई व्यक्ति न्याय व्यवस्था के मान्य नियमों के विरुद्ध जाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए गलत आचरण करने लगता है तो वह व्यक्ति भ्रष्टाचारी कहलाता है। आज भारत जैसे सोने की चिड़िया कहलाने वाले देश में भ्रष्टाचार अपनी जड़े फैला रहा है। अतः यह बेहद ही आवश्यक है कि, हम भ्रष्टाचार के इस जहरीले सांप को कुचल डालें। साहिी सरकार को भी भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए प्रभावी कदम उठाने होंगे। जिससे हम एक भ्रष्टाचार के इस जहरीले सांप को कुचल डालें। साथ ही सरकार को भी भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए प्रभावी कदम उठाने होंगे। जिससे हम एक भ्रष्टाचार मुक्त भारत के सपने को सच कर सकें। भ्रष्टाचार पिछड़ेपन का द्योतक है। भ्रष्टाचार का बोलवाला यह दर्शाता है कि, जिसे जो करना है वह कुछ ले-देकर अपना काम चला लेता है। और लोगों को कानो-कान खबर तक नहीं होती और अगर होती भी हो तो यहाँ हर व्यक्ति खरीदे जाने के लिए तैयार है। गवाहों का उलट जाना, जाँचों का अनन्तकाल तक चलते रहना, सत्य को सामने न आने देना- ये सब एक पिछड़े समाज के अति दुःखदायी पहलू हैं।

किसी को निर्णय लेने का अधिकार मिलता है तो वह एक या दूसरे पक्ष में निर्णय ले सकता है। यह उसका विवेकाधिकार है और एक सफल लोकतंत्र का लक्षण भी है। परन्तु जब यह विवेकाधिकार न होकर दूसरे कारणों के आधार पर इस्तेमाल किया जाता है। तब यह भ्रष्टाचार की श्रेणी में आ जाता है अथवा इसे करने वाला व्यक्ति भ्रष्ट कहलाता है। किसी निर्णय को जब कोई शासकीय अधिकारी धन पर अथवा अन्य किसी लालच के कारण करता है तो वह भ्रष्टाचार कहलाता है। भ्रष्टाचार के संबंध में हाल ही के वर्षों में जागरूकता बहुत बढ़ी है। जिसके कारण भ्रष्टाचार विरोधी अधिनियम- 1988 सिटीजन चार्टर, सूचना का अधिकार अधिनियम-2005, कमीशन ऑफ इन्क्वारी एक्ट आदि बनाने के लिये भारत सरकार बाध्य हुई है।

आर्थिक विकास में बाधक- भारत के महाशक्ति बनने की संभावना का ऑकलन अमरीका एवं चीन की तुलना से किया जा सकता है। महाशक्ति बनने की पहली कसौटी तकनीकी नेतृत्व है। अठारहवीं सदी में इंग्लैण्ड ने भाप इंजन से चलने वाले जहाज बनाये और विश्व के हर कोने में अपना आधिपत्य स्थापित किया। बीसवीं सदी में अमरीका ने परमाणु बम से जापान को और पैट्रियट मिसाइल से इराक का परास्त किया। यद्यपि अमरीका का तकनीकी नेतृत्व अब धीरे-धीरे यह कमजोर पड़ने लगा है। वहाँ नई तकनीकी का आविष्कार अब कम ही हो रहा है। भारत से अनुसंधान का काम भारी मात्रा में 'आउटसोर्स' हो रहा है। जिसके कारण तकनीकी क्षेत्र में भारत का पलड़ा भारी हुआ है। तकनीक के मुद्दे पर चीन पीछे है। वह देश मुख्यतः दूसरों के द्वारा ईजाद की गयी तकनीकी पर आश्रित है।

दूसरी कसौटी श्रम के मूल्य की है। महाशक्ति बनने के लिए श्रम का मूल्य कम रहना चाहिए। तब ही देश उपभोक्ता वस्तुभोक्ता वस्तुओं का सस्ता उत्पादन कर पाता है और दूसरे देशों में उसका उत्पाद प्रवेश पाता है। चीन और भारत इस कसौटी पर अब्वल बैठते हैं जबकि अमरीका पिछड़ रहा है। विनिर्माण उद्योग लगभग पूर्णतया अमरीका से गायब हो चुका है। सेवा उद्योग भी भारत की ओर तेजी से रूख कर रहा है। अमरीका के वर्तमान आर्थिक संकट का मुख्य कारण अमरीका में श्रम के मूल्य का उँचा होना है।

तीसरी कसौटी शासन के खुलेपन की है। वह देश आगे बढ़ता है जिसके नागरिक खुले वातावरण में उद्यम से जुड़े नये उपाय क्रियान्वित करने के लिए आजाद होते हैं। बेड़ियों में जकड़े हुए अथवा पुलिस की तीखी नजर के साये में शोध, व्यापार अथवा अध्ययन कम ही पनपते हैं। भारत और अमरीका में यह खुलापन उपलब्ध है। चीन इस कसौटी पर पीछे पड़ जाता है। वहाँ नागरिक की रचनात्मक उर्जा पर कम्युनिस्ट पार्टी का नियंत्रण है।

चौथी कसौटी भ्रष्टाचार की है। सरकार भ्रष्ट हो तो जनता की उर्जा भटक जाती है। देश की पूंजी का रिसाव हो जाता है। भ्रष्ट अधिकारी और नेता धन को स्विट्जरलैण्ड भेज देते हैं। इस कसौटी पर अमरीका आगे है। ट्रान्सपेरेन्सी इंटरनेशनल द्वारा बनाई गयी रैंकिंग में अमरीका को 19वें स्थान पर रखा गया है जबकि चीन को 79वें तथा भारत का 64वां स्थान दिया गया है।

पाँचवी कसौटी असमानता की है। गरीब और अमीर के अन्तर के बढ़ने से समाज में वैमनस्य पैदा होता है। गरीब की उर्जा अमीर के साथ मिलकर देश के निर्माण में लगने के स्थान पर अमीर के विरोध में लगती है। इस कसौटी पर अमरीका आगे और भारत व चीन पीछे है। चीन में असमानता उतनी ही व्याप्त है जितनी भारत में, परन्तु वह दृष्टिगोचर नहीं होती है, क्योंकि पुलिस का अंकुश है। फलस्वरूप वह रोग अन्दर ही अन्दर बढ़ेगा जैसे कैंसर बढ़ता है। भारत की स्थिति तुलना में अच्छी है क्योंकि यहाँ कम कम समस्या को प्रकट होने का तो अवसर उपलब्ध है।

भारत के प्रमुख आर्थिक घोटाले-

1. बोफोर्स घोटाला - 64 करोड़ रुपये
2. यूरिया घोटाला - 133 करोड़ रुपये
3. चारा घोटाला - 950 करोड़ रुपये
4. शेयर बाजार घोटाला - 4000 करोड़ रुपये
5. सत्यम घोटाला - 7000 करोड़ रुपये
6. स्टैप पेपर घोटाला - 43 हजार करोड़ रुपये
7. कॉमनवेल्थ गेम्स घोटाला - 70,000 करोड़ रुपये
8. 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला - 1 लाख 67 हजार करोड़ रुपये
9. अनाज घोटाला - 2 लाख करोड़ रुपये (अनुमानित)
10. कोयला खदान आवंटन घोटाला - 12 लाख करोड़ रुपये

पुलिस तंत्र का भ्रष्टाचार- इण्डिया करप्शन एवं ब्राइवरी रिपोर्ट के अनुसार भारत में रिश्वत मांगे जाने वाले सरकारी कर्मचारियों में 30 प्रतिशत की भागीदारी पुलिस तंत्र की है। ज्यादातर पुलिस द्वारा रिश्वत प्राथमिकी दर्ज करवाने, आरोपी के खिलाफ मामला दर्ज करने में कोताही बरतने या मामला न दर्ज करने तथा जाँच करते समय सबूतों को नजरदांज करने संबंधी मामलों में जी जाती है। रसूखदारों के दबाव में काम करना करना तथा अवांछित राजनैतिक हस्तक्षेप को झेलना पुलिस अपना कर्तव्य समझने लगी है। हालांकि पुलिस तंत्र की स्थापना कानून-व्यवस्था को कायम रखने के लिए की गई थी तथा आज भी सामाजिक सुरक्षा तथा जनजीवन को भयमुक्त एवं सुचारू रूप से चलाना पुलिस तंत्र का विशुद्ध कर्तव्य है। इस क्षेत्र में पुलिस को पर्याप्त लिखित एवं व्यावहारिक अधिकार भी प्राप्त है। भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, विकास, बढ़ती, जनसंख्या, प्रौद्योगिकी का विकास, अपराधों का सफेद कॉलर होना इन तमाम परिस्थितियों के कारण पुलिस तंत्र की जबाब देही के साथ जिम्मेदारी भी बढ़ने लगी है। लेकिन भारतीय समाज में पुलिस की तानाशाहीपूर्ण छवि, जनता के साथ मित्रवत ना होना तथा अपने अधिकारी के दुर्पयोग के कारण वह आरोपों से घिरती चली गई। आज स्थिति यह है कि, पुलिस बल समाज के तथा कथित ठेकेदारों, नेताओं तथा सत्ता की कठपुतली बन गई है। समाज का दबा-कुचला वर्ग तो पुलिस के पास जाने से भी डरने लगा है पुलिस वर्ग को तमाम बुराइयों तथा कुरीतियों ने घेर लिया है पुलिस में भ्रष्टाचारी और अपराधी करण के कई मामले हमारे सामान्य जीवन में सामने आते रहते हैं। चूंकि पुलिस के पास सिविल-समाज से दूरियों बनाये रखने और मुलायम सिंह यादव की सरकार में तो पुलिस भर्ती प्रक्रिया में ही भ्रष्टाचार का बढ़ा मामला सामने आया था तथा बिहार में भी आरोप लगे थे कि कुछ अधीनस्थ पुलिस कर्मचारी पदोन्नति के लिए अपने उच्च अधिकारियों को खुश करने में रिश्वत का सहारा ले रहे थे।

न्यायपालिका में भ्रष्टाचार- आश्चर्य नहीं कि, भारतीय समाज के भ्रष्टाचार के सबसे व्यस्त और अपराधी अड्डे के परिसर हैं। गांधीजी ने कहा था कि, अदालत न हो तो हिन्दुस्तान में न्याय गरीबों को मिलने लगे। अंग्रेजी काल से ही न्यायालय शोषण और भ्रष्टाचार के अड्डे बन गये थे। उसी समय यह धारणा बन गयी थी कि, जो आदालत के

चक्कर में पड़ा वह बर्बाद हो जात है। भारतीय न्यायपालिका में भ्रष्टाचार अब आम बात हो गयी है। सर्वोच्च न्यायालय के कई न्यायधीशों पर महाभियोग की कार्यवाही हो चुकी है। न्यायपालिका में व्याप्त भ्रष्टाचार में घूसखोरी भाई, भतीजावाद, बेहद धीमी और बहुत लंबी न्याय प्रक्रिया बहुत ही ज्यादा मंहगा अदालती खर्च, न्यायालयों की भारी कमी और पारदर्शिता की कमी, कर्मचारियों का भ्रष्ट आचरण आदि जैसे कारकों की प्रमुख भूमिका है। वैसे विगत छह दशकों में राज्य के तीन अंगों के प्रदर्शन पर नजर डाली जाए तो न्यायपालिका को ही बेहतर माना जाएगा। अनेक अवसरों पर उसने पूरी निष्ठा और मुस्तैदी से विधायिका और कार्यपालिका द्वारा संविधान उल्लंघन को रोका है, लेकिन अदालतों में विचाराधीन मुकदमों की तीन करोड़ की संख्या का पिरामिड देशवासियों के लिए चिंता और भय उत्पन्न कर रहा है। अदालती फैसलों में पांच साल लगाना तो सामान्य-सी बात है, लेकिन बीस-तीस साल में भी निपटारा न हो पाना आम लोगों के लिए त्रासदीसे कम नहीं है। न्याय का मौलिक सिद्धान्त है कि, विलंब का मतलब न्याय को नकारना होता है। देश की अदालतों में जब करोड़ों मामलों में न्याय नकारा जा रहा हो तो आम आदमी को न्याय शुलभ हो पाना आकाश के तारे तोड़ना जैसा होगा।

सरकार कई वर्षों से न्यायपालिका में सुधार के लिए कानून लाने की बात कर रही है। अब चार मेट्रो नगरों में सुप्रीम कोर्ट और दिल्ली में फेडरल कोर्ट का नया शिगूफा सामने आया है। वस्तुतः न्यायपालिका की स्वतंत्रता के साथ इस अंग की कार्यकुशलता और शुचिता लोकतंत्र के लिए लाजिमी है। मुकदमों का अंबार निपटाने और सुधार करने के लिए केवल कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका ही नहीं वरन् देश के अग्रणी न्यायविदों, समाज शास्त्रियों और आम लोगों को विश्वास में लिए जाने की आवश्यकता है।

संचार माध्यमों (मीडिया) का भ्रष्टाचार- भारत में 1955 में अखबार के मालिकों के भ्रष्टाचार के मुद्दे संसद में उठते थे। आज मीडिया में भ्रष्टाचार इस सीमा तक बढ़ गया है कि मीडिया के मालिक काफी तादाद में संसद में बैठते दिखाई देते हैं। अर्थात् भ्रष्ट राजनेता मिलकर काम कर रहे हैं। भ्रष्ट घोटालों में मीडिया घरानों के नाम आते हैं। उनमें काम करने वाले पत्रकारों के नाम भी आते हैं। कई पत्रकार भी करोड़पति और अरबपति हो गए हैं। 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला मामला ने देश में भ्रष्टाचार को लेकर एक नई इबारत लिख दी। इस पूरे मामले में जहां राजनीति माहौल भ्रष्टाचार की रित में दिखा वहीं लोकतंत्र का प्रहरी मीडिया भी राजा के भ्रष्टाचार में फंसा दिखा। राजा व मीडिया के भ्रष्टाचार के खेल को मीडिया ने ही सामने लाया, हालांकि यह पहला मौका नहीं है कि मीडियश में घुसते भ्रष्टाचार पर सवाल उठा हो।

वर्तमान में भारत सहित विश्व के तमाम देशों में भ्रष्टाचार और कालाधन काफी तीव्र गति से अपनी जड़ें जमा रहा है। भ्रष्टाचार की अवधारणा से तात्पर्य मुख्यतः रिश्त लेने, गबन करना, अवैधानिक व अनैतिक ढंग से धन संग्रह करना कानून के विरुद्ध कार्य करना भाई-भतीजावाद, अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करना इत्यादि भी है। ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में भ्रष्टाचार और रिश्तखोरी एक ऐसी व्यवस्था में पनपती है जहाँ आर्थिक संसाधनों से सम्पन्न एवं सशक्त वर्ग के लोग काम करते हैं, जो कानूनी व

नैतिक नियमों व आदर्शों के प्रतिकूल व्यवहार करते हैं। उपरोक्त वर्ग के कार्य एवं निर्णयकारी क्षेत्रों में विस्तार होने से रिश्वतखोरी के स्वरूप में भी फैलाव आया है। आजादी के बाद राजसत्ता ने प्रत्यक्ष नियोजन, पूँजी लागत की प्रक्रिया आदि के द्वारा नौकरशाही, प्रशासन, व्यापार व प्रबंधन के क्षेत्र में ऐसे वर्गों का विकास किया, जिसमें रिश्वतखोरी की सम्भावना एवं क्षेत्र बढ़ता गया। वर्तमान में भारतीय समाज में भ्रष्टाचार अपने विकराल रूप से इस तरह फैल चुका है कि अब यह मात्र व्यवहार न होकर एक विकासशील देशों को जितनी पूँजी विदेशी निवेश के माध्यम से मिली है उससे ज्यादा पूँजी मुद्रा भण्डार बनाने अथवा काले धन के प्रेषण से बाहर गयी है। प्रधानमंत्री के आर्थिक सलाहकार परिषद अध्यक्ष डॉ. सुरेन्द्र तेन्दुलकर के अनुसार भारतीय नागरिकों द्वारा स्विस बैंकों में जमा की गई रकम अगर भारत वापिस भी लाई जाये तो इससे देश की अर्थव्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं आयेगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कालेधन का अनुमान- जहाँ तक भारतीय अर्थव्यवस्था में कालेधन की मात्रा का प्रश्न है। इसे अनुमानित करना सरल नहीं है तदपि भारतीय अर्थव्यवस्था में कालेधन की बहुत अधिक मात्रा है। इसे निम्न सारणी से स्पष्ट किया जा सकता है -

क्र.	वर्ष	कालाधन (करोड़ रूपयों में)
1.	1953-1954	600 करोड़ रूपये
2.	1961-1962 1968-1969 तक	1400 करोड़ रूपये
3.	1984-84	37000 करोड़ रूपये
4.	1991	80,000 करोड़ रूपये
5.	2002-2006	1,36,466 करोड़ रूपये
6.	वर्तमान में	100 हजार करोड़ रूपये से 125 हजार करोड़ रूपये

प्रो. विकोलस कालेडोर ने उपरोक्त अनुमानों को अनुमानित किया है। भारतीय अर्थशास्त्र में काले धन के क्षेत्र यथा कृषि उद्योग निर्माण कार्य, अधोसंरचना प्रशासन, शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीति, धर्मक्षेत्र, होटल व्यवसाय, रेस्टोरेन्ट, फिल्म उद्योग, ठेके, ट्रांसफर व्यवसाय, चुनाव क्षेत्र प्रमुख हैं। इन क्षेत्रों में भ्रष्टाचार के माध्यम से व्यापक काला धन कमाया जाता है। प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय प्रबंधन गुरु प्रो. सी.के. प्रहलाद के अनुसार "अकेले भ्रष्टाचार के कारण भारत सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) के 180 अरब डालर गया चुका है, यह सारी भारत की वर्तमान जी.डी.पी. की 18 गुना है।

कालेधन के निदान के उपाय -

1. सम्पत्ति की घोषणा करना- सरकार को चाहिए कि वह प्रत्येक जनप्रतिनिधि समेत अधिकारियों के लिये आनी सम्पत्ति अनिवार्य रूप से घोषित करे, ऐसा विषय बनाना चाहिए।

2. कठोर कानून एवं सम्पत्ति का अधिग्रहण- सरकार को कालेधन के सम्बन्ध में कठोर कानून बनाना चाहिये एवं ऐसे व्यक्ति जिनकी आय सम्पत्ति से ज्यादा हो तत्काल

सम्पत्ति का अधिग्रहण करना चाहिए।

3. सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए- अनैतिक आय एवं कार्यों में संलग्न व्यक्तियों, जन प्रतिनिधियों, अधिकारियों का सामाजिक बहिष्कार करना चाहिये एवं ऐसे व्यक्ति जनप्रतिनिधि न बने ऐसे कानून बनाना चाहिये।

4. नैतिक शिक्षा दी जाये- सरकार को चाहिये कि वह प्रारंभ में चरित्र एवं नैतिकता की शिक्षा दे तथा युवाओं में राष्ट्रीयता की भावना उदीप्त करना चाहिये।

5. विदेशों में जमा राशि वापसी योग्य- विदेशों के जमा (स्विस) लगभग 300000 करोड़ रुपये से ज्यादा कालेधन को वापस लाने हेतु केन्द्र सरकार को संविधान के प्रावधानों में आधार पर तत्काल कार्यवाही को जानी चाहिए।

6. आध्यात्मिक चिंतन पैदा करना- भारतीय संस्कृति के अनुरूप बच्चों को भौतिकवाद कम से कम एवं आध्यात्मिक चिन्तन का ज्यादा से ज्यादा भाव उत्पन्न हो ऐसी शिक्षा, प्रशिक्षण देना चाहिये यही भाव कालेधन एवं भ्रष्टाचार को शून्य कर कर सकता है।

भ्रष्टाचार भारत की सबसे बड़ी समस्या है। इसके निवारण के लिए कई उपाय किए गए हैं। लोकपाल की स्थापना की मांग भी इसके एक उपाय के रूप में है। इसी प्रकार केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना भी भ्रष्टाचार को रोकने और दूर करने के निमित्त की गई है।

1962 में भ्रष्टाचार निवारण पर समिति का गठन किया गया जिसे सन्थानम कमेटी कहते हैं। इसकी रिपोर्ट के आधार पर 1964 में केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की गई। सन्थानम समिति के अनुसार आयोग का संबंध सरकारी सेवकों में व्याप्त भ्रष्टाचार निवारण और उनके मध्य ईमानदारी बनाए रखने से होना चाहिए और इसके साथ ही इसका संबंध सांविधिक नियमों और कार्यपालिकीय आदेशों द्वारा प्राधिकारियों में निहित की गई शक्तियों का न्यायपूर्ण और स्वच्छतापूर्ण प्रयोग सुनिश्चित करना होना चाहिए। समिति के अनुसार भ्रष्टाचार संबंधी मामले और कुप्रबंध संबंधी मामले इसकी अधिकारिता में होने चाहिये। सरकार ने भ्रष्टाचार संबंधी मामले तो इसकी अधिकारिता में रखने के लिए अपनी सहमति प्रदान कर दी परन्तु कुप्रशासन के मामले इसकी अधिकारिता में रखने के लिए अपनी सहमति प्रदान नहीं की। सरकार का मत था कि कुप्रशासन बड़ी समस्या है और इसके लिए पृथक मशीनरी की आवश्यकता है।

हमारे देश में भ्रष्टाचार का इतिहास उतना पुराना लगता है जितनी पुरानी उसकी संस्कृति एवं सभ्यता है। इसके लिए महाभारत काल से लेकर स्वतंत्र भारत के आज तक के काल का अवलोकन करे तो स्वतंत्रत भारत में भ्रष्टाचार अनेक पक्षीय है तथा भाई भतीजावाद, देह शोषण अनुचित व्यवहार अपूर्ण शिक्षण। इकसे अलावा भ्रष्टाचार के अनेक क्षेत्र है।

- राजनैतिक भ्रष्टाचार
- सामाजिक क्षेत्र का भ्रष्टाचार
- अन्तर्देशीय भ्रष्टाचार
- अन्तर्प्रांतीय भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार आधुनिक समाज का शिष्टाचार होता जा रहा है। आज के जन-जीवन में भ्रष्टाचार का अत्यन्त ही बाहुल्य है। पुलिस वाले भी इस भ्रष्टाचार से अपने को अछूता नहीं रख पा रहे हैं, इससे वे अपने कर्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाते हैं। भ्रष्टाचार की चर्चा करते हुए श्री गिरधारीलाल जी ने लिखा है कि- “आज अनेक पुलिस अधिकारी अनैतिक प्रभावों से सम्बन्धित हैं, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपराधियों से व्यक्तिगत समझौता करना पड़ता है।” इन सब में रिश्तत उच्च शीर्ष पर है। इसकी समय-समय पर व्यापक चर्चाये होती रहती है। इन सम्बन्ध में दृढ़ मान्यता है कि अगर ये न हो तो किसी काम का सुगमता से निपटना कठिन है। चुनाव में टिकट पाना है तो चुनाव जीतना है तो बिना भ्रष्टाचार के सम्भव नहीं है। साधारण व्यक्ति लोक प्रतिनिधि (लोकसभा चुनाव, विधानसभा चुनाव, नगर निगम एवं पंचायत चुनाव) लड़ने की कल्पना नहीं कर सकता है। बाजार में भ्रष्टाचार मिलावट हीन गुणवाली वस्तुओं कम नापतौल आदि में स्पष्ट दिखलाई देता है तथा इन्हें चलायें रखने में मानिट्रिंग एवं इन्स्पेक्टिंग मशीनरी का योग रहता है। निर्माण कार्यों में गुणवत्ता का अभाव प्रमाण है कि सही मात्रा में उचित मटेरियल का प्रयोग नहीं हो रहा है नगर निगम में लाख की सड़क बनना है तो 20 प्रतिशत कम से ठेका लो, सुपरवाईजर, इंजीनियर, पार्शद एवं अन्य प्रतिनिधियों को देने का मतलब सड़की की लम्बाई मोटाई कम और सीमेन्ट रेत की मात्रा न्यून 16 माह में सड़क खत्म। सामाजिक क्षेत्र में मंहगे सामाजिक कृत्य (विवाह आदि) ने भ्रष्टाचार के लिये मजबूत धरातल बना दिया है। उत्पादक अधिक मूल्य लेते हैं। कर्मचारी वेतन के अतिरिक्त आय के साधन जुटाने का प्रयत्न करते हैं। अब तो धार्मिक पूजा स्थल भी इससे अछूते नहीं हैं जो करोड़ों का चढ़ावा चढ़ाते हैं, वे धर्म दर्शन करते हैं ये सभी कराड़ों रूप्यों का चढ़ावा कालेधन के रूप में भ्रष्टाचार है। (स्टिंग आपरेशन में ऐसे अनेक प्रसिद्ध धर्माचारियों का चेहरा विगत वर्षों में उजागर हुआ है) सरकार बचाने के लिये संसद में खुलेआम करोड़ों का लेनदेन होता है। मैं यहां पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की चिन्ता व्यक्त करना चाहूँगी कि “हम केन्द्र से एक रूपया भेजते हैं वह जनता तक पहुंचते-पहुंचते 15 पैसे हो जाता है” कैसे?

(1) सरपंच समेत पार्शद, विधायक, सांसद के चुनावों में लाखें रूपये खर्च होने का मतलब कालाधन प्राप्त होना। चुनावी खर्च को कम करके प्रदर्शित करना (इसे चुनाव आयोग जानता है) इसके बाद भी भ्रष्टाचार करना एवं भ्रष्टाचारियों को संरक्षण देना।

(2) म.प्र. में मंत्रियों द्वारा करोड़ों का घोटाला आपराधिक प्रकरण में मुख्यमंत्री एवं उनके मंत्रियों का पुनः मंत्री बनना तथा कुछ वर्षों के अंतराल में अनेक मंत्री बनना एवं निर्दलियों का खुलेआम बिकना गंभीर विषय है।

निष्कर्ष - भ्रष्टाचार सबसे अधिक सिविल सेवा, राजनीति, व्यापार और दूसरे गैर कानूनी क्षेत्रों में फैला है। भारत विश्व में अपने लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिये प्रसिद्ध है लेकिन भ्रष्टाचार की वजह से इसको क्षति पहुंच रही है। इसके सबसे ज्यादा जिम्मेदार हमारे यहां के राजनीतिज्ञ हैं जिनको हम अपनी ढेरों उम्मीदों के साथ वोट देते हैं, चुनाव के दौरान ये भी हमें बड़े-बड़े सपने दिखाते हैं लेकिन चुनाव बीतते ही ये अपने असली रंग में आ जाते हैं। जिस दिन ये राजनीतिज्ञ अपने लालच को छोड़ देंगे उसी दिन से हमारा देश भ्रष्टाचार

मुक्त हो जाएगा। भ्रष्टाचार एवं कालेधन की समस्या हल होने से देश का आर्थिक विकास तीव्र गति होगा जनकल्याणकारी योजनाओं के लिये पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध हो सकेगा। देश की निवासियों की आय बढ़ेगी। निवेशों एवं बचतों में वृद्धि होगी, बेरोजगारी में कमी होगी, देश की जनसंख्या के रहन-सहन एवं जीवन स्तर में सुधार होगा फलस्वरूप राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी और देश का सर्वांगीण विकास संभव हो सकेगा।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. डॉ. रामदेव भारद्वाज (2008) अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी (2001) भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाश, दिल्ली।
3. प्रणव वर्धन (1997) 'करप्शन एण्ड डेवलपमेन्ट : रिव्यू ऑफ इश्यूज, जनरल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर 35
4. एम. रॉबिन्सन (1998) करप्शन एण्ड डेवलपमेन्ट, फ्रैंक कैस, एबिंग्डन यू.के.।
5. ए.जे. हीदनहाइमर (1970) पॉलिटिकल करप्शन : रीडिंग्स इन कम्पेरेटिव एनालिसिस, ट्रांजेक्शन, न्यू ब्रंसविक, एन.जे.।
6. माइकल जांस्टन (2005) सिन्ड्रोम ऑफ करप्शन : वेल्थ पावर, एण्ड डेमोक्रेसी, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज।
7. डैनियल ट्रीजमान (2007), 'व्हाट हैव वी लर्नड अबाउट द काजिज ऑफ करप्शन फ्रॉम टेन इयर्स ऑफ क्रॉस नेशनल इम्पिरिकल रिसर्च?' एनुअल रिव्यू ऑफ पॉलिटिकल साइन्स 10।
8. इण्डिया टुडे।

विभिन्न अवस्थाओं में बालक का विकास

• रवेन्द्र राजपूत

सारांश- बाल्यकाल मानव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का आविर्भाव, प्रस्फुटन और विकास होता है। यह विकास काल ही व्यक्ति के भावी जीवन की पृष्ठभूमि तैयार करता है। आज का अबोध और कोमल बालक कल समाज और राष्ट्र का सुयोग्य नागरिक तथा कर्णधार बनकर समाज और राष्ट्र की बागडोर अपने हाथों सम्हालता है। परिवार, जो समाज की एक मौलिक इकाई है, यह बालक माता-पिता के लिए आकर्षण का केन्द्र होता है जिसमें उनकी समस्त आशाएँ, अभिलाषाएँ, आकांक्षाएँ एवं अभिरुचियाँ केन्द्रित रहती हैं। इस प्रकार परिवार, समाज और राष्ट्र तीनों की दृष्टि से बालक या बाल्यजीवन का अत्यधिक महत्व है। बाल्यकाल स्वयं व्यक्ति की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसे जीवन का शिक्षण-काल कहा गया है क्योंकि इस अवस्था में ही वह भाषा, कौशल, प्राभ्यास और अपने तथा दूसरे समुदाय तथा समाज का ज्ञान सीखता है और आगे चलकर यह ज्ञान विश्व ज्ञान में परिणित होता है। इस प्रकार के ज्ञान तथा शिक्षा के आधार पर व्यक्ति की 'जीवन शैली' का निर्माण होता है जिसके आधार पर उसका सम्पूर्ण भावी जीवन नियन्त्रित तथा निर्देशित होता है। मनोवैज्ञानिकों ने बाल्यकाल को सबसे अधिक महत्व दिया है। फ्रायड (Freud) का कथन है, मनुष्य चार-पाँच साल की उम्र में ही जो कुछ बनने को होता है बन जाता है। इसी प्रकार एडलर (Adler) ने शैशव, जीवन का पूर्ण रूप तैयार कर देता है। कहने का अभिप्राय है कि बाल्यजीवन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात, है कि बालकों के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं यथा शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक सामाजिक नैतिक, चारित्रिक आदि का समुचित विकास हो।

मुख्य शब्द- बाल्यकाल, आविर्भाव, प्रस्फुटन, पृष्ठभूमि, सुयोग्य, कर्णधार बागडोर, अभिरुचियाँ, प्राभ्यास, शैशव, बाल्य जीवन

परिचय- गर्भावस्था से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति में अनेक शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। इस परिवर्तन की गति कभी अवरूद्ध नहीं होती। किसी अवस्था में ये परिवर्तन द्रुत गति से होते हैं तो किसी अवस्था में मन्दगति से। बालक जब माँ के गर्भ में आता है तब एक सूक्ष्म जीवाणु मात्र होता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे-वैसे यह सूक्ष्म जीवाणु माँ के गर्भ में ही विभिन्न अंगों सहित बढ़ता ही चला जाता

है। और समय पूरा होने पर जन्म ले लेता है। जन्म के बाद उसमें बढ़ने और तरह-तरह के परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। और वह क्रमशः शैशवावस्था से बाल्यावस्था और बाल्यावस्था से किशोरावस्था और किशोरावस्था से आगे की ओर बढ़ती जाती है। शरीर में होने वाले इन शारीरिक व मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को मनोवैज्ञानिकों एवं जीव विज्ञानियों ने 'विकास' के नाम से सम्बोधित किया है।

विकास की परिभाषा (Definition of Development):-

“विकास का तात्पर्य बढ़ने से नहीं है, इसका तात्पर्य व्यवस्थित तथा समानुगत परिवर्तन से है जो कि परिपक्वता के लक्ष्य को प्राप्त करने की ओर होते हैं।” – हरलॉक

“विकास प्राणी में प्रगतिशील परिवर्तन है जो किसी निश्चित लक्ष्य की ओर लगातार निर्देशित होता है।” – ड्रेवर जेम्स

“विकास प्राणी की शरीर अवस्था में एक लम्बे समय तक होने वाले लगातार परिवर्तन का एक क्रम है जिसके कारण जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक प्राणी में स्थायी परिवर्तन होते हैं।” – इंगलिश एवं इंगलिश

“परिवर्तन श्रृंखला की वह अवस्था जिसमें बालक भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढावस्था तक गुजरता है विकास कहते हैं।”

– मुनरो

अतः “विकास से आशय केवल बढ़ने से ही नहीं है बल्कि परिपक्वता की ओर अग्रसर होने के एक निश्चित क्रम से है। विकास में व्यवस्था होती है, एक क्रम होता है, विकास से तात्पर्य शरीर के गुणात्मक परिवर्तन से है।”

बाल विकास की प्रकृति (Nature of Child Development)-

1. बालक के माता के गर्भ में आने से लेकर प्रौढता प्राप्त होने की स्थिति ही विकास है।
2. पिता के शुक्राणु (sperms) माता के अण्डाणु (ovum) के संयोग से जीवोत्पत्ति होती है।
3. बालक लगभग 9 माह (280 दिन) मां के गर्भ में रहता है तभी से विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।
4. धीरे-धीरे उसके अंग पुष्ट तथा विकसित होते हैं।
5. भ्रूण विकसित होकर पूर्ण बालक का स्वस्थ ग्रहण कर लेता है तो प्राकृतिक नियमानुसार उसे पृथ्वी पर आना होता है।
6. पृथ्वी पर आने पर उसकी विकास की प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप से विकसित होने लगती है।
7. बालक के विकास पर वंशानुक्रम के साथ-साथ वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है।
8. जन्म लेने के बाद बालक वातावरण के सम्पर्क में आता है तो वातावरण और उसकी किसी वस्तु का उसे कोई ज्ञान नहीं होता।
9. जन्म लेने के पूर्व बालक में चेतना का विकास अवश्य हो जाता है, किन्तु वह इतनी कम होती है कि वह जन्म लेने पर उसके द्वारा किसी वस्तु को समझ नहीं सकता।

10. हाँ यह अवश्य है कि वह जन्म के साथ कुछ प्रवृत्तियाँ, अविकसित बुद्धि, तथा दैहिक अंगों को अवश्य लाता है जिनके आधार पर उसका भावी विकास होता है।
11. जन्म लेने पर बालक को वस्तुओं के अस्तित्व की संवेदना होने लगती है।
12. कुछ महीनों बाद वह अपने वातावरण का प्रत्यक्षीकरण (Preception) करने लगता है। आयु में वृद्धि के साथ-साथ उसमें प्रत्यक्षीकरण की शक्ति बढ़ती जाती है।
13. फिर उसमें प्रतिमा (Image), स्मृति (Memory), कल्पना (Imagination), चिन्तन (thinking) आदि शक्ति बढ़ती जाती हैं।
14. इनके सहारे वह जीवन से सम्बन्धित वस्तु का अर्थ ग्रहण करने लगता है। अवबोधन करने लगता है।

बाल विकास का महत्व या उपयोगिता (Importance of Child Development)- आधुनिक युग बालकों का युग (Age of Children) के नाम से पुकारा जाता है। आधुनिक युग में बाल विकास का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस दिशा में हुए अध्ययनों से न केवल बालकों का ही कल्याण हुआ है वरन् माता-पिता एवं शिक्षकों को बालकों को समझने में बहुत सुविधा भी मिली है तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मानव समाज का भी कल्याण हुआ है। बाल मनोविज्ञान के अध्ययन से बालकों के जीवन को सुखी ही नहीं बनाया जा सकता बल्कि उसके व्यवहार को प्रशंसनीय तथा उसके जीवन को समृद्धशाली भी बनाया जा सकता है। बाल विकास के महत्व और उपयोगिता के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाए उतना कम है। लाल जी राम शुक्ल कहते हैं- “आधुनिक काल में विश्व के प्रत्येक शिक्षक के लिए आवश्यक हो गया है कि न वो केवल अपने विषय का ज्ञाता हो वरन् बाल मनोविज्ञान को भली भाँति जाने और स्वभाव के अनुसार अपनी शिक्षा पद्धति बनाए।” शिक्षक बाल मनोविज्ञान की सहायता से ही बालकों की रूचि, अभिरूचि, क्षमता आदि पर आधारित शिक्षा देता है एक शिक्षक को बाल मनोविज्ञानी होना ही चाहिए। बाल विकास के महत्व व उपयोगिता को हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं-

1. बालकों के स्वभाव को समझने में उपयोगी।
2. बालकों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के उपयोगी।
3. निर्देशन के क्षेत्र में उपयोगिता।
4. शिक्षा के क्षेत्र में महत्व - ‘बाल केन्द्रित शिक्षा’।
5. व्यवसाय के सम्बन्ध में उपयोगी - किशोर का सर्वांगीण विकास कर प्रेरित करना।
6. मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा क्षेत्र में उपयोगी - बहुत सी शारीरिक बीमारियों का कारण मानसिक होता है।
7. बाल अपचार को रोकने में सहायक - माता-पिता, शिक्षक के डाँटने-पीटने या फटकारने से अपराध प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। बाल मनोविज्ञान के ज्ञान से हम ऐसी स्थिति से बच्चों को रोक सकते हैं।

8. न्याय के क्षेत्र में उपयोगी – बाल सुधार गृह, किशोर न्यायालय, प्रोवेशन, बोस्टल विद्यालय में सुधार ने के प्रयास
9. खेलकूद व मनोरंजक के क्षेत्र में उपयोगी – प्राचीन व मध्य काल में खेलना शरारत व अपराध माना जाता था किन्तु बाल मनोविज्ञान ने स्पष्ट किया है कि खेल बालको की स्वाभाविक प्रकृति है। बालकों को इसके साधन जुटाए जाएं
10. पारस्परिक जीवन को सुखमय बनाने को सहायक– क्योंकि बच्चे घर का गहना या शोभा होते हैं। यदि घर और विद्यालय में दोनों स्थान पर उसे अच्छा व्यवहार और सकारात्मक वातावरण मिले तो बच्चे अपनी तोतली और मृदुलवाणी से सब जगह आनन्दमयी वातावरण बना देते हैं।
11. समाज व राष्ट्र की प्रगति में उपयोगी।
12. विश्व शान्ति में उपयोगी।

बालक का शारीरिक विकास (Physical Development of Child)- गर्भकालीन अवस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Prenatal Period)-गर्भस्थ शिशु का विकास माता पिता के समागम करने के पश्चात् गर्भाधान की क्रिया से ही शुरू हो जाता है। गर्भस्थ शिशु का गर्भकाल 9 महीने या 280 दिन होता है, किन्तु या कम या अधिक हो सकता है। कारमीकल कहते हैं, “गर्भकालीन अवस्था कम से कम 180 दिन व अधिक से अधिक 334 दिन की हो सकती है। बाल मनोविज्ञानियों ने गर्भस्थ शिशु के विकास को 3 भागों में बांटा है-

1. डिम्ब अवस्था (The Period of ovum)-

1. इसे बीजावस्था (Germinal Period) भी कहते हैं।
2. इसकी अवधि गर्भाधारण से 2 सप्ताह तक होती है।
3. आकार – अण्डे के समान जिसे युक्ता (Zygote) कहते हैं।
4. यह जीवाणु एक नलिका द्वारा गर्भाशय में आकर उसकी दीवार से चिपक जाता है जिसे “रोपण” कहते हैं।
5. गर्भाधान के 10 दिन बाद रोपण होता है। रोपण के साथ गर्भनाल (Placenta) का विकास होता है। गर्भकाल से ही डिम्ब माता के रक्त प्रवाह से आहार प्राप्त करता है।

2. पिण्ड अवस्था (The Period of the Embryo)-

1. गर्भाधान के 14 वें दिन से दूसरे माह के अन्त तक का समय।
2. अवधि – 6 सप्ताह, इस समय विकास तीव्र गति से होता है।
3. गर्भ पिण्ड मानवाकृति धारण कर लेता है। इसके बाद भिन्न-भिन्न अंगों का विकास होता है।
4. स्नायु मण्डल (Nervous system), ज्ञान तन्तु, ग्रन्थियां (Glands) बाल, नाखून, दाँतों का भाग व बाहरी त्वचा का निर्माण होने लगता है।
5. अन्दर की खाल, उत्सर्गी तन्त्र (Excretory System), परिवहन तन्त्र (Circulatory system), माँस पेशी (Muscles) का निर्माण होता है।
6. ग्रीवा (Thymus), गलग्रन्थि (Thyroid glands) लार ग्रन्थि (Salivary

glands), श्वासनली, फेंफड़े, पाचक ग्रंथि का निर्माण हो जाता है।

7. पिण्ड की लं. 2 इंच हो जाती है तथा भार लगभग 20 ग्राम हो जाता है।
8. इस अवस्था में सबसे पहले सिर का विकास होता है बाद में शेष अंगों का। आँख, कान, नाक मुँह आदि सभी अंग प्रकट हो जाते हैं।
9. 18 दिन बाद हृदय की रचना प्रारम्भ होती है, तीसरे सप्ताह के अन्त तक यह स्वतन्त्र रूप से धड़कना शुरू कर देता है।
10. इस अवस्था में सावधानी न बरतने पर गर्भपात (Abortion or Miscarriage) तथा पिण्ड की आकृति बिगड़ने (Malformation) का डर रहता है।

3. गर्भस्थ शिशु की अवस्था-

1. यह अवस्था 3 माह से जन्म तक रहती है।
2. इस अवस्था में गर्भस्थ शिशु में कोई नया अंग उत्पन्न नहीं होता वरन इस अवस्था में उत्पन्न हुए अंगों का ही विकास होता है।
3. गर्भस्थ शिशु के मुख, नाक, गला और दांतों के जबड़ों में बहुत परिवर्तन आ जाता है।
4. 4-5 माह में चर्बी की कमी के कारण शिशु के शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं।
5. बाल छोटे व हल्के रंग के हो जाते हैं।
6. जन्म के समय बालक का शरीर लाल-लाल यह प्रकट करता है कि भ्रूण प्रवाहिनी नाड़ियों से घिरा हुआ था।
7. पाचक ग्रन्थियाँ, स्नायु मण्डल, रक्त परिवहन तत्व भी अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं।
8. 3 माह के अन्त तक माँस पेशियाँ विकसित होने लगती हैं।
9. 4 माह के अन्त तक हृदय की धड़कन सुनी जा सकती है।
10. 5 माह में शिशु के आन्तरिक अंग वयस्क लोगों की तरह कार्य करने लगते हैं।
11. 7 वें माह के अन्त तक शिशु शारीरिक, मानसिक और आन्तरिक रूप से इतना परिपक्व हो जाता है कि इस अवस्था में उसका जन्म हो भी जाय तो वह जी सकता है।
12. 8 वें 9 वें महीने में जन्म लेने पर शिशु के जीवित रहने के अवसर बढ़ जाते हैं।

बालक का शारीरिक विकास (Physical Development of the child)- बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के विकास में से शारीरिक विकास (Physical Development) सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि शरीर ही उसकी क्षमताओं, आवश्यकताओं, भावनाओं और विचारों का आधार तथा संरक्षक होता है। बालक के शारीरिक विकास का अध्ययन 3 अवस्थाओं में किया जाता है-

1. शैशवावस्था में शारीरिक विकास - जन्म से 6 वर्ष तक
2. बाल्यावस्था में शारीरिक विकास - 6-12 वर्ष तक
3. किशोरावस्था में शारीरिक विकास - 12-18 वर्ष तक

1. शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)-

शिशु का शारीरिक विकास जन्म से पूर्व गर्भावस्था में ही प्रारम्भ हो जाता है। इस समय माता के खान-पान, स्वास्थ्य एवं संवेगात्मक सन्तुलन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस अवस्था में शारीरिक विकास निम्नवत रूप में पाया जाता है-

(i) **लम्बाई**- शैशवावस्था में 3 वर्ष तक बालक के विकास की गति अत्यन्त तीव्र होती है। जन्म के समय शिशु की लं. औसत 50 सेमी होती है। प्रथम वर्ष के अन्त में वह 67-70 से.मी., दूसरे वर्ष के अन्त तक 77-82 से.मी. तक तथा 6 वर्ष तक वह लगभग 100-110 से.मी. लम्बा हो जाता है। प्रायः बालक, बालिकाओं से लम्बे होते हैं।

(ii) **सिर और भार**- नवजात शिशु का शरीर पूर्णतया कार्य करने लगता है। उसके सिर की लम्बाई उसके शरीर की घुल लं. का $1/4$ होती है। प्रथम दो वर्षों में बालक का सिर बहुत ही तीव्र गति से बढ़ता है तथा उसका भार शरीर के भार के अनुपात में अधिक होता है। यह भार दो वर्ष में दुगुना और पाँच वर्ष तक शरीर के कुल भार का लगभग 80 प्रतिशत हो जाता है। औसत नवजात शिशु का भार लगभग 2-3 किग्रा तक होता है। प्रथम 6 माह में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष में तिगुना हो जाता है। तीन वर्ष में लगभग 8-10 किग्रा तक, छठे वर्ष तक लगभग 10 किग्रा हो जाता है।

(iii) **हड्डियाँ**- नवजात शिशु की हड्डियाँ छोटी, कोमल और लचीली होती हैं। हड्डियों की संख्या इस समय 270 होती है। ये कैल्शियम, फास्फोरस और अन्य खनिज पदार्थों के लवणों की सहायता से मजबूत होती जाती हैं। इसलिए इस आयु में बच्चों के भोजन में इन लवणों की अधिकता होनी चाहिए।

(iv) **माँसपेशियाँ**- शिशु की माँस पेशियों का भार उसके शरीर के कुल भार का 23 प्रतिशत होता है। धीरे-धीरे यह भार बढ़ता है। उसकी भुजाओं का भार तीव्र गति से बढ़ता है। प्रथम दो वर्ष में भुजायें दुगुनी और टाँगें डेढ़ गुनी हो जाती हैं। छः वर्ष की आयु तक माँस पेशियों में लचीलापन होता है।

(v) **शिशु के अन्य अंगों का विकास**- लगभग सातवें माह तक बालकों के दूध के दाँत निकलने आरम्भ होते हैं। चार वर्ष तक दूध के सब दाँत निकल आते हैं। नवजात शिशु का सिर शरीर की अपेक्षा बड़ा होता है। जन्म के समय मस्तिष्क का भार लगभग 350 ग्राम, दो वर्ष की आयु में 700 ग्राम, 6 वर्ष की आयु में 1260 ग्राम हो जाता है। वयस्क मस्तिष्क का भार लगभग 1400 ग्राम होता है। शिशु के आन्तरिक अंगों - पाचक अंग, फेफड़े, श्वसन तन्त्र, रक्त संचार तन्त्र, जनन अंग और ग्रंथियों का विकास तीव्र गति से होता है। शैशवावस्था के प्रथम 3 वर्ष विकास काल के होते हैं और अन्तिम 3 वर्षों में बालक दृढ़ता प्राप्त करता है।

2. **बाल्यावस्था में शारीरिक विकास**- बाल्यावस्था 6-12 वर्ष तक मानी गई है। बालक बाल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षों (6-9 वर्ष) में शारीरिक विकास तेजी से होता है और बाद के तीन वर्षों (9-12 वर्ष) में वह दृढ़ता प्राप्त करता है। इस अवधि में उसके अंगों का विकास इस प्रकार होता है-

(I) **आकार और भार**- आकार में वृद्धि धीमी और सामान्य गति से होती है। बालकों की लगभग 5 सेमी लम्बाई हर वर्ष बढ़ती है। बालिकाओं की लं. बालकों की तुलना में तेजी से बढ़ती है क्योंकि उनमें किशोरावस्था का आरम्भ जल्दी होता है। 9-10 वर्ष तक बालकों

का भार बालिकाओं से अधिक होता है। किन्तु उसके बाद बालिकाओं की छाती व कूल्हे आदि में वृद्धि होने के कारण उनके वजन में तेजी से वृद्धि होती है। इस अवस्था में वे बालकों से भी अधिक बजन की हो जाती हैं। बालकों का वजन उनकी शारीरिक रचना पर विशेष रूप से निर्भर करता है।

(ii) **हड्डियाँ**- इस अवस्था में प्रथम 4 - 5 वर्षों में हड्डियों की वृद्धि होती है। और हड्डियों की संख्या 350 तक हो जाती है। 10-12 वर्ष की आयु में हड्डियों का दृढ़ीकरण होता है।

(iii) **माँसपेशियाँ**- माँसपेशियों का भार 8 वर्ष तक कुल भार का 27 प्रतिशत हो जाता है। बालिकाओं की माँसपेशियाँ बालकों की अपेक्षा अधिक विकसित होती हैं।

गर्भस्थ शिशु के विकास पर प्रभाव डालने वाले कारक (Factors Influencing Prenatal Development)- गर्भस्थ शिशु के विकास में माता के चरित्र, स्वभाव तथा वाणी आदि का प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए माता को इस काल में अत्यन्त सावधानी और सजगता से रहना चाहिए। गर्भस्थ शिशु के विकास पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारक इस प्रकार हैं-

1. **माँ का भोजन** (Diet of Mother)- गर्भस्थ शिशु अपना आकार माँ से Placenta द्वारा प्राप्त करता है। भ्रूण का विकास विशेष रूप से गर्भ के अन्तिम दिनों बड़ी तीव्रता से होता है। इसलिए माँ के भोजन में वे सब तत्व होने चाहिए जिनकी आवश्यकता भ्रूण को है। गर्भस्थ शिशु को प्रोटीन, बसा तथा कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता होती है। इस समय माँ को भूखा भी नहीं रहना चाहिए। गर्भ के दिनों में कुपोषित माता के शिशु का विकास रुक जाता है। गोपालन ने मद्रास में अध्ययन कर बताया है, “सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से उच्च व मध्यम वर्गीय माताओं की अपेक्षा निम्न वर्गीय माताओं के नवजात शिशुओं का भार कम है, धनाभाव के कारण इन माताओं को सन्तुलित पोषाहार नहीं मिल सका।”

2. **माँ का स्वास्थ्य** (Health of Mother)- गर्भस्थ शिशु के विकास पर माता के स्वास्थ्य का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है बीमारी से ग्रस्त माताओं में गर्मी, सुजाक, आतशय या अन्य कोई यौन रोग पाया जाता है जिसका गर्भस्थ शिशु के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। गर्मी से स्त्री और पुरुष दोनों बाँझ हो जाते हैं इनके शिशु की आँखें खराब होने की सम्भावना रहती है। सुजाक से पीड़ित माताओं में प्रायः गर्भपात हो जाता है या शिशु में जन्मजात बुद्धिहीनता, अन्धापन या बहरापन आ जाता है। माँ की थाइराइड ग्रन्थि ठीक से कार्य न करने पर शिशु का ढाँचा छोटा, पेट बड़ा और लिबलिबा हो जाता है। माता के तपेदिक या मधुमेह की बीमारी से भी गर्भस्थ शिशु का विकास ठीक से नहीं हो पाता।

3. **मादक द्रव्य तथा तम्बाकू** (Alcohol Tobaccos):- भारतीय महिलायें इन दूषित वस्तुओं का सेवन कम ही करती हैं, परन्तु पश्चिमी रंग में रंगी कुछ स्त्रियाँ इनका शिकार होने लगी हैं। कॉलेज में पढ़ने वाली कुछ लड़कियों कुसंगत के कारण सिगरेट पीने लगती हैं, गुटखे खाने लगती हैं और भी बहुत से तम्बाकू निर्मित पदार्थों का सेवन करती हैं जिससे गर्भस्थ शिशु के विकास पर बुरा असर पड़ता है। सिगरेट में निकोटीन नाम का विषैला पदार्थ होता है जो रक्त चाप में वृद्धि कर रोग से लड़ने वाली शक्ति को कम कर देता है।

4. **माता पिता की आयु** (Age of Parents)- टरमन एवं स्टैकल का कथन है कि, “यदि माता-पिता दोनों अधिक आयु वाले हो तों उनकी सन्तान अधिक बुद्धि मान होगी।” इसका बहुत कुछ कारण ये भी है कि जो माता पिता अधिक आयु के होंगे वे अधिक समझदार होते हैं जिसके कारण वे शिशु का वातावरण श्रेष्ठ बनाये रखते हैं। प्रयोगों से सिद्ध हो चला है कि माँ की आयु 23 से 29 के मध्य हो तो बालक के जीने की सम्भावना बढ़ जाती है। और प्रतिभाशाली शिशुओं के पिता की आयु 30-34 वर्ष अच्छी मानी गई है।

5. **ऋतु का प्रभाव**- गर्भस्थ बालक पर ऋतु का भी प्रभाव पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में पैदा होने वाले बालक में शरद ऋतु में पैदा होने वाले बालक की अपेक्षा अन्तर रहता है।

6. **माता का संवेग** (Emotional Behaviour of Mother)- माता के संवेग का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर भी पड़ता है यदि माँ गर्भ काल में चिन्तित अथवा भयभीत रहेगी, तो उसका बुरा प्रभाव आने वाले बालक पर पड़ सकता है, इसलिए माता को सदा प्रसन्न रहना चाहिए। परिवार के सभी सदस्यों का कर्तव्य है कि वे गर्भिणी के साथ मृदुल और स्नेह पूर्ण व्यवहार तथा सहानुभूति आवश्यक रूप से रखें।

7. **अन्य कारण**- यजुर्वेद में लिखा है कि जननी किस प्रकार अपनी सन्तान का धारण करे और किस प्रकार उसका विकास करे, “ गर्भावस्था में जननी स्पष्ट, सत्य, शिष्ट और सुमधुर भाषण करे तो बालक की वाणी भी इसी प्रकार की बनती है। उसे प्राणायाम करके अपने प्राणों (श्वास) को स्वस्थ रखना चाहिए जिससे गर्भस्थ शिशु में प्राण शक्ति का विकास हो सके। जननी अपने नेत्रों को स्वच्छ और निरोग रखे जिससे गर्भस्थ शिशु की दृष्टि का निर्दोष विकास हो सके। जननी अपने कानों को शुद्ध व स्वच्छ रखे जिससे गर्भस्थ शिशु की श्रवण शक्ति निर्दोष रहे। जननी अपनी नाभि को शुद्ध और स्वच्छ रखे जिससे बालक की नाभि इसी प्रकार की हो। जननी काम या संभोग से मुक्त रहे जिससे उसके शिशु में कामुकता की विकृति न हो।”

क्रियात्मक(गामक) विकास (Motor Development)- बालक के जीवन में क्रियात्मक विकास का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि इसके द्वारा न केवल वह अपने वातावरण से समायोजन (Adjustment) स्थापित करता है बल्कि व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं का भी विकास करता है।

क्रियात्मक विकास का अर्थ (Meaning Motor Development)- शिशु अब धराधाम पर अवतरित होता है तो वह बिल्कुल निःसहाय तथा पराश्रित होता है। उसे जिस स्थान पर लिटा दिया जाता है वह उसी स्थान पर लेटा रहता है। उसमें इतनी क्षमता नहीं होती कि वह यहाँ-वहाँ हिल डुल सके। धीरे-धीरे उसकी माँसपेशियों तथा नाड़ियों का विकास होने लगता है जिससे शिशु अपनी गतिविधियों को नियन्त्रित करने लगता है। जन्म के समय शिशु की माँसपेशियों की जो निरर्थक तथा अनिश्चित क्रियाएँ होती हैं उनको नियन्त्रित करने लगता है। माँसपेशियों तथा नाड़ियों की गतिविधियों को नियन्त्रित करने वाली योग्यताओं को “क्रियात्मक योग्यता” (Motor Abilities) कहते हैं। नाड़ियों तथा माँसपेशियों की इन योग्यताओं के विकास को ही क्रियात्मक या गामक विकास कहा जाता है।

क्रियात्मक विकास की परिभाषा (Definition of Motor Development)-

1. “क्रियात्मक योग्यताओं से तात्पर्य उन विभिन्न प्रकार की शारीरिक गतिविधियों से है जो नाड़ियों तथा माँसपेशियों की क्रियाओं के संयोजन (Co-ordination) द्वारा सम्भव होती है।” – क्रो एवं क्रो
2. “क्रियात्मक विकास पर तात्पर्य माँसपेशियों की उन गतिविधियों के नियन्त्रण से है जो जन्म के समय निरर्थक तथा अनिश्चित होती है।” – हरलॉक

क्रियात्मक विकास के प्रकार (Kinds of Motor Development)- बाल मनोविज्ञानियों ने विभिन्न क्रियात्मक योग्यताओं के स्वरूप के आधार पर क्रियात्मक विकास को निम्नवत 2 भागों में विभाजित किया है-

1. स्थूल गतिविधियाँ (Gross Movements)- शैशवावस्था (जीवन के प्रथम 4-5 वर्षों) में कुछ स्थूल गतिविधियों के विकास की प्रधानता रहती है। इन गतिविधियों में शरीर के सम्पूर्ण या अधिकांश अंगों का उपयोग होता है। स्थूल गतिविधियों में बैठना, चलना, दौड़ना, फेंकना, तैरना, आदि गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं।

2. सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल (Finer Motor Skills)- शैशवावस्था के उपरान्त सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों का विकास होता है। इन कौशलों में बालक की छोटी मोटी माँसपेशियों का संयोजन (Co-ordination) होता है। इन कौशलों में पकड़ना, लिखना, सोना, चित्र बनाना, खेलना, उपकरणों का प्रयोग करना आदि आते हैं।

बालक के जीवन में क्रियात्मक विकास का महत्व (Importance of Motor Development in the life of child)- बालक के जीवन में क्रियात्मक विकास का अत्यधिक महत्व है। जितना ही शीघ्र बालक का क्रियात्मक विकास हो जाता है उतना ही शीघ्र वह वातावरण के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है जिससे उसको नवीन कौशलों को सीखने में सुविधा होती है। क्रियात्मक विकास द्वारा बालक अपने शरीर को अच्छी तरह से नियन्त्रित करने लगता है। बाल मनोविज्ञानियों ने क्रियात्मक विकास (क्रियात्मक योग्यताओं के विकास) की बालक के जीवन में इस प्रकार की महत्ता बताई है-

1. अनेक कौशलों का सीखना- बालक का क्रियात्मक विकास उसे अनेक प्रकार के कौशलों को सीखने में सहायता करता है। जब बालक अपने शरीर के विभिन्न अंगों का अच्छी तरह संचालन करने लगता है और उनको नियन्त्रित करने लगता है। तभी वह किसी के सीखने योग्य होता है। शारीरिक कौशलों का विकास तो क्रियात्मक विकास पर आधारित है किन्तु मानसिक कौशलों का होना भी क्रियात्मक विकास के बिना सम्भव नहीं है।

2. आत्मनिर्भरता- जन्म के समय शिशु पूर्णतया असहाय तथा पराश्रित होता है। किन्तु जब उसमें क्रियात्मक योग्यताओं का विकास हो जाता है तो वह आत्मनिर्भर हो जाता है। बालक जितने कार्य अधिक से अधिक अपने हाथों से करने लगता है। उतना ही अधिक वह आत्मनिर्भर हो जाता है।

3. आनन्द की प्राप्ति- बालक में खेलने की शक्ति तभी आती है जबकि उसमें क्रियात्मक योग्यताओं का विकास हो जाता है। खिलौनों तथा अन्य उपकरणों के साथ

खेलने में बालकों को आनन्द की प्राप्ति होती है। उसे खुशी से अपने समय को व्यतीत करने का अवसर प्राप्त होता है। खेल द्वारा बालकों की माँसपेशियों का व्यायाम होता है। अतः जहाँ क्रियात्मक योग्यताएँ बालक में खेलने की शक्ति उत्पन्न करती हैं वहीं खेलने की क्रिया को आगे अन्य क्रियात्मक योग्यताओं के विकास में सहायता देती है।

4. सामाजिक विकास- क्रियात्मक योग्यताओं के विकास से बालक में खेलने की क्षमता का विकास हो जाता है तो वह खेलने के लिए अपने अन्य साथियों से सम्पर्क बढ़ाता है। जिन बालकों में दौड़ने, कूदने, गेंद फेंकने, छलांग मारने का आदि की योग्यताओं का विकास उचित समय में नहीं हो पाता है वे अकेले रह जाते हैं।

5. विद्यालय की क्रियाओं के साथ समायोजन- बालक में जितनी शीघ्र क्रियात्मक योग्यताओं का विकास हो जाता है इतनी ही शीघ्र वह पाठ्यक्रमीय और पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है। लेखन चित्रांकन, चित्र-लेखन, दौड़ना, कूदना, अनेक प्रकार से खेलना, भ्रमण करना आदि क्रियाएँ वही बालक शीघ्र करने लगते हैं जिनमें क्रियात्मक योग्यताओं का विकास अच्छा हो जाता है।

6. 'स्व' या 'आत्म' का समझना- बालक अपने 'स्व' या आत्म को सभी समझ पाता है जबकि उसकी क्रियात्मक योग्यताओं का समुचित विकास हो जाता है। बालक सदैव अन्य बालकों की तुलना में अपने आपको समझने का प्रयास करता है। वह जिन कौशलों को करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है, उनकी प्रतिक्रिया वह अपने मित्रों पर भी देखना चाहता है। यह कार्य वह क्रियात्मक योग्यताओं के आधार पर होकर पाता है और इससे वह अपने अन्य मित्रों के साथ अपनी योग्यता की अभिव्यक्ति करता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बालक की क्रियात्मक योग्यताओं का विकास उसके शारीरिक मानसिक सामाजिक जीवन को उन्नतिशील बनाने में सहायता करता है।

क्रियात्मक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Motor Development)-

1. गर्भावस्था में क्रियात्मक विकास- (Motor Development in Pre-natal Period)- शिशु का क्रियात्मक विकास गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। जब गर्भस्थ शिशु 8 सप्ताह का होता है तब वह कीड़े की तरह रेंगता है। परीक्षणों में देखा गया है कि गर्दन एवं हाथों को मोड़ने की क्रिया तीसरे माह से ही प्रारम्भ हो जाती है। तीसरे और चौथे महीने के बीच गर्भस्थ शिशु कुछ प्रारम्भिक गतियाँ जैसे हाथ, पैर एवं सिर हिलाना आदि करने लगता है। चौथे एवं पाँचवे महीने में इन गतियों में और अधिक विशिष्टीकरण (Differentiation) आ जाता है। 6 माह का हो जाने पर गर्भस्थ शिशुओं की अनेक गतियों का आभास स्वयं माता को होने लगता है।

2. नवजात शिशु का क्रियात्मक विकास (Motor Development in Neonatal Development)-जब शिशु उत्पन्न होता है तो वह कुछ सहज क्रियाएँ (Reflex Actions) करने लगता है जैसे- स्तनपान करना, चूसना आदि। इन सहज क्रियाओं के अतिरिक्त उसमें कुछ अनैच्छिक क्रियाएँ (Involuntary Action) भी होने लगती हैं जैसे करवट से लेटना, हाथ-पैर फेंकना आदि। यदि नवजात शिशु के किसी अंग के उत्तेजित किया जाए तो उसका सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील हो उठता है। कुछ स्थानीय क्रियाओं जैसे चिल्लाने की क्रिया करने पर भी शिशु का सारा शरीर क्रियाशील हो जाता है। शिशु की

क्रियाओं का सम्बन्ध उसके शरीर की दशा भी रहती है। जैसे भूख, पेशाब करने पर आदि दशाओं में शिशु अधिक क्रियाशील हो जाता है किन्तु शिशु की इन क्रियाओं में संयोजन (Co-ordination) का अभाव रहता है। नवजात शिशु की क्रियाओं में भी विभिन्नता का अभाव रहता है।

3. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास (Motor Development in Early Child hood):- प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक का क्रियात्मक विकास द्रुतगति से होने लगता है। साधारणतया जब बालक 4 सप्ताह जाता है तो वह कंधे पर सहारा देने से अपना सिर उठाने लगता है। आठवें सप्ताह में तो वह अपना सीना तक उठाने लगता है। सोलहवें सप्ताह (4 माह) की अवस्था में सहारा पाकर बैठ सकता है और हाथों के सहारे उठने का प्रयास करने लगता है। 7 माह का होने पर वह पीठ मोड़कर बैठने लगता है। 10 महीने का होने पर वह खड़ा हो सकता है और खिलौनों से खेलने लगता है। सवा साल का होने पर उसमें अपने आप चलने की क्षमता आ जाती है डेढ़ साल का होने पर वह कुर्सियों एवं सीढ़ियों पर चढ़ने लगता है। पौने दो साल का होने पर वह पीछे की ओर चल सकता है। ढाई वर्ष का होने पर वह एक पैर पर खड़ा हो सकता है।

विभिन्न क्रियात्मक योग्यताओं का विकास (Development of Different Motor Abilities)-

(अ) शीर्ष मण्डल में क्रियात्मक योग्यताओं का विकास (Development of Motor Abilities in Head Region)-

1. किसी वस्तु पर आँख ठिकाना- क्रियात्मक योग्यताओं का विकास शरीर के ऊपर से नीचे की ओर होता है। बालक जब जन्म लेता है तब वह अपनी आँखों को ठीक प्रकार से संयोजित नहीं कर पाता जिसके कारण उसकी आँखें किसी एक वस्तु पर नहीं टिक पातीं। गैसल एवं हालवरसल कहते हैं, “बालक दूसरे माह के अन्त तब अपनी आँखों को किसी स्थायी वस्तु पर टिका सकता है और तीसरे महीने के अन्त में वह गतिशील वस्तु पर भी अपनी आँखें ठिकाने लगता है किन्तु प्रारम्भ में वह केवल 4-5 सेकेण्ड तक ही अपनी आँखें किसी वस्तु पर टिका सकता है।”

2. आँख झपकाने की क्रिया- यद्यपि आँख झपकाने की क्रिया बालक में सहज क्रिया के रूप में जन्म से ही विद्यमान रहती है किन्तु जब वह प्रायः 4 महीने का हो जाता है तो वह स्वयं ही आँख झपकाने की क्रिया करने लगता है।

3. मुस्कराना - शिशु के किसी विशेष अंग को छुआ जाता है तो वह मुस्कराने लगता है किन्तु जब वह प्रायः 3 माह का हो जाता है तो किसी व्यक्ति को मुस्कराते हुए देखकर स्वयं मुस्कराने लगता है।

4. सिर को घुमाना- नवजात शिशु केवल क्षण मात्र के लिए अपना सिर उठा सकता है। किन्तु एक महीने का हो जाने पर वह छाती के बल लेटे-लेटे कुछ सेकेण्ड के लिए सिर उठा सकता है। 3 माह का होने पर जब बालक को कंधे से लगाकर उठाया जाता है तो वह अपने सिर को इधर-उधर घुमाकर वातावरण का अवलोकन करने लगता है। 4 माह का होने पर बालक सहारा देने से गोद में बैठ जाता है और अपने सिर को सीधा रख सकता है। 6 माह का होने पर बालक बिना किसी सहारे के बैठकर अपने सिर को

इधर-उधर घुमा सकता है।

(ब) शरीर-स्थिति और क्रियात्मकता (Posture and Locomotion)- जब बालक जन्म लेता है तो उसकी विभिन्न क्रियाओं में संयोजन (Co-ordination) नहीं होता है। किन्तु जैसे-जैसे वह अधिक महीनों का होता जाता है उसकी क्रियाओं में समन्वय तथा विशिष्टीकरण (Co-ordination and Differentiation) होने लगता है। नवजात शिशु प्रथम महीने में अपनी टुड्डी तथा दूसरे महीने में अपना धड़ उठाने लगता है। चौथे महीने में सहारा देने से बैठने लगता है। 7 महीने में पीठ-मोड़कर अकेले ही बैठ जाता है। आठवें माह में सहारा देने से खड़ा हो जाता है। 12-13 महीने में सीढ़ियों पर चढ़ने लगता है और सवा साल की आयु में स्वयं चलने लगता है। ढाई साल का बालक कूदने लगता है। गैसेल, थाम्पसन तथा शर्मेन ने बालक के क्रियात्मक विकास पर अध्ययन कर निम्नवत तालिका प्रस्तुत की है-

(स) हाथ पैर की क्रियात्मक योग्यताओं का विकास (Development of Motor Abilities of Arm and Hand)- बालक के हाथ-पैर की क्रियात्मक योग्यता का विकास अपेक्षाकृत देर में होता है। इसमें पकड़ (Grasp or Prahansion), वायें या दायें हाथ से कार्य करने की प्रवृत्ति (Handedness) लिखने की गतियाँ (Writing movement) आदि का समावेश होता है जो इस प्रकार है-

क्रमांक	व्यवहार	प्रगति सप्ताहों में		
		गैसल	थाम्पसन	शर्मेन
1	सहारा देकर सिर उठाना	4	-	-
2	सिर सीधा रखना	8	8	-
3	पैर उठाना	-	12	13
4	हाथ के बल सीधा उठना	12	16	-
5	अकेले बैठना	30	24	26
6	कुर्सी पकड़कर खड़े होना	-	32	-
7	रेंगना	-	48	-
8	अकेले खड़े होना	60	-	64
9	पीछे चलना	84	-	-
10	एक पैर के बल खड़े होना	120	-	-

1. पकड़ या धारण (Grasp or Prehention)- यद्यपि पकड़ या धारण की प्रक्रिया जन्म से प्रारम्भ हो जाती है किन्तु जन्म के समय यह सहज क्रिया कहलाएगी क्योंकि इस अवस्था में बालक किसी वस्तु को अपनी इच्छानुसार नहीं पकड़ता बल्कि उसके हाथ में जो वस्तु पकड़ा दी जाती है, उसे पकड़े रहता है। इसलिए पकड़ या धारण जन्मजात सहज

क्रिया नहीं बल्कि बाद में विकसित होने वाली ऐच्छिक क्रिया है। बालक जब 5 माह का होता है तो आँगूठे को थोड़ा बहुत हिलाने लगता है। 8-9 माह का होने तक वह वस्तुओं को पकड़ना सीख जाता है। प्रारम्भ वे उसके पकड़ने की क्रिया में आँख तथा हाथ का पूर्ण समन्वय नहीं होता है। पकड़ने के पूर्व वह वस्तु देखकर उसके पास पहुँचने का प्रयास करता है। 4 माह का हो जाने पर बालक अपना मुख वस्तु तक ले जाना सीख जाता है। 6 माह में वह वस्तु को पकड़ने का प्रयास करने लगता है। एक वर्ष की आयु में उसमें पूर्ण रूप से पकड़ने की शक्ति का विकास हो जाता है।

2. बाँये या दाँये हाथ से कार्य करने की प्रवृत्ति (Handedness)- यद्यपि एक वर्ष की आयु से ही बालक दाँए या बाँये हाथ से किसी हाथ को प्रमुखता (Preference) देने लगता है। किन्तु या बात निश्चित रूप से 3-4 वर्ष बाद स्पष्ट होती है कि बालक किस हाथ से कार्य करेगा। अधिकांश बालक दाँए हाथ का ही प्रयोग करते हैं।

3. लिखने की गतियाँ (Writing movements)- प्रायः 2 वर्ष की आयु में बालक दूसरे बालकों को लिखते हुए देखकर स्वयं लिखने की गतियाँ करने लगता है।

(द) थड़ की क्रियात्मक योग्यताओं का विकास (Development of Motor Abilities of Trunk)-

1 शरीर को घुमाने की क्रिया- नवजात शिशु में अपने शरीर को इधर उधर घुमाने की क्षमता नहीं होती है। दूसरे महीने से उसमें यह क्षमता धीरे-धीरे विकसित होने लगती है। 5-6 माह का होने पर बालक अपने पूरे शरीर को यहाँ-वहाँ मोड़ने लगता है। किन्तु यह क्रिया वह एक साथ सम्पूर्ण रूप से नहीं करता बालक सर्व प्रथम अपने सिर को, उसके बाद कन्धों को, फिर नितम्ब और अन्त में टाँगों को घुमाना सीखता है।

2. बैठने की क्रिया- जब से शिशु अपने पीठ एवं कमर की माँसपेशियाँ को नियन्त्रित करने लगाता है तभी से बैठना प्रारम्भ कर देता है। 5 माह का होने पर वह सहारा देने से सीधा बैठता है। किन्तु बिना सहारे के आगे की ओर झुक जाता है। गैसेल, थाम्पसन और शर्मेन कहते हैं कि 9-10 माह की आयु में शिशु सीधा बैठ सकता है। बालकों की अपेक्षा बालिकाएँ ऐसा शीघ्र कर लेती हैं। प्रारम्भ में जब बालक बैठना शुरू करता है तो उसे सभी अंगों पर बल देना पड़ता है। किन्तु 2-3 वर्ष का हो जाने पर केवल नितम्ब के आधार पर बैठने लगता है, साढ़े चार वर्ष की आयु में वह प्रौढ़ व्यक्तियों के समान बैठने लगता है।

(य) टाँगों की क्रियात्मक योग्यता का विकास (Development of Motor Abilities of Legs)- टाँगों की क्रियात्मक योग्यताओं के विकास में पहले बालक लुढ़कना, खिसकना तथा रेंगना सीखता है और बाद में खड़ा होना तथा चलना। चलने की क्रिया वह बहुत बाद में सीखता है। बालक में टाँगों की क्रियात्मक योग्यताओं का विकास इस प्रकार होता है-

1. लुढ़कना - सर्वप्रथम बालक टाँगों की क्रियाओं में से लुढ़कना सीखता है। लुढ़कने की क्रिया टाँगों तथा बाहुओं दोनों की गतिविधियाँ द्वारा होती है। 4-5 माह का बालक लुढ़कने लगता है।

2. खिसकना - बालक लुढ़कने के पश्चात् खिसकना सीखता है। वह बैठे-बैठे पहले एक टाँग को दोहरी करके उसे अपने नीचे कर लेता है जिससे सन्तुलन बना रहे और

दूसरी टाँग के द्वारा आगे को खिसकता है। खिसकते समय वह अपने बाहुओं तथा हथेलियों का भी प्रयोग करता है। प्रायः 6 माह में बालक खिसकना प्रारम्भ कर देता है।

3. घिसकना - खिसकने के बाद बालक घिसकने की क्रिया सीखता है। प्रायः घिसकने की क्रिया 4-5 माह के प्रारम्भ होती है और 9 महीने तक बालक घिसकने में पूर्ण दक्ष हो जाता है। घिसकने की क्रिया में पेट धरती से लगा रहता है और सिर एवं कन्धे ऊपर को उठे रहते हैं। घिसकने में वह अपनी बाहुओं द्वारा अपने शरीर को आगे खींचता है एवं साथ में टाँगों को भी घसीटता है।

4. रेंगना- घिसकने के बाद बालक रेंगने की क्रिया करता है। 9 माह की आयु से बालक रेंगने या सरकने की क्रिया करने लगता है। इस क्रिया में वह अपने घड़ को पृथ्वी के समानान्तर ऊपर उठा लेता है और घुटनों तथा हाथों के बल पर आगे को चलता है। जब उसमें और अधिक शक्ति आ जाती है तो वह घुटनों को ऊपर उठाकर चौपायों की सदृश चलना प्रारम्भ कर देता है।

5. खड़ा होना- जिस समय से बालक घिसकने तथा रेंगने लगता है उसी समय से वह सहारा लेकर खड़ा भी होने लगता है। प्रायः वह पलंग, मेज, कुर्सी या अन्य किसी वस्तु को पकड़कर खड़े होने की क्रिया करता है। शर्ले के अनुसार 42 सप्ताह का बालक सहारा लेकर 1 मिनट तक तक खड़ा हो सकता है और 48 सप्ताह का होने पर वह बिना सहारे के ही खड़ा होने लगता है। परीक्षणों में पाया गया है कि बालकों की अपेक्षा बालकाएँ शीघ्र खड़ा होना सीख लेती हैं।

6. चलना- चलने की क्रिया बालक सबसे बाद में सीखता है। जब वह खड़ा होने में पूर्ण दक्ष हो जाता है। और उसमें आत्म विश्वास का विकास हो जाता है तो वह सावधानी पूर्वक आगे की ओर पैर बढ़ाने लगता है। पहले वह किसी वस्तु के सहारे आगे बढ़ता है। बाल मनोविज्ञानियों के अनुसार- 10-12 माह में चलने वाला बालक प्रतिभाशाली, 14-18 माह में चलने वाला सामान्य बुद्धि और 18-24 माह में चलने वाला बालक मानसिक रूप से पिछड़ा हो सकता है। गैसेल तथा बेले के अनुसार प्रायः 14 माह को होने पर दो तिहाई बालक बिना सहारे के चलने लगते हैं और 18 माह का होने पर सभी बालक वयस्कों के समान चलने लगते हैं। चलते समय बालक का सिर सीधा रहता है और गति संचालन टाँगों के द्वारा होती है। बालक का पहले-पहल कदम छोटा होता है और 18 महीने का होने तक उसका कदम धीरे-धीरे लम्बा होता जाता है।

बालक के चलना सीखने की क्रिया में आने वाली बाधाएँ- बालकों के चलने की क्रिया सीखने में प्रायः अनेक बाधाओं (रूकावटों) का सामना करना पड़ता है जो निम्नलिखित हैं-

1. बीमारी के कारण टाँगों तथा माँसपेशियों का दुर्बल होना।
2. बालक को अधिक कसे कपड़े पहनाना।
3. लाड़ - प्यार में उसकी आवश्यकताएं गोद में ही पूर्ण हो जाना।
4. चर्बी की अधिकता के कारण मोटा हो जाना।
5. चलने वाले फर्श का बहुत चिकना, मुलायम, गर्म या ठण्डा होना।
6. पौष्टिक भोजन के अभाव में शरीर तथा उसके स्नायुओं का निर्बल रह जाता।

7. मानसिक दुर्बलता का होना।
8. बार-बार गिरने से बालक द्वारा लज्जा का अनुभव करना।

अतः बालकों के माता-पिता को चाहिए कि वे उपर्युक्त अवरोधों (बाधाओं) का निराकरण करें ताकि बालक शीघ्र तथा ठीक समय में चलना फिरना सीख जाए।

क्रियात्मक योग्यताओं के विकास में विलम्ब के कारण (Causes of the Delayed Development of Motor Abilities)- कुछ बालकों में क्रियात्मक योग्यताओं का विकास बड़ी तीव्रता से होता है और कुछ बालकों की क्रियात्मक योग्यताओं के विकास में विलम्ब हो जाता है। बालकों में क्रियात्मक योग्यताओं के विकास में विलम्ब होने के निम्नवत कारण या अवरोध उत्तरदायी होते हैं-

1. शारीरिक हीनता- रोग, आपरेशन, चोट, जन्म से ही अस्थि या बहरा होना, ग्रन्थि प्रणाली में दोष आदि के कारण बालक की क्रियात्मक योग्यताओं का विकास ठीक से नहीं हो पाता है।

2. शारीरिक आकार- यदि बालक बहुत मोटा या बहुत पतला होता है तो उसके क्रियात्मक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शर्ली, बारबल, ब्रूच ने बताया कि गठनशील बालकों की क्रियात्मक योग्यताओं का विकास सन्तुलित रूप से होता है।

3. बुद्धि हीनता - जो बालक कम बुद्धि के होते हैं उनकी क्रियात्मक योग्यताओं का विकास मन्द गति से होता है। इसके विपरीत कुशाग्र बुद्धि वाले बालक जल्दी बैठने, उठने तथा चलने लगते हैं। शर्ली तथा जॉन्स के अनुसार बालक के प्रारम्भिक वर्षों में बुद्धि तथा क्रियात्मक योग्यताओं के विकास में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

4. प्रशिक्षण एवं अभ्यास का अभाव- यदि बालक की शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं होते हैं तो उनका विकास अवरूद्ध हो जाता है।

5. घर तथा शिक्षालय का भयप्रद वातावरण- यदि बालक को शैशवावस्था में घर तथा बाल्यावस्था में विद्यालय में थोड़ी-थोड़ी सी बात में डराया - धमकाया जाता है तो उसकी क्रियात्मक योग्यताओं का विकास अवरूद्ध हो जाता है। भयभीत तथा सहमा हुआ बालक कोई भी कार्य ठीक से नहीं कर पाता है।

6. प्रोत्साहन तथा उत्साह का अभाव- यदि बालक को चलने, फिरने, दौड़ने, खेलने, लिखने, आदि के लिए प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता है तो उसकी शारीरिक योग्यताओं के विकास भी गति मन्द रहती है। उत्साह के अभाव में बालक स्वयं चलने फिरने आदि में रुचि नहीं लेता है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. गुप्त रामबाबू, बाल मनोविज्ञान, न्यू पब्लिशिंग हाउस, चौक, कानपुर
2. पाठक पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
3. श्रीवास्तव गिरधारी लाल, शिक्षा मनोविज्ञान, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ
4. शर्मा बी. एन., शिक्षा मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन आगरा
5. शर्मा, सक्सैना एवं बरौलिया, शिक्षा मनोविज्ञान एवं मापन, राधा प्रकाशन मन्दिर आगरा

6. दीक्षित, सिंह एवं विश्नोई, बाल्यावस्था एवं विकास, ठाकुर प्रकाशन, लखनऊ
7. शर्मा एवं नारंग, बाल्यावस्था एवं विकास, राखी प्रकाशन आगरा

आर्टिकल 370 और कश्मीर समस्या

• अर्चना दीक्षित

सारांश- आर्टिकल 370 कश्मीर समस्या की बहुत बड़ी वजह था जिसे डॉ. अम्बेडकर के ना चाहते हुये भी पं. नेहरू ने शेख अब्दुल्ला के प्रभाव में आकर संविधान में शामिल करवा लिया था। इसकी वजह से कश्मीर अलगाववाद और आतंकवाद की आग में वर्षों तक झुलसता रहा। उन्मादी आतंकी संगठनों ने अल्पसंख्यक हिन्दुओं और सिखों का जीना मुश्किल कर दिया। कश्मीरी हिन्दू अपनी जन्मभूमि छोड़कर भागने पर विवश हुये और आज भी शरणार्थी जीवन जीने पर विवश हैं। शेष भारत की अपेक्षा कश्मीर विकास की रेस में भी पिछड़ गया। यही वजह है कि धारा 370 को हटाने की माँग समय-समय पर उठती रही और आखिरकार अपने दूसरे कार्यकाल में मोदी-शाह की जोड़ी ने यह कर दिखाया। 5 अगस्त 2019 भारत और कश्मीर के लिए ऐतिहासिक दिन था। आर्टिकल 370 के साथ धारा 35ए को भी निरस्त कर दिया गया और लद्दाख को जम्मू कश्मीर से पृथक करके दो केन्द्रशासित क्षेत्र (जम्मू कश्मीर विधान सभा युक्त एवं लद्दाख) बनाया गया। जहाँ सत्ताधारी भाजपा और आम भारतीयों में इसे लेकर जश्न का माहौल था वहीं कई कश्मीरी संगठनों यहाँ तक कि कई विपक्षी दलों ने सरकार के इस निर्णय का विरोध किया। आज इस निर्णय को लिये दो वर्ष बीत चुके हैं। इन दो वर्षों में कई बार लगा कि कश्मीर के हालात सुधर रहे हैं पर कई बार हालात काबू से बाहर जाते दिखे। विशेष रूप से पिछले कुछ समय से आतंकी घटनाओं में वृद्धि हुई है। पर सरकार आश्वस्त है कि वहाँ जल्द ही सब कुछ सामान्य होगा और चुनाव द्वारा नयी विधानसभा का गठन होगा। इसी के मद्देनजर सरकार ने 'जम्मू कश्मीर परिसीमन आयोग' का गठन किया ताकि इस दिशा की ओर कदम बढ़ा सके। हम भी उम्मीद करते हैं कि ऐसा ही हो और कश्मीर शेष भारत के साथ विकास के पथ पर आगे बढ़ सके।

मुख्य शब्द- संविधान, अलगाववाद, आतंकवाद, अल्पसंख्यक, परिसीमन

परिचय- आजादी के समय से ही भारत और पाकिस्तान के मध्य शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध रहे हैं। खासकर कश्मीर समस्या दोनो के मध्य स्थायी अवरोध बनकर रह गया है। कश्मीर समस्या को लेकर दोनो के मध्य चार युद्ध हो चुके हैं। कारगिल युद्ध तो आज भी हम सबके जहन में ताजा है क्योंकि हमारी पीढ़ी ने इसे इलेक्ट्रानिक मीडिया की मेहरबानी से लाइव देखा था। इन चार युद्धों को छोड़ दिया जाये तो आतंकवादी

• एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

घटनायें आये दिन होती रहती हैं, कभी कम कभी ज्यादा। कश्मीर समस्या भारत पाकिस्तान के बीच एक ऐसी उलझी हुई गुत्थी है जो सुलझने की बजाय उत्तरोत्तर उलझती जा रही है। कश्मीर के इतनी बड़ी समस्या बनने की सबसे बड़ी वजह है आर्टिकल 370 जिसे संविधान निर्माता बाबा साहेब अम्बेडकर के ना चाहते हुये भी संविधान में शामिल कर लिया गया। कश्मीर समस्या की जड़ में अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति थी, जिन्होंने जानबूझकर आजादी के मसौदे में भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र देश की नींव ही नहीं रखी बल्कि सैकड़ों देशी रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र रहने का अव्यवहारिक विकल्प दे दिया। नतीजा ये हुआ कि कश्मीर के महाराजा हरी सिंह ने कश्मीर को स्वतंत्र रखने का बचकाना निर्णय ले लिया। एक शान्तिपूर्ण देश होने के नाते भारत ने तो इसे स्वीकार कर लिया पर जिन्ना जैसे अहंकारी का पाकिस्तान इसे बर्दाश्त नहीं कर पाया। वही हुआ जिसकी आशंका थी। कबायिलियों के वेष में पाकिस्तानी सैनिकों ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। हरी सिंह की सेनायें पाकिस्तानी आक्रमण का मुकाबला करने की स्थिति में नहीं थीं इसलिए उन्होंने भारत से मदद मांगी। लार्ड माउन्टबेटन, जो इस समय भारत के गवर्नर जनरल थे, का विचार था कि जब तक कश्मीर का भारत में विलय न हो तब तक भारत का कश्मीर की सहायता के लिए सैनिक भेजना अन्तराष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन होगा। नेहरू के संकोच के बावजूद उन्होंने अपने प्रधानमंत्री और उनके मंत्रिमण्डल को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि कश्मीर के विलय के समझौते में एक बुनियादी शर्त यह शामिल कर दी जाये कि भारत में महाराजा की रियासत के विलय को अस्थायी समझा जायेगा। इसे स्थायी रूप तभी दिया जायेगा, जब वहाँ शांति और सुव्यवस्था की स्थापना हो जाने पर जनमत गणना के जरिये यह पता लगा लिया जाये कि कश्मीर की जनता भी यही चाहती है। वी.पी. मेनन को आदेश दिया गया कि वह श्रीनगर जाकर महाराजा के सामने मंत्रिमण्डल की ये शर्तें रखे।¹¹ वी.पी. मेनन अपने मकसद में कामयाब होकर दिल्ली आये। 26 अक्टूबर 1947 को केन्द्रीय परिषद की उच्चस्तरीय बैठक सम्पन्न हुयी और कश्मीर का भारत में विलय हो गया। इस बैठक में कश्मीर के प्रतिनिधि के रूप में कूटनीति के माहिर खिलाड़ी शेख अब्दुल्ला मौजूद थे, जिन्होंने बहुत आसानी से नेहरू को कश्मीर पर ऐसा समझौता करने को राजी कर लिया जिसका दुष्परिणाम आगे आने वाली पीढ़ी ने झेला। “जनमत की खुली अवज्ञा कर नेहरू जी ने शेख अब्दुल्ला के साथ ऐसा समझौता कर लिया, जिससे न केवल भारत की एकता पर कुठाराघात हुआ, अपितु जम्मू तथा लद्दाख के 15 लाख निवासियों का भविष्य भी खतरे में पड़ गया। समझौते के अन्तर्गत कश्मीर को अपना पृथक विधान, पृथक प्रधान तथा पृथक निशान रखने का अधिकार दे दिया गया।”¹²

कश्मीर के भारत में विलय के बाद भारतीय सेना को कश्मीर भेजा गया और उन्होंने आक्रमणकारियों को पीछे खदेड़ दिया। पर तब तक काफी देर हो चुकी थी क्योंकि कश्मीर का बहुत बड़ा हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में जा चुका था। लार्ड माउन्टबेटन की सलाह पर पं. नेहरू कश्मीर मामला संयुक्त राष्ट्र संघ ले गये यद्यपि

सरदार पटेल इसके पक्ष में नहीं थे। 21 अप्रैल 1948 को सुरक्षा परिषद ने प्रस्ताव 47 पारित करके दोनों देशों से संघर्ष विराम करने को कहा। लम्बे संघर्ष के बाद 1 जनवरी, 1949 को कश्मीर में युद्ध-विराम हुआ पर तब तक पाकिस्तान कश्मीर के 36.4 प्रतिशत भाग पर कब्जा कर चुका था जिसे आज हम पाक अधिकृत कश्मीर (POK) के नाम से जानते हैं। संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षकों के मार्गदर्शन में कश्मीर में जनमत संग्रह की बात कही गयी और यह तब होना था जब पाकिस्तानी सेना कश्मीर खाली कर दे। किन्तु न तो पाकिस्तानी सेनायें कश्मीर से गयीं और न जनमत संग्रह हुआ और अब तो इस प्रस्ताव का कोई मतलब नहीं रह गया है पर पाकिस्तान गाहे बगाहे हर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर संयुक्त राष्ट्र के इस प्रस्ताव का हवाला देकर जनमत संग्रह की बात उठाता रहता है। यहाँ जनमत संग्रह को लेकर एक दिलचस्प तथ्य सामने आया है। संयुक्त राष्ट्र में लम्बे समय तक भारत के प्रतिनिधि रहे वी.पी. मेनन ने सेवानिवृत्त होने के बाद सितम्बर 1964 में दिये गये एक साक्षात्कार में कबायली हमले बाद भारत की नीति को एकदम न्यायसंगत बताते हुये कहा कि 'लेकिन जहाँ तक जनमतसंग्रह की बात है, हम पूरी तरह बेईमान थे। उधर मार्च 1991 में पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के राष्ट्रपति रहे सरदार इब्राहीम खान ने इस्लामाबाद में आयोजित एक सेमिनार में कहा था कि शुरूआती वर्षों में पाकिस्तान सरकार जनमत संग्रह कराने को टालती रही और इससे बचती रही। पाकिस्तान के प्रबल पक्षधर एलिएस्ट लैब ने भी माना था कि 1948-49 में जब कश्मीर में कबायली अत्याचार की स्मृतियाँ ताजा थीं तो अगर जनमत संग्रह होता तो इसमें पाकिस्तान के लिए खतरा था कि न केवल घाटी बल्कि आजाद कश्मीर भी शेख अब्दुल्ला के झंडे तले चला जाता।'³

कश्मीर को इतनी जटिल समस्या बनाने में साम्राज्यवादी ब्रिटेन और पाकिस्तान ही जिम्मेदार नहीं था, हमारी तरफ से भी कई गलतियाँ हुयीं। अब्बल तो हमें संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर मामला लेकर नहीं जाना चाहिये था और अगर लेकर गये भी थे तो संयुक्त राष्ट्र की धारा 35 के अन्तर्गत मामला न उठाकर धारा 6 और 7 के अन्तर्गत मामला उठाना चाहिये था। धारा 35 का सम्बन्ध विचारों के शान्तिपूर्ण निपटारे से है इसलिए कश्मीर अब भारत और पाकिस्तान के मध्य विवाद का विषय बन गया जिससे पाकिस्तान को मामले का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने में मदद मिली। जैसा कि भारत की विदेश सेवा में कार्यरत रहे जे.एन. दीक्षित का मानना है कि "भारत को सम्भवतः प्रपत्र की धारा 6 और 7 के तहत भी मुद्दा सुरक्षा परिषद की जानकारी में लाना चाहिये था, जिससे भारत का अभिन्न हिस्सा बन चुके राज्य या क्षेत्र के विरुद्ध पाकिस्तान की हिंसक गतिविधियों को महत्व दिया जाता।"⁴ इससे अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को यह समझना आसान हो जाता कि कश्मीर का भारत में विलय पूरी तरह वैधानिक था यहाँ तक कि पाक अधिकृत कश्मीर भी भारत का ही हिस्सा है, ये पाकिस्तान है जो वहाँ पर अवैधानिक रूप से कब्जा जमाये बैठा है।

संविधान विशेषज्ञों का मानना है कि आर्टिकल 370 को संविधान में शामिल करना हमारी ऐतिहासिक भूल थी। जब महाराजा हरी सिंह अपनी विषम परिस्थितियों को देखते हुये कश्मीर को बिना शर्त भारत में शामिल करने पर सहमत थे तो नेहरू को इसके

लिए शेख अब्दुल्ला की सलाह नहीं माननी चाहिये थी। दरअसल कूटनीति के चतुर खिलाड़ी शेख अब्दुल्ला चाहते थे कि सुरक्षा और विदेश नीति को छोड़कर कश्मीर को पूर्ण स्वायत्ता का दर्जा दिया जाये क्योंकि पाकिस्तान के हमले को देखते हुये “शेख ने कश्मीर की आजादी के प्रस्ताव को ‘अव्यवहारिक’ और पाकिस्तान में शामिल होने के प्रस्ताव को ‘अनैतिक’ बताते हुये खारिज कर दिया। शेख ने कहा कि वे भारत में शामिल होंगे लेकिन इसके लिए उनकी अपनी शर्तें होंगी। इन शर्तों में कश्मीर के लिए एक अलग झंडा रखना और कश्मीर की सरकार के प्रमुख के लिए प्रधानमंत्री के पद को स्वीकार करना भी शामिल था।”⁵ नेहरू अपने परम मित्र की यह सलाह मान बैठे और यह प्रस्ताव डॉ. अम्बेडकर के समक्ष रखा, जाहिर है उन्होने इसे अस्वीकार कर दिया। डॉ. अम्बेडकर ने शेख अब्दुल्ला से कहा, “आप चाहते हैं कि शासन आप करें, सीमाओं की सुरक्षा और सरकारी खर्च हम चलायें। हम ऐसा बर्दाश्त नहीं कर सकते। मैं भारत का विधि मंत्री हूँ और इस प्रस्ताव को मानने का मतलब है कि भारत से द्रोह करना।” पर जी.एस. आयंगर के जरिये नेहरू इस प्रस्ताव को संविधान सभा के समक्ष लाये जिसका जबरदस्त विरोध हुआ। जब आयंगर से पूछा गया कि जम्मू कश्मीर के साथ यह ‘डिसक्रिमिनेशन’ क्यों हो रहा है तब उन्होने जवाब दिया, “यह भेदभाव कश्मीर की विशेष परिस्थितियों के कारण है। वह राज्य अभी देश के साथ सम्पूर्ण विलय के लिए आवश्यक परिपक्व स्थिति में नहीं पहुंचा है। यह हम सबकी आशा है कि यथा समय जम्मू और कश्मीर भी उसी प्रकार के विलय के लिए परिपक्व स्थिति में पहुँच जायेगा, जैसा विलय अन्य रियासतों का हो गया है।”⁶ इस प्रकार आर्टिकल 370 संविधान में एक अस्थाई उपबंध के रूप में शामिल हो गया। इस तरह कश्मीर को पृथक संविधान, पृथक झंडा, पृथक राज्य, पृथक अध्यक्ष, पृथक प्रधानमंत्री बनाने का अधिकार मिल गया। महाराजा के पुत्र कर्ण सिंह, सदरे रिसायत बने और शेख अब्दुल्ला वजीरे आजम।

पं. नेहरू का मानना था कि आर्टिकल 370 एक अस्थायी व्यवस्था थी जो एक दिन घिसते-घिसते खुद खत्म हो जायेगी। किन्तु हुआ इसके विपरीत इसने जम्मू कश्मीर और शेष भारत के बीच अभेद्य दीवार खड़ी कर दी जिसको गिराने में 70 साल लग गये। आर्टिकल 370 कश्मीर में स्वायत्ता की बजाय अलगाववाद लाया। स्वयं शेख अब्दुल्ला आजाद कश्मीर के सपने देखने लगे। भारत में संयुक्त राष्ट्र के तत्कालीन दूत लॉय हेंडरसन के साथ बातचीत में उन्होने इस तरह की राय व्यक्त की थी। यह धारा शेख अब्दुल्ला की महत्वाकांक्षा का प्रतीक थी जिसमें जम्मू कश्मीर के लोगों की भावनाओं का ख्याल नहीं रखा गया और कश्मीर घाटी पर जम्मू और लद्दाख की अपेक्षा ज्यादा तरजीह दी गयी। यद्यपि समय के साथ इस धारा में संशोधन करके जम्मू कश्मीर की स्वायत्ता को कुछ कम किया गया। सदरे रियासत और वजीरे आजम की जगह राज्यपाल और मुख्यमंत्री ने ले ली। सर्वोच्च न्यायालय, महालेखा परीक्षक, निर्वाचन आयोग, संसद और राष्ट्रपति से सम्बन्धित कुछ नियम आर्टिकल 370 के पूर्ण निलंबन से पूर्व ही वहाँ लागू हो गये थे। जैसा कि पहले ही कहा गया आर्टिकल 370 राज्य में अलगाववाद ही नहीं लाया आतंकवाद भी लाया। पाकिस्तान ने घाटी के लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़काने का काम पूरी शिद्दत से किया। खासकर कश्मीरी

युवा पाकिस्तान के हाथ की कठपुतली बन गये। लश्कर-ए-तैयबा, हिजबुल मुजाहिददीन, हरकत उल अंसार, हुरियत जैसे कट्टरपंथी संगठन बन गये जो वहाँ निजामे मुस्तफा कायम करने का सपना देखने लगे। मस्जिदों को धार्मिक भावनाओं को भड़काने का केन्द्र बना दिया गया। नब्बे के दशक तक आते आते आतंकवाद चरम पर पहुँच गया। अल्पसंख्यक हिन्दुओं को रातोंरात कश्मीर छोड़ने पर विवश होना पड़ा। वे अपनी जन्मभूमि अपनी पैतृक सम्पत्ति छोड़ने पर विवश हो गये और आज भी शरणार्थी बनकर यहाँ वहाँ रहने को विवश हैं। सैकड़ों वर्ष पुरानी कश्मीरी संस्कृति नष्ट कर दी गयी। हिन्दू ही नहीं सिखों और गैर सुन्नी मुसलमानों के साथ भी यही बर्ताव किया गया। खुद कश्मीर के लिए भी यह धारा शुभकर साबित नहीं हुयी। शेष भारत की अपेक्षा वह विकास की रेस में पिछड़ गया बावजूद इसके कि उसे हर सरकार द्वारा विकास के भारी भरकम पैकेज दिये गये।

धारा 370 एक ऐतिहासिक भूल साबित हुयी। इसने न राज्य का विकास किया न वहाँ के नागरिकों का, उल्टे विभाजन की नींव रखी। जाहिर है इसको हटाने की मांग समय-समय पर देश के प्रत्येक वर्ग द्वारा की गयी। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लोकसभा में 30 अगस्त, 1968 को दिये गये भाषण में राष्ट्रपति से धारा 370 को निष्प्रभावी बनाने की मांग की। उन्होंने कहा, “भारत के संविधान को पूरी तरह से जम्मू-कश्मीर में लागू किया जाना चाहिये जम्मू-कश्मीर भारत का एक अटूट भाग है हम उसके साथ भेदभाव नहीं कर सकते, हम वहाँ के नागरिकों को भारतीय संविधान के मूल अधिकारों से भारतीय नागरिकता की गौरव-गरिमा से वंचित नहीं कर सकते। इन नागरिकों को समान अधिकार देने के लिए आवश्यक है कि यह मनोवैज्ञानिक दीवार हटा दी जाये और भारतीय संविधान को पूरी तरह से जम्मू-कश्मीर में लागू कर दिया जाये।”⁷ (अटल बिहारी - पेज 217-218)। यद्यपि उनकी इस मांग को तत्कालीन गृहमंत्री श्री यशवन्तराव चव्हाण ने यह कहते हुये ठुकरा दिया कि अभी धारा 370 को समाप्त करने का उपयुक्त समय नहीं है। पर जो काम तब नहीं हुआ वो मोदी-शाह की जोड़ी ने कर दिखाया। अपनी संकल्पशक्ति, राजनीतिक दृढ़ता और साहस का परिचय देते हुये इस धारा को निरस्त कर दिया। 5 अगस्त 2019 भारत के लिए ऐतिहासिक भूल सुधार का दिन था। इस दिन राज्यसभा में ‘जम्मू-कश्मीर पुर्नगठन अधिनियम 2019’ का प्रस्ताव पेश करके राज्य को दो भागों में विभाजित करने (जम्मू कश्मीर विधान सभा युक्त और लद्दाख) केन्द्र शासित क्षेत्र बनाने की सिफारिश की गयी। धारा 35ए को भी इसके साथ ही निरस्त कर दिया गया। दोनो क्षेत्र का शासन लेफ्टिनेंट गवर्नर के हाथ में दिया गया।

इस ऐतिहासिक फैसले ने बहुत कुछ बदल दिया। दोहरी नागरिकता का प्रावधान, पृथक संविधान, पृथक ध्वज का प्रावधान खत्म हो गया, राष्ट्रीय प्रतीकों का अपमान अब अपराध माना जायेगा, देश का कोई भी नागरिक अब यहाँ सम्पत्ति खरीद सकेगा, सरकारी नौकरी पा सकेंगे, सुप्रीम कोर्ट के सभी फैसलें यहाँ मान्य होंगें। जम्मू कश्मीर विधान सभा वाला केन्द्र शासित क्षेत्र बन गया जिसका कार्यकाल 6 वर्ष की बजाय अब अन्य राज्यों की भांति 5 वर्ष होगा। केन्द्र सरकार के सभी कानून अब राज्य

में लागू होंगे। जम्मू कश्मीर के अल्पसंख्यकों को अब आरक्षण का लाभ मिलेगा। अनुच्छेद 356 का उपयोग करके यहाँ राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है। इस ऐतिहासिक फैसले पर गृह मंत्री अमित शाह का मानना था “कश्मीर भारत का ‘ताज’ था और रहेगा। सरकार कश्मीर को विकास के नये रास्ते पर लेकर जायेगी। यहाँ आतंकवाद के खात्मे और विकास की राह में अनुच्छेद 370 सबसे बड़ी बाधा था”⁸ प्रधानमंत्री मोदी ने इसका स्वागत करते हुये कहा “गृह मंत्री का वक्तव्य व्यापक और व्यवहारिक था। उन्होने अतीत में हुये ऐतिहासिक अन्याय को सटीक तरीके से रेखांकित किया। साथ ही जम्मू कश्मीर के भाई बहनो के लिए हमारे दृष्टिकोण को सामने रखा।”⁹ मोदी ने इसे नये युग की शुरूआत कहा। जाहिर है महबूबा मुफ्ती की पी. डी.पी. और फारूख अब्दुल्ला तथा उमर अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेस तथा कश्मीर के कट्टरपंथी संगठनों ने इसका विरोध किया पर मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस सहित आरजेडी, टीएमसी, जेडीयू का विरोध समझ से परे था। उन्होने सरकार के इस कदम को संविधान की हत्या कहा। आश्चर्यजनक रूप से बसपा ने सरकार के इस फैसले का समर्थन किया। जहाँ लद्दाख के लोगों ने इस फैसले का स्वागत किया यहाँ तक कि जम्मू में भी इसका स्वागत किया गया पर कश्मीरियों को लगा कि इस फैसले से उनकी पहचान, उनके अस्तित्व और कश्मीरी संस्कृति को चोट पहुंची है। कश्मीर घाटी में इस फैसले का स्वागत करने वाले बहुत गिने चुने ही थे और जो थे वे खुलकर सामने आने से बचते हुये लगे। कानून व्यवस्था न बिगड़े इसलिए सरकार ने महबूबा मुफ्ती, उमर अब्दुल्ला सहित कई नेताओं को नजरबन्द कर दिया, इंटरनेट सेवायें बंद कर दी गयी। पर कश्मीरी पंडित और आम भारतीय बहुत खुश था। पाकिस्तान और चीन ने भारत को कटघरे में खड़ा करने की खूब कोशिश की पर अमेरिका, फ्रांस, रूस, ब्रिटेन, श्रीलंका जैसे कई देशों ने इसे भारत का अंदरूनी मामला बताया और कोई भी प्रतिक्रिया देने से इंकार कर दिया। पूरे भारत में जश्न का माहौल था। कश्मीर ही नहीं पूरे भारत के लिए नये युग की शुरूआत थी।

इस ऐतिहासिक फैसले को लिए हुये पूरे दो वर्ष बीत चुके हैं। इन दो वर्षों में कई बार लगा जम्मू कश्मीर के हालात अब पूरी तरह से कंट्रोल में हैं पर कई बार हालात काबू से बाहर जाते दिखे क्योंकि पाकिस्तान ने वहाँ धार्मिक भावनाओं को भड़काने का और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत को बदनाम करने का कोई मौका नहीं छोड़ा। कश्मीर के हालात की तुलना सीरिया, अफगानिस्तान और फिलीस्तीन से की गयी। पाकिस्तान के इस झूठे दुष्प्रचार का भारत ने भी जवाब दिया। विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने इंडिया टुडे के एडिटोरियल डायरेक्टर राज चेंगप्पा के एक सवाल के जवाब में कहा, “आज अधिकांश सरकारों ने हमारे दृष्टिकोण को स्वीकार किया है या कम से कम हमारी बात सुनी है। हमने कई राजदूतों को भी जम्मू कश्मीर भेजा था। उन्होने खुद वहाँ की स्थितियों को देखा है और लोगों से मिले हैं। मेरी समझ यह है कि कभी कभी लोग भारत की आलोचना तो करते हैं लेकिन जब वे वापस आते हैं तो उनमें इस बात का अहसास होता है कि जम्मू कश्मीर में विकास की दिशा सकारात्मक है।”¹⁰ पर हाल की कुछ घटनायें चिंताजनक हैं। आतंकवादियों के हौसले फिर से बुलन्द हो रहे हैं क्योंकि अफगानिस्तान

में तालिबान के सत्ता में काबिज होते ही पाकिस्तान को लगने लगा कि तालिबान शासन कश्मीर हथियाने में उसका साथ देगा इसलिए पाकिस्तान एक बार फिर घाटी को सुलगाने में लगा है। आतंकवादी चुन चुनकर अल्पसंख्यक हिन्दुओं, सिखों और प्रवासी मजदूरों को निशाना बना रहे हैं। असल में “कश्मीर राजनीतिक और संवैधानिक समस्या न होकर मजहबी कटटरपंथ की समस्या बन चुका है। कश्मीर का समाज वैश्विक जिहादी कटटरपंथ से अछूता नहीं है। इसलिए वहां गैर मुस्लिम अल्पसंख्यकों का वही हाल हो रहा है जो सीरिया, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बंगलादेश जैसे इस्लामिक देशों में है।”¹¹ पर सरकार को उम्मीद है कि सुरक्षा बल हालात को काबू में कर लेंगे। सेना और प्रशासन के सहयोग से वहां हालात सामान्य होंगे और जम्मू कश्मीर में चुनावों द्वारा नयी विधान सभा का गठन होगा। इसी के मद्देनजर प्रधानमंत्री मोदी की अध्यक्षता में 25 जून 2021 को जम्मू कश्मीर के नेताओं के साथ एक बैठक आयोजित की गयी। इस बैठक में वहा परिसीमन कराये जाने की बात कही गयी। सुप्रीम कोर्ट की पूर्व न्यायाधीश रंजना प्रकाश देसाई की अध्यक्षता में ‘जम्मू कश्मीर परिसीमन आयोग’ का गठन किया गया जिसका ज्यादातर विपक्षी दलों ने विरोध किया और इसके विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी पर गृह मंत्री अमित शाह इसे लेकर अडिग हैं। धारा 370 हटाये जाने के बाद अपने पहले कश्मीर दौरे में यूथ क्लब के सदस्यों को सम्बोधित करते हुये उन्होने कहा कि, “हम परिसीमन को क्यों रोके? इसे रोका नहीं जा सकता। परिसीमन के बाद चुनाव होंगे और उसके बाद राज्य का दर्जा बहाल होगा।”¹² हम उम्मीद करते हैं कि ऐसा ही हो। पर गुप्तकार जैसे गठबंधन माहौल को सामान्य बनने नहीं देना चाहते। इस ऐतिहासिक फैसले के दो वर्ष पूरा होने के बाद वो 5 अगस्त को कश्मीर के लिए काला दिवस, शोक दिवस मनाकर जख्मों को ताजा करना चाहते हैं। ये अलग बात है कि अब उनकी बातें आम कश्मीरियों के लिए उतनी असरकारक नहीं रही हैं। हम उम्मीद करते हैं कि जल्द ही आम कश्मीरी अब शेष भारत के साथ भावात्मक रूप से जुड़कर विकास की राह में आगे बढ़ना चाहेंगे।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. लापिएर, डोमिनीक और कॉलिन्स लैरी, ‘आजादी आधी रात को’, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली (2012), पृ- 387-388
2. बाजपेयी, अटल बिहारी, ‘कुछ लेख कुछ भाषण’, संपादक, डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 42
3. पाण्डेय, अशोक कुमार, ‘कश्मीरनामा इतिहास और समकाल’, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली (2018), पृ. 319
4. दीक्षित, जे.एन., ‘भारत-पाक सम्बन्ध (युद्ध और शांति में)’, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, (2003), पृ. 129
5. गुहा, रामचन्द्र, ‘भारत गांधी के बाद’, पेंगुइन बुक्स, (2012), पृ. 308
6. बाजपेयी, अटल बिहारी, ‘कुछ लेख कुछ भाषण’, संपादक, डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 210-211.
7. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 6 अगस्त 2019
8. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 6 अगस्त 2019

9. इंडिया टुडे (हिन्दी संस्करण), 11 मार्च 2020, पृ. 52
10. सोती, दिव्य कुमार, 'कश्मीर समस्या की जड़ पर हो प्रहार', दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 9 अक्टूबर 2021 इंडिया टुडे (हिन्दी संस्करण), 29 दिसम्बर, 2021

कृषि वित्तीयकरण तथा रूपांतरण (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में (1991 से 2010 तक))

• सौरभी गुप्ता

सारांश- भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। भारत में कृषि सिंधु घाटी सभ्यता के दौर में हरित क्रांति के साथ नया दौर आया। सन् 2007 में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं सम्बन्धित कार्यों (जैसे वानिकी) का सकल घरेलू उत्पाद (G.D.P.) में 166 प्रतिशत था। उस समय सम्पूर्ण कार्य करने वालों का 51 प्रतिशत कृषि में लगा हुआ था। आधुनिक समय में कृषि एवं ग्रामीण विकास बहुत तेजी से हुआ है। कृषि क्षेत्र में इस विकास का प्रमुख कारण कृषि वित्त रहा है। सभी व्यावसायिक संस्थाओं के लिए वित्त की व्यवस्था परम आवश्यक है और कृषि क्षेत्र इसका कोई अपवाद नहीं है। समयानुकूल पर्याप्त व सस्ती साख की व्यवस्था कृषि क्षेत्र की प्रगति में महत्वपूर्ण आगत है। जिस प्रकार व्यवसायियों, को सभी व्यावसायिक क्रिया कलापों के संचालन एवं विस्तार के लिए वित्त की आवश्यकता होती है, उसी तरह से कृषकों से संबंधित विभिन्न कार्यों के लिए वित्त की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु, कृषि एवं कृषकों की अपनी कुछ ऐसी विशिष्टताएं होती हैं, जो इसकी वित्त एवं साख संबंधी आवश्यकताओं से अलग करती हैं। भारत जैसे अर्द्धविकसित व घनी आबादी वाले देश के लिए कृषि साख की समस्या साख प्रदान करने की नीतियों को अवलोकन करना मात्र नहीं है। इस समस्या को एक वृहद् परिवेश में समझना होगा, जिसके अन्तर्गत ग्रामीण अर्थव्यवस्था, जनसंख्या का आर्थिक व सामाजिक स्तर, घरेलू पूंजी निर्माण में बाधाएं, उत्पादन व आवश्यक उपभोग कार्यों के लिए साख के परिमाण का निर्णय और उससे संबंधित तथ्यों व कारणों की जानकारी करती होगी। साधारणतया छोटी जोत आकार वाले भारतीय कृषक की आय जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हो पाती है और उसको प्रत्येक फसल में खेती के कार्यों के लिए व आवश्यक उपभोग के लिए ऋण लेना पड़ता है। भू-राजस्व का भुगतान व पुराने ऋणों का परिशोधन, कृषि-उत्पादन संबंधी व्यय, औजार के क्रय तथा उपयुक्त मूल्य मिलने तक अनाज को रोक रखने के व्यय उत्पादक ऋण के उदाहरण हैं।

मुख्य शब्द- कृषि, कृषि वित्त, रूपांतरण, उत्पादन, ऋण, ग्रामीण क्षेत्र, बैंक, संस्था

परिचय- कृषि एवं कृषकों की अपनी कुछ ऐसी विशिष्टताएं होती हैं, जो

इसकी वित्त एवं साख की आवश्यकताओं को कृषि भिन्न क्षेत्रों की वित्त एवं साख संबंधी आवश्यकताओं से अलग करती है। कृषकों को कृषि कार्यों के लिए अथवा भूमि पर स्थायी सुधार करने के लिए पर्याप्त एवं सस्ती साख सुलभ नहीं है। कृषि वित्त की विद्यमान व्यवस्था अपर्याप्त तथा महंगी है। जिसके फलस्वरूप कृषि का विकास अवरूद्ध हो गया है। सरकार द्वारा कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए बुनाई गई कोई योजना तभी सफल हो सकती है। जब कृषकों को उचित समय पर पर्याप्त एवं सस्ती साख सुविधा उपलब्ध कराई जाए।

कृषि वित्त- कृषि वित्त अथवा साख से तात्पर्य उस वित्त या साख से साख होता है, जिसका उपयोग कृषि से संबंधित विभिन्न कार्यों को संपादित करने हेतु किया जाता है। कृषि वित्त की आवश्यकता सामान्यतया भूमि पर स्थायी सुधार करने बीज, खाद, कीटनाशक, कृषि यंत्र पर क्रय करने, सिंचाई की व्यवस्था करने, मालगुजारी देने विपणन से संबंध कार्य अथवा कृषि के संबंधित अन्य किसी कार्य के लिए हो सकती है। कृषि वित्त अथवा साख की पूर्ति के साधन हैं। साहूकार, सहकारी साख संस्थाएं व्यवसायिक बैंक, ग्रामीण बैंक, भूमि विकास बैंक सरकार तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं।

हम सभी इस बात से अवगत हैं कि बैंक प्राथमिक स्तर पर कृषि ऋण आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम में कृषि उत्पादन वृद्धि की बात को अधिक महत्व प्रदान किये जाने के कारण केन्द्रीय सरकार ने यह निश्चित किया कि 1982-83 में कृषि साख की उपलब्धि में 19 प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए। 1981-82 के दौरान वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि के विकास के लिए 1,550 करोड़ रूपए अल्पकालीन, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन ऋणों के रूप में उपलब्ध करवाए गए। इस मांग में कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त आदानों की बढ़ती हुई लागत को देखते हुए भविष्य में और अधिक बढ़ने की संभावना है। इससे स्पष्ट है कि कृषि ऋणों की पूर्ति में वाणिज्यिक बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

कृषि वित्त की आवश्यकता- कृषकों को विभिन्न उद्देश्यों एवं कालावधियों के लिए वित्त अथवा साख या ऋण की आवश्यकता पड़ती है। कृषि वित्त की आवश्यकता को उद्देश्य एवं समयानुसार निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता है।

उत्पादन कार्य से संबंधित ऋण- ऋणों की आवश्यकता की इस कोटि के अन्तर्गत उत्पादन उपज की बिक्री, भूमि सुधार व कृषि विकास से संबंधित ऋणों को सम्मिलित किया जाता है।

कृषकों को प्रायः खाद, बीज, यंत्र खरीदने, लगान व मजदूरी का भुगतान करने, कुएं खुदवाने, पम्प सेट लगवाने, नई भूमि को कृषि योग्य बनाने या भूमि पर स्थाई सुधार करने तथा आधुनिक एवं वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए ऋण की आवश्यकता पड़ती है। ये ऋण कृषि उत्पादन की विभिन्न क्रियाओं से संबंधित रहते हैं अतः इन्हे उत्पादक ऋण कहा जा सकता है। इस तरह के ऋणों से उत्पादन तथा आय में वृद्धि होती है। अतः इनकी अदायगी तथा ब्याज को चुकता करने में किसानों को कठिनाई नहीं होती। आर्थिक दृष्टि से ऐसे ऋणों को न्याय संगत माना जाता है। क्योंकि इनके प्रयोग में इनके भुगतान की व्यवस्था निहित रहती है।

अनुत्पादक ऋण- फसल की बुवाई और बिक्री की बीच के समय कृषक को अपने परिवार के उपभोग संबंधी आवश्यकताओं एवं कुछ अन्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भी ऋणों की आवश्यकता पड़ती है। यथा-मुकदमा लड़ने, आभूषण खरीदने, विवाह, जन्म-मृत्यु तथा अन्य पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाजों के पालन के लिए जिसका संबंध उत्पादन से नहीं होता तथा जिसमें उधार वापसी का प्रबंध स्वतः निहित नहीं होता। चूंकि ये ऋण उत्पादक कार्यों में नहीं लगाए जाते अतः इन्हें अनुत्पादक ऋण कहा जाता है।

समयानुसार कृषि ऋण- कृषकों को विभिन्न उद्देश्यों के लिए ऋण की आवश्यकता विभिन्न कालावधियों के लिए होती है। समय की दृष्टि से कृषि ऋण की आवश्यकताओं को निम्न तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. मौसमी या अल्पकालिक ऋण- कृषक को बीज, उर्वरक व चारा खरीदने व लगान चुकाने, फसल की बिक्री करने, कुछ प्रकार के पारिवारिक व्यय तथा अन्य चालू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साख अथवा ऋण की आवश्यकता पड़ती है। इन ऋणों की अवधि अधिकतम 15 माह तक होती है। ऐसे अल्पकालिक ऋण प्रायः फसल कटने के बाद चुका दिये जाते हैं।

2. मध्यकालिक ऋण- मध्यमकालिक ऋणों की अवधि 15 महीनों से लेकर 5 वर्ष तक की होती है। कृषको द्वारा इस तरह के ऋण प्रायः भूमि पर, सुधार करने, पशु एवं कृषि यंत्र खरीदने, कुआं खुदवाने आदि कार्यों के लिए जाते हैं। ऐसे ऋण अल्पकालिक ऋणों की अपेक्षा विशाल होते हैं। तथा अपेक्षाकृत अधिक समय बाद चुकाए जाते हैं।

3. दीर्घकालिक ऋण- कृषकों द्वारा ऐसे ऋण प्रायः भूमि खरीदने, भूमि पर स्थायी सुधार करने, पुराने ऋणों को चुकाने, महंगे कृषि यंत्र (ट्रैक्टर आदि) तथा अन्य पूंजीगत व्यय हेतु लिए जाते हैं। ऐसे ऋणों को कृषकों द्वारा थोड़ा-थोड़ा करके अनेक वर्षों में चुकाया जा सकता है। इस तरह के ऋणों की अवधि 5 वर्ष से अधिक और प्रायः 10 से 20 वर्ष तक हो सकती है।

व्यावसायिक सिद्धांतों पर ऋण प्रदान किये जाने का आशय है, साख की उपयुक्त राशि, उपयुक्त ऋणी का ऋण प्रदान किया जाना, ऋण का उपयुक्त कार्य के लिए प्रयोग, कृषि उत्पादकता तथा उत्पादन में वृद्धि, कृषि ऋण की उपयुक्त अवधि में पुनः भुगतान, ऋण उपयुक्त लागत पर उपयुक्त आकार। ऋण प्रदान करने की तकनीक को निम्न प्रकार बतलाया जा सकता है।

ऋण प्रदान करने सामान्य नियम- इसके अन्तर्गत प्रमुखतः निम्न को सम्मिलित किया जाता है।

1. योग्यता- ऋण प्राप्तकर्ता को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। स्वामी कृषक, किराएदार कृषक, पुश्तैनी अधिकार प्राप्त किराएदार कृषक, मौखिक पट्टेदार तथा भूमिहीन कृषि कृषक। एक व्यक्ति जो पूर्णतः अथवा प्रमुख रूप से सहायक (कृषि से) व्यवसायों में संलग्न हो, ऋण प्राप्त करने हेतु योग्य माना जाता है। ये समस्त ऋण प्राप्त कर्ता गारंटी कवर के लिए साख योग्यता हेतु ऋणदाता अकेले व्यक्ति अथवा एक संयुक्त हिन्दू परिवार अथवा समूह अथवा व्यक्तियों का संगठन जो कि कोई कम्पनी

अथवा सहकारी समिति नहीं हैं, योग्य समझे जाते हैं। वाणिज्यिक बैंक इन वर्गों को दी जाने वाली साख की राशि का निर्धारण इन वर्गों की ऋण राशि पुनः चुकाने की क्षमता से करती है। सामान्यतः बैंक इन ऋणों से संबंध में यह नीति अपनाते हैं जो मौसमी प्रकृति के तथा जो कम राशि तथा साख गारंटी योजना के अंतर्गत परिवर्तनीय हो भूमिहीन कृषकों (श्रमिकों) को हल जोतने के लिए पशु कृषि आदतों आदि को खरीदने के लिए साख प्रदान की जाती है।

2. ऋण आवेदन-पत्र- ऐसे कृषक जो बैंको से कृषि कार्यों के लिए ऋण प्राप्त करने हेतु उन्हें एक निर्धारित आवेदन पत्र भरकर बैंको को प्रेषित करना पड़ता है आवेदनकर्ता को आवेदन पत्र में दर्शायी गई व्यवस्था के अनुरूप अपने उत्पादन कार्यक्रम को दर्शाना होता है।

3. ऋण प्रस्तावों का रिकॉर्ड बनाना- प्रायः सभी बैंको के पास तकनीकी दृष्टि से कुशल तथा अनुभवी व्यक्ति होते हैं, जो क्षेत्रीय कृषि अधिकारी के पद पर नियुक्त किये जाते हैं। ये लोग कृषि ऋण आवेदन पत्रों में दी गई, सूचनाओं के आधार पर रिकॉर्ड तैयार करते हैं, तथा कृषि प्रदान करने संबंधी अन्य कार्यवाही को पूरा करते हैं।

4. खाना पूर्ति- बैंक कार्यालय को प्रमुख कार्यालय द्वारा निर्धारित समस्त दस्तावेज ऋण प्राप्त कर्ता से प्राप्त कर लेने चाहिए।

उत्पादन साख का मूल्यांकन- उत्पादन साख का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित पांच बातों का प्रमुख रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए।

1. ऋण का प्रयोजन
2. राशि
3. पुनः भुगतान की क्षमता
4. अवधि
5. सुरक्षा, यदि कोई आवश्यक हो।
3. निवेश साख का मूल्यांकन

ऋण वितरण कार्य- ऋण राशि के दुरुपयोग को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि ऋण राशि का अधिकांश भाग वस्तुओं के संबंध में वितरित किए जाए। किन्तु उनका भुगतान कृषकों को नकद करना है, उतनी मात्रा में ऋण नकद दिया जाना चाहिए।

ऋण के पश्चात् परीक्षण- बैंक का कार्य केवल ऋण प्रदान करने के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता है। अतः बैंको को यह चाहिए कि वे ऋण के प्रयोग पर भी पूरा-पूरा ध्यान रखें। इससे ऋणों के दुरुपयोग पर रोक लगेगी तथा अति देय ऋणों की समस्या भी उत्पन्न नहीं होगी।

ऋण का पुनः भुगतान- ऋण प्रक्रिया का यह अंतिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं कठिन कार्य है। यह सर्वविदित है कि वाणिज्यिक बैंको को वसूली 50 प्रतिशत से अधिक नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि ऋण प्रदान करते समय ऋण के पुनः भुगतान के संबंध में पूरा-पूरा ध्यान रखा जाए।

उपर्युक्त कृषि वित्त में ऋण प्रदान करने की तकनीक आधुनिक है जो कि वर्तमान समय में कृषकों के लिए कृषि हेतु आसान ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं। ये ऋण

विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाओं द्वारा किसानों को उपलब्ध कराये जाते हैं। परंपरागत रूप से कृषकों को ऋण गांव के जमींदार, साहूकार, महाजन एवं परिवार जनों द्वारा मिल जाते थे, परंतु ये ऋण कृषकों के लिए काफी कठिनाइयों से भरे होते थे। इन ऋणों पर ब्याज भी अत्याधिक होता था, जिसे चुकाने में कई वर्ष लग जाते हैं। जिससे कृषकों को अपने जीविकोपार्जन में कठिनाई होती थी। परन्तु वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के वित्तीय संस्थाओं द्वारा कृषकों को ऋण, फसलो का बीमा, किसान क्रेडिट कार्ड आदि विभिन्न प्रकार की योजनाओं का लाभ मिल रहा है।

कृषि वित्त से आशय, निवेश किये जाने वाले धन की उस राशि जो कृषि उत्पादकता में वृद्धि में सहायक होती है। उत्पादकता में वृद्धि के लिए प्राप्त किया गया ऋण एवं उपभोग ऋण कृषकों की दक्षता में वृद्धि करने में सहायक होते हैं, किन्तु कृषकों पर ऋण का इतना भार रहा है, कि वुल्फ समिति ने कहा है कि, “भारतीय किसान ऋण के रूप में जन्म लेता है, अपने जीवन भर ऋणी रहता है, और ऋणी रह भर ही मर जाता है।” भारत में विभिन्न प्रकार के कृषि वित्त के स्रोत उपलब्ध हैं। यही स्रोत सीधी जिले में भी उपलब्ध हैं।

कृषि वित्त के स्रोत- सीधी जिले में कृषि वित्त के विभिन्न स्रोत उपलब्ध हैं। जो कि विभिन्न प्रकार के कृषि ऋण उपलब्ध कराते हैं। कृषि वित्त की आवश्यकता जैसे-अल्पकालीन, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. गैर संस्थागत स्रोत :-

1. ग्रामीण साहूकार तथा महाजन
2. व्यापारी एवं कमीशन एजेंट
3. मिश्र एवं संबंधी
4. जमींदार
5. आड़ितिये

2. संस्थागत स्रोत :-

1. सहकारी समितियां
2. विभिन्न प्रकार के बैंक

सभी बैंकों की शाखाएं सीधी जिले में कार्यरत हैं, और इनका संचालन जिले में यू.बी.आई. बैंक द्वारा किया जाता है। सभी बैंकों को यू.बी.आई. बैंक में कृषि संबंधी योजनाओं के बारे में रिपोर्ट करना पड़ता है। सीधी जिले में यू.बी.आई. बैंक लीड बैंक के रूप में कार्य करता है। यह बैंक सीधी जिले के कृषि विकास के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएं, ऋण जैसी सुविधाएं प्रदान करता है। सीधी जिले में यू.बी.आई. बैंक का विभिन्न वर्षों में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसे निम्न तालिका क्रमांक 01 में स्पष्ट है।

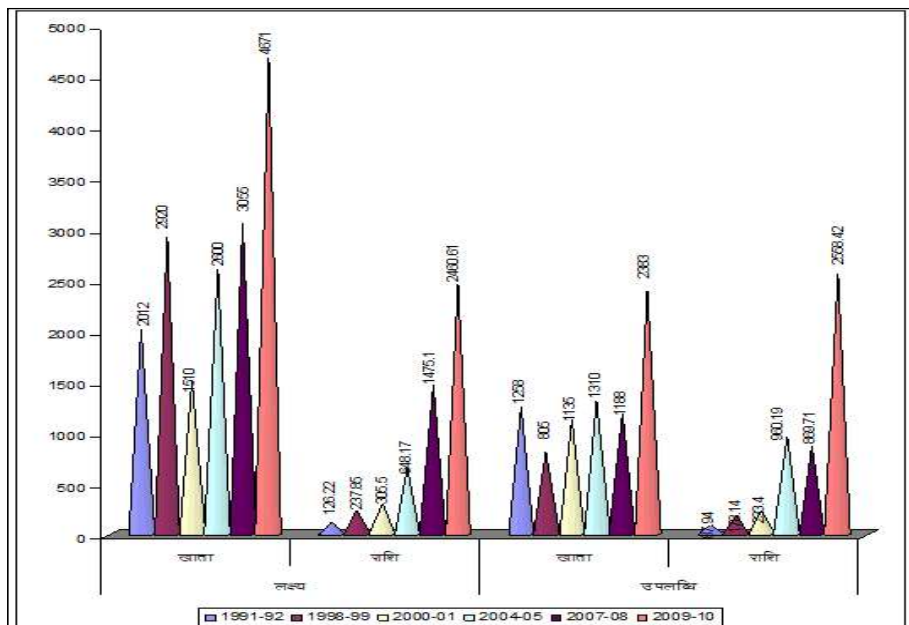
तालिका क्रमांक 01
सीधी जिले में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया द्वारा
कृषि क्षेत्र में विभिन्न वर्षों में प्रदत्त वित्तीय सुविधाएं

वर्ष	कुल अग्रिम राशि (लाख में)				उपलब्धित का प्रतिशत
	लक्ष्य		उपलब्धि		
	खाता	राशि	खाता	राशि	
1991-92	2012	126.22	1258	87.94	70
1998-99	2920	237.85	805	178.14	75
2000-01	1510	305.50	1135	233.40	76
2004-05	2600	648.17	1310	960.19	148.14
2007-08	3055	1475.10	1188	869.71	58.96
2009-10	4671	2460.61	2383	2558.42	103.98

स्रोत :- यूनियन बैंक ऑफ इंडिया अग्रणी जिला कार्यालय (सीधी) वार्षिक साख योजना (पत्रिका)

उपरोक्त तालिका क्रमांक 01 द्वारा स्पष्ट है कि जिले में यू.बी.आई. बैंक कृषि क्षेत्र के लिए प्रतिवर्ष लक्ष्य निर्धारित करता है और उन लक्ष्यों के पूर्ति के सतत् प्रयास भी किये जाते हैं। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1991-92 में कृषि क्षेत्र के लिए 2012 खाता धारकों के लिए निर्धारित लक्ष्य 126.22 लाख वितरण का लक्ष्य रखा गया, इसके विरुद्ध 1258 खाता धारकों को 87.94 लाख की राशि वितरित की गई और इस उपलब्धि का प्रतिशत 70 प्रतिशत रहा। वहीं वर्ष 1998-99 में लक्ष्य के अनुसार 2920 खाता धारकों को 237.85 लाख रुपये की राशि वितरित का लक्ष्य रखा गया।

सीधी जिले में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
द्वारा कृषि क्षेत्र में विभिन्न वर्षों में प्रदत्त वित्तीय सुविधाएं



जिसके विरुद्ध उपलब्धि में 805 खाता धारकों को 178.14 लाख रुपये वितरित किये गये और इस उपलब्धि का प्रतिशत 75 प्रतिशत रहा। वर्ष 2000-01 में 1510 खाता धारकों को 305.50 लाख रुपये की राशि वितरित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। जिसके विरुद्ध उपलब्धि में 1135 खाता धारकों को 233.40 लाख रुपये की राशि वितरित की गई और इस उपलब्धि का प्रतिशत 76 प्रतिशत रहा। वर्ष 2004-05 में 2600 खाता धारकों को 648.17 लाख रुपये की राशि वितरित करने का लक्ष्य रखा गया और इस लक्ष्य के विरुद्ध 1310 खाता धारकों को 960.19 लाख रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई। और इस उपलब्धि का प्रतिशत 148.14 प्रतिशत रहा। इसी प्रकार वर्ष 2007-08 में 3055 खाता धारकों को 1475.10 लाख रुपये की राशि उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया जिसके विरुद्ध 1188 खाता धारकों को 869.71 लाख रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई और इस उपलब्धिया प्रतिशत 58.96 प्रतिशत रहा।

वर्ष 2007-08 में उपलब्धि का प्रतिशत कम होने का कारण यह था कि वर्ष 2008 में जिले का विभाजन हो गया जिसके कारण सिंगरौली जिला अलग हो गया और गई खाता धारक भी कम हो गये। परन्तु आगे के वर्षों में लक्ष्य में कोई बड़ा अन्तर नहीं आया। वर्ष 2009-10 में 4671 खाता धारकों को 2460.61 लाख रुपये की राशि उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया जिसके विरुद्ध 2383 खाता धारकों को 2558.42 लाख रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई। और इस उपलब्धिया प्रतिशत 103.98 प्रतिशत रहा।

समंको से स्पष्ट होता है कि ऋण वितरण राशि में लगातार वृद्धि हुई है। लक्ष्य के विरुद्ध उपलब्धि लगभग सभी वर्ष में कम ही रही परन्तु वर्ष 2004-05 में वितरित राशि लक्ष्य से भी अधिक रही है।

अध्ययन में पाया गया है कि स्टॉफ की कभी, कार्य में शिथिलता अन्य बैंकों से प्रतिस्पर्धा और कृषकों की गरीबी तथा ऋण ग्रस्तता ने उन्हें नया ऋण लेने में पीछे किया है। बड़े कृषक ऋण लेने के लिए उत्साहित हुए हैं। कृषि की लाभ दायकता बढ़ने पर कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए अनुप्रेरणा बढ़ी है आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि कृषि ऋणों में लगातार वृद्धि हुई है। अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण की प्रवृत्ति ग्रामीण परिक्षेत्र में अधिक देखने में आयी है असंगठित वित्तीय क्षेत्र का ग्रामीण समाज पर प्रभुत्व अभी भी बरकरार है। संस्थागत वित्तीय सुविधाएं प्रदान करने वाले बैंकिंग प्रतिष्ठानों की उपलब्धता के बावजूद कृषक इस प्रकार के ऋण जाल में फंसे हुए हैं। राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंको द्वारा ग्रामीण साख को विशेष महत्व दिया गया, इसके बावजूद कृषक इन बैंको की ओर आकर्षित नहीं हो पा रहे हैं। ऋण प्रणाली में सरलता लाकर ही बैंक विकास अर्जित कर सकते हैं। यदि ग्रामीण क्षेत्र वित्तीय रूप से सुदृढ़ होगा तो कृषि बाजार विकसित और मजबूत होगा जो औद्योगिक बाजार को भी विकसित करेगा।

सीधी जिले में विभिन्न वित्त पोषक एजेंसियां एवं कृषि क्षेत्रों में इन एजेंसियों द्वारा प्रदत्त ऋणों की प्रगति- सीधी जिले में प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) के विकास में बैंको की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बैंक ऋण प्रदान करके कृषि विकास में गति प्रदान करते हैं। ये बैंक जिले के वित्तीय कार्यों को सम्पादित करने के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों

में भी बैंकिंग सुविधाओं को उत्तरोत्तर तरीके से उपलब्ध करा रही है। साथ ही ये बैंक अपनी ग्रामीण शाखा को भी कोर बैंकिंग सिस्टम से जोड़ने का प्रयास कर रहा है।

सीधी जिले का प्रमुख व्यवसाय कृषि ही रहा है, और आज भी है। यह कहा जाये कि वर्तमान में इसकी उपयोगिता में कोई कमी नहीं आई है। जिले की कृषि अर्थव्यवस्था के विकास में जिले की कुल श्रम शक्ति का 58 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष, व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। श्रम शक्ति का ये 58 प्रतिशत भाग जिले की सम्पूर्ण उत्पादन व्यवस्था को प्रभावित करता है। द्वितीयक, एवं तृतीयक क्षेत्र में कार्यरत उत्पादन इकाइयां और सेवायें कृषि से ही प्रभावित रहती हैं। जिस वर्ष कृषि उत्पादन अधिक होता है। सम्पूर्ण जिले में व्यापारिक दशाएं उन्नत रहती हैं। कृषि उत्पादन में गिरावट अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित करती है। विकास के पथ पर तेजी से अग्रसर कृषि उन्नत, किस्म के बीज, रासायनिक खाद, सिंचाई के आधुनिक साधन और बाजार की सुदृढ़ता से प्रभावित रहते हैं। सीधी जिले में वाणिज्यिक बैंक, ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक एवं प्राइवेट बैंक सभी हैं। और इन्हीं बैंकों की शाखाएं शहर में तथा सभी विकास खण्डों में कार्यरत हैं।

(अ) वाणिज्यिक बैंक- सीधी जिले में अधिकांशतः व्यापारिक (वाणिज्यिक) बैंक कार्यरत हैं। व्यापारिक बैंक कृषि कार्य के लिये रिसायती ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराते हैं। जिससे कृषि बिल की समस्या बड़ी आसानी से सुलझ जाती है। सीधी जिले में वर्तमान में 08 व्यापारिक बैंकों की लगभग 57 शाखायें नगरीय और ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत हैं इनमें से लगभग 10 बैंक नगरीय क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं जबकि शेष बैंक नगरीय एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। सीधी जिले में कार्यरत विभिन्न प्रकार के व्यापारिक बैंक इस प्रकार हैं।

(1) यूनियन बैंक ऑफ इंडिया- सीधी जिले में कार्यरत यूनियन बैंक ऑफ इंडिया जिले का प्रमुख बैंक है। यह जिले का अग्रणी जिला कार्यालय भी है। वर्तमान में इस बैंक की जिले में 10 शाखाएं कार्यरत हैं।

(2) भारतीय स्टेट बैंक- सीधी जिले में भारतीय स्टेट बैंक दूसरा प्रमुख बैंक है। यह बैंक कृषि हेतु कई प्रकार के ऋण प्रदान करने है। जो कि कृषकों को कम ब्याज दर पर भी उपलब्ध कराते हैं। इस बैंक की वर्तमान में जिले में 3 शाखाएं कार्यरत हैं।

(3) इलाहाबाद बैंक- यह भी वाणिज्यिक बैंक का प्रमुख बैंक है जो कि विभिन्न प्रकार के ऋण कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराते हैं। वर्तमान में जिले में इस बैंक की 5 शाखाएं कार्यरत हैं।

(4) पंजाब नेशनल बैंक- सीधी जिले में पंजाब नेशनल बैंक की 2 शाखाएं कार्यरत हैं। यह बैंक भी वाणिज्यिक बैंक है।

(5) सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया- सीधी जिले में सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया की 1 शाखा कार्यरत है। यह बैंक भी वाणिज्यिक बैंक की ही शाखा है।

(ब) ग्रामीण बैंक- ग्रामीण बैंकों की स्थापना मुख्य रूप से कृषि हेतु ही की गई है। इन बैंकों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) के लिए कई प्रकार के ऋण सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। इन बैंकों का प्रमुख लक्ष्य ही कृषि के विकास में अपना योगदान देना है। इन बैंकों का सीधा संपर्क कृषकों से होता है। और ये बैंक कृषकों को विभिन्न कृषि संबंधित

योजनाओं हेतु ऋण उपलब्ध कराते हैं। सीधी जिले में इस बैंक के अन्तर्गत रीवा-सीधी ग्रामीण बैंक के नाम से कार्यरत है।

रीवा-सीधी ग्रामीण बैंक- सीधी जिले में इन बैंको की भूमिका महत्वपूर्ण है। जिले में वर्तमान में रीवा-सीधी ग्रामीण बैंक की 21 शाखाएं कार्यरत हैं। जिनका सीधा संपर्क ग्रामीण विकास से है। और मुख्य रूप से कृषि हेतु ऋण उपलब्ध कराना है। इन बैंको द्वारा उपलब्ध ऋणों की ब्याज दरें कम होती हैं। जिससे की कृषकों को ऋण लेने में सुविधा होती है।

(स) सहकारी बैंक- भारत में सहकारी अधिनियम के तहत सहकारी बैंक और भूमि विकास बैंकों द्वारा कृषि उत्पादन के लिए कृषि वित्त का प्रमुख स्रोत है। सीधी जिले में से सहकारी बैंक अपनी शाखाओं के माध्यम से कृषकों को वित्तीय सुविधायें निरंतर प्रदान कर रहे हैं।

(1) जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक- सीधी जिले में वर्तमान में जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक की 7 शाखाएं कार्यरत हैं। जो कि कृषकों को सभी सुविधाओं के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं। ये बैंक हर वर्ष अपनी ऋण नीति बनाता है जो कि कृषको व कृषि उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि करने हेतु कृषकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर बनाई जाती है। जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक कृषकों को अल्पकालीन मध्यकालीन व दीर्घकालीन सभी प्रकार के ऋण उपलब्ध कराते हैं। जिनमें मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋण विभिन्न प्रकार की योजनाओं व आवश्यकताओं हेतु दिये जाते हैं। मध्यकालीन ऋण कृषि हेतु जैसे - बैल क्रय हेतु, लघु सिंचाई योजनाओं हेतु, पम्प प्रेसर, उड़ावनी, पंखा, आटा चक्की, चारा कटाई हेतु उपलब्ध कराये जाते हैं।

(2) जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक :-

इस बैंक की स्थापना विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की गई है। सीधी जिले में वर्तमान में जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की 4 शाखाएं कार्यरत हैं। इन बैंको का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का चहुँमुखी विकास करना है। जिसमें कृषि का विकास एवं उत्पादन में वृद्धि में सहयोग देना प्रमुख है इस बैंक का सीधी संपर्क ग्रामीण कृषकों से होता है।

(स) प्रायवेट बैंक- इन बैंकों की कृषि क्षेत्र में कोई विशेष योगदान नहीं है। इन बैंकों में केवल बड़े कृषक ही ऋण लेते हैं। इसका प्रमुख कारण है कि इन बैंको से मिलने वाले ऋणों पर ब्याज दर अधिक होती है। सीधी जिले में निम्न प्रायवेट बैंक हैं।

(1) आई.सी.आई.सी.आई बैंक- बैंक की जिले में वर्तमान में एक ही शाखा कार्यरत है।

(2) एक्स बैंक- इस बैंक की भी एक ही शाखा कार्यरत है।

(3) एच.डी.एफ.सी. बैंक- सीधी जिले में वर्तमान समय में एक ही शाखा कार्यरत है।

सीधी जिले में मात्र तीन ही प्रायवेट बैंक हैं। सीधी जिले में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदत्त वित्तीय सुविधाएं विभिन्न वर्षों में भिन्न-भिन्न रही हैं।

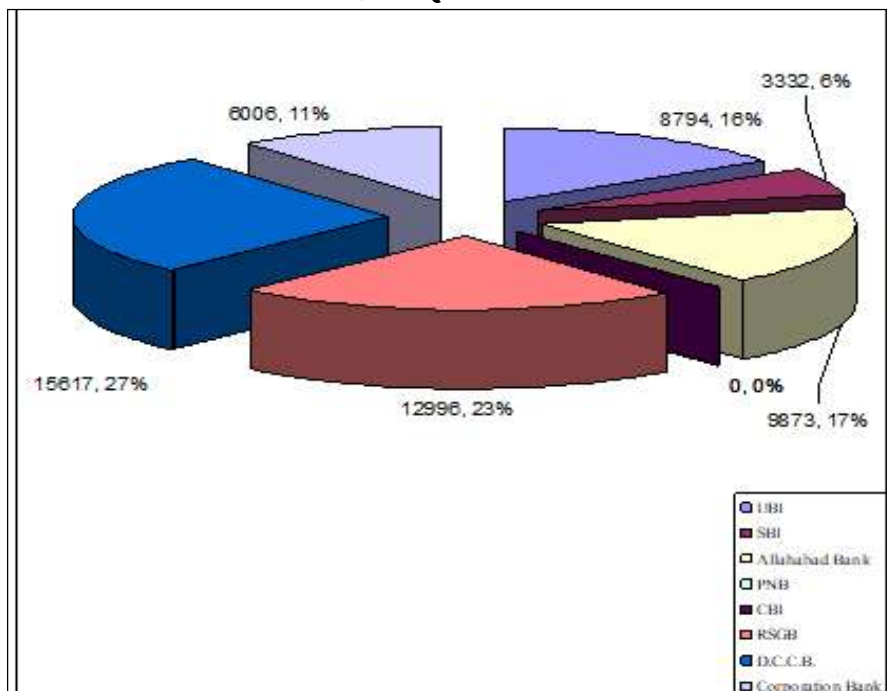
तालिका क्रमांक 02

विभिन्न बैंकों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) में ऋणों की स्थिति राशि (हजार में)

बैंकों के नाम	वर्ष				
	1991-92	1998-98	1999-2000	2006-07	2009-10
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया	8794	17814	69475	129826	230000
भारतीय स्टेट बैंक	3332	8203	34309	46830	106830
इलाहाबाद बैंक	9873	9927	32180	72100	180000
पंजाब नेशनल बैंक	-	887	3015	13758	81000
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया	-	-	-	-	30000
रीवा सीधी ग्रामीण बैंक	12996	12941	93872	81870	866260
जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक	15617	55010	119067	92878	790000
जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक	6006	6533	47860	90	-
योग	56618	111315	399778	437262	2284090

स्रोत - यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया (आग्रणी जिला कार्यालय) सीधी वार्षिक साख योजना
तालिका क्रमांक 02 द्वारा स्पष्ट है कि सीधी में विभिन्न बैंकों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) के लिए उपलब्ध कराये गये ऋणों में वृद्धि हुई है। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1991-92 में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया (लीड बैंक) द्वारा कृषि क्षेत्र को 8794 हजार के ऋण उपलब्ध कराये गये जो कि वर्ष 1998-99 में बढ़कर 17814 हजार रुपये की वृद्धि हुई और इस वृद्धि का प्रतिशत 202.56 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी प्रकार वर्ष 1999-2000 में यू.बी.आई. बैंक द्वारा कृषि को 69475 हजार रुपये के ऋण उपलब्ध कराये गये, जो कि वर्ष 2006-07 में बढ़कर 129826 हजार रुपये हो गये।

विभिन्न बैंकों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) में ऋणों की स्थिति राशि (हजार में)



वर्ष 2008 में विभाजन के पश्चात् ऋण वितरण में कोई अन्तर नहीं हुआ है और यह वृद्धि करके वर्ष 2009-10 में 2,30,000 हो गया। इसी क्रम में भारतीय स्टेट बैंक द्वारा वर्ष 1991-92 में कृषि क्षेत्र में 3332 हजार रुपये के ऋण वितरित हुए जो कि वर्ष 1998-99 में बढ़कर 8203 हजार रुपये हो गया। और यह वृद्धि लगातार बनी हुई है। वर्ष 1999-2000 में भारतीय स्टेट बैंक द्वारा प्रदत्त ऋण 34309 हजार रुपये उपलब्ध कराये गये, जो कि वर्ष 2006-07 में बढ़कर 46830 हजार रुपये हो गये। वर्ष 2008 में जिले के विभाजन, के पश्चात् भारतीय स्टेट बैंक के ऋणों में भी कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया। वर्ष 2009-10 में यह बढ़कर 106830 हजार रुपये हो गया।

इलाहाबाद बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र को वर्ष 1991-92 में 9873 हजार रुपये के ऋण उपलब्ध कराये गये जो कि वर्ष 1998-99 में बढ़कर 9927 हजार रुपये हो गया। इलाहाबाद बैंक द्वारा दिये गये ऋणों 1991-92 से 1998-99 के बीच में कोई बड़ा अन्तर देखने को नहीं मिला। इन वर्षों में नाम मात्र को ही ऋण राशि में वृद्धि हुई है। वर्ष 1999-2000 में कृषि क्षेत्र हेतु 32180 हजार रुपये की राशि वितरित की गई जो कि वर्ष 2006-07 में यह राशि बढ़कर 72100 हजार रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई। वर्ष 2008 में विभाजन के पश्चात् इलाहाबाद बैंक के ऋणों में भी कोई बड़ा अन्तर देखने को नहीं मिला। वर्ष 2009-10 में यह आंकड़ा 1,80,000 हजार रुपये की राशि तक पहुँच गया।

पंजाब नेशनल बैंक द्वारा प्राथमिक क्षेत्र कृषि को वर्ष 1991-92 में कोई ऋण नहीं दिया गया क्योंकि 1991-92 में इस बैंक की कोई शाखा नहीं थी। वर्ष 1998-99 में पंजाब नेशनल बैंक ने कृषि क्षेत्र के लिए 887 हजार रुपये की राशि का ऋण उपलब्ध कराया गया। वर्ष 1999-2000 में यह ऋण बढ़कर 3015 हजार रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई जो कि वर्ष 2006-07 में यह ऋण राशि बढ़कर 13758 हजार रुपये की राशि वितरित की गई। वर्ष 2008 में जिले के विभाजन के पश्चात् पंजाब नेशनल बैंक के ऋणों में कोई अंतर नहीं आया। वर्ष 2009-10 में पंजाब नेशनल बैंक द्वारा 81000 हजार रुपये की राशि वितरित की गई।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया के वर्ष 1991-92, 1998-99, 1999-2000, 2006-07 के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। वर्ष 2009-10 में इस बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र के लिए 30,000 हजार रुपये की राशि वितरित की गई।

वर्ष 1991-92 में रीवा-सीधी ग्रामीण बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र हेतु 12996 हजार रुपये की राशि वितरित की गई जो कि वर्ष 1998-99 में यह कुछ घटकर 12941 हजार रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई। वर्ष 1999-2000 में यह ऋण बढ़कर 93872 हजार रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई जो कि वर्ष 2006-07 में घटकर 81870 हजार रुपये की राशि वितरित हुई। वर्ष 2008 जिले के विभाजन के पश्चात् रीवा-सीधी ग्रामीण बैंक के ऋणों में कोई अन्तर नहीं आया बल्कि यह और बढ़कर अधिक हो गया। वर्ष 2009-10 में रीवा-सीधी ग्रामीण बैंक के द्वारा प्रदत्त ऋण बढ़कर 866260 हजार रुपये की राशि वितरित की गई।

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक के द्वारा कृषि क्षेत्र के लिए वर्ष 1991-92 में 15617 हजार रुपये की राशि वितरित की गई जो कि वर्ष 1998-99 में यह बढ़कर 55010 हजार रुपये की राशि वितरित की गई। इसी प्रकार वर्ष 1999-2000 में इस बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र के लिए 119067 हजार रुपये की राशि वितरित की गई जो कि वर्ष 2006-07 में घटकर 92878 हजार रुपये की राशि वितरित की गई। वर्ष 2008 में जिले के विभाजन के पश्चात् जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक के ऋणों में कोई अन्तर नहीं आया। वर्ष 2009-10 में यह बढ़ कर 790,000 रुपये की राशि वितरित की गई।

जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र के लिए वर्ष 1991-92 में 6006 हजार रुपये के ऋण उपलब्ध कराये गये जो कि वर्ष 1998-99 में यह बढ़कर 6533 हजार रुपये वितरित किये गये। इसी प्रकार वर्ष 1999-2000 में जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा 47860 हजार रुपये की राशि वितरित की गई जो कि वर्ष 2006-07 में 90 हजार के ऋण राशि वितरित की गई।

इन सभी बैंकों द्वारा वर्ष 1991-92 में 56618 हजार रुपये की राशि वितरित की गई। जो कि वर्ष 1998-99 में बढ़कर 111315 रुपये की राशि वितरित की गई। वर्ष 1999-2000 में यह राशि बढ़कर 3,99,718 रुपये की राशि वितरित की गई। वर्ष 2006-07 में इन सभी बैंकों की राशि बढ़कर 437262 रुपये वितरित हुए जो कि वर्ष 2009-10 में बढ़कर 2284090 रुपये की राशि वितरित हुई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सीधी जिले में विभिन्न बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र हेतु विभिन्न सुविधाएं प्राप्त करने हेतु ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं। जिनका कृषक भरपूर लाभ उठा रहे है, और इन योजनाओं के माध्यम से उत्पादन में भी वृद्धि हो रही है। जो कि कृषकों की आय बढ़ाने में सहायक होती है, और ऋणों को चुकाने में समर्थ बनाती है।

कृषि क्षेत्र में जब से यंत्रीकरण हो गया है, अर्थात् विभिन्न यंत्रों का प्रयोग बढ़ा है। तब से कृषकों को ऋणों की आवश्यकता भी बढ़ी है। यंत्रीकरण के पश्चात् ट्रैक्टरों की मांग, एवं उपयोगिता, सिंचाई हेतु पंपों की आवश्यकता विभिन्न प्रकार के बीज खाद व उर्वरकों की आवश्यकता में निरंतर वृद्धि हुई है।

परंपरागत कृषि के दौरान बड़े ऋणों की आवश्यकता कम होती थी, क्योंकि कृषक बैलों के माध्यम से जुताई, हाथों से कटाई, बीज की बुवाई, सिंचाई आदि कार्य परंपरागत तकनीक से करते थे। इसलिए किसानों को अधिकांशतः उपभोग ऋण अधिक पड़ता था जबकि उत्पादक ऋण कम होते थे। और ये ऋण भी गांव के ही साहूकार, महाजन व जमींदारों से प्राप्त कर लिये जाते थे।

आधुनिक कृषि के समय में कृषि के यंत्रीकरण होने के पश्चात् कृषकों की आवश्यकताएं एवं कृषि से अधिक लाभ मिलने की उम्मीद से ऋणों की आवश्यकता धीरे-धीरे बढ़ती चली जा रही है। जिसमें सरकार भी अपना सम्पूर्ण योगदान दे रही है। विभिन्न बैंक विभिन्न योजनाओं के माध्यम से कृषकों को ऋण प्रदान करते हैं।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. डॉ. बी.एल. माथुर, कृषि वित्त, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, आगरा
2. डॉ. मामोरिया एवं जैन, भारत की आर्थिक समस्याएं, साहित्य भवन आगरा
3. दूधनाथ सिंह, रामायण लाल, कृषि अर्थशास्त्र तथा भारत की कृषि समस्याएं
4. डॉ. बी.एल. राव, एन.एस. कोंडावार, मध्यप्रदेश का आर्थिक विकास, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी

स्वतंत्रता-संग्राम में दलित नायकों का योगदान: एक समीक्षात्मक अध्ययन

• आशीष कुमार

सारांश- भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में दलित नायकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम ने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक बढ़ाया। इस आन्दोलन में पहली बार समाज के प्रत्येक वर्ग, सम्प्रदाय व जाति के लोगों ने संयुक्त रूप से संघर्ष किया। जिसमें दलित समाज की भागीदारी प्रबल रही थी। मेरा यह शोध आलेख इन्हीं दलित नायकों पर आधारित है।

मुख्य शब्द- आन्दोलन, दलित समाज, जाति व्यवस्था, परंपरा, संस्कृति, संक्रमण, भागीदारी, विद्रोह, दस्तावेज, देशप्रेम, कालखण्ड, हिन्दू, मुसलमान

परिचय- किसी राज्य या देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास उसकी अमूल्य निधि होता है। उस राज्य व देश की जनता के लिए देशभक्तों का त्याग और बलिदान, देशभक्तों की सेवा सदैव प्रेरणा के स्रोत का कार्य करती है तथा देशप्रेम एवं एकता को प्रबल बनाती है। किसी भी महान संग्राम की रचना कुछ जातियों एवं समाज के कुछ लोगों द्वारा नहीं की जा सकती है। इसमें हर वर्ग के व्यापक समूहों की भागीदारी की जरूरत पड़ती है। भारतीय समाज में दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं। इसलिए एक महान विद्रोह बिना दलित भागीदारी से कैसे लड़ा गया होगा, यह सोचना कठिन है। कुछ लोगों का मानना है कि सन सत्तावन के विद्रोह में दलित की भागीदारी नहीं के बराबर थी और थी भी तो सामन्तों के नौकर-चाकर के रूप में। दलित समाज के बारे में लगभग एक मिथक के रूप में राज्य सत्ता एवं सत्ता-केन्द्रित विकासपरक विमर्शों द्वारा यह स्थापित कर दिया गया है, दलित सदा से निरीह एवं दलित रहा है। अतः वह सन सत्तावन के संग्राम में प्रभावी भूमिका कैसे निभा सकता था।¹

परन्तु यह सर्वविदित है कि इतिहास के विभिन्न कालखण्ड दलित नायकों के संघर्ष का कालखण्ड रहे हैं। आठवीं से तेरहवीं शताब्दी तक प्राचीन काल का राजत्व कमजोर हो रहा था और मध्यकाल की राजशाही वजूद में पूरी तरह आ नहीं पाई थी, यह एक संक्रमण का दौर था। इस दौर में दलित जाति के अनेक दुस्साहसी नायक हमारी लोकगाथा के नायक बने, जैसे- कुंवर विजयमल जो जाति का दुसाध माना जाता है,

दीनाभद्री मुसहर लड़ाके थे, चुहरमल सलहेश आदि दलित जाति के नायक थे। इन लोकगाथाओं को पढ़ने से जाहिर होता है कि इन जातियों में वीर एवं दुस्साहसी लोग थे, जिन्होंने अपने राज तक कायम किए। प्रसिद्ध नृविज्ञानी कुंवर सुरेश सिंह ने लिखा है कि तेरहवीं शताब्दी में अयोध्या का राजा निम्न जाति का था, शायद डोम जाति का था। मध्य उत्तरप्रदेश एवं अवध के पासी राजाओं- डालदेव, बिजली पासी, सुहेलदेव इत्यादि के बारे में अंग्रेज नृविज्ञानियों के लेखन एवं सेंसस गजेटिचर्स में भी जिक्र आते हैं। कर्नल नील में 1857 के विद्रोह के संबंध में अपने अत्यन्त रोचक संस्मरण में लिखा है कि किसप्रकार उससमय अंग्रेजी सेना के लिए पासी वीर एक चुनौती बन गये थे।²

आज दलित इतिहासकार अपने नायकों की पहचान कर रहे हैं, जिनका सम्बंध 1857 के स्वतंत्रता-संघर्ष से रहा था। इस सम्बंध में मातादीन भंगी का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने अपने मन-मस्तिष्क में उपजे सवाल से 10 मई 1857 को मेरठ छावनी में सैनिक विद्रोह का बिगुल बजाया। वस्तुतः इतिहास में चर्चित नायकों के प्रेरणा स्रोत बने ये दलित नायक। राष्ट्रभक्ति एवं देशभक्ति की भावना के अतिरिक्त यह ऐसा आन्दोलन रहा, जिसमें जनमानस की भागीदारी बनी। यह संघर्ष ऐसे समय में हुआ जब तत्कालीन नरेश अपने सिंहासन की रक्षाहेतु संघर्षरत थे, दलित सर्वहारा किसान से किसी नरेश का कोई सरोकार न था।

देश की आजादी का पहला स्वतंत्रता संग्राम 1857 का माना जाता है लेकिन अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल 1780-84 में ही बिहार के सन्थाल परगना में तिलका मांझी की अगुवाई में शुरू हो गया था। तिलका मांझी युद्ध कला में निपुण और एक अच्छे निशानेबाज थे। इस वीर सपूत ने ताड़ के पेड़ पर चढ़कर तीर से कई अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया था। इसके बाद महाराष्ट्र, बंगाल और उड़ीसा प्रांत में दलित-आदिवासियों ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत शुरू कर दी। इस विद्रोह में अंग्रेजों से कड़ा संघर्ष हुआ जिसमें अंग्रेजों को मुंह की खानी पड़ी। सिद्ध सन्थाल और गोची मांझी के साहस और वीरता से अंग्रेज कांपते थे। बाद में अंग्रेजों ने इन वीर सेनानियों को पकड़कर फांसी पर चढ़ा दिया। अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का बिगुल 1804 में बजा छतारी के नवाब नाहर खां अंग्रेजी शासन के कट्टर विरोधी थे। 1804 और 1807 में उनके पुत्रों ने अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया। इस युद्ध में जिस व्यक्ति ने उनका भरपूर साथ दिया वह उनका परम मित्र उदईया था, जिसने अकेले ही सैकड़ों अंग्रेजों को मौत के घाट उतारा बाद में उदईया पकड़ा गया और उसे फांसी दे दी गई। उदईया की गौरव गाथा आज भी क्षेत्र के लोगों में प्रचलित है। अगर 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की बात करें तो इसकी शुरूआत मूलतः मातादीन भंगी के उद्गारों से होती है। दरअसल 1857 के “सिपाही विद्रोह” जिसके नायक के रूप में मंगल पांडे को माना जाता है, वह अंग्रेजी सेना के सिपाही थे। मातादीन छावनी की कारतूस फैक्ट्री में सफाई कर्मचारी थे। एक दिन मातादीन ने मंगल पांडे से पानी पीने के लिए लोटा मांगा तो मंगल पांडे ने साथ काम कर रहे दलित सिपाही को लोटा देने से मना कर दिया। तब अपमानित मातादीन ने फटकारते हुए कहा, बड़ा आया है ब्राह्मण का बेटा.... जिन कारतूसों का तुम उपयोग करते हो उन पर गाय और सूअर की चर्बी लगी होती है। जिसे तुम अपने दांतों से तोड़ कर बंदूक में भरते हो क्या उस समय तुम्हारा धर्म भ्रष्ट नहीं होता, इस

तंज का मंगल पांडे के दिमाग पर गहरा असर पड़ा। अंग्रेजों की इस करतूत को मंगल पांडे ने हिन्दू और मुस्लिम सिपाहियों की बैठक में बड़ी गंभीरता के साथ उठाया। मातादीन के इसी तंज ने सिपाहियों को जगा दिया। यहीं से अंग्रेजों के प्रति सिपाहियों में नफरत पैदा होने लगी। सैनिकों ने कारतूस को दांत से खींचने से मना कर दिया। अंग्रेज इस बात से बौखला गए, जिससे दलित मातादीन और मंगल पांडे को पकड़ कर फांसी दे दी गई। इससे बढ़कर विडंबना और क्या हो सकती है कि इतिहास में मंगल पांडे का नाम शहीदों में सबसे ऊपर है लेकिन आजादी का मंत्र फूंकने वाले मातादीन भंगी को हिन्दू इतिहास में कहीं स्थान नहीं मिल सका, क्योंकि वह दलित क्रांतिकारी योद्धा था।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में शहीद होने वाले चेताराम जाटव और बल्लू मेहतर को इतिहासकारों ने भुला दिया। उन्होंने आजादी के लिए न केवल फिरंगियों से टक्कर ली बल्कि देश की आन-बान और शान के लिए कुर्बान हो गए। क्रांति का बिगुल बजते ही देश भक्त चेताराम जाटव और बल्लू मेहतर भी 26 मई 1857 को सोरों (एटा) की क्रांति की ज्वाला में कूद पड़े। वे इस क्रांति की अगली कतार में खड़े रहे। फिरंगियों ने दोनों दलित क्रांतिकारियों को पेड़ में बांधकर गोलियों से उड़ा दिया और बाकी लोगों को कासगंज में फांसी दे दी गई। इतना ही नहीं, 1857 की जौनपुर क्रांति असफल नहीं होने पर जिन 18 क्रांतिकारियों को बागी घोषित किया गया उनमें सबसे प्रमुख बांके चमार था, जिसे जिंदा या मुर्दा पकड़ने के लिए ब्रिटिश सरकार ने उस जमाने में 50 हजार का इनाम घोषित किया था। अंत में बांके को गिरफ्तार कर मृत्यु दंड दे दिया गया। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने भी न केवल बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया बल्कि प्राणों की आहुति भी दी। वीरांगना झलकारी बाई का नाम हमेशा इतिहास में अंग्रेजों से लोहा लेने और शहीद होने वालों में याद किया जाता रहेगा। वीरांगना झलकारी बाई के पति पूरन कोरी राजा गंगाधर राव की सेना में मामूली सिपाही थे। झांसी में जब सिपाही क्रांति हुई तो उसका संचालन पूरन कोरी ने ही किया। साहित्य से यह स्पष्ट है कि झलकारी बाई और लक्ष्मीबाई की सकल-सूरत एक दूसरे से काफी मिलती जुलती थी, इस लिए अंग्रेजों ने झलकारीबाई को ही रानी लक्ष्मीबाई समझकर काफी देर तक लड़ते रहे। बाद में झलकारीबाई शहीद हो गई लेकिन इतिहासकारों ने झलकारीबाई के योगदान को हाशिए पर रखकर रानी लक्ष्मीबाई को ही वीरांगना का ताज दे दिया।

वीरांगना ऊदादेवी के संघर्ष और बलिदान को देखें तो उनसे संबंधित समूचा घटनाक्रम अधिक अर्थपूर्ण लगता है तथा उसके नए आयाम उभर कर सामने आते हैं। बहुत से लोगों के लिए यह रोमांचक बलिदान इस कारण महत्वपूर्ण हो सकता है कि ऐसा साहसिक कारनामा एक स्त्री ने किया। बहुत से लोग केवल इस कारण गर्व से मस्तक ऊंचा कर सकते हैं कि उस बलिदानी, -ढ़ संकल्पी महिला का सम्बन्ध दलित वर्ग से था। दूसरे लोग मात्र इसी कारण इस महाघटना के अचर्चित रह जाने को बेहतर मान सकते हैं। वे इसके लिये ठोस प्रयास भी करते रह सकते हैं, बल्कि किया भी है। 16 नवम्बर 1857 को लखनऊ के सिकन्दरबाग चौराहे पर घटित इस अपने ढंग के अकेले बलिदान तथा इसकी पृष्ठभूमि में सक्रिय अभिन्न पराक्रम को इस कारण अधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है कि इस घटना मात्र से समूचे प्रथम स्वाधीनता संग्राम को न केवल नयी गरिमा मिलती है

बल्कि उसके अपेक्षितविमर्श से वंचित रह गये कुछ पक्षों पर व्यापक विचार के अवसर भी उपलब्ध होते हैं। ऊदादेवी को इतिहास के पन्नों से दूर ही रखा गया। वीरांगना ऊदादेवी का इतिहास सामने लाने का काम पासी रत्न कहे जाने वाले राम लखन ने किया। कई सालों के शोध और इतिहासकारों से संपर्क के बाद वीरांगना ऊदादेवी का इतिहास उभर कर सामने आया। शहीद वीरांगना ऊदादेवी के संदर्भ में सबसे पहले लंदन की इंडियन हाऊस लाइब्रेरी में 1857 के गदर से संबंधित कुछ दस्तावेज व अंग्रेज लेखकों की पुस्तकें प्राप्त हुईं जिसके अनुसार ऊदादेवी नवाब वाजिद अली शाह की बेगम हजरत महल की महिला सैनिक दस्ते की कप्तान थीं। इनके पति का नाम मक्का पासी था। जो लखनऊ के गांव उजरियांव के रहने वाले थे। अंग्रेजों ने लखनऊ के चिनहट में हुए संघर्ष में मक्का पासी और उनके तमाम साथियों को मौत के घाट उतार दिया था। पति की मौत का बदला लेने के लिए वीरांगना ऊदादेवी 16 नवंबर 1857 सिकंदर बाग (लखनऊ) में एक पीपल के पेड़ पर चढ़कर 36 अंग्रेज फौजियों को गोलियों से भून दिया था और बाद में खुद भी शहीद हो गई थीं। इस घटना का पूरा उल्लेख ब्रिटिश फौज के सार्जेंट फोर्वेस ने अपनी पुस्तक में किया है। वीरांगना ऊदादेवी का इतिहास लखनऊ के एटलस और एनबीआरआई के म्यूजियम में तस्वीरों के माध्यम से आज भी देखा जा सकता है। वीरांगना ऊदादेवी विश्व की पहली महिला हैं जिन्होंने 36 अंग्रेज सैनिकों को मार डाला था लेकिन इतिहासकारों ने ऐसी विश्व स्तरीय शहीद दलित महिला को नजर अंदाज कर दिया। दलित समाज की महाबीरी देवी भंगी को तो आज भी बहुत कम लोग जानते हैं, मुजफ्फरपुर की रहने वाली महाबीरी को अंग्रेजों की नाइंसाफी बिल्कुल पसंद नहीं थी। अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए महाबीरी ने 22 महिलाओं की टोली बनाकर अंग्रेज सैनिकों पर हमला कर दिया। अंग्रेजों को गांव देहात में रहने वाली दलित महिलाओं की इस टोली से ऐसी उम्मीद नहीं थी। अंग्रेज महाबीरी के साहस को देखकर घबरा गए थे। महाबीरी ने दर्जनों अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया और उनसे घिरने के बाद खुद को भी शहीद कर लिया था।

ऐसे में मातादीन भंगी ने पानी पीने के लिए दो नम्बर पलटन के सिपाही मंगल पाण्डे से पीतल का लोटा मांगा। इस दुस्साहसिक कार्य हेतु मंगल पाण्डे के फटकार लगाने पर मातादीन भंगी ने चिढ़ाते हुए कहा कि बहुत जल्द ही तुम्हारी पंडिताई निकल जाएगी। जब तुम दाँत से सूअर और गाय की चर्बी से बने कारतूस काटकर बंदूक में भरकर चलाओगे। इस घटना के बारे में कैम्टन राइट ने एक पत्र मेजर बॉटीन के नाम 22 जनवरी 1857 को लिखा था। मातादीन नए कारतूस बनाने वाली फैक्ट्री दमदम में नौकर था, इसलिए उसकी बात मान ली गई। यह बात आग की तरह फैल गई। तत्कालीन परिस्थितियों में जब एक अछूत जाति की आवाज भी भोजन करते समय एक ब्राह्मण पसन्द नहीं करता था, ऐसे समय में पानी पीने के लिए लोटा माँगना एक साहसिक कार्य था। इस घटना के पश्चात् अंग्रेज अफसर ने मातादीन भंगी को फाँसी पर लटका दिया। 1857 के स्वतंत्रता-संग्राम का श्रेय भले ही मंगल पाण्डे और रानी लक्ष्मीबाई को दिया जाता हो, परन्तु उसके पीछे प्रेरणा स्रोत मातादीन भंगी एवं झलकारी बाई थी।³

बिहार और उत्तरप्रदेश के गाँवों में कई ऐसे छोटे मंदिर और थान (पूजा स्थल) हैं, जिन्हें लोग विशेषकर दलितों के बीच काफी पवित्र माना जाता है। इन स्थलों के इतिहास

में जाने से पता चलता है कि वे 1857 में शहीद हुए दलितों की स्मृति में बनाए गए हैं, जो समय के साथ पूजा स्थल में बदल गए और उन्हें भगवान का दर्जा दे दिया। उदाहरण स्वरूप उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ जिले का एक गाँव है मझौवा। इस गाँव में चर्मकार, पासी, माली और धोबी आदि जाति के लोग बड़ी संख्या में रहते हैं। गाँव के एक खेत में सीमेंट के चार पत्थर गड़े हैं। उन्हें लोग शहीद बाबा कहते हैं। गाँव के स्कूल शिक्षक के अनुसार इस गाँव की चर्मकार जाति के चार लोग 1857 के गदर में शहीद हुए थे, जो गाँव वाले के सपने में आने लगे। गाँव वाले उनकी पूजा करने लगे उसके बाद उन्हें देवता का दर्जा दे दिया गया। इसके साथ ही ऐतिहासिक दस्तावेज को खंगालने पर पता चलता है कि 7 फरवरी 1855 को एलेन द्वारा लिखे गये पत्र में रंजीत राम नाम के एक हवलदार का जिक्र आता है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि उत्तरप्रदेश और बिहार के गाँवों में पूजे जाने वाले रंजीत बाबा ही रंजीत राम थे। एलेन के पत्रों में चार विद्रोही मेहतारों का जिक्र आता है। यह कहानी वरकंदाज नाम के एक अंग्रेज मुखबिर के हवाले से भी आती है। इस दलित मुखबिर का बयान 31 मई 1858 को डुमराव (पटना) थाने में दर्ज है।⁴

‘स्वतंत्रता-संग्राम में अछूतों का योगदान’ के लेखक डी.सी.डिकर ने वीरांगना महावीरी देवी का उल्लेख किया है। यह जाति की भंगी थी, जो तेज तर्रार महिला थी। इन्होंने अपनी जाति की महिलाओं को एकत्र कर मुजफ्फरपुर में अंग्रेजों से मोर्चा लिया। वहीं उत्तरप्रदेश के जौनपुर जनपद के मछलीशहर के बांके चमार का उल्लेख मिलता है। इन्होंने प्रमुख बागी नेता हरिपाल सिंह के साथ रहकर स्वतंत्रता-आन्दोलन में अनेक अफसरों को मौत के घाट उतारकर दलित समाज में वीरता और बहादुरी के साथ दलित क्रांतिकारी होने का सबूत पेश किया। अंग्रेजों ने इन पर पाँच हजार का ईनाम रखा था। बाद में इन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। स्वातंत्र्य-समर में देश के अन्य तमाम तबकों की तरह दलित एवं अछूत कहे जाने वाले हर क्षेत्र के लोगों ने अपनी सामाजिक आर्थिक सीमाओं के बावजूद उपनिवेशवादी ब्रिटिश हुकूमत का विरोध जी जान से किया।⁵

1857 के विद्रोह के समय चर्चित बिहार के बराबर पहाड़ी पर बसे गाँव के आसपास के लोगों ने सरकारी कार्यालयों को ध्वस्त कर दिया। गवर्नर जनरल ने सरकारी सम्पत्ति की क्षति पहुँचाने वाले गाँव के लोगों पर भारी जुर्माना लगाने का निर्देश दिया था, जिनमें बराबर के अकबरपुर, ताजपुर, मुखपा, इमामगंज, बीघा, सुअरबीघा, तुमासपुर गाँव के लोग शामिल थे। पटना के कमिशनर ने सरकार को लिखा कि उपरोक्त गाँवों के 146 घरों में रहने वाले मुख्यतः निचले वर्ग के हैं और उन पर लगाया जाने वाला जुर्माना वास्तविक रूप से ज्यादा है। परन्तु कमिशनर ने इस घटना के लिए गाँव वालों पर भारी जुर्माना लगाने के लिए सरकार को लिखा।⁶

बिहार के इस विद्रोह की खासियत यह थी कि इसमें हिन्दू, मुसलमान दलित-सभी वर्गों व धर्मों के लोग पुलिस-व्यापारी-कर्मचारी कंधा से कंधा मिलाकर ब्रिटिश राज्य के खिलाफ बगावत पर उतरे थे। 1855 में ही जन विद्रोह की चिनगारियाँ बिहार में जहाँ-तहाँ फूटने लगी थीं। भागलपुर से संतालपरगना (अब झारखण्ड का क्षेत्र) तक के आदिवासी दलित और पिछड़ी आबादी जमीन और जंगल पर ब्रिटिश कब्जे के खिलाफ संघर्ष के लिए उठ खड़ी हुई थी।⁷

तथाकथित निचली जातियों में विद्रोहियों के मकसद के प्रति वफादारी, उदासीनता और विरोध तीनों तरह के भाव मौजूद रहे। फिरंगियों के विरुद्ध लड़ाई की इस एकता में धार्मिक शुद्धता और श्रेणीबद्ध व्यवस्था पर आधारित भारतीय समाज का विभाजन और धुवीकरण पूरी तरह विलीन नहीं हो गया था। फिर भी अनेक जमीन्दारों ने नीलाम क्रेताओं पर अपने हमलों में निचली जातियों की जनता को भी शामिल करने में कामयाबी हासिल की और इलाहाबाद में कुंवर सिंह के पक्ष में तथाकथित निचली जातियों के बीच “एक तरह का उत्साह” व्याप्त था। इसके बावजूद उपर्युक्त उदाहरणों से यह साबित हो जाता है कि यदि सब जगह नहीं तो कम से कम बहुत सी जगहों पर इन निचली जाति के लोगों खासकर अस्पृश्य समझे जाने वालों ने उल्लेखनीय स्वायत्तता का परिचय दिया और उनका रुख उँची समझी जाने वाली जाति के लोगों की विद्रोह संबंधी सामान्य प्रवृत्ति से भिन्न था।⁸

इसके साथ ही 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम ने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक बढ़ाया। इस आन्दोलन में पहली बार समाज के प्रत्येक वर्ग, सम्प्रदाय व जाति के लोगों ने संयुक्त रूप से संघर्ष किया।⁹

अठारह सौ सत्तावन के गदर या विद्रोह को यदि आज दलितों के दृष्टिकोण से भी देखा जा रहा है तो यह उचित है। आज भारतीय इतिहास की हर बड़ी घटना को दलितों के दृष्टिकोण से देखे जाने की जरूरत है।¹⁰

इस प्रकार, सन 1857 के विद्रोह में दलितों की भागीदारी को नकारा नहीं जा सकता है। साथ ही, दलित समाज की भारतीय समाज एवं राष्ट्र निर्माण में भूमिका को जो इतिहास विलुप्त-सा है, उसे खोजने में लोक-संस्कृति के स्रोतों की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की जानी चाहिए।¹¹ आज भारत का इतिहास या तो हिन्दू दृष्टिकोण का इतिहास बनकर रह गया है या वामपंथियों के विचारों का। ये दोनों दृष्टिकोण अधूरे हैं। समाज, राजनीति और इतिहास पर दलितों के दृष्टिकोण से उनका अध्ययन भारत का तीसरा दृष्टिकोण है। जिसे समझे बगैर कोई भी अध्ययन और विश्लेषण पूरा नहीं होगा।¹² साथ ही सन् सत्तावन के संग्राम में दलितों की भूमिका को नकारने की जगह उनके प्रति अपने बौद्धिक जगत में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. सतनाम सिंह, 1857 की क्रांति में दलितों का योगदान, सम्यक प्रकाशन, 2007, पृ. 10
2. मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आंदोलन : एक संक्षिप्त इतिहास, बुक्स फॉर चेन्ज, पृ. - 68
3. विस्तृत जानकारी के लिए देखें, राजेन्द्र शर्मा द्वारा सम्पादित 1857 सहमत प्रकाशन में ब्रदी नारायण का आलेख, पृ. 101
4. ब्रदी नारायण और बृजेन्द्र गौतम का आलेख, आजकल मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, मई 2007, पृ.- 67
5. वही, पृ.- 68
6. हिन्दुस्तान समाचार पत्र, मुजफ्फरपुर/पटना संस्करण, 9 फरवरी, 2007, पृ.-9
7. रामस्वार्थ हाजरा, स्वतंत्रता आन्दोलन और दलित जागरण (स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का

योगदान) सूचना एवं जनसंपर्क विभाग बिहार, अगस्त- अक्टुबर - 1998, पंचम खण्ड, पृ.-24

8. श्रीकांत का आलेख, हिन्दुस्तान, मुजफ्फरपुर/पटना संस्करण 04 जुलाई 2007.
9. प्रसन्न कुमार चौधरी/ श्रीकांत, जन विद्रोह की जमीन: बिहार (1857 जनक्रांति के बिहारी नायक, संपादक संजय कुमार) विशाल पब्लिकेशन, पटना, 2008, पृ. 30
10. पंकज राग, कुलीन नायकों से अलग था आमजन का रूप, हिन्दुस्तान, मुजफ्फरपुर संस्करण 08, जून 2007, पृ.- 9
11. मित्तल ए. के. , भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन , आगरा, वर्ष 2001, पृ.-26
12. कंवल भारती, दलित दृष्टिकोण के बिना अध्ययन अधूरा है, आजकल मासिक पत्रिका, मई 2007, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ.- 84

महात्मा गांधी का समाज के उत्थान में भूमिका

• सिद्धार्थ मिश्र

सारांश- आधुनिक भारत में स्वर्ण वर्ग के सामाजिक व राजनीतिक सुधारकों में गांधी जी ही मात्र ऐसे व्यक्ति थे, जो अस्पृश्यता को न केवल हिन्दू धर्म पर एक कलंक मानते हैं, बल्कि इस ऊँच-नीच की दीवार को जड़ से समाप्त करना भी चाहते थे। गांधी जी का मत था कि किसी को भी दूसरों पर अपना मत अथवा विचार नहीं थोपना चाहिए। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि लोग अपने मन से ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करेंगे, दूसरों के विचार उन पर प्रभाव नहीं डाल सकते। गांधी जी के अनुसार हिन्दू-मुस्लिम एकता का अर्थ केवल हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच एकता नहीं है, बल्कि उन सब लोगों के बीच एकता है जो भारत को अपना घर समझते हैं, उनका सम्प्रदाय चाहे जो भी हो। गांधी जी ने समाज कल्याण को ‘‘सर्वोदय’’ के रूप में समझा। जिसका तात्पर्य सभी क्षेत्रों में सभी का कल्याण है। गांधी जी नशाबंदी के पूर्ण समर्थक थे। भारतीय जीवन शैली व चिंतन में गांधी जी के महत्वपूर्ण योगदानों में से महिला अधिकारों के विषय में उनके विचार एवं योगदान एक हैं। बाल-विवाह की प्रथा को गांधी जी भारतीय महिलाओं के लिए बहुत बड़ा अभिशाप व हिंदू समाज पर एक कलंक समझते थे। गांधी जी ‘‘सादा जीवन उच्च विचार’’ के समर्थक थे। गांधी जी ने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विकल्प के रूप में अपनी ‘‘बेसिक शिक्षा’’ की योजना प्रस्तुत की। गांधी जी का दर्शन ‘‘श्रम की महत्ता’’ पर आधारित है। उनका मत था कि जीविकोपार्जन का अधिकार सभी को मिलना चाहिए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गांधी जी ने भारत में व्यावसायिक समाज कार्य की नींव डाली।

मुख्य शब्द- स्वर्णवर्ग, अस्पृश्यता, सर्वोदय, नशाबंदी, महिला अधिकार, बाल-विवाह, अभिशाप, बेसिक-शिक्षा, श्रम की महत्ता, समाज कार्य।

परिचय- गांधी जी प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति में वर्ण व्यवस्था को एक आदर्श स्थिति मानते थे। उनका कहना था अस्पृश्यता निवारण का आशय ऊँच नीच का भेद न हो, वैवाहिक या सामाजिक संबंधों पर प्रतिबंध न हो, जाति प्रथा समाप्त हो और तब हमारा समाज प्राचीन वर्ण व्यवस्था का स्थान ग्रहण करेगा। गांधी जी कहते हैं कि वास्तविक रूप में वर्णों का आज अस्तित्व नहीं रह गया है। वर्ण का उत्तम रूप केवल हिन्दुओं के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए है। वह ऊर्ध्वगामी स्थिति में मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। वे वर्ण नियम को परिभाषित करते हुए कहते हैं, कि

• अयोद्धा, उत्तर प्रदेश

प्रत्येक मनुष्य को अपने पूर्वजों का पैतृक, धर्म-कर्तव्य की तरह अपनाना चाहिए, यदि वह धंधा मूलभूत नीति से असंगत न हो। हालांकि वर्ण का निर्धारण जन्म से होता है, परंतु उसकी रक्षा कर्तव्य पालन से होती है। ब्राम्हण माता-पिता का पुत्र ब्राम्हण कहलायेगा किन्तु यदि वयस्क हो जाने पर उसके जीवन में ब्राम्हण के गुणों की अभिव्यक्ति नहीं होगी तो उसे ब्राम्हण नहीं कहा जा सकता। वही दूसरी तरफ वह व्यक्ति जो जन्म से ब्राम्हण नहीं है, किंतु अपने आचरण में ब्राम्हण के गुणों की अभिव्यक्ति करता है, ब्राम्हण माना जायेगा। इस नियम का यह भी अर्थ है कि धंधों व पेशों में कोई ऊँचा-नीचा नहीं, सब बराबर है और संपत्ति का उपयोग समाज के हित के लिए सन्यासी की भांति करना चाहिए।¹

गांधी जी ने अपने आन्दोलन में कभी भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, आदि के आधार पर भेदभाव नहीं आने दिया। उनके कार्यों, भाषणों तथा व्याख्यानों में सदैव जाति व वर्ग विहीन समाज की स्थापना का स्वप्न झलकता था। गांधी जी के लिए लोग महत्वपूर्ण थे, न कि उनकी जाति, धर्म तथा पृष्ठभूमि। उन्होंने कभी भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों के आधार पर लोगों को समझने तथा उनकी सहायता करने का प्रयत्न नहीं किया। गांधी जी का मत था कि किसी को भी दूसरों पर अपना मत अथवा विचार नहीं थोपना चाहिए। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि लोग अपने मन से ही दृष्टिकोण में परिवर्तन करेंगे, दूसरों के विचार उन पर प्रभाव नहीं डाल सकते।

गांधी जी के चिंतन में साम्प्रदायिक एकता व सद्भावना का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनके अनुसार, हिंदु मुस्लिम एकता का अर्थ केवल हिंदुओं व मुसलमानों के बीच एकता नहीं है बल्कि उन सब लोगों के बीच एकता है जो भारत को अपना घर समझते हैं, उनका सम्प्रदाय चाहे जो भी हो।² गांधी जी ने हिन्दू धर्म के साथ-साथ इस्लाम धर्म का भी गहन अध्ययन किया था। उन्होंने लिखा है कि वे एक ऐसे धर्म के अनुयायी हैं जो सब धर्मों को सत्य मानता है। वे साम्प्रदायिक एकता को केवल ऐतिहासिक जरूरत ही नहीं बल्कि एक सामाजिक जरूरत भी मानते थे। उन्होंने इस एकता को प्राप्त करने का तरीका अहिंसा व इसका लक्ष्य सर्वोदय बताया।³

गांधी जी ने समाज कल्याण को 'सर्वोदय' के रूप में समझा जिसका तात्पर्य सभी क्षेत्रों में सभी का कल्याण है। लेकिन साथ ही साथ भारतीय समाज के निर्बल एवं दुर्बल वर्ग के कल्याण पर विशेष बल दिया। इसीलिए उन्होंने रचनात्मक कार्यों का शुभारम्भ किया। गांधी जी ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए जन आन्दोलन छेड़ा। उन्होंने जनमत तैयार किया तथा जन साधारण के स्तर से कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया। गांधी जी का यह दृढ़ विश्वास था कि स्वयं अपनी सहायता सबसे अच्छी सहायता है। लोग तभी सक्रियता एवं पूर्ण आस्था के साथ काम करेंगे जब वे नियोजन एवं कार्यक्रमों में भाग लेंगे। गांधी जी चाहे हरिजनों के साथ कार्य करते थे या महिलाओं के, उनके सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने का कार्य करते थे तथा उन्हें यह अनुभव कराने का प्रयत्न करते थे कि उनकी भलाई उन्हीं में निहित है।⁴

गांधी जी नशाबंदी के पूर्ण समर्थक थे। उनका मानना था कि शराब पीना और नशीली दवाओं का सेवन करना एक भयंकर बुराई है। उनकी दृष्टि में शराबी व चोर एक

ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, क्योंकि जहां चोर केवल धन सम्पत्ति चुराता है, वहां शराबी ने केवल अपनी सम्पत्ति को, बल्कि अपनी तथा अपने पड़ोसी की इज्जत को भी जोखिम में डालता है। चूंकि मदिरापान से शरीर व आत्मा दोनों की क्षति होती है। इसलिए यह व्यक्ति व समाज दोनों के लिए हानिकारक है। उनका मानना था कि मद्य व अन्य मादक पदार्थों का प्रयोग व्यक्तियों का चारित्रिक पतन करता है। लोग नशे की लत के चलते घर की आमदनी को बर्बाद करते हैं, फलतः घर की खुशियाँ व सुख-शांति भी बर्बाद हो जाती है।⁵

भारतीय जीवन शैली व चिंतन में गांधी जी के महत्वपूर्ण योगदानों में से महिला अधिकारों के विषय में उनके विचार एवं योगदान एक है। वे समाज में प्रचलित इस सामान्य धारणा से सहमत नहीं थे कि महिलाएं आदमियों की तुलना में कमजोर हैं, इसलिए समाज में उन्हें नीचा दर्जा देना चाहिए। उनके अनुसार स्त्री न तो पुरुष के भोगने की वस्तु है और न ही पुरुष की प्रतियोगी। गांधी जी के चिंतन के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक नारीवादी विचारक थे, जिन्होंने पितृसत्तात्मक मूल्यों के आधार पर लैंगिक समानता के मुद्दों का निर्माण किया और उन्हें संबोधित भी किया।⁶

बाल विवाह की प्रथा को गांधी जी भारतीय महिलाओं के लिए बहुत बड़ा अभिशाप व हिन्दू समाज पर एक कलंक समझते थे। इसी से संबंधित था बाल विधवाओं की स्थिति का मुद्दा। जब शारदा अधिनियम में शादी की उम्र 14 साल तक बढ़ाने का प्रस्ताव रखा गया तो गांधी जी को लगा कि यह सीमा 16 या 18 साल तक बढ़ा देनी चाहिए। जो मां बाप अपनी बेटी की शादी कम उम्र में करने की गलती कर चुके हैं उनके लिए गांधी जी का आग्रह था कि अगर उनकी बेटी बाल विधवा हो जाए तो उसकी दूसरी शादी करा देनी चाहिए।⁷ उनका कहना था, “स्वेच्छा से विधवा रहना हिंदू धर्म की अमूल्य देन है। पर जबरन एक शाप है। मुझे लगता है कि उन्हें जबरदस्ती रोके न रखा जाए और हिन्दू लोकमत का डर न हो तो बहुत सी विधवाएं निःसंकोच दोबारा विवाह कर ले।” वे बेमेल विवाह के विरुद्ध थे। उदाहरण स्वरूप किसी वृद्ध का किसी युवा स्त्री के साथ विवाह। गांधी जी ने स्त्रियों की सामाजिक व आर्थिक स्वतंत्रता का पोषण ही नहीं किया बल्कि उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता की भी वकालत की।

गांधी जी ने देश के सामान्य व राजनीतिक उत्थान के लिए शिक्षा का नव संस्कार अनिवार्य मानते थे। इसलिए उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं के साथ देश के कई भागों में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये। इसे हम बुनियादी शिक्षा के नाम से जानते हैं। उनका कहना था कि शिक्षा का सही उद्देश्य व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक इत्यादि गुणों का विकास करना है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब शिक्षा में ज्ञान के साथ कर्म और विचार के साथ आचार का समन्वय हो।⁸

गांधी जी ने आत्म-अनुशासन को जीवन की शैली माना तथा इसका उन्होंने अपने जीवन में अभ्यास भी किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि नैतिक शक्ति के द्वारा बड़े से बड़े साम्राज्य से टक्कर ली जा सकती है और उसे हराया भी जा सकता है। उनके अनुसार सत्य तथा अहिंसा न केवल व्यक्ति के लिए आवश्यक है बल्कि समूहों, समुदायों तथा राष्ट्रों के विकास के आधार भी हैं। उनका विचार था कि लक्ष्य साधनों के औचित्य को सिद्ध नहीं करते हैं, बल्कि साधन स्वयं महत्वपूर्ण हैं।

गांधी जी सादा जीवन, उच्च विचार के समर्थक थे। वे अपरिग्रह में विश्वास रखते थे। उन्होंने अपने न्यासधारिता के सिद्धान्त में यह प्रतिपादित किया कि जिन लोगों के पास अपनी तथा अपने आश्रितों की आवश्यकता की पूर्ति से अधिक धन/वस्तुएं हैं, उन्हें आवश्यकताग्रस्त लोगों की धरोहर के रूप में अपने पास रखना चाहिए और इससे सहायता की आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों की तुरन्त सहायता करनी चाहिए।⁹

गांधी जी मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देने के समर्थक थे। उनका कहना था कि भारत में अंग्रेजी शासकों द्वारा चलायी गयी शिक्षा प्रणाली भारतीय युवकों को देश की संस्कृति से दूर ले जा रही है और इसने उनके दृष्टिकोण को विदेशी बना दिया है। वे अपने आपको जनता से एक अलग वर्ग समझने लग गये हैं। इसलिए गांधी जी ने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विकल्प के रूप में अपनी 'बेसिक शिक्षा' की योजना प्रस्तुत की।

गांधी जी का दर्शन "श्रम की महत्ता" पर आधारित है जो समाज कार्य दर्शन का महत्वपूर्ण अंग है। उनका श्रम की महत्ता में अटूट विश्वास था तथा उनका यह मत था कि जीविकोपार्जन का अधिकार सभी को मिलना चाहिए और इसे साकार करने का वे सदैव प्रयत्न करते रहे।⁹

इस समस्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है गांधी जी के सामाजिक विचारों ने उनके चिंतन को सामाजिक आधार प्रदान किया। उन्होंने केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही गहरे परिवर्तन नहीं किये बल्कि जीवन की एक व्यापक धारणा के कारण सामाजिक, औद्योगिक व आर्थिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में क्रांति की। उन्होंने स्त्रियों को जगाया, सामाजिक कुरीतियों का नाश किया तथा अछूतों व उत्पीड़ितों को आश्वसन दिया। उनका यह प्रयास था कि लोगों में जागृति आवे जिससे वे स्वयं परिवर्तन का प्रयास करें। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गांधी जी ने भारत में व्यावसायिक समाज कार्य की नींव डाली।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. एम.के. मिश्र, कमल दाधीच, गांधी दर्शन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2011, पृ. 094
2. एम.के. गांधी, दा वेटू कम्युनलहारमोनी, यू.आर.राव, कम्पाइल्ड एंड एडिटेड, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1983, पृ. 8
3. अजय कुमार, इस्लाम अली (संपादित) भारतीय राजनीतिक चिंतन, संकल्पनाएं एवं विचारक, पियर्सन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृ. 227
4. सिंह सुरेन्द्र एवं मिश्र पी.डी., पृ. 118
5. एम.के. मिश्र, कमल दाधीच, पूर्वोक्त, पृ. 83
6. मनोज सिन्हा, पूर्वोक्त, पृ. 120-121
7. वही, पृ. 123
8. धीरेन्द्र मोहन दत्त, महात्मा गांधी का दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973, पृ. 90-91
9. सिंह सुरेन्द्र एवं मिश्र पी.डी., पूर्वोक्त, पृ. 119

अकबर की सेना में राजपूत सैन्य अधिकारियों का योगदान

• मीनाक्षी सिंह कर्चुली

सारांश- अकबर ने अपने शासन काल में सैनिक संगठन मजबूत करने के लिए सेना में राजपूत सरदारों को शामिल कर उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त किया इनमें राजपूत, राजा, जागीरदार एवं साधारण राजपूत सैनिक शामिल थे, जो उसके सैनिक अभियानों में वीरता से लड़ते हुए मुगल सेना को विजयी युद्ध सफलता प्रदान की। इनमें प्रमुख रूप से मेवाड़ के जगमाल, जोधपुर के उदयसिंह, सूरसिंह, अजमेर के राजा भारमल, राजा भगवंतदास, राजा मानसिंह, बीकानेर रायसिंह प्रमुख थे। इन राजपूत सरदारों के सेना में शामिल होने से अकबर का सैनिक संगठन इतना श्रेष्ठ हो गया कि युद्ध क्षेत्र में उसे हमेशा विजय प्राप्त होती रही।

मुख्य शब्द- सैनिक संगठन, राजपूत सरदार, सैन्य अधिकारी

परिचय- अकबर के शासनकाल प्रारम्भिक वर्षों में सेना में अधिकतर मंगोल, तुर्क, उजबेक, अफगान तथा ईरानी आदि विदेशी सैनिक थे। जो बाबर, हुमायूँ के काल से ही मुगलों का साथ देते चले आये हैं। सैनिक दलों के संचालक अधिकारी भी उसी जाति के होते थे। इन सैनिकों को इनकी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप जागीर प्रदान की जाती थी। अकबर के शासन काल में मुगल तथा उजबेक सैनिकों के विद्रोह होते रहते थे। इसलिए अकबर ने अपने सैनिक संगठन में सुधार कर सेना में मनसबदारी प्रथा आरम्भ की। मनसबदार शाही सेना के अन्तर्गत उच्च पद प्राप्त अधिकारी होते थे।

अकबर ने मुगलों के साथ ही राजपूत राजाओं को मनसब प्रदान कर अपनी शाही सेना में सैनिक अधिकारी बना लिया था। जो उसके प्रशासन एवं सैन्य अभियानों में सहायता करते थे। अकबर कालीन राजपूत सैन्य अधिकारियों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है-

जगमाल राजा उदय सिंह की मृत्यु 28 फरवरी 1572 के दिन हुई थी। निःसंदेह राजपूत नरेश उत्तराधिकार नियम को मान्यता प्रदान करते हुए अपने ज्येष्ठ पुत्र को ही अपना उत्तराधिकारी बनाते आये हैं। इस पर राणा प्रताप निराश होकर गोगुन्दा जा रहे थे कि सोनगरा अखैराज अन्य सामन्तों के साथ प्रताप को महल में लाये। उन्होंने जगमाल को गद्दी से उतार दिया और प्रताप को गद्दी पर बिठा कर राणा बना दिया। इस अवसर पर रावत कृष्णदास ने प्रताप की कमर में राजकीय तलवार बांधी। इस प्रकार

प्रताप का राज्याभिषेक गोगुन्दा में 28 फरवरी 1572 सामन्तों द्वारा किया गया था। जगमाल क्रुद्ध होकर मुगल सम्राट अकबर की सेवा में चला गया। जगमाल आजीवन मेवाड़ का शत्रु तथा मुगल दरबार का मन सबदार बना रहा। 1583 ई. में सिरौही में दतारणी के युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई।

उदय सिंह 1583-1595 की सहयोग नीति- 1583 में अकबर ने उदयसिंह का राज्याभिषेक जोधपुर के दुर्ग में करवाया। उसे तिलक व खिताब भिजवाया। उदयसिंह ने गद्दी पर बैठते ही अपनी पुत्री मानीबाई का विवाह अकबर के पुत्र सलीम के साथ कर दिया। विवाह के अलावा अपनी स्वामी भक्ति प्रदर्शित करने हेतु वह सदैव सम्राट की सेवा में रहा। इस विवाह 1586 के उपरान्त उदयसिंह का प्रभाव मुगल दरबार में उत्तरोत्तर बढ़ता रहा। 1577 ई. में उदयसिंह को अकबर ने मधुकर शाह बुंदेल के विरुद्ध शाही सेना में भेजा। गुजरात के बागी सरदार मुल्कफर खॉ के विरुद्ध भी उसे भेजा गया। उसे लाहौर का सुबेदार बनाया गया और मृत्यु तक वह 1500 सवारों का मनसबदार बना रहा। कई इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि उदयवीर सिंह यदि अपनी पुत्री देकर मित्रता पक्की नहीं करता तो मारवाह की भूमि सदैव अकबर की कोपभाजन बनी रहती।

महाराजा सूरसिंह 1595-1605-19- 1595 में उदयसिंह की मृत्यु के उपरान्त सूर सिंह को मारवाड़ का राव बनाया गया। राव उदयसिंह की मृत्यु लाहौर में हुई थी। अतः अकबर मृत्यु का शोक व्यक्त करने लाहौर ही उसकी हवेली पर गया और सूरसिंह का राज्याभिषेक भी लाहौर में ही किया गया। सूरसिंह का राव अकबर ने उसके ज्येष्ठ भ्राताओं को अधिकार की अवहेलना करके राव बनाया था। इससे अकबर की उच्चता का पता फिर चलता है। इसके साथ ही उसे 2000 जात व सवार का मनसबदार भी बनाया गया।

राजभारमल का सम्राट अकबर को सहयोग- राज भारमल अपनी पुत्री का विवाह अकबर से किया था। इस वैवाहिक संबंध के सम्पन्न हो जाने के उपरान्त अकबर ने भारमल को 5000 का मनसबदार बनाया तथा उसे राजा की उपाधि से अलंकृत किया। इसके बाद वह अकबर का इतना कृपा पत्र बन गया कि अकबर जब कभी राजधानी से बाहर जाता था तो उसकी सुरक्षा का भार भारमल को ही सौंपा जाता था।

राजा भगवंत दास का सम्राट अकबर को सहयोग- भारमल की मृत्यु हो जाने को आमेर की गद्दी पर बैठा सम्राट अकबर ने उसको राज्य का टीका भिजवाया तथा उसे भी 5000 का मनसबदार नियुक्त कर दिया। आगरा में मुगल दरबार में रहकर वह भी अपने पिता की भांति वीर एवं स्वामी-भक्ति राजा सिद्ध हुआ। उसने कई बार सम्राट के प्राण बचा कर अपनी स्वामी भक्ति का परिचय दिया।

1568 ई. में जब अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया तो राजा ने अपने अनुभव के सहारे दुर्ग पर अधिकार कराने में सम्राट को सहयोग दिया। 1574 ई. में जब अकबर ने बिहार पर आक्रमण किया तो पटना के समीप होने वाले युद्ध में पठानों के साथ वीरता से युद्ध करके वह सम्राट की प्रशंसा का भाजन बन गया। इसके बाद 1589 ई. में जब अकबर अफगानिस्तान की यात्रा पर गया तो लाहौर का प्रशासन वह भगवंतदास को ही सौंप गया था। मानसिंह को तिलक यही भिजवाया और मानसिंह का राज्याभिषेक लाहौर में ही हुआ।

मानसिंह अकबर के सहयोगी के रूप में 1605 ई. - महाराजा मानसिंह आमेर के कक्षवाह नरेशों में सर्वाधिक प्रतापी और साहसी नरेश हुआ है। उसका जन्म शनिवार 6 दिसम्बर 1550 ई. को हुआ था। उसके जन्म पर ज्योतिषियों ने राजा भारमल को कहा था कि महाराजा आप का पौत्र शुभ घड़ी में जन्म लिया है। इसका राज्य एवं यश सर्वत्र व्याप्त होगा लेकिन आप 12 वर्ष तक इसे अपने से अलग रखे।

मानसिंह मुगल सेवा में 1562 ई. में ही चला गया था और वह यहाँ जीवन पर्यान्त 1614 ई. तक सेवा करता रहा। 52 वर्षों के लम्बे समय तक सम्भवतः कोई भी राजपूत नरेश मुगल सेवा में नहीं रहा। आमेर नरेशों में तो मानसिंह ही ऐसा व्यक्ति था जिसे इतने लम्बे समय तक मुगलो की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ भाग्यवश वह 1562 ई. से 1605 ई. तक महान सम्राट अकबर की सेवा में रहा। अतः उसके इस दीर्घकालीन सेवाकाल को यदि हम तीन भागों में विभक्त कर उसके सेवा कार्यों का उल्लेख करें तो श्रेयस्कर रहेगा।

प्रथम काल 1562 से 1589 ई. - यह वह काल का जबकि मानसिंह को एक राजकुमार के रूप में मुगल सम्राट की सेवा में कार्य करना पड़ा। इस काल में वह कभी अपने पिता के साथ सैनिक अभियान पर भेजा गया तो कभी स्वतंत्र रूप से भेजा गया। इस काल के प्रारम्भिक चरण में तो उसको अकबर की निगरानी में सैनिक शिक्षा लेनी पड़ी और जब अकबर को उसकी सैनिक शक्ति पर विश्वास हो गया तो वह कभी उसे अपने साथ सैनिक अभियान में ले जाता तो कभी उसे स्वतंत्र रूप में भेज दिया करता था।

मानसिंह को सर्वप्रथम रणथम्भौर के घेरे में अपनी चतुराई दिखाने का अवसर मिला। अकबर की भी अन्य मुस्लिम शासकों की भांति रणथम्भौर के दुर्ग पर दृष्टि पड़ी। 10 फरवरी 1569 ई. को मानसिंह सम्राट अकबर तथा अपने पिता के साथ रणथम्भौर पहुँचा। वहाँ के स्वामी सूरजन हाड़ा ने अपने को किले में बंद कर मुगल सम्राट से मुकाबला करना आरम्भ कर दिया। जहाँ यह घेरा 6 मास चला। हालांकि किले की दीवारें धराशायी हो जाने के कारण अकबर को विजय की पूर्ण आशा हो गई थी। तथापि समय अधिक लगने से वह कुछ परेशान था। मानसिंह ने चतुराई से चाल चली और अकबर से नाराज न होने की प्रार्थना की एक रात्री को मानसिंह ने सूरजन हाड़ा से व्यक्तिगत मुलाकात की अनुमति मिली अकबर संघर्ष उसका चोपदार चपरासी बन कर उसके साथ चलने को राजी हो गया। मुलाकात के समय मानसिंह ने सूरजन हाड़ा को सम्राट अकबर से संधि करने की सलाह दी और बात ही बात में स्पष्ट कर दिया कि सम्राट अकबर स्वयं एक चोपदार के रूप में तुम्हारे पास आया है। यह सुनते ही सूरजन हाड़ा इतना द्रवित हुआ कि तत्काल ही अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली, मानसिंह के सद प्रयत्नों से संधि इस प्रकार की गई है कि सूरजन हाड़ा का अपमान भी नहीं हुआ। गुजरात विजय में कुमार मानसिंह की भूमिका महत्वपूर्ण रही।

मानसिंह महाराणा प्रताप 1570 ई. नागौर दरवार में मारवाड़ बीकानेर व जयसलमेर बिना युद्ध अकबर के अधीन हो गये। महान राजपूत नरेशों में केवल महाराणा प्रताप ही ऐसे बचे थे जिन्होंने मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। अतः 1572 ई. में गुजरात विजित करने के उपरान्त सम्राट ने मानसिंह को राणा प्रताप से मिलने भेजा

मानसिंह राणा को अकबर की अधीनता स्वीकार करने को मनाने गये थे। पर भोजन करने के संबंध में दोनों में मनमोटव हो गया। इसका परिणाम यह निकला कि 1576 ई. में हल्दीघाटी की महत्वपूर्ण लड़ाई हुई। मानसिंह ने राणा प्रताप को युद्ध भूमि छोड़ने को बाध्य कर दिया परन्तु वह उसे बंदी नहीं बना सका। इस असफलता के उपरान्त जब मानसिंह गोगुनदा में भी राणा को संधि करने के लिए विवश नहीं कर सका। तो अकबर उसे संदेह की दृष्टि से देखने लगा। परन्तु अकबर शीघ्र ही यह समझ गया कि मेवाड़ को पूर्ण अधिकार में लाना कठिन कार्य है। तो उसने मानसिंह को क्षमा कर दिया और उसने भविष्य में अभियानों फिर से भेजना या अपने साथ रखना आरम्भ कर दिया।

भारत में मुगल सेवा- 1580 ई. में सम्राट ने मानसिंह को स्थालकोट का हाकिम बनाकर भेज दिया। उस समय एक तरफ तो अफगानों व रोगनियाओं के विद्रोह बढ़ते ही जा रहे थे तो दूसरी ओर तत्कालीन काबुल का शासक मिर्जा मुहम्मद हाकिम भी भारत पर आक्रमण की तैयारी कर था। मिर्जा हाकिम रिश्ते में अकबर का भाई होता था और उसने अभी तक मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार नहीं की थी इसलिए स्थिति ने 1580-81 का समय अकबर के शासन में अत्यधिक कठिन बताया है। मानसिंह ने सदमान को परास्त कर बागी अफगानों की शक्ति को नष्ट कर दिया।

राजकुमार मान सिंह काबुल में- 1585 ई. में मिर्जा हाकिम की मृत्यु के पश्चात उसकी सेना बादशाह अब्दुला के नेतृत्व में काबुल पर आक्रमण करने की सोचने लगे। इस स्थिति को भाँपते हुए अकबर ने मानसिंह को काबुल का सूबेदार बना कर वहाँ शांति स्थापना के आदेश दिये। मानसिंह के सुबेदारी से अकबर संतुष्ट था। परन्तु जब अधिक कठोरता से मानसिंह काबुल में हुक्मत करना शुरू किया तो उसको काबुल से हटाकर बिहार का सुबेदार बना दिया।

रायसिंह- रायसिंह की मुगल सेवा का प्रथम काल (1570 ई. से 1574 ई. तक) प्रथम काल में रायसिंह को मानसिंह कक्षवाहा की भाँति एक राजकुमार के रूप में सेवा करनी पड़ी।

रायसिंह द्वारा मिर्जा बंधुओं का दमन- सम्राट अकबर ने मिर्जा बंधुओं को दबाने हेतु 1573 ई. में रायसिंह को भेजा। रायसिंह ने विद्रोही इब्राहीम मिर्जा को मालवा से खदेड़ दिया।

रायसिंह का मुगल सेवा का द्वितीय काल (1574 ई. से 1605 ई. तक)- अकबर ने 1574 ई. में चंद्रसेन के विरुद्ध एक सेना भेजी उस सेना में रायसिंह भी एक अधिकारी के रूप में भेजा गया था।

उपसंहार- अकबर ने सेना के संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने संगठन नियंत्रण और अनुशासन के लिए बहुत से नियम बनाये थे। मानव स्वभाव का कुशल पारखी होने के कारण अकबर, बीरवल और सुयोग्य राजपूत सरदारों को विभिन्न प्रकार की जागरी सेना में उच्चपदों में मानसबदार आदि बनाया राजपूतों को शामिल कर उसने सैनिक संगठन को इतना श्रेष्ठ बना दिया था कि युद्ध क्षेत्र में उसे हमेशा विजय प्राप्त करने का सम्मान और श्रेय प्राप्त हुआ।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. डॉ. श्यामसिंह-रत्नावत, मुगल-राजपूत संबंध, 1526-1707 ई. गौतम बुक कम्पनी 260/05 राजमार्ग जयपुर, 302004, प्रथम संस्करण 2009
2. डॉ. अर्शीवादी लाल श्रीवास्तव-भातर का इतिहास, 1000-1707 ई. तक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक विक्रेता आगरा-3, 1991
3. बी.एन. लुणिया-मुगल साम्राज्य का उत्कर्ष 1526 से 1658 तक, 1986 द्वितीय संस्करण कमल प्रकाशन-54, प्रिंस यशवंत रोड इंदौर
4. डॉ. अवध बिहारी पाण्डेय-डी.फिल. मध्ययुगीन भारत 712-1761 ई., 1967 सेंट्रल बुक डिपो इलाहाबाद
5. डॉ. संजीव जैन, पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन भारत का आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास, 650 ई. 1707 ई. तक, 2008, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल
6. डॉ. अर्शीवादी लाल श्रीवास्तव-मुगलकालीन भारत, 1526-1803 ई. तक, 1983, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी इंदौर

अकबर एवं जहांगीर कालीन धार्मिक नीति: उत्तर भारतीय समाज के विशेष संदर्भ में

• प्रियंका भारती

सारांश- अकबर का काल धार्मिक नीति के विकास में हिन्दू- मुस्लिम एकत्व तथा धार्मिक समन्वय के क्षेत्र में चरमोत्कर्ष का काल था। अकबर की प्रतिभा ने हिन्दू और मुसलमान दो जतियों को एक महान शानदार साम्राज्य की समान सेवा और समान नागरिकता के बंधनों द्वारा एक राष्ट्र में ढालने के कार्य की संभावना का अनुभव किया और उसके साहस ने यह कार्य पूर्ण किया। अकबर के युग से दूसरे युग के सिद्धान्तों या आदर्शों के दृष्टिकोण से उसकी (अकबर की) आलोचना करना अनुचित होगा। एक तीव्रतम आलोचना की न्यायोचित सीमाओं के अंतर्गत उसके जीवन, दृष्टिकोण और उपलब्धियों में बहुत कुछ ऐसी बातें हैं, जिससे वह हमारी निश्छल असीमित प्रशंसा का पात्र बन जाता है। धर्म के प्रति उदार नीति जहांगीर को अपने पिता अकबर से प्राप्त हुई। अकबर की धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों संप्रदायों के विद्वानों में भ्रातृ-भाव उत्पन्न हुआ क्योंकि एक साथ रहने तथा विचार के आदान-प्रदान से उनके भेद-भाव प्रायः नष्ट हो गये और परस्पर घृणा कम हो गयी। राज्यारोहण के बाद जहांगीर ने उदारवादी नीति का आश्रय ग्रहण किया और सच्चे मुसलमान के रूप में रहकर उसने अपनी गैर इस्लामी जनता के बीच किसी धार्मिक विद्वेष को राजकीय स्तर पर पनपने नहीं दिया।

मुख्य शब्द- धार्मिक, समाज, आचार्य, व्यवस्था, दीन-ए-इलाही, परंपरा, संस्कृति, संगठन, कर्मकांड, अनुयायी, सिद्धान्त, हिन्दू- मुस्लिम, महजर

परिचय- अकबर का काल धार्मिक नीति के विकास में हिन्दू- मुस्लिम एकत्व तथा धार्मिक समन्वय के क्षेत्र में चरमोत्कर्ष का काल था। उसने शासन को उलेमाओं के प्रभाव से मुक्त कर दिया। अपने शिक्षक अब्दूल लतीफ की शिक्षाओं का अकबर पर प्रभाव पड़ा जिसने उसे सुलह कुल की शिक्षा दी। मुबारक, अबुल फजल, फैजी जैसे विद्वान परामर्शदाताओं का प्रभाव भी अकबर पर पड़ा। हिन्दू राजपूत राजकुमारियों के हरम में आने तथा तत्सामयिक भारत में फैले हुए धार्मिक आन्दोलन से अकबर पूर्ण प्रभावित हुआ। इस भक्ति आन्दोलन में विभिन्न जातियों वाले सन्त-

समाज को नवीन रूप से निर्मित करने में व्यस्त थे। इस परिवेश में अकबर को हिन्दुत्व की गूढ़ बातों को बताने वाले हिन्दू-सन्त व आचार्य मिल सके। इबादत- खाना के रूप में अकबर ने, जैन, पारसी, ईसाई आदि सभी मतावलंबियों के धर्म की रहस्यमय बातों को जानने के लिए एक संस्था का निर्माण किया।¹ बिना किसी भय के अब हिन्दू आचार्यों को यह मानसिक शक्ति प्राप्त हुई थी की वे मुस्लिम विद्वानों के अव्यावहारिक मतों का विरोध करने का साहस कर सकते थे।

दीन-ए-इलाही जिसकी स्थापना 1582 ई.² में की गयी थी, अकबर की व्यक्तिगत धार्मिक-नीति के विकास का महत्वपूर्ण सोपान है। दीन-ए-इलाही के रूप में अकबर एक अलग संस्था का संगठन करना चाहता था।³ अनेक विद्वानों ने दीन-ए-इलाही धर्म पर अनेक कोणों से आक्षेप किया है तथा अकबर की नीयत पर सन्देह प्रकट किया है। यद्यपि अकबर ने इस मत के अनुयायी बनाने के लिए अपने किसी भ्रष्ट माध्यम का आज्ञ्य नहीं लिया था इससे स्पष्ट है कि अकबर उसके अनुयायी तैयार करने के लिए किसी भी रूप में चिंतित नहीं था। वस्तुतः जनता को सामूहिक रूप में सम्मिलित करने का कोई प्रयास ही नहीं हुआ। डॉ. एस. आर. शर्मा के अनुसार, “इस संगठन की स्थापना का एकमात्र उद्देश्य दरबारियों को सम्राट की निजी सेवा में एकत्रित करना मात्र था। इस धर्म में सम्मिलित होने वालों को अकबर के प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शित करना पड़ता था। इस संप्रदाय का चिह्न अकबर की अनुरूपता थी और नेता के रूप में इनको केवल अकबर का ही अनुसरण करना था।”⁴

एम.एल.राय चौधरी के अनुसार, “दीन-ए-इलाही के सिद्धान्त सूफी सिद्धान्तों पर आधारित थे।”⁵ डॉ. ताराचन्द का मत है, “अकबर की दीन-ए-इलाही एक ऐसे निरंकुश शासक का क्षणिक उद्वेग नहीं था, जिसके पास आवश्यकताओं से अधिक शक्तियाँ थी, अपितु उन तत्वों का परिणाम था जो भारत भूमि में विकसित हो रहे थे तथा कबीर आदि की शिक्षाओं के द्वारा वर्णित किये जा रहे थे। परिस्थितियों ने उस प्रयत्न को विफल कर दिया परंतु विधाता अब भी उसी लक्ष्य की ओर इंगित करता है।”⁶ एस.एम. जफर की धरणा है, “दीन-ए-इलाही अपने युग का शिशु था, इसका संस्थापक पुनर्जागरण और धार्मिक सुधार आन्दोलन का पुत्र था।”⁷ वस्तुतः दीन-ए-इलाही “उच्च आदर्शों से प्रेरित एक विचार था जिससे देश की विभिन्न जातियाँ एक होकर राष्ट्र का रूप ग्रहण कर ले।”⁸

अकबर ने सितम्बर 1569 ई. को में एक महजर⁹ प्रस्तुत करवाया जिसे स्मिथ ने “त्रुटिरहित सम्राट आज्ञाप्ति” माना है।¹⁰ इस घोषणा पत्र पर बड़े-बड़े मुल्लाओं के हस्ताक्षर थे।¹¹ स्मिथ का मत है कि इसके द्वारा अकबर को “सम्राट के साथ ही साथ धर्माचार्य का भी पद प्राप्त” हो गया।¹² परन्तु इस घोषणा में यह अधिकार लिया गया था कि विवादग्रस्त कुरान के नियमों की कई व्याख्याओं में से वह किसी एक को चुन ले और कोई नया नियम या आदेश जारी कर दे, बशर्ते कि यह नियम कुरान के किसी आयत के अन्तर्गत ही आता हो।¹³ समग्र रूप से इसका वास्तविक प्रभाव यही पड़ा कि कट्टर धर्मावलंबियों का वह अधिकार जाता रहा, जिसके अनुसार वह दूसरे मत के लोगों को उनके धार्मिक विचारों के कारण दण्डित कर सकते थे।

सार्वजनिक क्षेत्र में विभिन्न करों की समाप्ति तथा अन्य समानता के अध्यादेशों का परिणाम सार्थक हुआ। इन सब स्थितियों के संक्षिप्त आँकलन से यह कहा जा सकता है कि अकबर की प्रतिभा ने हिन्दू और मुसलमान दो जतियों को एक महान शानदार साम्राज्य की समान सेवा और समान नागरिकता के बंधनों द्वारा एक राष्ट्र में ढालने के कार्य की संभावना का अनुभव किया और उसके साहस ने यह कार्य पूर्ण किया। अकबर मनुष्यों का जन्मजात स्वामी था। अकबर के युग से दूसरे युग के सिद्धान्तों या आदर्शों के दृष्टिकोण से उसकी (अकबर की) आलोचना करना अनुचित होगा। एक तीव्रतम आलोचना की न्यायोचित सीमाओं के अंतर्गत उसके जीवन, दृष्टिकोण और उपलब्धियों में बहुत कुछ ऐसी बातें हैं जिससे वह हमारी निश्छल असीमित प्रशंसा का पात्र बन जाता है।¹⁴

धर्म के प्रति उदार नीति जहांगीर को अपने पिता अकबर से प्राप्त हुई। अकबर की धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों संप्रदायों के विद्वानों में भ्रातृ-भाव उत्पन्न हुआ क्योंकि एक साथ रहने तथा विचार के आदान-प्रदान से उनके भेद-भाव प्रायः नष्ट हो गये और परस्पर धृणा कम हो गयी। राज्यारोहण के बाद जहांगीर ने उदारवादी नीति का आश्रय ग्रहण किया और सच्चे मुसलमान के रूप में रहकर उसने अपनी गैर इस्लामी जनता के बीच किसी धार्मिक विद्वेष को राजकीय स्तर पर पनपने नहीं दिया।

जहांगीर का जन्म हिन्दू माता से हुआ था। उसके जन्म के समय उसके कुछ संस्कार गंगा जल, अग्नि, तुलसी आदि के द्वारा हिन्दू - विधि से संपन्न किये गये थे। विरासत में उसे संतों, मकबूरों तथा दरवेशों के प्रति सम्मान का भाव प्राप्त था।¹⁵ उसके शिक्षक अब्दुरहीम खानखाना (रहीम) उदार विचारों की प्रतिमूर्ति तथा हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक संपर्कों के प्रतीक थे। अकबर के राज्यकाल की तरह ही हिन्दूओं के मेले, धार्मिक उत्सव यथावत चलते रहे। उनके उपवास दिवसों पर सार्वजनिक अवकाश की घोषणा होती थी। जहांगीर ने जजिया-कर¹⁶ की माफी तथा तीर्थयात्रा कर की समाप्ति¹⁷ की नीति को यथावत रखा। जहांगीर के शासनकाल में हिन्दू- त्यौहारों को विधिवत मनाया जाता था तथा स्वयं सम्राट इसमें भाग लेता था। अपने शासन के आठवें वर्ष (1613 ई०) में जहांगीर ने रक्षाबन्धन के त्योहार के मानाये जाने तथा उसके द्वारा राखी बाँधवाने का उल्लेख प्राप्त है। उसके अनुसार, “मेरे पूज्य पिता के समय हिन्दू अमीर और उनको देखकर दूसरे लोग राखी का त्योहार मनाते थे। ये लोग “लाल” और मोतियों को धागे में पिरोकर और बहुमूल्य रत्नों के फूल बनाकर उसको बाहों में बाँधते थे। यह प्रथा कुछ समय तक चलती रही। परंतु ये लोग इस पर बड़ा अपव्यय करने लगे जो मेरे पिता को पसन्द नहीं था। अतः उसने इसकी मनाही कर दी (अब केवल) ब्राह्मण लोग ही शकुन होने के लिए रेशम के धागे अपनी प्रथा के अनुसार बाँधा करते थे। मैंने भी इस वर्ष वह धार्मिक प्रथा मनायी और मैंने आदेश दिया कि हिन्दू अमीर और जाति के मुखिया लोग मेरी रिवाज किया। इस वर्ष तो मैं सहमत हो गया और मैंने आदेश दिया कि ब्राह्मण लोग रूई के या रेशम के धागे प्रथानुसार बांधें।¹⁸

अपने शासन के 13 वें वर्ष में जहांगीर ने दशहरा का त्योहार मानया। उसने स्वयं लिखा है, “दशहरा त्योहार के दिन पहले मेरे घोड़ों” को सजाकर मेरे सामने लाया गया फिर इसी तरह हाथियों को भी अलंकृत कर मेरे सामने उपस्थित किया गया।¹⁹ दीपावली के अवसर पर मैंने दरबारियों को यह आदेश दिया कि वे महल में परस्पर जुओं खेलें। इस खेल में कुछ दरबारी जीते तथा कुछ हारे।²⁰

शासन के ग्यारहवें वर्ष (1616 ई०) में जब जहांगीर, बंगाल में सागौर नामक स्थान पर रूका था, तब वहां उसने शिवरात्रि की रात को योगियों से भेंट की थी। इस घटना का वर्णन करते हुए वह स्वयं लिखता है, “इस स्थान पर शिवरात्रि हुई। बहुत से योगी एकत्रित हुए। इस रात्रि को सब रस्में निभाई गयीं। मैं इन विद्वानों से मिला और वार्तालाप किया।²¹ बसंत पंचमी का त्योहार जहांगीर द्वारा मनाये जाने का विवरण प्राप्त है। चन्द्र ग्रहण के अवसर पर जहांगीर ने गरीबों के बीच में नकद वितारित किये।

हिन्दू तथा पारसी धर्म शास्त्रों में अग्नि²² की आराधना का विधान है। ऋग्वेद में अग्नि की पूजा के लिए ऋचाएं हैं।²³ जहांगीर ने अग्नि के प्रति विशेष आदर प्रदर्शित किया। मांडू में जहांगीर ने नसरुद्दीन के प्रति घृणा प्रदर्शित करने के लिए उसकी कब्र को खोलकर उसकी अपवित्र हड्डियों को अग्नि में डालने का आदेश प्रदान किया।²⁴ परन्तु जहांगीर के अनुसार—“जब मुझे स्मरण आया कि आग तो अमर प्रकाश का एक अंश है और इसे ऐसे गन्दे पदार्थ से अपवित्र करना अनुचित है तब मैंने उसकी हड्डियों को जलाने का विचार त्याग दिया।”²⁵

आलोच्यकालीन दार्शनिक विचारधारा के निर्माण और प्रसार में उत्तर भारत के वैष्णव, शैव और शाक्त संप्रदायों का विशिष्ट योगदान रहा। इनमें भी वैष्णवों का योगदान और प्रभाव अन्य की अपेक्षा अधिक रहा। प्रत्येक वैष्णव संप्रदाय ने वेद, आगम, पुराण तथा इतिहास का समन्वय धर्म से किया है। इसलिए उनमें भारतीय धर्म या संस्कृति की पूर्णता है।²⁶

सतरहवीं सदी में वैष्णव धर्म के विकास में बल्लभाचार्य, हित हरिवंश, स्वामी हरिदास, श्री भट्ट आदि शिष्यों तथा गोस्वामी तुलसीदास का प्रदेय विशेष उल्लेख्य है। इन सन्त दार्शनिकों की विभिन्न व्याख्याओं के फलस्वरूप वैष्णव धर्म में पाँच मत संपादित किये गये—रामानुज वेदान्त, माध्व वेदान्त, निंबार्क वेदान्त, बल्लभ वेदान्त तथा चैतन्य, वेदान्त, रामानुज से लेकर जीव स्वामी तक वैष्णव मत का इतिहास वास्तव में परम धर्म का इतिहास है।²⁷ रामानुज ने विशिष्टाद्वैत के सिद्धांत का प्रतिपादन कर ब्रह्म के पांच स्वरूपों— परा, व्यूह, विभव, अंतरयामी तथा अर्चा की व्याख्या की।²⁸ बल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग प्रवर्तन किया।²⁹ चैतन्य मत के अंतर्गत भक्त स्वभावतः नित्य भगवान से प्रेम करता है। इस मत के अनुसार भक्ति के लिए न तो भगवान की कृपा की आवश्यकता होती है और न अपने किसी प्रयत्न की। इस प्रकार प्रेम कृष्ण भक्ति या प्रेमाभक्ति भक्ति की पराकाष्ठा है। इस अवस्था में भक्त भगवान से भिन्न व अभिन्न दोनों रहता है।³⁰

बल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टि मार्ग ने जिसका संगठन विट्ठलनाथ द्वारा किया गया वैष्णव धर्म के प्रचार—प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सूरदास, परमानन्द दास, कृष्ण दास, गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास तथा नन्द दास थे। जिन्हें अष्टछाप

के नाम से जाना जाता है।³¹ जहांगीर के काल में विठ्ठलनाथ के पुत्र गोकुल नाथ ने इस धर्म परंपरा का उत्तरदायित्व लिया।³²

इसी संप्रदाय के अंतर्गत राधा-बल्लभी संप्रदाय की स्थापना हित हरिवंश के द्वारा की गयी।³³ इन्होंने उपासना में राधा का स्थान कृष्ण से ऊपर माना। उनके अनुसार, “अमृत के समुद्र में सक वह व्यक्ति केवल एक बूँद ही प्राप्त करता है जो केवल कृष्ण की भक्ति करता है जब कि राधा की भक्ति से वह संपूर्ण अमृत सुधा का पान करता है।³⁴ जहांगीर के काल में वृन्दावन में इस संप्रदाय के अनुयायियों द्वारा मंदिर का निर्माण कराया गया।³⁵

स्वामी हरिदास ने वैष्णव धर्म से संबंधित एक अन्य संप्रदाय स्थापित किया। स्वामी हरिदास के संबंध में चर्चा करते समय पुरोहित हरि नारायण शर्मा ने लिखा है, “ये हरिदास जी प्रथम प्रागदास जी के शिष्य हुए, फिर दाई जी के। फिर कबीर और गोरख-पंथ में हो गये। फिर अपना निराला पंथ चला दिया।”³⁶

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, “इन्होंने (हरिदास ने) अपना नया निरंजनी पंथ इसके कुछ काल अनन्तर अर्थात् संभवतः ढकई पंथ में कुछ दिनों रह कर तथा फिर क्रमशः कबीर-पंथ तथा गोरख-पंथ का भी अनुयायी रह चुकने के बाद ही चलाया होगा और ये इसके पीछे तक भी जीवित रहे होंगे।”³⁷

स्वामी जी उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे तथा जिन्होंने तानसेन को संगीत की शिक्षा दी थी। इनका समय 1519 ई.से 1615 ई. के बीच में माना गया है।³⁸ ग्राउज ने इन्हें 15वीं सदी के अन्त तथा 16वीं सदी के आरंभ का माना है।³⁹ “भक्तमाल” के अनुसार अकबर इनके दर्शनार्थ आया था। इस संप्रदाय का प्रख्यात मन्दिर बिहारी जी का मंदिर है।

वैष्णव भक्ति के अंतर्गत ही रामभक्ति के प्रवर्तक तुलसी दास आते हैं। यद्यपि इन्होंने किसी स्वतन्त्र संप्रदाय का निर्माण या संचालन नहीं किया परंतु जन-सामान्य पर इनके ग्रंथ (रामचरित मानस) का सार्वभौम और सार्वकालिक प्रभाव पड़ा। इस महान ग्रंथ का एकमात्र लक्ष्य रामभक्ति का प्रतिपादन है। तुलसीदास के अनुसार- “इस असार संसार में राम भक्ति के अतिरिक्त शेष सभी स्वप्नवत, असत्य और शून्य है।” एक वाक्य में “रामचरित मानस” रामभक्ति का काव्य है, रामचरित का काव्य नहीं, रामकथा का काव्य नहीं मानस का प्रधान रूप उसका सर्वोपरि आग्रह रामभक्ति ही है- सेवक-सेव्य भाव की वह भक्ति जिससे विश्राम की प्राप्ति होती है और भव-सागर से मुक्ति मिलती है।”⁴⁰

जहांगीर के काल में इन सन्तों के धार्मिक कार्यकलाप को किसी भी प्रकार से रोकने का प्रयास नहीं किया गया। जहांगीर ने स्वयं मथुरा व वृन्दावन की यात्रा अनेक बार की थी। तुजुक-ए-जहांगीरी में जहांगीर के वैष्णव धर्म के संत जदरूप से अनेक बार मिलने का उल्लेख है तथा मथुरा व उज्जैन में अनेक बार संतों से उसके वाद-विवाद करने का भी विवरण है। जहांगीर ने लिखा है, “मैंने प्रायः सुना कि एक त्यागी और गंभीर सन्यासी जिसका नाम जदरूप है कितने ही वर्षों पहले उज्जैन को छोड़कर एक वन के कोने में रहता है और सच्चे ईश्वर की पूजा में लगा है। मैं उससे परिचय करने के लिए काफी उत्सुक था। जब मैं राजधानी आगरा में था तो मैं चाहता था कि उसको बुलाकर उससे

मिलूं। अंत में मैंने जब समझा कि इससे इस साधू को कष्ट होगा तो मैंने उसे नहीं बुलाया। जब मैं इस नगर के निकट पहुंचा तो नाव में से उतर कर दो फलांग पैदल चलकर उससे मिलने गया उसने अपने रहने के लिए पहाड़ी में से खोदकर एक स्थान बना रखा था।⁴¹

अपनी आत्मकथा में जहांगीर इस संत के साथ अकबर की भेंट का भी उल्लेख करता है।⁴² इस संत की विद्वता पर टिप्पणी करते हुए लिखता है कि वह ज्ञान से रहित नहीं है क्योंकि उसने वेदान्त का खूब अध्ययन किया है।⁴³ अपने शासन के तेरहवें वर्ष (सन् 1618 ई.) में वह पुनः इस सन्यासी से मिला। जहांगीर के शब्दों में- वह सूफी मत के सिद्धांतों की स्पष्ट व्याख्या करता है और उसकी संगति में अत्यधिक आनन्द आता है।⁴⁴ इस काल में तान्त्रिक संप्रदाय के लोगों का भी जन-सामान्य पर प्रभाव था। ये ब्राह्मण तथा अब्राहमण का अंतर आध्यात्मिक क्षेत्र में नहीं मानते थे इनके अनुसार प्रत्येक जाति अथवा वर्ग के लोगों को तन्त्र के मन्त्रों को पढ़ने, सुनने-सुनाने का अधिकार था। यद्यपि धर्म के अलावा अन्य सभी सामाजिक कार्य-व्यवहारों में तान्त्रिक संप्रदाय जाति व्यवस्था को मान्यता प्रदान करता है।⁴⁵ वाराणसी, उत्तर भारत में इनका महत्वपूर्ण केन्द्र था। विशेष रूप से इस संप्रदाय का प्रभाव बंगाला तथा भारत के पूर्वीय क्षेत्रों में था।⁴⁶ उत्तरी भारत में साधना पद्धति के रूप में जन सामान्य के बीच इसे प्रशस्त स्थान न प्राप्त हो सका।⁴⁷

शैव एवं शाक्त मतों का भी इस युग में प्रसार था। प्रारंभ से ही वैष्णव मत का मुख्य प्रतिद्वन्दी शैव मत रहा है जो कि आज भी दक्षिण भारत में अत्यन्त प्रचलित है।⁴⁸ डॉ. राधाकृष्ण के अनुसार, “वैसे तो यह दक्षिण भारत में ईस्वी सन् के पूर्व ही प्रचलित था किन्तु इसे बौद्ध तथा जैन मत का विरोधी होने के कारण अधिक बल प्राप्त हुआ जिनको उसने वैष्णव मत के साथ मिलकर ईसा की पांचवीं अथवा छठीं शताब्दी में दबा दिया। लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में ‘इसने शैव-सिद्धान्त के नाम से एक विशिष्ट दर्शन को परिष्कृत रूप दिया।’⁴⁹ इस दर्शनिक विधा को विद्वानों ने “अत्यन्त परिष्कृत, प्रभावशाली और निःसन्देह भारत के समस्त धार्मिक संप्रदायों में सबसे अधिक आन्तरिक रूप में मूल्यवान पाया।”⁵⁰ जहांगीर के काल में उत्तर भारत के क्षेत्र इससे विशेष प्रभावित नहीं थे। इसका प्रसार व प्रभाव विशेषकर बंगाल के क्षेत्र में था।⁵¹ उत्तरी बंगाल की कोच आदिम जनजाति के देवता के रूप में रुद्र शिव की पूजा होती थी।⁵² “चौरासी वैष्णव न की वाती” के एक विवरण से यह ज्ञात होता है कि वाराणसी व प्रयाग के मध्य का क्षेत्र शाक्त संप्रदाय का मुख्य केन्द्र था। शक्ति की पूजा का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त है।⁵³ उत्तरी भारत की साधना पद्धति में इस संप्रदाय का प्रभाव इस काल में था।

जहांगीर के मन में पशुओं के प्रति सहानुभूति का भाव था। यह भाव जैन सन्त सिद्धि चन्द्र के प्रभाव का फल था जो कि अकबर के दरबार में आये थे तथा जिन्हें अकबर ने नादिर-ए-जमाँ की उपाधि से विभूषित किया था।⁵⁴ जहांगीर ने प्रति सप्ताह दो दिन पशुवध के निषेध का आदेश दिया।⁵⁵ बृहस्पतिवार को जो कि उसके राज्यारोहण का दिन था तथा रविवार जो अकबर के जन्म का दिवस था- इन दो दिवसों को भी पशु-वध निषेध था।⁵⁶ इन आदेशों का पालन ठीक से हो रहा है या नहीं इसके लिए वह वेष बदल कर स्वयं रात्रि में निकलता था तथा दोषी व्यक्तियों को कठोर दण्ड देता था।⁵⁷ गुजरात में जैनियों के विशिष्ट दिवसों पर भी पशु वध का निषेध कर दिया था।⁵⁸

जैन धर्म के प्रति जहांगीर की नीति के संदर्भ में इतिहासकारों में परस्पर मतभेद है। खुसरो के विद्रोह के समय जैन धर्म के नेता मानसिंह ने अपने आश्रयदाता राजा राम सिंह को यह बताया कि अब जहांगीर के राज्य के दो ही वर्ष शेष है। इस भविष्यवाणी पर विश्वास कर राम सिंह ने विद्रोह कर दिया यद्यपि इस विद्रोह को दबा दिया गया तथा राम सिंह को क्षमा कर दिया गया।⁵⁹ डॉ. एस.आर. शर्मा के अनुसार, “प्रतीत होता है कि मानसिंह की भविष्यवाणी के संबंध में जहांगीर को पता चल गया किन्तु वह उसके विरुद्ध कुछ न कर सका क्योंकि वह राम सिंह को पहले ही क्षमादान दे चुका था और मानसिंह उसके संरक्षण में बीकानेर में रहता था।”⁶⁰

अपने शासन के बारहवें वर्ष (सन् 1617 ई.) में जहांगीर गुजरात की यात्रा पर गया। वहां पर उसने सेवड़ा संप्रदाय के लोगों को राज्य के अनुग्रह से वंचित कर दिया। यह जैनियों के अंतर्गत ही एक वर्ग था जो “नंगे सिर नंगे पैर” रहते थे। गर्म जल पीना, सिर और दाढ़ी के बाल उखाड़ना ये पुण्य कार्य मानते थे। ये लोग लंगोटी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पहनते थे।⁶¹ इनका आचरण भी भ्रष्ट था क्योंकि जो स्त्रियों इनके मंदिरों में जाती थीं उन्हें ये भ्रष्ट करते थे।⁶² जहांगीर ने इन लोगों के प्रति कठोरता का व्यवहार किया तथा इन्हें देश से निष्कासित कर दिया गया और इनके मंदिर नष्ट कर दिये गये।⁶³

निश्चित रूप से निर्वासन का आदेश केवल इसी राज्य पर कार्यान्वित किया गया, राजपूत राज्यों में जैनियों का संरक्षण पूर्ववत् ही प्राप्त था।⁶⁴ हम डॉ. बेनीप्रसाद के इस मत से सहमत हैं कि यह आदेश जैनियों के इस विशिष्ट संप्रदाय पर ही लागू किया गया था।⁶⁵ डॉ. एस.आर.शर्मा के इस कथन को कि “स्पष्टतः यह एक धार्मिक अत्याचार था”⁶⁶ हम स्वीकार नहीं करते क्योंकि वास्तव में निर्वासन का यह आदेश संबंधित धर्मानुयायियों के भ्रष्ट आचरण को देखकर दिया गया था, किसी असहिष्णुनीति के आधार पर नहीं। संभव है, शाहजहां का प्रभाव इस आदेश के जारी किये जाने पर पड़ा हो, क्योंकि वह इस अवधि में गुजरात का बादशाह था।

विवेचक काल में धर्म संबंधी सभी स्रोतों के अनुशीलन से यह स्पष्ट नहीं होता है कि उत्तरी भारत के क्षेत्रों में बौद्ध-धर्म का प्रचार या प्रसार था। ऐतिहासिक विकास क्रम में इस धर्म का ह्रास गुप्त काल के बाद आरंभ हो जाता है जब कि महान बुद्ध के उदात्त आदर्शों को खंडित कर यह अनेक संप्रदायों में विभक्त हो गया। “बौद्ध-धर्म में तन्त्रों के प्रचार का कारण उसमें ज्ञान और आचार का लोप होना भी बताया गया है। यद्यपि शैव व शाक्त संप्रदायों में भी तान्त्रिक आचार तथा तत्संबद्ध कुछ विकृतियां थी परन्तु इनका प्रचार लुप्त नहीं हुआ और न तार्किक खंडन से किसी धर्म का लोप माना जा सकता है।”⁶⁷

वस्तुतः बौद्ध धर्म प्रधानतया भिक्षुओं का धर्म था तथा इन भिक्षुओं का जीवन बिहारों में केन्द्रित था। उपासकों के लिए बौद्ध धर्म अपना पृथक् और पर्याप्त नैतिक सामाजिक आचार एवं संस्थाएं नहीं निर्मित कर सका था।⁶⁸ बौद्धों ने भी वैदिक संस्कृति की विशेषताओं को आत्मसात कर लिया था तथा वे वैदिक संस्कारों का पालन करते थे। बौद्ध विहार प्रायः राजाओं के द्वारा प्रदत्त तथा अनुमत भूमि दान पर निर्भर करते थे। इसी कारण बौद्ध-धर्म के प्रचार में राजकीय समर्थन एवं प्रोत्साहन का विशेष हाथ रहा है। दक्षिण और पश्चिम में हिन्दू शासकों की उपेक्षा तथा वैमुख्य से तथा उत्तर में तुर्कों की

विजय से बौद्ध विहार नष्ट और लुप्त हो गये। विहारों के लोप से उपासकों की क्षीण बौद्धता का विलोप अनिवार्य था।

17वीं सदी के आरंभिक तीन दशकों में इनका प्रभाव सुदूर तिब्बत, असम आदि सीमावर्ती क्षेत्रों में था परन्तु भारतीय समाज में इनका प्रशस्त प्रभाव इस काल में शेष नहीं रहा।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. वी. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल 1542-1605, डायमंड पब्लिर्सस, 2017 पृष्ठ 150.
2. एस. आर. शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृष्ठ 60-61.
3. बदायूनी, मुन्तखब उत तवारीख, भाग-2, पृष्ठ 269.
4. एस. आर. शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृष्ठ 60.
5. दि दीन-ए-इलाही, पृष्ठ 195.
6. तारा चंद, इन्फ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, पृष्ठ 165.
7. एस. एम. जाफर, दि मुगल इम्पायर फ्राम बाबर टू औरंगजेब, पृष्ठ 130.
8. डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग-2, पूर्वोक्त, पृष्ठ 332.
9. बदायूनी, मुन्तखब-उत-तवारीख, भाग-2, पूर्वोक्त, पृष्ठ 27
10. वी. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, पूर्वोक्त, पृष्ठ 27-54; जहीरद्दीन फारूकी, औरंगजेब एन्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 51.
11. श्री राम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पृष्ठ 42-43 के अनुसार, “इस महजर को मुबारिक ने तैयार किया था, और इस पत्र पर मखदूम-उल- मुल्क, सद्र-उस,-सदूर अब्दुनव्वी सलतनत के मुफ्ती-ए-आजम, सदर-ए-जहान, प्रमुख काजी जलालुद्दीन युग के विचारशील लेखक मुबारिक तथा विभिन्न विज्ञानों के अद्वितीय विद्वान गाजी खाँ ने हस्ताक्षर किये।
12. वी. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, पूर्वोक्त, पृष्ठ 28; जहीरद्दीन फारूकी, औरंगजेब एन्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 51
13. डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग-2, पूर्वोक्त पृष्ठ 328.
14. श्री राम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृष्ठ 45.
15. प्रो. के. टी. शाह, स्पेन्डर दैट वाज इंडिया, पृष्ठ 30.
16. एम. एल. राय चौधरी, दि स्टेट एन्ड रेलिजन इन मुगल इंडिया, पृष्ठ 202.
17. अकबर द्वारा कर की समाप्ति के विवरण के लिए द्रष्टव्य है, अकबरनामा, भाग-2, पृष्ठ 203-204; जजिया कर की व्याख्या के सन्दर्भ में उल्लेख्य है- कुरान, सूरा 5, पद्य 29.
18. तुजुक -ए-जहांगीरी, भाग-1, अनु. रोजर्स व वेवारिज, पृष्ठ 246
19. वहीं, भाग-2 पृष्ठ 38, 100, 176,
20. वहीं, भाग-1 पृष्ठ 268
21. वहीं, भाग-2 पृष्ठ 361.
22. तुजुक-ए-जहांगीरी, भाग-2, पृष्ठ 868; आर. पी. खोसला, मुगल किंगशिप एन्ड नोबलिट, पृष्ठ 213,
23. ए. वी. कीथ, वैदिक धर्मत व संस्कृति, भाग-2, (भूमिका), पृष्ठ 14 में वर्णित है- “अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति “अज्बु” धातु के अंतर्गत है। इनमें प्रमुख है- कान्ति, व्यक्ति, और गति-अग्नि देवता इन तीनों ही गुणों का अनुपम प्रतीक है।”
24. ऋग्वेद, 1, 12, 1, 4, 4, 3, 4, 15, 4,
25. वाकियात-ए-जहांगीरी, (अनुवाद), इलियट एवं डाउसन, भाग-6, पृष्ठ 263,
26. वहीं, पृष्ठ 263

27. संगम लाल पाण्डेय, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, पृष्ठ 385
28. वही, पृष्ठ 417
29. तारा चंद, इन्फ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, पूर्वोक्त, पृष्ठ 101.
30. डॉ. रजबली पाण्डेय ने हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, भाग-1, पृष्ठ 550 में पुष्टि मार्ग की व्याख्या करते हुए लिखा है- “पुष्टि श्री मद्भागवता का एक परिभाषिक शब्द है पोषणं तदनुग्रह-भागवत 2. 41। जिसका अर्थ है- अनुग्रह, भगवान की कृपा। वेद व शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित ज्ञान तथा कर्म का मार्ग जो साक्षात् पुरुषोत्तम के मुखारविन्द से प्रतिपादित है, पुष्टि मार्ग है।” बल्लभाख्य के दार्शनिक मतों की व्याख्या के लिए द्रष्टव्य है- राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-2, पृष्ठ 757-61.
31. संगम लाल पाण्डेय, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, पृष्ठ 418.
32. विट्ठल नाथ, स्वामी स्नात्र व स्वामिन्याष्टक (उद्धृत), आर. सी. मजूमदार, मुगल इम्पायर, (सम्पादित) पृष्ठ 647 पर।
33. मायारानी टण्डन, अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पृष्ठ 32-33; प्रभुदयाल मित्तल, अष्टापपरिचय, पृष्ठ 33.
34. आर.सी. मजूमदार, मुगल इम्पायर, संपादित, पूर्वोक्त, पृष्ठ 648.
35. वही, पृष्ठ 648.
36. हित हरिवंश, राधासुधानिधि, पद्य 76.
37. आर.सी. मजूमदार, मुगल इम्पायर, पूर्वोक्त, पृष्ठ 648.
38. सुंदर ग्रंथावली, प्रथम खंड, जीवन-चरित्र, पृष्ठ 82, उद्धृत, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृष्ठ 341-42.
39. वही, पृष्ठ 342.
40. आर.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 648.
41. स्वामी हरिदास, (लेख), प्रकाशित, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी बंगाल, खण्ड 14, भाग-1, 1876, पृष्ठ 312.; विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य है- “आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पृष्ठ 341-52
42. डॉ. कृष्ण लाल, मानस दर्शन, पृष्ठ 141; माता प्रसाद गुप्त, तुलसीदास, पृष्ठ 31.
43. तुजुक-ए-जहांगीरी, भाग-1 पृष्ठ 355-56
44. वही, पृष्ठ 355-56.
45. वही, पृष्ठ 355.
46. तुजुक-ए-जहांगीरी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 49.
47. वही।
48. आर.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 638.
49. वही. पृष्ठ 638.
50. डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग-2, पृष्ठ 723,
51. वही, पृष्ठ 723.
52. डॉ. राधा कृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग-2, पृष्ठ 735
53. आर.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 641.
54. वही. पृष्ठ 641.
55. वही, पृष्ठ 647.
56. आर.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, 642
57. इंडियन हिस्ट्री क्वार्टर्ली (1933 ई.), पृष्ठ 137-139.
58. इलियट एवं डाउसन, पूर्वोक्त, भाग-6, पृष्ठ 214,
59. वही, पृष्ठ 214.

60. फादर फ़ैरानी गुरीरियों, जहांगीर एन्ड दि जेसूइट, (अनुवाद), पेन, पृष्ठ 38.
61. आर.सी. शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक-नीति, पूर्वोक्त, पृष्ठ 89.
62. तुजुक-ए-जहांगीरी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 63, 219,
63. आर.सी. शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक-नीति, पूर्वोक्त, पृष्ठ 79-80.
64. वही।
65. वही, पृष्ठ 337
66. वही, पृष्ठ 338
67. एस.आर.सी. शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक-नीति, पूर्वोक्त, पृष्ठ 80.
68. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ जहांगीर, पूर्वोक्त, पृष्ठ 408-409.

मैहर तहसील का पुरातत्व

• धीरजलाल विश्वकर्मा

सारांश- प्रस्तुत शोध पत्र का शीर्षक ‘‘मैहर तहसील का’’ पुरातत्व पर आधारित है। मैहर तहसील सतना जिला के दक्षिण में स्थित एक औद्योगिक क्षेत्र होने के साथ-साथ एक धार्मिक क्षेत्र भी है। इस क्षेत्र में पुरातत्व के अनेक स्थल पहले से ही विद्यमान हैं, जिनका उल्लेख अन्य पुस्तकों में किया जा चुका है। इस शोध पत्र में उन पुरातात्विक स्थलों का वर्णन किया जा रहा है जो अभी तक पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं हुए, ये पुरास्थल हैं-गोलामठ मैहर से शारदा मन्दिर मार्ग के उत्तर में स्थल है। मड़ई मैहर से 12 किलोमीटर पूर्व दिशा में है, तिलौरा मैहर-अमरपाटन मार्ग पर मैहर से 7 किलोमीटर पूर्व दिशा में है, जूरा मैहर से 15 किलोमीटर पूर्ण दिशा में स्थित है तथा नादन पूर्व दिशा में मैहर से 20 किलोमीटर मैहर-अमरपाटन राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 7 पर स्थित है। इन सभी स्थलों में पुरातत्व के अनेक अवशेष विद्यमान हैं।

मुख्य शब्द- पुरातत्व, स्थल, अवशेष

परिचय- पुरातत्व के क्षेत्र में 20वीं शताब्दी के सत्तर एवं अस्सी के विगत दो दशकों में अत्यंत उल्लेखनीय प्रगति हुई। जिसके परिणामस्वरूप मानव की सम्पूर्ण कहानी को उसकी समग्रता में समझने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है। मात्र पुरावशेषों के अन्वेषण एवं प्राप्ति का कोई विशेष महत्व नहीं रहा है। मानव के समग्र इतिहास को पुरातत्व के माध्यम से समझने के लिए नवीन मुहावरों की खोज हो रही है। नवीन शब्दावली गढ़ी जा रही है। पुराविदों ने अपेक्षाकृत इस थोड़े से समय में अपने अन्वेषण तथा अनुसंधान की पद्धतियों में अमूल्य चूल परिवर्तन किये हैं। कम्प्यूटर का उपयोग बढ़ रहा है। सैद्धान्तिक एवं वैचारिक क्षेत्रों में हुई प्रगति को अत्यंत सनसनी खोज कहा जा सकता है। यह सच है कि जनमानस के पुरातत्व के प्रति एक विशेष अभिरूचि और रुझान देखने को मिलता है, परन्तु ऐसे लोग सामान्यतः पुरातत्व का सम्बन्ध विचित्र एवं आकर्षक प्राचीन वस्तुओं के संग्रह और जमीन के अन्दर गड़े हुए खजानों आदि की खोज के लिए किये जाने वाले उत्खनन कार्यों इत्यादि से जोड़ते हैं।

हिन्दी-भाषा में पुरातत्व शब्द अंग्रेजी भाषा में आर्किआलॉजी (Archaeology) शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग होता है। पुरातत्व शब्द का

वास्तविक अर्थ ज्ञात करने के लिए अंग्रेजी में इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विचार कर लेना असंगत नहीं होगा। आर्किआलॉजी (Archaeology) शब्द यूनानी भाषा के आर्किओस (Archaios) तथा लोगोस (Logos) इन दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है पुरातन ज्ञान लेकिन आज कल पुरातत्व शब्द का उसके शाब्दिक अर्थ से किंचित भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। इसी तारतम्य में मैहर तहसील के कुछ महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है -

सतना जिले के अंतर्गत आने वाली मैहर तहसील एक समृद्ध एवं औद्योगिक होने के साथ साथ महत्वपूर्ण धार्मिक नगरी भी है। इस तहसील के माध्य भाग से इलाहाबाद-बाम्बे रेल पथ गुजरता है। यहां के हरे भरे जंगल तथा उर्वरक भूमि एवं प्राचीन काल में अपना स्थान रखने वाली तमषा नदी प्रभावित होती है। यह नदी झुकेही नामक पहाड़ी से तमषा कुण्ड से निकलकर इलाहाबाद के शिर्षानामक स्थान पर गंगा नदी में ली जाती है। इस नदी के आसपास अनेक पुरातात्विक स्थलों की संख्या अनेक है। यहां के चित्रूट पर्वत पर विराजमान माँ शारदा का अत्यंत भव्य मंदिर स्थित है। इस मंदिर के मुख्य द्वारा के निचले भाग में प्राचीन शिलालेख है। जो सरस्वती वंदना से प्रारम्भ होता है। यहां पर विराजमान माँ सरस्वती जो शारदा देवी के नाम से विश्वविख्यात है। अतः इनके परिचय की ज्यादा आवश्यकता नहीं है।

गोलामठ- मैहर से 01 किमी की दूरी पर शारदा मंदिर मार्ग के निकट लिलजी नदी के किनारे प्राचीन गोलामठ का शिव मंदिर स्थित है यद्यपि कनिंघम की आर्कोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट में इसका उल्लेख न होने से अभी तक किसी भी विद्वान का भी ध्यान इस ओर नहीं गया। शिखर शैली का यह मंदिर पूर्व मध्ययुग रचना प्रतीत होती है। इस मंदिर के गर्भ गृह में शिवलिंग जलहरी में स्थित है। मंदिर के प्रवेश द्वार के शीर्ष भाग पर सरस्वती, लक्ष्मी, ब्रम्हा, गणेश आदि की प्रतिमाएं स्थापित हैं। दुर्भाग्य का विषय है कि यहां पर चूने की पोताई करा दी गई है, जिसके कारण मौलिकता लुप्त हो रही है। यहां पर अंकित लेख के अनुसार इस मंदिर का निर्माण 9वीं 11वीं शताब्दी के मध्य हुआ था।

मड़ई- यह ग्राम मैहर से 12 कि.मी. की दूरी पर पूर्व दिशा में स्थित है। यह ग्राम पूर्व मध्यकालीन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल था। यहां का शिल्प सौंदर्य अपने आप में विशेष महत्व रखता है। इसका अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थल से मूर्तियों का निर्माण कर अनेक स्थानों में भेजा जाता था। इस ग्राम के मध्य भाग में कल्चुरी कालीन मंदिर विद्यमान है। वर्तमान समय में इसका शिखर नष्ट हो चुका है तथा अनेक प्रतिमाएं मंदिर के चारों तरफ बिखरी पड़ी हैं। यहां के पाषाणों पर अनेक प्रकार की नक्कासी की गयी है। इस ग्राम के पूर्व दिशा में एक प्राचीन तालाब है। जिसके किनारे तीन मंदिर बने हुए हैं। इनमें अनेक देवी देवताओं की प्रतिमाएं विद्यमान हैं।

तिलौरा - मैहर अमरपाटन राष्ट्रीय राज मार्ग पर मैहर से 07 किमी की दूरी पर यह नगर स्थित है। मुख्य मार्ग से 02 किमी की दूरी सरहजी नदी के तट पर एक मंदिर के अवशेष हैं। मंदिर का ऊपरी भाग नष्ट हो चुका है आधे भाग में मंदिर के पृष्ठ भाग पर महावीर की प्रतिमा स्थापित है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रतिमाएं जमीन में बिखरी पड़ी हैं।

जूरा- मैहर तहसील से 15 किमी. की दूरी पर राष्ट्रीय राज मार्ग से 06 किमी. की दूरी पर

यह ग्राम स्थित है। इस ग्राम में एक प्राचीन गढ़ी है, जिसमें एक शिला फलक पर कृष्ण तृतीया (8 शताब्दी) की प्रशंसा अंकित है। जिससे यह प्रमाणित होता है कि यहां पर कुछ समय के लिए राष्ट्रकूटों ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया है।

नादन- अमरपाटन मैहर मार्ग पर अमरपाटन से 06 किमी. की दूरी पर यह ग्राम स्थित है। यहां पर सती प्रस्तर के अतिरिक्त प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष प्राप्त होते हैं।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. डॉ. जयनारायण पांडेय, पुरातत्व विमर्श पृष्ठ 1-2
2. ऑस.रि., खण्ड 9 पृष्ठ 333 एपि, इण्ड, खण्ड 35 पृष्ठ 171-178
3. डॉ. के.एल. अग्रवाल विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल पृष्ठ संख्या 153
4. डॉ. के.एल. अग्रवाल विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल पृष्ठ संख्या 154

मनरेगा में महिलाओं के समावेशी विकास का अध्ययन

• मिर्जा शहाब शाह
 ..सद्दाम खान
 ... रामलखन सिंह

सारांश- सशक्त महिला सशक्त समाज देश के विकास में दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। देश में महिलाओं का सशक्तीकरण होना वर्तमान समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता है, महिला सशक्तीकरण से आशय महिलाओं की आध्यात्मिक राजनीति सामाजिक एवं आर्थिक विकास में वृद्धि करना है। भारत में महिलाएं शिक्षा, राजनीति एवं विज्ञान प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में भी भागीदारी कर रही है। भारत का संविधान सभी भारतीय महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान करता है साथ ही यह आश्वासन भी देता है कि राज्य द्वारा किसी के साथ लैंगिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। सभी नागरिक को अवसर की समानता के साथ-साथ सामान्य कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान है। इसके साथ ही राज्य द्वारा महिलाओं तथा बच्चों के पक्ष में विशेष प्रावधान की अनुमति प्रदान करता है। इस विशेष प्रावधान के अंतर्गत वर्ष 2001को भारत ने महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया है। इसके पश्चात बहुत सारी नीतियों के निर्माण में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की गई, जिसकी योजनाएं केंद्र सरकार के माध्यम से समय-समय पर संचालित की जाती है। उनमें से एक प्रमुख योजना '‘महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम’' महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में सहभागी रहा है। नेशनल रुरल इम्प्लॉयमेंट गारंटी एक्ट(नरेगा) सितंबर, 2005 को पारित हुआ तथा 2 फरवरी 2006 को इसकी शुरुआत माननीय प्रधानमंत्री, डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा आंध्र प्रदेश के बंदापाली ग्राम से किया गया एवं 2 अक्टूबर, 2009 को इसका नाम बदलकर महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के रूप में कर दिया गया। आरंभ में यह योजना पायलट परियोजना के रूप में 200 जिलों में संचालित की गई, वर्ष 2007 में इसे बढ़ाकर 330 जिलों में लागू कर दिया गया, वर्तमान समय में देशके लगभग 619 जिलों में लागू है। सर्वाधिक रोजगार देने वाली यह योजना

-
- एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य संकाय, का. सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय अयोध्या
 - .. शोध छात्र, वाणिज्य संकाय, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या
 - ... शोध छात्र, अर्थशास्त्र डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या

महत्वपूर्ण योजना साबित हुई है। यह योजना सदन के द्वारा पारित एक्ट के द्वारा 100 दिन के रोजगार देने का अधिकार प्रदान करता है। इस योजना के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है कि किसी भी स्थिति में सम्बन्धित राज्य द्वारा 100 दिन का कार्य प्रदान न कर पाने पर सम्बन्धित राज्य 100 दिन का बेरोजगारी भत्ता प्रदान किये जाने हेतु बाध्य होगा। नेशनल रूरल इम्प्लायमेंट स्कीम की संस्तुति करने वाली कमेटी के चेयर पर्सन एवं सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री जीन ड्रेजने इसके महत्वपूर्ण पद पर रहते हुये इस योजना को बीपीएल परिवार के घरे से बाहर निकालकर एक व्यापक स्वरूप प्रदान किया।

मुख्य शब्द- महिला, सशक्त, सशक्तीकरण, विकास, अधिकार

परिचय- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत लोक कल्याणकारी राष्ट्र रहा है और सरकार के समस्त प्रयासों का प्राथमिक लक्ष्य देश के लोगों का कल्याण रहा है। नीतियां और कार्यक्रम ग्रामीण निर्धनता दूर करने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर तैयार किये जाते रहे हैं। यह महसूस किया गया कि गरीबी उपशमन के स्थायी कार्यनीति को विकास की प्रक्रिया में निरन्तर लाभकारी रोजगार के अवसर बढ़ाने पर आधारित होना चाहिए। गरीबी अज्ञानता बीमारियों और अवसरों की असामनता जैसी कुप्रवृत्तियों का खात्मा तथा बेहतर और उच्चतर गुणवत्ता युक्त/गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करना बुनियादी सिद्धान्त रहे हैं जिन पर सभी योजनाओं और विकास कार्यक्रमों का खाका तैयार किया गया ग्रामीण विकास के अन्तर्गत लोगों के सुदृढ़ आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन दोनों का ध्यान रखा गया है।

योजनाओं के इन क्रमों में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम (मनरेगा) अपनी शुरुआत के बाद से कई बदलावों से गुजरा और करोड़ों लोगो की जीवन रेखा बन गया है। इस अधिनियम का लक्ष्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों की अजीविका सुरक्षा में वृद्धि करना है, इसमें किसी भी वित्तीय वर्ष के दौरान प्रत्येक परिवार को न्यूनतम 100 दिन के लिए दिहाड़ी रोजगार पक्के तौर पर उपलब्ध कराया जाता है। बशर्ते उसके वयस्क सदस्य अकुशल श्रमकार्य करने के इच्छुक हो। महात्मागांधी नरेगा कार्यक्रम के प्रमुख स्तम्भों में सामाजिक समावेशन, लिंग समानता, सामाजिक सुरक्षा एवं समानता पर आधारित विकास सम्मिलित है।

शोध उद्देश्य-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं के विकास से जुड़े कार्यों में मजदूरी रोजगार के अवसर पैदा करके ग्रामीण गरीबों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाना।
2. ग्रामीण मांग को सतत एवं स्थिर बनाये रखना।
3. मनरेगा योजना के माध्यम से महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का अध्ययन करना।
4. उपयोगी स्वरोजगार के अवसर बढ़ाने, ग्रामीण परिवारों की आमदनी बढ़ाने और उसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए ग्रामीण परिसंपत्तियों एवं अवसंरचना का निर्माण करना।

5. मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराने के लिए स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना।
6. पंचायतीराज संस्थाओं और महिलाओं का सशक्तिकरण करना।
7. वित्तीय समावेशन को प्रभावी रूप से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था से जोड़ना।

शोध विधि एवं प्रविधि- प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीय समकों पर आधारित है। इस शोध पत्र में विश्लेषणात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। समकों के सकलन हेतु पुस्तको जनरल सरकारी रिपोर्ट ग्रामीण विकास मंत्रालय के बेबसाइट का अध्ययन किया गया है।

साहित्य पुनर्विलोकन- Jean Dreze (2006)-Employment Guarantee-A Premiere 2006 के द्वारा महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के अंतर्गत कार्यरत महिलाओं की समस्या के संदर्भ में एक अध्ययन किया गया था। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि राजस्थान में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम में चलाए जा रहे कार्यों में कार्यस्थल पर महिलाओं के बच्चों के लिए कोई सुविधाएं नहीं हैं।

Impact of MANREGA and women's participation- बसरत बशीर भट्ट, पी मरियप्पन इस अध्ययन में यह परीक्षण किया गया कि मनरेगा योजना में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है और यह शोध अध्ययन वाहिपोरा ग्राम पंचायत कुंपवाड़ा जनपद पर किया गया था जिसमें यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि अकुशल महिला कामगारों ने इस योजना के माध्यम से जब रोजगार प्राप्त हुआ तब उनके जीवन में भेदभाव के स्थान अवसर की समानता प्राप्त हुई।

वैश्विक स्तर पर वर्ल्ड बैंक ने भी यह मानना है कि रोजगार सृजन में मनरेगा की नीति ज्यादा प्रभावशाली रही है। समावेशी वित्तीय समावेशन जैसे आर्थिक संकल्पना की सीधी मनरेगा योजना के माध्यम से देखी जा सकती है, ही इस योजना की आलोचना की जाती रही है।

आईएलओ अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट 2017 में एक विस्तृत अध्ययन में मनरेगा का भारत जैसे अधिक आबादी वाले विकासशील देश पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसका विस्तृत अध्ययन सम्मिलित है। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि एक तिहाई महिलाओं की भागीदारी और उनका सफलता पूर्वक मनरेगा कार्यक्रम में शामिल होना यह भी बताता है कि महिलाएं अपने अधिकारों और अवसर की समानताओं के प्रति जागरूक हैं।

एस कृष्णन 2014 में अपने अध्ययन में यह पाया कि भारत देश में नीतियों और कार्यक्रम का क्रियान्वयन निर्धनता को कम करने के लिए किया गया है वहीं पर यह भी तथ्य सामने आया कि मनरेगा के माध्यम से महिलाओं की बचत करने की क्षमता और उनकी मजदूरी मूल्य (रुपये) में भी वृद्धि हुई जिससे उनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक स्वावलंबन हुआ है।

Impact and MANREGA on women empowerment and their issues and challenges V.Rajalaxmi, V.Slevam शोध पत्र में बताया गया है किस प्रकार धीरे धीरे मनरेगा का महत्व बढ़ा है, जिसमें महिलाओं की सहभागिता बढ़ी जिससे उन्हें सामाजिक सशक्तिकरण की अनुभूति हुई। “The Battel for Employment

Guarantee” Khera Reetika(2009-11) इस अध्ययन में पाया गया कि महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के संदर्भ में महिलाओं के विचार जानने के उद्देश्य से अध्ययन किया गया था। अध्ययन से प्राप्त परिणामों के अनुसार महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम योजना के अंतर्गत रोजगार प्राप्त श्रमिकों में एक तिहाई महिलाएं केरल, राजस्थान एवं तमिलनाडु राज्य में थी जबकि असम, बिहार, पश्चिम बंगाल एवं उत्तर प्रदेश में एक तिहाई से कम महिलाएं मनरेगा में कार्यरत थीं। शोध अध्ययन में उत्तरदाताओं में से 68 प्रतिशत महिलाओं का मानना था कि मनरेगा उनके जीवन के अत्यधिक महत्व है।

समंक विश्लेषण-समावेशी विकास के संकल्पना मे ही वित्तीय समावेशन एवं सामाजिक समावेशन सम्मिलित है अधिकांश स्थितियों मे जो सामाजिक समावेशन से वंचित है वह वित्तीय समावेशन से भी वंचित है। (आर्थिक समीक्षा 2012-2013) सी रंग राजन रिपोर्ट 2008 के अनुसार वित्तीय समावेशन का अर्थ है-समाज के कमजोर एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को पर्याप्त मात्रा में सही समय पर कम से कम लागत पर वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराना।सामाजिक समावेशन को हम महात्मा गांधी के सर्वोदय एवं स्वालम्बन की अवधारणा के अन्तर्गत समझ सकते है, इसका उद्देश्य है समाज में उपस्थित सभी लिंग, जाति, धर्म सम्प्रदायआदि का उत्थान।वस्तुतः समावेशी विकास में उक्त संकल्पनाये अन्तर्निहित है। समावेशी विकास का मूल उद्देश्य है निम्नलिखित 3 प्रकार के अन्तर को समाप्त करना-

1. ग्रामीण-शहरी सुविधाओं के असमानता को समाप्त करना।
 2. आर्थिक एवं सामाजिक असमानता को समाप्त करना।
 3. क्षेत्रीय असमानता को समाप्त करना।
 4. महिला एवं पुरुष असमानता को दूर कर समानता के अवसर प्रदान करना।
- मनरेगा प्रथम दो अन्तरों को समाप्त करने मे सहायक सिद्ध हुआ है। मनरेगा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी पलायन में गिरावट आई है।

सारणी नं.01

Key Parameter Indicators	2016 - 17	2017 - 18	2018 - 19	2019 - 20	2020 - 21
a Approved Labour Budget	₹ 15,00,00,000	₹ 18,00,00,000	₹ 20,00,00,000	₹ 25,00,00,000	₹ 40,00,00,000
b Persondays Generated so far	15,75,25,610	18,15,22,850	21,21,27,266	24,44,33,057	37,15,79,856
c % of Total Labour Budget	105.02%	100.85%	106.06%	97.77%	92.89%
d SC persondays % as of total persondays	32.75%	34.06%	31.42%	30.43%	31.18%
e ST persondays % as of total persondays	0.95%	0.95%	0.95%	0.95%	0.99%
f Women Persondays out of Total(%)	33.20%	35.11%	35.28%	34.28%	33.28%
g Average days of employment provided per household	31.44	37.35	42.05	46.00	40.01
h Average Wage rate per day per person(Rs.)	₹ 173.75	₹ 174.95	₹ 174.96	₹ 181.79	₹ 200.87
i Total No of HHs completed 100 days of wage employment	41,370	42,520	71,990	1,33,060	5,56,840
j Total Households Worked	50,10,029	48,60,137	50,44,897	53,14,111	92,87,797
k Total Individuals Worked	62,47,798	60,40,009	61,50,750	64,53,669	1,14,31,004

Contents provided and maintained by Department of Rural Development, Ministry of Rural Development, Govt. of India.

सारणी नं.02
Total Persondays Generated (Uttar Pradesh)

Year	SC Persondays % [d]	ST Persondays % [e]	Women Persondays % [f]
2016 – 17	32.75%	0.95%	32.20%
2017 – 18	34.6%	0.95%	35.11%
2018 – 19	31.42%	0.95%	35.28%
2019 – 20	30.43%	0.95%	34.28%
2020 – 21	31.18%	0.99%	33.28%

उपर्युक्त सारणी 01 और 02 देखने से यह पता चलता है कि उ.प्र. में भी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं के श्रम दिवस औसतन 2016-17 में 31.44 था और सामान्य वृद्धि के साथ 2020-21 में श्रम दिवस औसतन 40.01 हो गया। व क्रमशः मजदूरी में भी 173.75 से सामान्य वृद्धि होकर 200.55 हो गई। इससे स्पष्ट है कि मनरेगा अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने में सफल नहीं हो पा रहा विश्लेषण अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि मनरेगा औसतन श्रम दिवस मजदूरी जो कि 200.55 है, वह अत्यधिक कम है, जबकि व्यावहारिक रूप से बाजार में 300 रु से लेकर 350 रु प्रतिदिन की मजदूरी प्राप्त हो जाती है

मनरेगा के समक्ष चुनौतियाँ- हाल की अवधि में मनरेगा रोजगार सृजन की गति कम हो रही है, विशेष तौर पर महिलाएं व अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए। जहाँ 2016-17 में प्रति परिवार 46 व्यक्ति दिन रोजगार प्रदान किया गया वहाँ 2017-18 में 45.69 व्यक्ति दिन, 2018-19 में 50.88 व्यक्ति दिन, 2019-20 में 48.40 व्यक्ति दिन तथा 2020-21 में केवल 48.27 रोजगार प्रदान किया जा सका व मजदूरी में औसत भुगतान प्रतिदिन 2016-17 में 173.75 रु तथा 2020-21 में 200.87 रु प्रतिदिन है, जिसमें लगभग 14 प्रतिशत वृद्धि हुई जो कि महंगाई के हिसाब से बहुत कम है। घर के आवश्यक कार्य होने कारण भी महिलाएं अपने निवास स्थान से दूर मनरेगा में कार्य करने के लिए इच्छुक नहीं थीं। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया कि कुछ श्रम दिवस महिला व पुरुष से कार्य कराने के उपरान्त शेष कार्य में तकनीकी सहायता (जे.सी.बी., ट्रेक्टर) के माध्यम से करने से श्रम दिवस में कमी आई। कई राज्यों से शिकायतें आयी हैं कि मजदूरी का भुगतान 15 दिनों की निर्धारित अवधि में नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त मनरेगा के कार्यान्वयन में अनियमितता भ्रष्टाचार, मजदूरी का गिरता हिस्सा एवं बेरोजगारी भत्ते की आदयगी न होना आदि मनरेगा स्कीम के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं। मनरेगा का गरीबी पर स्थाई प्रभाव डालने के लिए कई समस्याओं का समाधान किया जाना आवश्यक है। जब ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन है तो रोजगार दिवसों की एक निश्चित सीमा क्यों निर्धारित करनी चाहिए?

निष्कर्ष एवं सुझाव- निष्कर्ष रूप में देखे तो समावेशी विकास साध्य है जो कि मनरेगा एवं अन्य स्कीमों जैसे खाद्य सुरक्षा, उज्ज्वला योजना, प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना, गरीब कल्याण रोजगार योजना आदि साधन हैं। हम यह कह सकते हैं ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ाने व समावेशी विकास के मंशा को फलीभूत करने में कुछ विशेष परिवर्तनों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है जैसे मनरेगा में कम से कम 180 श्रम

दिवसों का प्रावधान किया जाए। मजदूरी में महँगाई को ध्यान में रखते हुए रु. 400 प्रतिदिन मजदूरी निर्धारित करने की आवश्यकता है। ग्रामीण आजीविकाओं विशेषकर कृषि व ग्रामीण अवसंरचनाओं में जोर देते हुए अनुमेय कार्यों की सूची का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों सीमान्त किसानों व समाज के उपेक्षित वर्गों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा में सुधार हो सकें।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. 'मनरेगा 2005 एक दशक की उपलब्धि' ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार
2. आर्थिक समीक्षा (2012.13) वित्त मंत्रालय, भारत सरकार
3. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम महात्मा गांधी नरेगा समीक्षा -2 अनुसंधान अध्ययनों का संग्रह (2012.2014)
4. Rao, Hanumantha (2014) Can the Rights based NREGA Reduce Poverty eSocial Sciences The One-stop Portal for Social Scientists, |March 8.
5. C.P. Chandrashekhar and Jayati Ghosh (2009) Social Inclusion in the NREGS Business Line 27.
6. Kapila U. (2014) Indian Economy Performance and Policies Academic New Delhi
7. Khera Reetika (2010) National Rural Employment Guarantee Act where do stand Centre for Legislative Research and Advocacy (Clra) Oxfam India.
8. [www..nrega.nic.in](http://www.nrega.nic.in)
9. www.mnregaup.co.in
10. www.rural.nic.in/

छत्तीसगढ़ में सार्वजनिक व्यय का शिक्षा पर उसके प्रभाव का अध्ययन

• मेघा डड्सेना
.. ए. के. पाण्डेय

सारांश- सार्वजनिक व्यय राजस्व का अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग है क्योंकि सार्वजनिक व्यय से केवल उसका परिवार प्रभावित होता है परन्तु सरकार द्वारा किये गये सार्वजनिक व्यय से सम्पूर्ण राष्ट्र प्रभावित होता है। राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए सरकार सार्वजनिक व्यय को एक अस्त्र के रूप में उपयोग करता है। छ.ग. राज्य सरकार सार्वजनिक व्यय के माध्यम से सामाजिक का एक महत्वपूर्ण पहलू शिक्षा पर भी व्यय कर रही है। जिससे कि राज्य का प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो और राज्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे। छ.ग. की साक्षरता दर वर्ष 2001 में 64.66 प्रतिशत थी तथा वर्ष 2011 में 70.28 हो गई। छत्तीसगढ़ की सर्वाधिक साक्षरता दर वाला जिला दुर्ग है जिसमें 82 प्रतिशत साक्षरता दर है तथा सबसे कम साक्षरता दर वाला जिला सुकमा है जिसकी साक्षरता दर 34 प्रतिशत है इस प्रकार छ.ग. साक्षरता की दृष्टि से सम्पूर्ण भारत में 20 वें स्थान पर है। छ.ग. राज्य सरकार के द्वारा किये गए कुल सार्वजनिक व्यय के आँकड़ों का आंकलन करने से पता चलता है कि वर्ष 2001-02 में कुल सार्वजनिक व्यय 8094.63 करोड़ रुपये थी, जिसमें शिक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय 836.36 करोड़ रुपये है तथा उसी वर्ष स्कूल शिक्षा में कुल पंजीयन दर (GER) 47.69 प्रतिशत थी। सरकार के द्वारा शिक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय से शिक्षा के स्तर पर सुधार हुआ है तथा राज्य का शैक्षणिक विकास हुआ है।

मुख्य शब्द- सार्वजनिक व्यय, शिक्षा पर कुल पंजीयन दर, सकल घरेलू उत्पादन, मानव विकास।

परिचय- सार्वजनिक व्यय राज्य सरकार तथा स्थानीय सरकार द्वारा किया गया व्यय सार्वजनिक व्यय कहलाता है। यह राजस्व का बहुत ही महत्वपूर्ण विभाग है। किसी भी राष्ट्र के विकास में राज्य की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। आज देश

-
- शोधार्थी, पीएच. डी., अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
.. प्राध्यापक, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

लोककल्याणकारी राज्य के स्वरूप को अपना रहा है जिसके कारण सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती जा रही है और उस देश के नागरिक भी अपनी सरकार से ये उपेक्षाएँ रखते हैं की सरकार उन क्षेत्रों में व्यय करे जो व्यक्तियों के निजी व्यय के सामर्थ्य से बाहर हैं जैसे- सामूहिक शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, आवास, यातायात आदि जिसमें किसी समूह या व्यक्ति के द्वारा खर्च करना संभव नहीं है। सार्वजनिक व्यय एक आर्थिक बैरोमीटर के समान है जिससे उस राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि को मापा जा सकता है। सार्वजनिक व्यय के माध्यम से सरकार अपने देश के नागरिकों को अनेक प्रकार की सेवाएँ तथा सुविधाएँ प्रदान करती है जैसे- आंतरिक तथा बाह्य आक्रमण से सुरक्षा तथा शिक्षा, चिकित्सा, जन-स्वास्थ्य, मनोरंजन, सहकारिता, सामुदायिक विकास तथा सामाजिक लाभ की अनेक योजनाएँ लागू करती है। सार्वजनिक व्यय एक ऐसा अस्त्र है सरकार का जिसके माध्यम से वह सामाजिक सुधार तथा देश का आर्थिक विकास करती है। मानवीय संसाधन उस देश के आर्थिक विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। यदि उस देश का नागरिक शिक्षित है तथा विवेकशील है अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है तो उस देश का तीव्रगति से आर्थिक विकास होगा और उस देश का नागरिक अशिक्षित तथा अनपढ़ हैं, अविवेकशील हैं तो वह देश विकास की गति में पिछड़ जाएगा और ऐसा देश अक्सर विकास राष्ट्रों को गुलाम बन कर रह जाता है।

छत्तीसगढ़ राज्य की स्थापना 1 नवम्बर 2000 को हुई है यह मध्यप्रदेश से पृथक होकर देश के 26वें राज्य के रूप में उभर कर सामने आया है। मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ राज्य का मातृत्व राज्य के नाम से जाना जाता है। छत्तीसगढ़ राज्य सरकार शिक्षा के क्षेत्र को ऊँचा ऊठाने के लिए सार्वजनिक व्यय के माध्यम से प्रयास कर रही है। सार्वजनिक व्यय के माध्यम से राज्य के शिक्षा के विकास के लिए अनेक योजनाएँ अपना रही है। जिससे राज्य का प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो और छत्तीसगढ़ राज्य का एक शिक्षित राज्य की श्रेणी में आए।

अध्ययन के उद्देश्य - प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1. शिक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय एवं उनके संकेतकों की प्रवृत्तियों एवं परिवर्तनशीलता का अध्ययन करना।
2. कुल पंजीयन दर पर सार्वजनिक व्यय के प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति -

(अ) आँकड़ों का संग्रहण- प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। शिक्षा पर किये जाने वाले सार्वजनिक व्यय का कुल पंजीयन दर से संबंधित आँकड़ों को राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित छत्तीसगढ़ का आर्थिक सर्वेक्षण एवं राज्य की जनगणना रिपोर्ट से एकत्रित किया गया है।

(ब) आँकड़ों का विश्लेषण- अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जिन सांख्यिकीय तकनीकियों का उपयोग किया गया है वह इस प्रकार है -

- (1) संयुक्त वृद्धि दर- शिक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्ति जानने के लिए

संयुक्त वृद्धि दर का प्रयोग किया गया है। इसका सूत्र इस प्रकार है -

$$Y = AB^t$$

जहाँ -

Y = प्रवृत्ति दर

A = स्थिरांक

B = $(1+r)$, r = संयुक्त वृद्धि दर (%में)

T = समय

(2) विचरण गुणांक- अध्ययन अवधि में एकत्रित आँकड़ों में परिवर्तनशीलता की दर जानने हेतु विचरण गुणांक ज्ञात किया गया है। इसका सूत्र इस प्रकार है -

$$C.V. = \frac{SD}{\bar{X}} \times 100$$

जहाँ -

C.V. = विचरण गुणांक (% में)

S.D. = प्रमाप विचलन

$\bar{X}$ = समांतर माध्य

छत्तीसगढ़ राज्य में सार्वजनिक व्यय का शिक्षा पर प्रभाव

वर्ष	शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय (करोड़ रु.)	प्राथमिक से माध्यमिक स्तर के स्कूल शिक्षा में कुल पंजीयन दर(GER%)
2000 - 01	815.46	46.64
2001 - 02	836.36	47.69
2002 -03	852.21	49.41
2003 -04	864.23	51.03
2004 - 05	884.34	53.71
2005 - 06	905.52	58.32
2006 - 07	924.78	60.14
2007 - 08	1122.41	64.22
2008 - 09	1498.03	65.74
2009 - 10	1218.05	87.65

उपर्युक्त तालिका में छत्तीसगढ़ राज्य में सार्वजनिक व्यय का शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव को दिखाया गया है। जिसमें वर्ष 2000-01 से 2009-10 तक के आँकड़ों को लिया गया है। छत्तीसगढ़ सरकार के द्वारा सत्र 2000-01 में शिक्षा पर 815.46 करोड़ रु. व्यय किया है तथा 2004-05 में 884.34 करोड़ रु. व्यय किया है अर्थात् पहले से अधिक वृद्धि हुई है, इस प्रकार सार्वजनिक व्यय में 2008-09 तक तो बढ़ रही है अर्थात् 1498.03 करोड़ रु. व्यय हुआ है। परन्तु 2009-10 के आँकड़े देखे तो पहले से थोड़ा

कम शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय हुआ है। इस प्रकार कह सकते हैं शिक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है, बस 2009-10 में थोड़ा सार्वजनिक व्यय घट गया है।

सार्वजनिक व्यय का शिक्षा पर प्रभाव देखने के लिए प्राथमिक से माध्यमिक स्तर के स्कूलों में कुल पंजीयन दर (GER) को लिया गया है। 2000-01 में कुल पंजीयन दर 46.64 प्रतिशत है। 2006-07 में 60.14 प्रतिशत है तथा 2009-10 में 87.65 प्रतिशत है अर्थात् शिक्षा पर किये गए सार्वजनिक व्यय में भी वृद्धि हो रही है तथा शिक्षा में कुल पंजीयन दर (GER) में भी वृद्धि हो रही है। शिक्षा पर किये गए सार्वजनिक व्यय शिक्षा पर अच्छा प्रभाव पड़ रहा है।

निष्कर्ष- छ.ग. राज्य सरकार के द्वारा शिक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय से स्कूल शिक्षा के स्तर में सुधार एवं विकास की प्रवृत्ति देखने को मिल रही है। राज्य सरकार विभिन्न शैक्षणिक योजनाओं एवं सुविधाओं के माध्यम से शिक्षा का विकास इस तरह कर रही है की शिक्षण सुविधा बच्चों को उनकी पहुँच पर प्राप्त हो सके। शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय कर विभिन्न तरीकों से शिक्षा को रुचिकर बनाकर तथा निःशुल्क पाठ्य पुस्तक शाला गणवेश प्रदान कर मध्याह्न भोजन कार्यक्रम लागू कर छात्रवृत्ति की सुविधाएँ प्रदान कर सरस्वती सायकल योजना आदि लागू कर बच्चों को शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश हेतु आकर्षित किया जा रहा है, जिससे शाला में बच्चों का कुल पंजीयन दर में वृद्धि हो तथा शाला त्यागी बच्चों की संख्या में कमी आये। राज्य सरकार के द्वारा शिक्षा पर किये जाने वाले सार्वजनिक व्यय से छ.ग. राज्य के मानव विकास निर्देशांक में वृद्धि कर रही है तथा राज्य के मानव संसाधन को विवेकशील तथा जागरूक बना रही है ताकी शिक्षा में वृद्धि से राज्य के सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि करने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दे सकें।

प्रमुख सुझाव -

1. पढ़ाई को मनोरंजक एवं रुचिकर बनाने के लिए समय - समय पर अनके लिए खेल - कूद एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा पुरस्कार वितरण का कार्य किया जाना चाहिए जिससे बच्चों में स्कूलों में पढ़ाई के लिए रुचि बढ़ती है।
2. स्कूलों में छात्र - छात्राओं के लिए शौचालय की भी सुविधा होनी चाहिए क्योंकि कई छात्राएँ इसके अभाव में शाला आने में हिचकिचाहट महसूस करती हैं।
3. प्रवेशोत्सव में अनुपस्थित बच्चों से संपर्क कर उन्हें शाला आने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
4. माइग्रेटरी छात्रावास भी बनाई जाये, ताकि पलायन करने वाले बच्चे इसमें रह कर शिक्षा प्राप्त कर सकें।
5. शिक्षा तथा शिक्षण कार्य की गुणवत्ता में वृद्धि करने के लिए शाला के प्रधानाध्यापक और शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
6. भविष्य का निर्माण एक शिक्षक के हाथों में होता है इसलिए अपने कर्तव्यों का नियमित निर्वहन करते हुए शाला में उपस्थिति उनकी नियमित होनी चाहिए तथा बच्चों को शाला में स्वस्थ माहौल देना चाहिए तथा मन लगाकर बच्चों को शिक्षा प्रदान करना चाहिए।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. छ.ग. समग्र 2014, छ.ग. जन संपर्क विभाग
2. आर्थिक एवं सांख्यिकी संचलनालय छ.ग. रायपुर, समाजिक क्षेत्र, अध्याय -14 ,पृ. 181,182,183
3. शोधकर्ता द्वारा विश्लेषण किया गया
4. आर्थिक सर्वेक्षण 2011-12, आर्थिक एवं सांख्यिकी संचलनालय छत्तीसगढ़, इन्द्रावती भवन, नया रायपुर
5. मिश्रा, डॉ. जे.पी. साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, अर्थशास्त्र, पृ. 183,184,185.
6. दत्त, रूद्र, सुन्दरम के.पी. एम, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली, भारतीय अर्थव्यवस्था, पृ. 41,42,43
7. अरिहन्त पब्लिकेशन्स (इ) प्रा. लि. मेरठ, छत्तीसगढ़ एक सम्पूर्ण अध्ययन, पृ. 124,127,128,129.

छत्तीसगढ़ राज्य के योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय का तुलनात्मक विश्लेषण

• शशि किरण कुजूर

सारांश- प्रस्तुत शोध पत्र छत्तीसगढ़ राज्य के योजनागत एवं गैरयोजनागत व्यय का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है जिसके अंतर्गत राज्य योजना व्यय के शीर्ष तथा संबद्ध सेवायें ग्रामीण विकास, विशेष क्षेत्रीय कार्यक्रम, सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण, उद्योग, कृषि, खनिज, उद्योग परिवहन सामान्य आर्थिक सेवायें एवं सामान्य सेवायें के अंतर्गत व्यय किया जाता है तथा गैर योजनात्मक व्यय का वह भाग जो मद के व्यय के अंतर्गत कर्मचारियों के वेतन-भत्ते, पेंशन, परिस्मृत्तियों का रख रखाव, पुलिस शांति एवं सुरक्षा आदि पर व्यय सम्मिलित होते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय का हिस्सा (आधार वर्ष एवं मुख्य वर्जित आधार पर) लिया गया है। समंको का संकलन विधि का भी प्रयोग किया गया है तथा द्वितीयक समंक पर आधारित है जिसके लिए प्रतिशत आर्थिक संचालन रायपुर (छ.ग.), जन सम्पर्क कर्मलम रामपुर, छ.ग. आम-व्यय संक्षेपिका का सहयोग लिया गया है एवं इसका विश्लेषण प्रतिशत विधि, गुणांक का परिवर्तन एवं चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर विधि प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्द- योजनागत व्यय, गैर योजनागत व्यय, ग्रामीण विकास, सम्बद्ध सेवाएँ, सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण, परिस्मृत्तियाँ, पेंशन सकल घरेलू उत्पाद, गुणांक का परिवर्तन, वार्षिक वृद्धि दर, आर्थिक सेवाएँ

परिचय- छत्तीसगढ़ राज्य के विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा प्रचुर मात्रा में योजनाओं एवं व्ययों का निर्वहन करती है इसका मुख्य कारण है कि कल्याणकारी राज्य की स्थापना किया जा सकें। भारतीय संविधान के अंतर्गत जो विषय राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में रखे गये उन्हें कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारों को निरंतर बढ़ती हुई मात्रा में वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है। ब्रिटिश शासनकाल में राज्य सरकारों राज्य करकारों का कार्यक्षेत्र मुख्य नागरिक प्रशासन एवं आंतरिक सुरक्षा तक सीमित था और विकास कार्यों जैसे सिंचाई, बिजली, परिवहन आदि के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ये सभी कार्य राज्य

सरकारों के प्रमुख कार्य क्षेत्र बन गये हैं। देश के आर्थिक एवं सामाजिक पुर्ननिर्माण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इस दृष्टि से राज्य सरकारों को अपने उत्तरदायित्वों को प्रभावपूर्ण ढंग से पूरा करने के लिए बहुत अधिक वित्तीय साधनों की आवश्यकता स्वाभाविक है। सरकार का मुख्य उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है इस कारण राज्य सरकारों के व्यय में वृद्धि उनके बढ़ते उत्तरदायित्वों का स्पष्ट प्रमाण है।

योजनागत व्यय- छत्तीसगढ़ में योजनागत व्यय मूलतः राष्ट्र निर्माण एवं समाज सेवाओं से संबंधित है। राज्य की कल्याणकारी स्थापना हेतु उत्पादन क्षेत्र एवं समाज सेवा क्षेत्र पर किए गये व्यय इसके प्रमुख घटक हैं, जिसका जनता की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार से प्रत्यक्ष संबंध है। राज्य योजना व्यय के शीर्ष तथा संबद्ध सेवाएँ, ग्रामीण विकास, विशेष क्षेत्रीय कार्यक्रम, सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण, ऊर्जा उद्योग एवं खनिज, परिवहन विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण सामाजिक सेवाएँ एवं सामान्य सेवायें के अंतर्गत व्यय किया जाता है।

गैर योजनागत व्यय- गैर योजनागत व्यय राजस्व की एक महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है, सार्वजनिक व्यय का वह भाग जो गैर विकास कार्यों में व्यय किया जाता है, गैर योजनागत व्यय होता है। इस मद के व्यय के अंतर्गत कर्मचारियों के वेतन भत्ते, परिसम्पत्तियों का रखरखाव, पुलिस, शांति एवं सुरक्षा आदि पर व्यय सम्मिलित होते हैं। संविधान की धारा 112 के अनुसार हर वित्तीय वर्ष के लिए अनुमानित प्राप्तियों एवं खर्चों का ब्यौरा सांसद में पेश करना सरकार की संवैधानिक कर्तव्य है। गैर योजनागत व्यय राज्य की एक सृढ़ पक्ष को मजबूती प्रदान करता है।

सकल घरेलू उत्पाद- सकल घरेलू उत्पाद किसी समयावधि में वस्तु या सेवाओं के उत्पादन की कुल कीमत होती है, यह किसी देश की आर्थिक स्थिति को अपने का पैमाना होता है। देश की आर्थिक विकास दर बढ़ जाती है तो कम होती है तो जी.डी.पी. का आंकड़ा भी घट जाता है। यदि किसी देश की सकल घरेलू उत्पादन यानी जीडीपी कम हा जाती है तो कई प्रभाव देखने को मिलते हैं। जी.डी.पी. कम होने से रुपये के भाव में कमी आती है, तेल की कीमत में वृद्धि होती है। यह कम होने से भारत के व्यवस्थाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। देश में महंगाई की परेशानी का सामना करना पड़ता है।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोध पत्र छत्तीसगढ़ राज्य के योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय तथा सकल घरेलू उत्पाद का अध्ययन किया गया है जिसके अंतर्गत योजनागत व्यय 2001-02 से 2017-18 कुल 16 वर्षों का व्यय लिपिबद्ध किया गया है ठीक इसी तरह गैर योजनागत व्यय की आंकड़े 2001-02 से 2017-18 तक कुल 16 वर्षों को सम्मिलित किया गया है यह आंकड़े छ.ग. आय-व्यय संक्षेपिका 2021 से द्वितीयक समंक के रूप में लिया गया है तथा छ.ग. राज्य की सकल घरेलू उत्पाद का आंकड़ा 2010-11 से 2019-20 तक लिया गया है यह भी द्वितीयक आंकड़ों के रूप में छ.ग. आय-व्यय संक्षेपिक एवं जनसंपर्क रामपुर छ.ग. से लिया गया है। आंकड़ों विश्लेषण हेतु चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर एवं गुणांक परिवर्तन तथा प्रतिशत विधि के माध्यम से विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य -

1. छत्तीसगढ़ राज्य के योजनागत व्यय का अध्ययन करना।
2. छत्तीसगढ़ राज्य के गैर-योजनागत व्यय का अध्ययन करना।
3. छत्तीसगढ़ राज्य के सकल-घरेलू उत्पादन का अध्ययन करना।

तालिका क्रमांक 01

छ.ग. राज्य के कुल व्यय में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय का हिस्सा (करोड़ रुपये में)

वर्ष	योजनागत व्यय	गैरयोजनागत व्यय	कुल व्यय
2001-02 (लेखा)	1550.14 (28.33)	3921.11 (71.67)	5471.25 (100)
2002-03 (लेखा)	2116.48 (33.03)	4929.11 (66.97)	6408.59 (100)
2003-04 (लेखा)	3082.62 (35.15)	5090.98 (62.29)	8173.22 (100)
2004-05 (लेखा)	2986.28 (35.15)	5508.94 (64.85)	8494.22 (100)
2005-06 (लेखा)	3813.38 (41.05)	5478.14 (58.95)	9291.52 (100)
2006-07 (लेखा)	5545.30 (47.10)	6228.09 (52.90)	11773.39 (100)
2007-08 (लेखा)	7164.38 (49.50)	7308.53 (50.50)	14472.91 (100)
2008-09 (लेखा)	8840.39 (51.32)	8385.68 (48.68)	17226.07 (100)
2009-10 (लेखा)	10449.52 (49.97)	10460.92 (50.03)	20910.44 (100)
2010-11 (लेखा)	11576.44 (50.60)	11299.72 (49.40)	22876.16 (100)
2011-12 (लेखा)	15318.79 (54.79)	12638.43 (42.21)	27957.22 (100)
2012-13 (लेखा)	19236.99 (56.95)	14542.17 (43.05)	33779.16 (100)
2013-14 (लेखा)	19497.70 (50.31)	19259.89 (49.69)	38757.59 (100)
2014-15 (लेखा)	27678.23 (59.90)	18529.07 (40.10)	46207.30 (100)
2015-16 (पु.आ.)	38673.16 (58.69)	27224.82 (41.31)	65897.98 (100)
2016-17 (बजट अनुमान)	42056.2 (60.03)	28002.46 (39.97)	70058.71 (100)

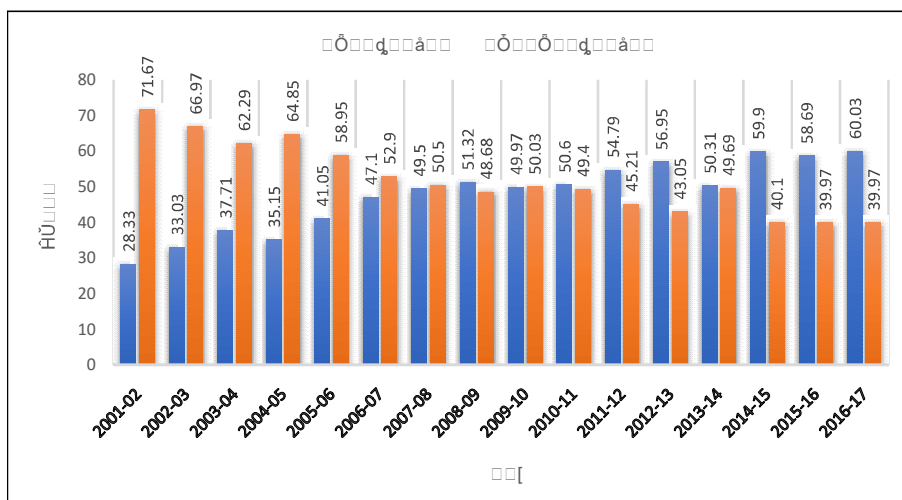
स्त्रोत- छ.ग. आय व्यय संक्षेपिका

उपरोक्त तालिका क्र. 1 में स्पष्ट है कि छत्तीसगढ़ राज्य के कुल व्यय में योजनागत व्यय में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय के हिस्सा को दर्शाया गया है, जिसमें योजनागत व्यय 2001-02 में 1550.14 करोड़ रु. है जो क्रमशः बढ़ते क्रम में प्राप्त होता है 2002-03 में 2116.48 करोड़ रुपये 2003-04 में 3082.62 करोड़ रु., 2004-05 में 2986.28 करोड़ रु., 2005-06 में 3813.38 करोड़ रुपये 2006-07 में 5545.30 करोड़ रु., 2007-08 में 7164.38 करोड़ रु., 2008-09 में 8840.39 करोड़ रु., 2009-10 में 10449.52 करोड़ रु., 2010-11 में 11576.44 करोड़ रु., 2011-12 में 15318.79 करोड़ रु., 2012-13 में 19236.99 करोड़ रु., 2013-14 में 19497.70 करोड़ रु., 2014-15 में 27678.23 करोड़ रु., 2015-16 में 38673.16 करोड़ रु., 2016-17 में 42056.25 करोड़ रु., करोड़ रु. हिस्सा व्यय किया गया।

गैर योजनागत व्यय में 2001-02 में 3921.11 करोड़ रु., 2002-03 में 4292.11 करोड़ रु., 2003-04 में 5090.98 करोड़ रु., 2004-05 में 5508.94 करोड़ रु. तथा 2005-06 में 5478.14 करोड़ रु., 2006-07 में 6228.09 करोड़ रु., 2007-08 में 7308.53 करोड़ रु., 2008-09 में 8385.68 करोड़ रु., 2009-10 में 10460.92 करोड़ रु., 2010-11 में 11299.72 करोड़ रु., 2011-12 में 12638.43 करोड़ रु., 2012-13 में 14542.17 करोड़ रु., 2013-14 में 19259.89 करोड़ रु., 2014-15 में 18529.07 करोड़ रु., 2015-16 में 27224.82 करोड़ रु., तथा 2016-17 में 28002.46 करोड़ रु. अर्थात् गैर योजनागत व्यय लगातार बढ़ते क्रम में प्रदर्शित हो रहा है।

रेखाचित्र क्र. 01

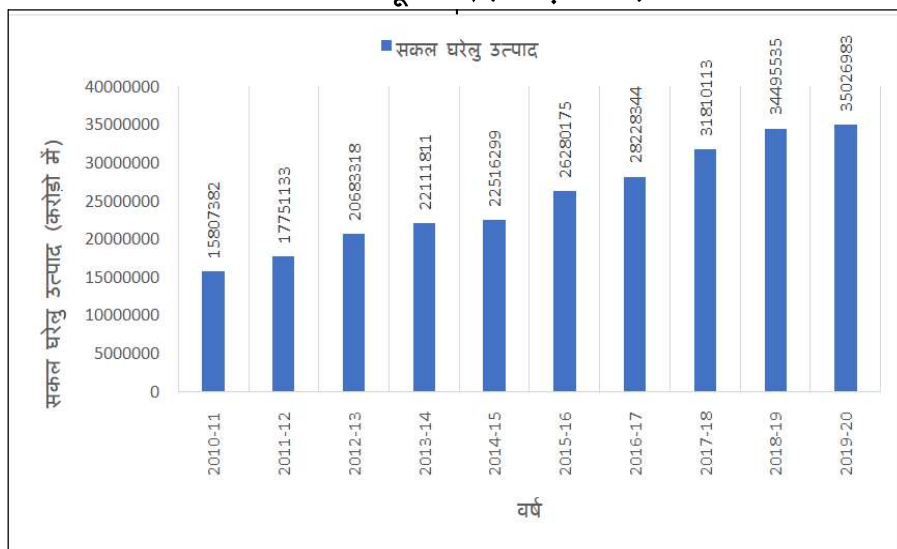
छ.ग. राज्य के कुल व्यय में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय का हिस्सा



रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट होता है कि छ.ग. राज्य के कुल व्यय में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय का हिस्सा निरंतर वृद्धि हो रही है।

छत्तीसगढ़ राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय (आधार वर्ष एवं मूल्य वर्धित आधार पर)

तालिका क्र. 02
सकल घरेलू उत्पाद (करोड़ रु. में)



रेखाचित्र क्र. 02 से स्पष्ट है कि राज्य की सकल घरेलू उत्पाद में निरंतर वृद्धि हो रही है। छत्तीसगढ़ राज्य के कुल व्यय में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय का हिस्सा गुणांक परिवर्तन एवं चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर

तालिका क्र. 03

क्रमांक	CAGR	योजनागत व्यय	गैर योजनागत व्यय
1.	चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि CAGR	22.91%	13.07%
2.	गुणांक परिवर्तन (C.V.)	22.17	18.45%

निष्कर्ष-उपरोक्त शोध पत्र के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि छत्तीसगढ़ राज्य में योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय जो कि चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर योजनागत व्यय का 22.91 प्रतिशत प्राप्त हुआ एवं गुणांक परिवर्तन 20.17 प्रतिशत प्राप्त हुआ है यह इस बात को दर्शाता है कि राज्य में व्यय की स्थिति नकारात्मक तत्वों का ज्यादा से ज्यादा प्रभावी कर रहा है जिसे सुधार करने की आवश्यकता है अर्थात् राज्य को अपनी कल्याणकारी राज्य की स्थापना हेतु उचित कदम उठाने की आवश्यकता है, वहीं दूसरी पक्ष गैर योजनागत व्यय का चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर 13.07 प्रतिशत एवं गुणांक परिवर्तन 18.45 जो कि इस पक्ष का इंगित करती है कि राज्य में जरूरत से ज्यादा अनुत्पाद पक्षों को प्रभावी कर रही है अर्थात् राज्य सरकार को उचित एवं कठोर नीतिगत तथ्यों को सुचारू रूप से चलाने की आवश्यकता है जिससे राज्य की राजस्व की स्थिति एवं संरचना को स्थिति को मजबूती मिलेगी एवं राज्य की आर्थिक स्थिति में धनात्मक परिवर्तन दिखाई देगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. A Ramprakash, D. Walton J. 1998, Statistical on the distribution of Income, consumption accumulator of household, P.P. 32-35.
2. Atkison, A.B. Stigtic, J.E., 1980 Leeturer in public finance (Singapore Mc Grow Hill International edition) P.P. 1-4.
3. Chhattisgarh Income expenditure Textbook 2020-21.
4. Chhattisgarh Jansanpark Keyday Raipur (C.G.) 2020.
5. Household expenditure survey 2000. User guide 1998-99, Canberra, Aistration Burew of Statics.
6. Report of the sixhteen International conference of Labour Statistical (aneva) P.P. 30-39.
7. Statistical and Economic Sacha day Raipur 2020.
8. V.C. Sinha public finance P.P. 55-67
9. World Bank 2000 Designing household survey questionnaires for developing countries, Washington D.C. P.P. 39-43.

भारत की राजकोषीय नीति की प्रवृत्तियाँ: वर्तमान सन्दर्भ में

• कुमुद श्रीवास्तव

सारांश- भारत में राजकोषीय नीति का गहरा संबंध है यह नीति सरकारी खर्च एवं कर को संचालित करता है इस नीति का लोगो के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वर्ष 2019-20 एवं 2020-21 के दौरान कोविड महामारी के कारण सरकारी खर्च का काफी हिस्सा देशवासियों के जीवन रक्षा में लगा रहा। कर के रूप में आय अर्जित करने के लिये पारदर्शिता का पालन किया जा रहा है जी. एस. टी. से प्राप्तियों में लगातार वृद्धि हो रही है, लेकिन साथ ही व्यय में बढ़ने की प्रवृत्तियाँ देखी गई है। भारत में यदि सामाजिक सुरक्षा, निवेश, रोजगार को कम किये बिना व्यय पर नियंत्रण किया जायेगा तो राजकोषीय नीति देशवासियों का विकास करने में सहायक होगी।

मुख्य शब्द- राजकोषीय नीति की भूमिका, प्राप्तियों की प्रवृत्ति, व्यय की प्रवृत्ति, राजकोषीय समेकन

परिचय- परम्परावादी अर्थशास्त्री मनुष्य के आर्थिक कार्यों में राज्य के हस्तक्षेप के विरोधी थे। उनके अनुसार सरकार को केवल तीन काम करने चाहिये, यथा (1) देश में शान्ति व सुरक्षा (2) विदेशी आक्रमण से रक्षा एवं (3) न्याय की व्यवस्था। उनका मत था कि सरकार को अर्थव्यवस्था में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये, किन्तु 1930 की महामंदी ने परम्परावादी के विचारों को खोखला सिद्ध कर दिया। प्रो. कीस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “सामान्य सिद्धान्त” में मंदी, आर्थिक अस्थिरता एवं आर्थिक संकटों को दूर करने के लिये सरकार को सड़कों, सिंचाई कार्यों, सार्वजनिक भवन निर्माण आदि को सार्वजनिक व्यय द्वारा पूर्ण करने सम्बंधी नीति को अपनाने का सुझाव दिया। उनकी इसी नीति को कालान्तर में “राजकोषीय नीति” कहा गया है।

वित्तीय नीति का वास्तविक अर्थ, महत्व तथा प्रभाव महामंदी तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सामने आया। वित्तीय नीति सरकार की वह नीति है, जिसका संबंध सरकारी क्रय के स्तर, स्थानान्तरण के स्तर तथा कर संरचना से है—यह संभवतः वित्तीय नीति की सबसे बेहतर परिभाषा है जिसे विशेषज्ञों ने भी माना है। इसके उपरांत समष्टि अर्थव्यवस्था पर राजकोषीय नीति के प्रभाव का बेहतर तरीके से विश्लेषण किया गया।

चूँकि इस नीति का अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव होता है इसलिये इस नीति की परिभाषा उस नीति के रूप में दी जाती है जो सरकारी खर्च तथा कर को संचालित करता है तथा आर्थिक गतिविधियों (जिसे संख्यात्मक रूप से सकल घरेलू उत्पाद से दर्शाया जाता है) को उत्प्रेरित करता है।

राजकोषीय नीति को एक अन्य तरीके से भी परिभाषित किया जा सकता है। यह सरकारी व्यय तथा करों में किया जाने वाला बदलाव है, जिसका लक्ष्य समष्टि, आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है। जैसे- विकास, रोजगार, निवेश इत्यादि इसलिये हम यह कह सकते हैं कि राजकोषीय नीति कर तथा सरकारी व्यय के उपयोग को दर्शाता है। कर तथा सरकारी व्यय संपूर्ण अर्थव्यवस्था को किस तरह प्रभावित करती है, इसकी चर्चा नीचे की गई है। पहले हम कर तथा अर्थव्यवस्था पर उसके प्रभाव की चर्चा करेंगे।

1. कर का लोगों की आय, उनकी क्रय शक्ति, उपभोग तथा परिणामस्वरूप उनके जीवन-स्तर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।
2. कर का व्यक्तियों, परिवारों तथा कंपनियों की बचत पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, जिससे अर्थव्यवस्था में निवेश प्रभावित होता है - निवेश से सकल घरेलू उत्पाद प्रभावित होता है, जिसका असर प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है।
3. कर का वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि उनका उत्पाद मूल्य प्रभावित होता है।

सरकारी व्यय का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव दो रूपों में पड़ता है-

1. वस्तुओं एवं सेवाओं को यदि सरकार द्वारा खरीदा जाये तो उन पर भी कुछ व्यय होता है जैसे - सड़को रेलवे तथा बंदरगाह का निर्माण, खाद्यान्न की खरीद (वस्तुओं के वर्ग में) तथा सरकारी कर्मचारियों को वेतन का भुगतान (सेवाओं के वर्ग में)
2. सरकार द्वारा गरीबों, बेरोजगारों व वृद्ध व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने में भी कुछ व्यय/खर्च होता है, जिसे सरकारी अंतरण भुगतान कहते हैं।

शोध प्रवधि- प्रस्तुत शोध लेख में शोध क्षेत्र भारत देश की राजकोषीय नीति की कर प्राप्तियों की प्रवृत्तियाँ एवं सरकारी व्यय की प्रवृत्तियाँ ली गई हैं। यह ज्ञात किया गया है कि आखिर राजकोषीय कमी क्यों बढ़ रही है। शोध समयावधि 1991 से 2021 तक की अवधि है। विश्लेषण हेतु द्वितीयक समकों के रूप में भारत सरकार के बजट विवरण एवं आर्थिक समीक्षा का प्रयोग किया गया है।

प्राप्तियों में प्रवृत्ति- केन्द्र सरकार की प्राप्तियों को मोटे तौर पर गैर-ऋण और ऋण प्राप्तियों में विभाजित किया जा सकता है। गैर-ऋण प्राप्तियों में कर और गैर-कर राजस्व शामिल हैं। और गैर-ऋण पूंजी प्राप्तियाँ जैसे ऋणों की वसूली और विनिवेश रसीदें। ऋण प्राप्तियों में ज्यादातर बाजार उधार और अन्य देनदारियाँ शामिल हैं, जिन्हें सरकार भविष्य में चुकाने के लिये बाध्य है।

कर से प्राप्तियाँ- बजट 2020-21 में सकल कर राजस्व/ ग्रास तक्ष रेवन्यू (जी.टी. आर.) 24.23 लाख करोड़ रुपये होने का है जो जीडीपी का 10.8 प्रतिशत है। यह 2019-20 के संशोधित अनुमानों/रेवाइस्ड एस्टीमेट (आरई) पर 12 प्रतिशत और

2019-20 पीए पर 20.6 प्रतिशत की वृद्धि करता है प्रत्यक्ष कर जिसमें मुख्य रूप से कॉर्पोरेट और व्यक्तिगत आयकर शामिल है जीटीआर के लगभग 55 प्रतिशत गठन करता है इन्हें 2019-20 के सापेक्ष 12.7 प्रतिशत और 2019-20 पीए के सापेक्ष 7.2 प्रतिशत बढ़ने की परिकल्पना की गई थी। दूसरी तरफ अप्रत्यक्ष कर 2019-20 पीए के मुकाबले 11.1 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 2019-20 आरई और 15 प्रतिशत बढ़ने की उम्मीद थी।

पिछले वर्षों में देखे गये सुधार की प्रवृत्ति की तुलना में 2019-20 पीए में कॉर्पोरेट और व्यक्तिगत आयकर से प्राप्तियाँ कम हुई हैं। यह 2019-20 के दौरान अर्थव्यवस्था की वृद्धि में संतुलन और कॉर्पोरेट टैक्स दर में कटौती जैसे संरचनात्मक सुधारों के कार्यान्वयन के कारण है। केन्द्र के लिये नेट टैक्स रेवेन्यू के लिये 2020-21 बीई के 16.36 लाख करोड़ रुपये के मुकाबले नवंबर 2020 तक वास्तविक प्राप्ति 6.88 लाख करोड़ है जो बी.ई. का 42.1 प्रतिशत है।

गैर कर प्राप्तियों- गैर कर राजस्व में राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के ऋणों पर मुख्य रूप से ब्याज प्राप्तियाँ भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के अधिशेष सहित सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों से लाभांश और लाभ भारत सरकार को हस्तांतरित केन्द्र सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से प्राप्तियाँ और बाहरी अनुदान शामिल हैं। बजट 2020-21 में गैर कर राजस्व के रूप में 3.85 लाख करोड़ रुपये जीडीपी का 1.7 प्रतिशत 2019-20 पीए की तुलना में 0.1 प्रतिशत अंक बढ़ाने का लक्ष्य था। गैर कर राजस्व का लगभग 40 प्रतिशत लाभांश और लाभ से उठाया जाने की परिकल्पना के गई है। गैर-कर राजस्व के लिये 2020-21 बीई के रूप में 3.85 लाख करोड़ रुपये के मुकाबले नवंबर 2020 तक वास्तविक प्राप्ति बीई का 32.3 प्रतिशत रही है।

गैर ऋण पूंजी प्राप्तियों में मुख्य रूप से ऋण और अग्रिमों की वसूली और विनिवेश प्राप्तियाँ शामिल हैं। गैर-ऋण प्राप्तियों के कुल पूल में गैर ऋण पूंजी प्राप्तियों का योगदान 2018-19 में 6.8 प्रतिशत से घटकर 3.9 प्रतिशत 2019-20 पीए हो गया है, मुख्य रूप से कमी निर्विवाद आय के कारण गैर ऋण पूंजी प्राप्तियों 2.3 लाख करोड़ रुपये आंकी गई है जो कि 2020-21 बीई में जीडीपी का 1 प्रतिशत है गैर ऋण पूंजी प्राप्तियाँ का प्रमुख घटक विनिवेश प्राप्तियों है जो सरकार द्वारा स्वामित्व वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की बिक्री पर सरकार को प्राप्त होती है। सरकार ने 2020-21 उम्र के अनुसार विनिवेश आय के आधार पर 2.1 लाख करोड़ रुपये जुटाने की परिकल्पना की। केन्द्र के लिए गैर -ऋण पूंजी प्राप्तियों के लिए 2020-21 बीई के मुकाबले 2.3 लाख करोड़ रुपये नवंबर 2020 तक वास्तविक प्राप्ति 0.18 लाख करोड़ रुपये रही है।

व्यय में प्रवृत्तियों- व्यय के मोर्चे पर बजट 202-21 में 30.42 लाख करोड़ रुपये का कुल व्यय अनुमानित है, जिसमें 26.3 लाख करोड़ रुपये का राजस्व व्यय और 4.12 लाख करोड़ रुपये का पूंजीगत व्यय शामिल है, जो क्रमशः सकल घरेलू उत्पाद का 11.7 प्रतिशत और 1.7 प्रतिशत है। जीडीपी के प्रतिशत के रूप में 2019-20 पीए पर 2020-21 बीई में कुल व्यय की प्रत्याशित वृद्धि जीडीपी का 0.3 प्रतिशत है, जो राजस्व और पूंजीगत व्यय दोनों में जीडीपी के 0.15 प्रतिशत के बराबर है।

राजस्व व्यय जो कि कुल व्यय का 87 प्रतिशत है, को 2020-21 बीई में 2019-20 पीए पर 11.9 प्रतिशत बढ़ने की परिकल्पना की गई थी। यह 2018-19 में 2019-20 पीए में राजस्व व्यय की 17 प्रतिशत वृद्धि के सापेक्ष मामूली वृद्धि दर है। ब्याज भुगतान (26 प्रतिशत) रक्षा राजस्व व्यय (9 प्रतिशत), प्रमुख सब्सिडी (10 प्रतिशत), राज्यों / केन्द्र शासित प्रदेशों को अनुदान (22 प्रतिशत) और पेंशन (8 प्रतिशत) प्रमुख वस्तुएं हैं राजस्व व्यय जो कुल मिलाकर 2019-20 पीए के अनुसार कुल व्यय का लगभग 65 प्रतिशत था। रक्षा व्यय के उपयोग और दक्षता में सुधार, आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने और रक्षा क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए रक्षा मंत्रालय द्वारा कई पहल के अन्तर्गत है। राजस्व व्यय का एक महत्वपूर्ण अनुपात जैसे वेतन, पेंशन और ब्याज भुगतान पर व्यय, गुण में व्यापक रूप से प्रतिबद्ध है। इसलिए व्यय पुनर्गठन और प्रबंधन उपायों का ध्यान गैर- प्रतिबद्ध घटक जैसे सब्सिडी पर लक्षित है। 2016 में, लगभग 66 केन्द्र प्रायोजित योजनाओं को 28 अम्ब्रेला स्कीम में युक्तिसंगत बनाया गया था। इन योजनाओं के चक्र को वित्त आयोग चक्र के साथ को-टर्मिनस भी बनाया गया था, ताकि वित्त आयोग के चक्र पर केन्द्र और राज्य सरकारों दोनों के लिए उपलब्ध संसाधनों के प्रवाह पर अधिक स्पष्टता सुनिश्चित की जा सके। 12.34 प्रमुख सब्सिडी पर खर्च जो कि जीडीपी का 2020-21 बीई में 1.0 प्रतिशत था, 2019-20 पीए पर 2.1 प्रतिशत की मध्यम वृद्धि के लिए जिम्मेदार है। 2019-20 पीए में, सरकार के सब्सिडी बिल में 13.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, क्योंकि खाद्य उर्वरक और पेट्रोलियम सब्सिडी क्रमशः 7.3 प्रतिशत, 14.9 प्रतिशत और 34.5 प्रतिशत बढ़ी, जो 2018-19 के सापेक्ष थी।

जीडीपी अनुपात के कम कर के साथ केन्द्र सरकार को राजकोषीय विवेक के दायरे में रहते हुए निवेश और बुनियादी ढांचे के विस्तार के लिए पर्याप्त धन प्रदान करने की चुनौती का सामना करना पड़ता है, इसलिए, व्यय की संरचना और गुणवत्ता में सुधार महत्व को मानता है। पिछले कुछ वर्षों में, कुल व्यय में पूंजीगत व्यय की हिस्सेदारी के संदर्भ में मापा गया व्यय की गुणवत्ता औसत स्तर पर स्थिर है। यह 2019-20 पीए के मुकाबले 2020-21 बीई में लगभग एक प्रतिशत की वृद्धि से अनुमानित है, जो 2019-20 पीए से अधिक पूंजीगत व्यय में पूंजीगत व्यय में 22.4 प्रतिशत की अपेक्षित वृद्धि के लिए जिम्मेदार है। रक्षा सेवाओं से अलग प्रमुख क्षेत्र 2020-21 बजट अनुमान में पूंजीगत व्यय के थोक में उद्योग और खनिज, सड़कों और पुलों का निर्माण संचार सेवाएं और अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी शामिल है।

सरकार द्वारा किये गये प्रयास- प्रत्याशित और अभूतपूर्ण परिस्थितियाँ अधिनियम में संशोधन किया गया था और इन नये शासना देशों को 2018-19 में पेश किया गया था। 2020-21 के राजकोषीय घाटे का अनुमान प्रतिशत 9.5 प्रतिशत के लक्ष्य के ऊपर है अधिनियम में 2020-21 में और संशोधन किया गया अधिनियम में “प्रत्याशित और अभूतपूर्व परिस्थितियाँ” के उल्लेख के तहत ताकि सरकार कोविड-19 महामारी के कारण उत्पन्न हुये प्रावधान के कारण अर्थव्यवस्था को समर्थन देने को प्रक्रिया में होने वाले अतिरिक्त व्यय को कवर करने में सक्षम हो। निकट भविष्य में बदलाव के लिये

राजकोषीय समेक को आगे बढ़ाया जाये क्योंकि 15 वे वित्त आयोग ने “उच्च संचालित अन्तर्सम्बंधित समूह” बनाने की सिफारिश की है।

1. राजकोषीय जिम्मेदारी कानून की समीक्षा
2. एक नये राजकोषीय उत्तरदायित्व की रूपरेखा को सिफारिश और इसके कार्यान्वयन की देख-रेख

भारत का राजकोषीय घाटा अपने उच्च स्तर पर होने के लिये हमेशा की समाचारों में रहा है। इसमें 1975 के बाद वृद्धि हुई। वर्ष 1975 से लेकर 2001 के मध्य भारतीय अर्थव्यवस्था (केन्द्र तथा राज्य सरकारों को जोड़कर) का द्विकोषीय घाटा 10 प्रतिशत (जी.डी.पी.का) के ऊपर रहा इस घाटे का 50 प्रतिशत से अधिक राजस्व घाटे के कारण इस पूरी अवधि में आर.बी.आई. योजना आयोग आई.एम.एफ. एवं द्वारा सरकारों को उच्च राजकोषीय घाटे को कम करने संबंधी सलाह तथा चेतावनी दी जाती रही तथा इसे सम्पौषणीय बताया गया। अंततः वर्ष 1991 से प्रारंभ किये गये आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के अंतर्गत सरकार द्वारा राजकोषीय समेकन की शुरुआत की गयी यह बाध्यता ईएमआई की शर्तों की थी, जो भारत पर भुगतान संतुलन संकट के समय इससे ली गयी सहायता से हुये थे। केन्द्र सरकार द्वारा इस दिशा में कई कदम उठाये हुये जिन्हें राज्यों के राजकोषीय प्रबंधन में शामिल करने की कोशिश की गयी।

राजस्व घाटे को कम करने के लिये किये गये नीतिगत प्रयास- इस प्रयास के अन्तर्गत सरकार ने प्रथम दो

1. राजस्व व्यय में कटौती संबंधी उपाय अपनाने

अ- वेतन, पेंशन एवं आकस्मिक निधियों के भार में कमी (सरकारी नौकरियों में कटौती आकस्मिक निधियों पर ब्याज कटौती, पेंशन सुधार, इत्यादि)

ब- छूट में कटौती (पेट्रोलियम, चीनी, दवा इत्यादि के प्रशासित मूल्य पद्धति का तार्कीकरण

स- ब्याज में कटौती (निम्नतर, उधारी, विदेशी, ऋणों की उनकी परिपक्वता के पूर्व अदायगी, विदेशी ऋण बांटने को प्रोत्साहन, महंगे विदेशी ऋणों से बचना इत्यादि।

द- प्रतिरक्षा व्यय में कटौती (इसके लिये सरकार द्वारा पाकिस्तान एवं चीन से द्विपक्षीय वार्ताओं के द्वारा सीमा पर हो रहे प्रतिरक्षा व्यय में कटौती का प्रयास जारी है इसी प्रकार आंतरिक सुरक्षा, आतंकवाद आदि पर भी कार्य जारी है)

ई- सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों को घाटे की स्थिति में सरकार द्वारा विशेष परिस्थितियों में ही बजटीय सहायता दी जायेगी - ऐसा निर्णय लिया गया।

फ- अन्याय क्षेत्रों एवं विभागों में सरकार द्वारा व्यय सुधारों की शुरुआत की गयी।

जी- सामान्य सेवाओं की आपूर्ति से जुड़े सरकारी उपक्रमों को लाभकारी बनाने की कोशिश तथा सिर्फ उन्ही वर्गों को छूट की सुविधा, जिन्हें इसकी नितांत आवश्यकता है। (रेल यातायात, सड़क, बिजली, जल इत्यादि)

एच- डाक सेवा से जुड़े घाटे को कम करने के लिये इन्हें दूसरे लाभ अर्जित करने वाले सेवा आपूर्ति क्षेत्रों में प्रवेश कराना।

आई- उच्चतर शिक्षा को प्राथमिकता क्षेत्र से बाहर करके इस पर होने वाले व्यय में कमी

(ताकि सरकार प्राथमिक एवं माध्यामिक शिक्षा क्षेत्रों पर अधिक ध्यान दे सके) इत्यादि।

राजस्व प्राप्तियों को बढ़ाने संबंधी उपाय

ए- कर सुधारों की शुरूआत

बी- सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों का विनिवेश एवं निजीकरण (राजनैतिक सहमति पर निर्भर कदम)

सी- विदेशी विनिमय भंडार के अतिरेक का विदेशी ऋण आवंटन एवं बेहतर विदेशी बॉण्ड में निवेश।

डी- राज्य सरकारों को अपनी योजनागत व्यय की पूर्ति के लिये बाजार से ऋण लेने की अनुमति इत्यादि।

सरकार के ऋण कार्यक्रम पर नियंत्रण संबंधी उपाय -

1. वर्ष 1997 से अर्थोपाय अग्रिम की शुरूआत जिसके अंतर्गत सरकार वित्त वर्ष से प्रारम्भ में आर.बी.आई. के साथ अपने ऋण कार्यक्रम की मात्रा पर एक समझौता ज्ञापन दिया जाता है वैसे सरकार द्वारा यथा स्थिति इसमें वृद्धि की जा सकती है। फिर भी इससे सरकार के ऋणों की उगाही के बारे में एक पारदर्शिता आती है तथा इस पर एक नैतिक नियंत्रण भी लगता है।

2. वर्ष 1997 से भारत सरकार की प्रतिभूतियों /बॉण्डों के निर्गम का आर.बी.आई. प्राथमिक ग्राहक नहीं रहा अर्थात् सरकार ऋण उगाही के इन पत्रों को बाजार में बेचती है। (बाजार आधारित ब्याज पर)

सरकार पर राजकोषीय उत्तरदायित्व

1. वर्ष 2003 में पारित किये गये एफ.आर.बी.एम. अधिनियम के माध्यम से सरकार के राजकोषीय जिम्मेदारी को एक कानूनी आधार मिला जिसके अंतर्गत राजस्व घाटे एवं राजकोषीय घाटे को नियंत्रित करने के लिये सरकार को वार्षिक लक्ष्यों की घोषणा करके उनके पालन के उत्तरदायित्व की व्यवस्था है। इस अधिनियम द्वारा राजकोषीय नीति में पारदर्शिता लाने के लिये कई प्रावधान डाले गये हैं।

2. राज्यों की राजकोषीय नीति को भी उत्तरदायी बनाने की कोशिश की गयी है (बारहवें वित्त आयोग की सलाह द्वारा) वर्तमान में केन्द्र सरकार की तरह जिन राज्यों द्वारा अपने राजकोषीय उत्तरदायित्व अधिनियमों को लागू किया गया है, उन्हें कई प्रकार की वित्तीय सुविधा प्राप्त है- अपने योजनागत व्यय को पूरा करने के लिये बाजार से ऋण लेने का अधिकार (बिना केन्द्र सरकार की अनुमति से) राजस्व घाटे में प्रतिवर्ष की गई कटौती के बराबर धन सरकार (केन्द्र) से पारितोषिक के रूप में प्राप्त करना पुराने ऋणों का वर्तमान की सस्ती ब्याज एवं पर नवीनीकरण इत्यादि मार्च 2016 तक सभी और संघशासित क्षेत्रों में राजकोषीय उत्तरदायित्व अधिनियम लागू हो चुका था।

राजकोषीय समेकन और विकासत्मक जरूरतों के बीच संतुलन बनाने के लिये सरकार द्वारा 2018-19 में राजकोषीय विधायी शासन को ऋण आधारित राजकोषीय लक्ष्य को 0.5 प्रतिशत से पार करने के लिये एक गुजांइश के साथ ऋण आधारित राजकोषीय लक्ष्य को पेश करके बदल दिया गया था। इस दौरान मौजूदा शासन को फिर से बदलाव के लिये निर्धारित किया गया क्योंकि 15 वें वित्त आयोग में सब उच्च स्तर

वाली अंत सरकारी समूह बनाने की सिफारिश की है।

भारत की राजनैतिक नीति के अंतर्गत आर्थिक उद्देश्यों विकास, रोजगार, निवेश जैसे बहुत से उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये कर से प्राप्त आय एवं सरकारी व्यय है वा उपयोग किया जाता है। कर का प्रस्ताव देश वासियों की आय, प्रति व्यक्ति आय तथा उत्पाद मूल्य पर पड़ने से देश वासियों का जीवन स्तर प्रभावित होता है। सरकार के द्वारा वेतन भुगतान अधोसंरचनात्मक विकास एवं गरीबों, वृद्धों एवं बेरोजगारों को सहायता पहुंचाने के लिये किया जाता है। वर्ष 2020-21 में व्यय नीति का उद्देश्य वजित समूहों की सहायता करना रहा है वही दूसरी और लॉकडाउन की वजह से समग्र मांग सुधार हेतु पूंजीगत खर्चों में वृद्धि भी हुई है। जी.एस.टी. से एक लाख करोड़ रुपये संग्रह हुआ है। कर व्यवस्था में पारदर्शिता रखकर सुधार किया है। लेकिन महामारी के कारण आवश्यकता की पूर्ति हेतु व्ययों की पूर्ति के कारणों राजकोषकीय कमी बनी रही। राजकोषीय कमी को पूरा करने के लिये सरकार को नीति निर्धारण इन उपायों शामिल किया जाना चाहियें।

- करों के द्वारा प्राप्त होने वाली आय को बढ़ाने के लिये नये करो के स्थान पर कर चोरी की रोकथाम की जाना चाहियें।
- कर का भार गरीबों पर नहीं पड़ना चाहियें।
- कर से प्राप्त आय का प्रयोग आर्थिक विकास हेतु पारदर्शिता एवं निगरानी में प्राप्त किया जाना चाहिये।
- भ्रष्टाचार को रोकने हेतु कठोर नियम लागू होना चाहियें।
- सार्वजनिक व्यय के द्वारा सामाजिक सुरक्षा पर व्यय बढ़ाया जाना चाहिये।
- गरीबों हेतु घोषित कार्यक्रमों के लिये किये जाने वाले सरकारी व्यय का लाभ सरलता से पहुंचना चाहियें।
- अचानक आने वाली बड़ी समस्याओं हेतु व्यय व्यवस्था का भी प्रावधान किया जाना चाहियें।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. Cullis J. and Jones P. Public Finance and Public Choice Newyork , Oxford University Press 1998
2. Dornbusch R.S. , Fisher S. and Richard Startz, Microeconomics , New Delhi: Tata Mcgraw- Hill 2002
3. Ministry of Finance Finance, Economic Survey 2003-2004, 2007-08, 2013-14, 2014-15, 2015-16, 2017-18, 2019-20, 2020-21, 2021- 22 Vol. 1 & 2 Delhi Government of India
4. Maheshwari S.R. A dictionary of Public Adminstration , New Dehli: Orient Longman 2002 P 227
5. Rameshsingh Indian Economy 13th Addition 2021-22, Mr grace Hill Education India Private Limited.

कृषि विपणन की दशा का समीक्षात्मक मूल्यांकन (रीवा जिले के विशेष सन्दर्भ में)

• पुरुषोत्तम प्रसाद बाल्मीकि

• भानु साहू

सारांश- कोई भी देश जहाँ की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान हो तथा कृषि ही उस देश की जनसंख्या के अधिकांश भाग के भरण-पोषण का एक मात्र आधार हो उस देश की सरकार का यह उत्तरदायित्व होता है कि इसकी उन्नति पर विशेष ध्यान दे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपनी सरकार ने कृषि विकास के महत्व को स्वीकारते हुए योजनाओं में इसको मुख्य स्थान दिया। फलस्वरूप हरित क्रान्ति का सृजन और चलन हुआ, आधुनिक तकनीकी युक्त कृषियन्त्रों, कृषि उपकरणों, उन्नत बीजों का प्रचलन तथा रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि ने उत्पादन तथा उत्पादकता के स्तर को समुन्नत किया। कृषि के उन्नत के साथ कृषि विपणन व्यवस्था का उन्नत होना आवश्यक है, क्योंकि यह अनुभव किया जाने लगा है कि कृषि उत्पादों के विपणन का उतना ही महत्व है, जितना स्वतः उत्पादन का वस्तुतः विपणन की क्रिया का अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि इसके द्वारा उपभोग और उत्पादन में सन्तुलन ही नहीं बरन् अधिक विकास का स्वरूप भी निर्धारित होता है।

मुख्य शब्द- कृषि विपणन व्यवस्था, कृषि अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास, सहकारी बैंक

परिचय- सामान्य तौर पर विपणन शब्द का तात्पर्य उन सभी विपणन कार्यों एवं सेवाओं के करने से है, जिनके द्वारा वस्तुएँ उत्पादक से अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचती हैं, इसके अंतर्गत विपणन की सभी सहयोगी प्रक्रियाएँ एकत्रीकरण, पैकेजिंग, परिवहन, संग्रहण, श्रेणी चयन एवं मानकीकरण, वित्त जोखिम प्रबंध, विज्ञापन, आदि सम्मिलित होती हैं, उत्पादन को उपभोग से जोड़ने वाली श्रृंखला की समस्त कड़ियाँ विपणन में सम्मिलित होती हैं।

प्रो. थामसन के अनुसार कृषि विपणन के अध्ययन में वे सभी कार्य एवं कच्चा माल एवं संस्थाएँ सम्मिलित होती हैं जिनके द्वारा कृषकों के फार्म पर उत्पादित खाद्यान्न, कच्चा माल एवं उनसे निर्मित माल का फार्म से उपभोक्ताओं तक संचालन

• शोधार्थी, अर्थशास्त्र

• मार्गदर्शक, वाणिज्य एवं प्रबंधन विभाग, मध्यांचल प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, भोपाल (म.प्र.)

होता है। प्रो. अबोट के अनुसार कृषि विपणन से तात्पर्य उन सभी कार्यों से होता है, जिनके द्वारा खाद्य वस्तुएँ एवं कच्चा माल फार्म से उपभोक्ता तक पहुँचता है। रीवा जिले में भी कृषि विकास सम्बन्धी इन योजनाओं के क्रियान्वयन के साथ यहाँ की जर्जर अर्थव्यवस्था को सुधारने का प्रयास तो किया गया, और यहाँ कि वसुन्धरा को सुजलाम् सुफलाम् की सार्थक परिधि के लाने के लिए सिंचाई की अनेक योजनाओं के साथ तलाबों जैसी सिंचाई परियोजना का क्रियान्वयन हुआ। फलतः के क्षेत्र में भू-भाग भी समुन्नति की ओर अग्रसित हुआ।

कृषि के उन्नत के साथ कृषि विपणन व्यवस्था का उन्नत होना आवश्यक है, क्योंकि यह अनुभव किया जाने लगा है कि कृषि उत्पादों के विपणन का उतना ही महत्व है जितना स्वतः उत्पादन का वस्तुतः विपणन की क्रिया का अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि इसके द्वारा उपभोग और उत्पादन में सन्तुलन ही नहीं वरन् अधिक विकास का स्वरूप भी निर्धारित होता है।

कृषि विपणन की दशा का समीक्षात्मक मूल्यांकन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) विषय पर अभी तक शोध कार्य नहीं किया गया है। इस विषय कि सम्बन्धित बघेलखण्ड में कृषि विपणन पर डॉ. ई. जकारिया के निर्देशन में डी.एस. तिवारी द्वारा शोध कार्य “बघेलखण्ड कृषि विपणन” पर किया गया है तथा डॉ. श्रीमती दीपा श्रीवास्तव के निर्देशन में आर.पी. तिवारी द्वारा “उदारीकरण के पश्चात् कृषि विपणन की दशा का आलोचनात्मक मूल्यांकन” (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) विषय पर भी किया गया है।

चूँकि यह शोध कार्य मेरे शोध क्षेत्र सीमा के बाहर का तथा एक दशक पुराना हो चुका है, आज विपणन की समस्याएँ आवश्यकताएँ जहाँ की तहाँ बनी हुई हैं। अतः इस विषय पर नए सिरे से शोध कार्य की आवश्यकता को देखते हुए मैंने रीवा जिले में कृषि विपणन की दशा का चुनाव किया है, जिसमें कृषि क्षेत्र कृषि विपणन के विकास में बाधाएँ उदासीनता पर नवीन शोध एवं सुझाव दिया जा सकेगा।

बघेलखण्ड में कृषि विपणन साहित्य पर सन् 1988 में तथा उदारीकरण के पश्चात् कृषि विपणन की दशा का आलोचनात्मक मूल्यांकन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) विषय पर 2010 में शोध कार्य किया गया है। पूर्व में इस विषय से सम्बन्धित कृषि विकास, कृषि विपणन, कृषि के प्रकार, कृषि से प्राप्त होने वाली आय, सिंचाई, कृषि औजार यंत्र आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। शोध कार्य करते हुए कृषि विपणन का स्वरूप परिवर्तन कृषि व्यापार एवं व्यवसाय से आय बढ़ाने के लिए सुझाव दिया गया है। कृषि विपणन के अन्तर्गत भण्डारण, विनिमय, क्रय-विक्रय के साथ-साथ उपभोग उत्पादन क्रियाओं को प्राथमिकता प्रदान की गई है। कृषि के सम्बन्धित अनेक क्रियाएँ संचालित होती हैं। शोधग्रंथ में कृषि उत्पादक तथा अन्तिम उपभोक्ता दोनों कड़ियों को जोड़ने का प्रयास किया गया है। परन्तु समीक्षा के बारे में कोई स्थान नहीं दिया गया है।

कृषि विपणन पद्धतियाँ तथा इसमें परिवर्तन प्रदेश के अन्य जिले में रीवा जिले के कृषि विपणन का तुलनात्मक अध्ययन पर शोध कार्य कर कृषि भण्डारण, कृषि विपणन, कृषि परिवहन, कृषि नीति आदि सुविधायें प्रदान किये जाने के साथ ही कृषि विपणन व्यवस्था को विकसित किया जाएगा, इससे सम्बन्धित सुझावों को कृषि विपणन के

पिछड़ेपन को दूर करना, उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि, कृषि विपणन तकनीक में सुधार कृषि उपज में वृद्धि एवं संग्रहण किये जाने का प्रयास करने के साथ-साथ कृषि विपणन के परम्परागत पद्धतियों के स्थान पर कृषि विपणन पद्धतियों में वर्तमान तकनीक उपलब्ध कराए जाने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए जायेगे, कृषि विपणन में परिवहन एवं यातायात का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

रीवा जिले को प्रदेश एवं देश के कृषि विपणन बाजार से जोड़ने हेतु आवश्यक सुझाव के साथ-साथ कृषि मूल्यों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण नीति निर्धारित की जायेगी। कृषि विपणन भी उपर्युक्त महत्वपूर्ण तथ्यों के साथ-साथ कृषि उत्पादन का परिसंस्करण, कृषि परिसंस्करण हेतु प्रमुख नीतियो यथा 'कृषि' उत्पाद को सुखाना, विपणन के लिए उपलब्ध कराना एवं वित्तीय सुविधाएँ उपलब्ध कराए जाने का प्रयास किया जाएगा। शोध क्षेत्र के कृषि विपणन की अपार सम्भावनाएँ होते हुए भी यहाँ की कृषि विपणन भी व्यवस्था ठीक नहीं है।

पूर्व शोध की समीक्षा-

कॉनराय एट आल (2001) भारत में ग्रामीण कृषक परिवारों के पास आय के साधन के पशु उपलब्ध है। राष्ट्रीय स्तर पर पशुधन की आबादी बढ़ी है हालांकि एक क्षेत्रीय पैमाने और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में विशेष रूप से स्थिति बहुत अलग और अधिक जटिल है, उदाहरण के लिए ग्रामीण क्षेत्र के भीतर पशुधन बढ़ी जाती है तथा शहरी क्षेत्रों में पशुधन की आबादी कम होती है। जिससे ग्रामीण किसानों की स्थिति सुधर रही है।

ब्रिजेन्द्र पाल सिंह (2000) भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि है। इसके विकास से अर्थव्यवस्था में दृढ़ता आती है। राष्ट्रीय आय में इसका योगदान 34 प्रतिशत के आसपास है। गत वर्षों में खाद्यान तथा व्यावसायिक फसलों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाले तत्वों में प्राकृतिक और आर्थिक दोनों महत्वपूर्ण है। विगत दो-तीन दशकों में भारत में द्वितीयक क्षेत्र एवं तृतीयक क्षेत्र को तीव्र गति से विस्तार हुआ है प्रभावी देश की कार्यशील जनसंख्या का 52 प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्र पर आश्रित है। देश में कृषि 115.5 मिलियन कृषक परिवारों की आजीविका का माध्यम है। यहाँ तक कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 15 प्रतिशत भाग कृषि व उसकी सहायक क्रियाओं से प्राप्त होता है। भारत में अनेक महत्वपूर्ण उद्योग प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर देश की 1.21 अरब से अधिक जनसंख्या के खाद्यान व खाद्य पदार्थों की आपूर्ति कृषि क्षेत्र से ही की जाती है। करोड़ों पशुओं को प्रतिदिन चारा कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है।

डॉ. आर. के. भारतीय (2006) भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर लघु तथा सीमांत कृषकों खेतिहर मजदूरों तथा अन्य श्रमिकों, शिल्पियों, व्यवसायिक एवं सेवा करने वाले परिवारों का ही बाहुल्य है। परन्तु आज भी इनमें से अधिकांश परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं! अतः यह कहा जा सकता है कि भारत का समाजिक एवं आर्थिक विकास ग्रामीण क्षेत्रों के बुनियादी विकास पर ही आधारित है। ग्रामीण विकास की अनेकोनेक समस्याएँ जिनमें प्रमुख रूप से आर्थिक अधोसंरचना, कृषि, लघु एवं कुटीर उद्योग व समान्वित विकास की समस्याएँ हैं।

शोध प्रविधि-रीवा जिले में स्थित मण्डियों में से निदर्शन विधि का अनुप्रयोग करते हुए

जिले से सभी मण्डियों का अध्ययन कर कुछ चिन्हित मण्डियों को प्राकृतिक अध्ययन के लिए चुना जाएगा। मण्डियों के चयन में उनकी स्थिति कार्यक्षेत्र आदि का ध्यान रखते हुए जिले में सभी तहसीलों में से एक-एक विनियमित मण्डी तथा जिले में एक प्राथमिक स्तर में गांव में स्थित विनियमित मण्डी का चयन कर अध्ययन किया जावेगा।

मण्डी सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रश्नावली बनाकर मण्डी समिति के पदाधिकारियों एवं मण्डी सचिवों से सम्पर्क अभियान द्वारा विषय से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित कर उपक्रम बनाया जाएगा। कृषि सम्बन्धी उत्तर प्राप्त करने के लिए स्तरवार निदर्शन विधि का प्रयोग किया जावेगा। अन्त में सांख्यिकी विश्लेषण के बाद शोधकर्ता द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत कर जाएगा इस सम्बन्ध में एकत्रित किए गये प्राथमिक द्वितीयक एवं गौर आंकड़े हेतु किया गया है।

कृषि विपणन तकनीकी में सुधार, कृषि उत्पादन में वृद्धि, मध्यस्थों की समाप्ति, कृषि विनिमय हेतु वित्तीय सुविधाएँ, कृषि उत्पाद मूल्य में वृद्धि तथा कृषि विपणन का व्यावसायिक कार्य, व्यवसायिक अनुभव, पूँजी निवेश, छोटे कृषि व्यापारियों को संरक्षण कृषि के लिए वित्तीय सुविधाएँ, व्यावसायिक प्रशिक्षण, यातायात का विकास, भण्डारण प्रक्रिया में सुधार, व्यावसायिक स्थिति का मूल्यांकन, मूल्य में स्थिरता जैसे अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। कृषि विपणन में जमाखोरी की समाप्ति, कृषि क्षेत्र को औद्योगिक क्षेत्र मानने के साथ-साथ गांवों में कृषि उत्पाद के विक्रय हेतु आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास होगा। कृषि विपणन क्षेत्र में सहाकारी समितियों के विकास हेतु कृषि विपणन क्षेत्र में सहकारी समितियों के विकास हेतु सरकारी एजेन्सी द्वारा कम मात्रा का पूर्व निर्धारण उत्पादक व व्यापारियों से कृषि आय में वृद्धि जैसे उपायों को अपनाने से कृषि विपणन तथा कृषि उपज में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। कृषि उपकरणों वित्तीय सुविधाओं में वृद्धि के साथ ही अन्य आवश्यक मूलभूत सुविधाओं में विकास हेतु उपाय किये जायेंगे। सहकारी विपणन व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाएगा उत्पादकों को उचित मूल्य दिलाए जाने के साथ ही पूँजीवादी बाजार को रोकने का प्रयास किए जाएगा, साथ ही कृषि विपणन व्यवसाय का विस्तार किया जाएगा, विस्तार के साथ ही देश व अन्य विकसित राज्यों की कृषि विपणन के समान किया गया है।

शोध के उद्देश्य-

- कृषकों एवं सहकारी बैंकों की अर्थिक दशाओं का अध्ययन कर उनका जीवन स्तर ऊपर उठाने हेतु आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना।
- सहकारी बैंकों के योगदान द्वारा ग्रामीण कृषि प्रक्षेत्र की समस्याओं को दूर करने का समन्वित प्रयास भी है? इसके अन्तर्गत न केवल लघु कृषकों की पहचान की जा सकेगी वरन् उन्नयन हेतु आवश्यक साधन/सुझाव उपलब्ध कराना।
- जिले में संचालित सहकारी बैंकों के विभिन्न योजनाओं से लाभान्वित कृषकों के आर्थिक विकास की दर प्राप्त कर उसकी समीक्षा करना।
- संस्थागत बैंकों की कार्यप्रणाली एवं ब्यूह रचना का अध्ययन।
- केन्द्रीय सहकारिता बैंक के द्वारा दी जाने वाली सहायता एवं सहयोग के फलस्वरूप हितग्राहियों के रोजगार प्रभाव का अध्ययन करना।

- संस्थागत बैंकों द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का अध्ययन करना।
- कृषकों की आर्थिक दशा के सफलता हेतु समुचित साधनों एवं उपायों को सुझाना जिससे भविष्य में इन योजनाओं को और प्रभावशाली बनाया जा सके।

शोध सीमाएँ- “सितीर्षुः दुस्तरम मोहा दुहुपेनाडस्मि सागरम्” ज्ञान की छोटी पनसुइया नौका से शोध के महान् सागर को पार करने की इच्छा स्वरूप मेरे प्रयास से यह शोध सामग्री निश्चय ही अध्ययन की विविध सीमाओं में संकलित है। आर्थिक विकास एक ऐसी विषय वस्तु है जिसके प्रत्येक अंश पर शोध ग्रन्थ की रचना की जा सकती है, ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास का स्पर्श कर आरंभिक अध्ययनकर्ता विविध रूपों में वर्णन करते हैं। फलतः आर्थिक विकास के किसी एक क्षेत्र को न लेकर विभिन्न स्वरूप को लेकर अध्ययन किया गया। व्यक्तिशः अध्ययनकर्ता होने के कारण अर्थ तथा समयावधि की अरूपतावश आर्थिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों का विशद विश्लेषण सम्भव नहीं हो सका है फिर भी विषय वस्तु को पर्याप्त रूप में स्पष्ट किया गया है। अध्ययन के सीमा की कड़ी में आर्थिक विकास के अन्तर्गत आने वाली सभी उत्पाद वस्तुओं के उत्पादन की स्थिति पर समान ध्यान नहीं दिया गया है। प्रस्तुत शोध की सीमाएँ रीवा राजस्व क्षेत्र अंतर्गत आने वाले विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्रित है। अध्ययन का क्षेत्र मूलतः 2005 के बाद की जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक का वित्तीय प्रबंधन एवं कृषि विकास में योगदान नीतियों खासतौर पर ऋण व वसूली नीतियों पर केन्द्रित है। इस तरह अध्ययन जिले के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित बैंकों एवं उनकी ऋण व वसूली नीतियों के गतिविधियों पर केन्द्रित है। विषयवस्तु में अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए और सहकारी बैंक की ऋण वसूली नीतियों साख के शोध परिणाम हासिल करने के लिए अध्ययनकर्ता ने अध्ययन का केन्द्र विविध धर्मी रीवा जिले की सहकारी कृषि एवं ग्रामीण बैंक को बनाया गया है।

शोध का महत्व एवं कठिनाइयाँ- कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है, जिसके समुचित विकास के बिना किसी भी प्रकार की आम जीवन से जुड़ी विकास की गतिविधियों की परिकल्पना नहीं की जा सकती। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाली जानकारीयों के अनुसार देश का सर्वाधिक वर्ग कृषि से संबंधित है देश की कृषि व्यवस्था और कृषि नीति ऐसी है कि कृषि अभी भी पुरातन नीतियों पर आधारित है शासन और प्रशासन स्तर पर दीर्घकालिक सहकारी बैंकिंग नीतियाँ निर्मित होती हैं। जिनका संबंध कृषि क्षेत्र की वास्तविकता से नहीं होता। कोरे सिद्धांत पर आधारित सहकारी बैंकिंग की नीतियों के चलते कृषि आज भी नई परम्पराओं को स्वीकार नहीं कर पाती। देश के कुछ क्षेत्रों को अगर छोड़ दे तो कृषि फर्म और कृषक का नाम आते ही एक विचित्र पीड़ा का बोध होता है। भारत का किसान आज भी दो जून की रोटी के लिए मोहताज है उर्वरताविहीन खेत, लगातार घटते कृषि संसाधन, पढ़े लिखे विकासशील लोगों का कृषि से दूर हटना भौतिक संसाधनों की बढ़ती कीमतें समय अनुकूल बीज खाद एवं अन्य सहायक वस्तुएँ कृषि यंत्रों की भारी कीमतें उत्पादन विक्रय की साख की नीति का आभाव आदि के चलते रीवा जिले की कृषि अभी भी अधोगामी है।

विगत वर्षों में ग्रामीण विकास के उन्नयन के लिए जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा उठाए गये प्रभावी कदमों में सबसे महत्वपूर्ण जिले के विभिन्न क्षेत्रों में कृषि बैंकों, जिनके माध्यम से कृषिकों कृषि उत्पादों का समर्थन मूल्य मिलने की गारंटी दी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक का वित्तीय प्रबंधन एवं रीवा जिले के आर्थिक विकास में योगदान पर केन्द्रित है। जिसके पृष्ठभूमि में मूलतः अध्ययन में इन विभिन्न कारणों का भी संकेतिक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था में सहकारी बैंकों की सहभागिता को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध अध्ययन के महत्व का प्रतिपादन किया जा सकता सके।

अध्ययन के दौरान विभिन्न प्रकार की कठिनाईयों जिनका संबंध विषय सामग्री के चयन से रहा है। आपेक्षित समकों संकलन न होने से विषय वस्तु में गहराई में जाना, सत्यता की परख करना एक जटिल समस्या रही। अध्ययन केन्द्र सम्पूर्ण रीवा राजस्व क्षेत्र होने के कारण भी हर जगह का प्रतिनिधित्व स्वाभाविक रूप से सम्भव नहीं हो सका है। जिले में छोटे-छोटे/ग्राहकों/प्रतिनिधियों के होने के कारण आपेक्षित मात्रा में सही परिणाम नहीं हो पाता जब कृषिको/उपभोक्ताओं के पास मात्र भरण पोषण के लिए कृषि उत्पाद होता है ऐसे में ग्रामीण आर्थिक विकास की परिकल्पना करना हास्यास्पद सा है अध्ययन के दौरान देखा गया कि रीवा राजस्व क्षेत्र के 70 प्रतिशत व्यापारियों का संबंध बैंकों से नहीं बल्कि छोटे साहूकारों से है कृषि ऋण के कारण कृषि ऋण का समय से भुगतान न करने के कारण कृषक मूलतः कृषि नीतियों से अनजान बने रहते हैं और स्वाभाविक रूप से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने में कतराते हैं। राजस्व क्षेत्र के बैंक अधिकारी कर्मचारियों के संबंध कृषकों से किसी भी प्रकार से नहीं दिखते कर्मचारियों का संबंध कागजों की खाना पूर्ति से है। जिस कारण कोरे समकों पर आधारित अध्ययन क्षेत्र की कृषि ऋण की दशा है ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है अध्ययन के दौरान विभिन्न प्रकार की विसंगतियों का सामना करना स्वाभाविक सा रहा।

निष्कर्ष-कृषि विपणन तकनीकी में सुधार, कृषि उत्पादन में वृद्धि, मध्यस्थों की समाप्ति, कृषि विनिमय हेतु वित्तीय सुविधाएँ, कृषि उत्पाद मूल्य में वृद्धि तथा कृषि विपणन का व्यावसायिक कार्य, व्यावसायिक अनुभव, पूँजी निवेश, छोटे कृषि व्यापारियों को संरक्षण कृषि के लिए वित्तीय सुविधाएँ, व्यावसायिक प्रशिक्षण, यातायात का विकास, भण्डारण प्रक्रिया में सुधार, व्यावसायिक स्थिति का मूल्यांकन, मूल्य में स्थिरता जैसे अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। कृषि विपणन में जमाखोरी की समाप्ति, कृषि क्षेत्र को औद्योगिक क्षेत्र मानने के साथ-साथ गांवों में कृषि उत्पाद के विक्रय हेतु आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास होगा। कृषि विपणन क्षेत्र में सहकारी समितियों के विकास हेतु कृषि विपणन क्षेत्र में सहकारी समितियों के विकास हेतु सरकारी एजेन्सी द्वारा कम मात्रा का पूर्व निर्धारण उत्पादक व व्यापारियों से कृषि आय में वृद्धि जैसे उपायों को अपनाने से कृषि विपणन तथा कृषि उपज में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। कृषि उपकरणों वित्तीय सुविधाओं में वृद्धि के साथ ही अन्य आवश्यक मूलभूत सुविधाओं में विकास हेतु उपाय किये जायेंगे। सहकारी विपणन व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाएगा उत्पादको को

उचित मूल्य दिलाए जाने के साथ ही पूंजीवादी बाजार को रोकने का प्रयास किए जाएगा, साथ ही कृषि विपणन व्यवसाय का विस्तार किया जाएगा, विस्तार के साथ ही देश का अन्य विकसित राज्यों की कृषि विपणन के समान किया जाएगा।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. अग्रवाल एन.एल., भारतीय कृषि का अर्धतंत्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी
2. अग्रवाल, एन.एल. कृषि अर्थशास्त्र राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर
3. भारती एवं पाण्डेय भारतीय अर्थव्यवस्था मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
4. चौहान, शिवध्यान सिंह भारतीय व्यापार साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा
5. चतुर्वेदी टी.एन. तुलनात्मक आर्थिक पद्धतियों राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर
6. जैन, एस.जी. विपणन के सिद्धांत साहित्य भवन आगरा
7. जैन, पी.सी. एवं जैन टेण्डका विपणन प्रबंध नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
8. खंडेला मानचन्द्र, उदारीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था साहित्य भवन प्रकाशन आगरा
9. मदादा एवं बोरवाल विपणन के सिद्धान्त रमेश बुक डिपो जयपुर
10. श्रीवास्तव, पी.के. विपणन के सिद्धान्त नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
11. सिंघई जी.सी. एवं मिश्रा, जी.पी. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त साहित्य भवन आगरा
12. त्रिवेदी, इन्द्रवर्धन एवं जटाना, रेणु विदेशी व्यापार एवं विनिमय राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
13. वान हेबलर, गाट फ्रायड, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत उ.प्र. हिन्दी सस्थान

जनपद प्रतापगढ़ के औद्योगिक विकास में आंवला (एक भौगोलिक अध्ययन)

• इंदु मिश्रा

सारांश- प्रस्तुत शोध-पत्र का अध्ययन क्षेत्र प्रतापगढ़ है जहां नदियों के किनारे की बलुई तथा क्षारीय भूमि में आंवले की खेती विस्तृत रूप से की जा रही है। उल्लेखनीय है कि इस जनपद में आंवले की खेती का क्षेत्रफल एवं उत्पादन निरंतर बढ़ रहा है तथा क्षेत्र के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में आंवले की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसकी खेती से यहां के आर्थिक रूप से निर्बल वर्ग को रोजगार मिल रहा है तथा आंवले को एक प्राथमिक उद्योग के रूप में विकसित किया जा रहा है। न केवल इस जनपद में, बल्कि वर्तमान में प्रतापगढ़ के आंवले की खेती के विकास को देखकर देश के अन्य प्रांतों में भी ऊसर प्रतिरोधी भूमि में आंवले की खेती की जा रही है।

मुख्य शब्द- बलुई तथा क्षारीय भूमि, आर्थिक एवं औद्योगिक विकास, आंवला, ऊसर प्रतिरोधी भूमि

परिचय- पर्यावरण के बदलते परिवेश के परिणामस्वरूप ऊसर एवं बंजर भूमि का क्षेत्रफल निरंतर बढ़ रहा है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए ऊसर भूमि सुधार हेतु ऊसर प्रतिरोधी फल वृक्षों की खेती भी की जा सकती है। ऊसर प्रतिरोधी फलों में आंवले का प्रमुख स्थान है।

भारतवर्ष में लगभग 72 लाख हेक्टेयर भूमि ऊसर प्रभावित है। इसमें से उत्तर प्रदेश में ही लगभग 07 लाख हेक्टेयर भूमि ऊसर के कारण बंजर पड़ी है। इस किस्म की भूमि में अनाज की खेती के लिए पूरे प्रक्षेत्र का सुधार आवश्यक है। अतः कम लागत से ही भूमि सुधार करके ऊसर प्रतिरोधी फल वृक्षों की खेती भी की जा सकती है।

ऊसर प्रतिरोधी फलों में आंवले का प्रमुख स्थान है। यह भारत का ही देशज पौधा है। आंवला एक अत्यधिक उत्पादनशील प्रचुर पोषक तत्व वाला तथा अद्वितीय औषधीय गुणों से युक्त फल है। इसका पौधा जलवायु एवं भूमि दोनों के प्रति काफी सहिष्णु होता है। आंवले का फल विटामिल-सी का प्रचुर स्रोत होता है। फलों को ताजा अथवा सुखाकर दोनों प्रकार के उपयोग में लाया जाता है। इसके फल से विभिन्न प्रकार के संरक्षित उत्पाद बनाए जाते हैं। आर्युर्वेदिक दवाओं में आंवले के फलों का प्रमुख स्थान है।

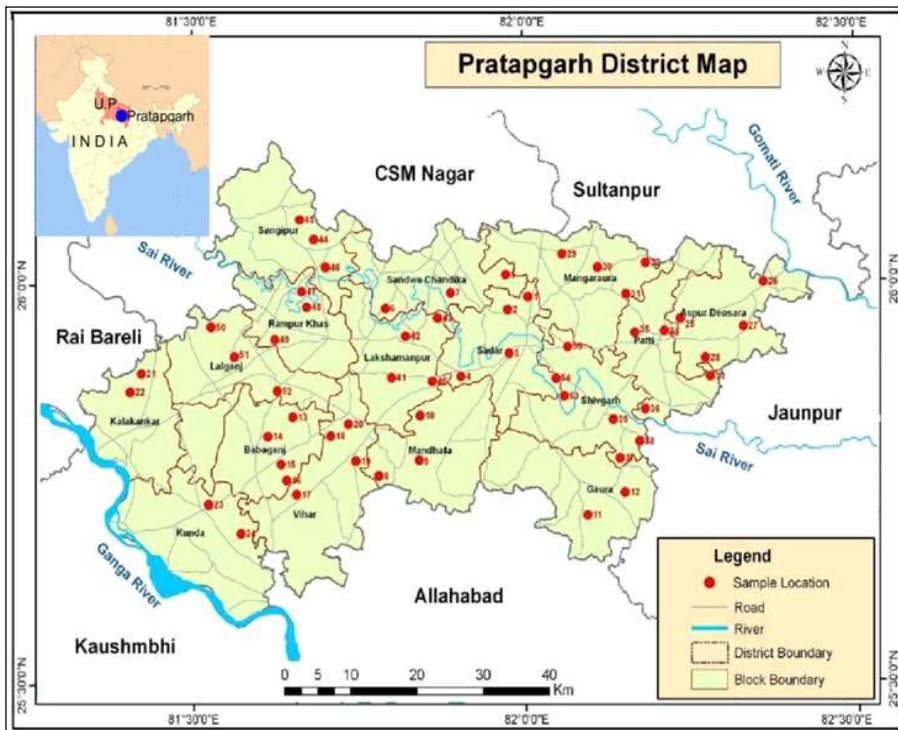
आंवले की खेती बलुई भूमि के अतिरिक्त सभी प्रकार की भूमियों में की जा

सकती है। आंवले का पौधा काफी कठोर होता है तथा ऊसरीली एवं अन्य प्रकार की बंजर भूमि जिसका पी.एच. मान 7.5-9.0 तक होता है तथा विनिमयशील सोडियम 35-40 प्रतिशत तथा क्षारीय भूमि जिसकी विद्युत चालकता 9.5 हो, आंवले की खेती की जा सकती है।

आज देश में रिकार्ड खाद्योत्पादन के उपरान्त भी ग्रामीण जनसंख्या का 7.7 प्रतिशत आज भी दो जून की रोटी के बिना भूखे सोने को विवश है। साथ में यह भी कटु सत्य है कि विश्व में कुपोषणग्रस्त 5 वर्ष से छोटे बच्चों की सर्वाधिक संख्या भी हमारे देश में निवास करती है। आज हम अपनी ढीली-ढाली शैली में इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में कार्य करेंगे-तो सन् 2025 तक भंयकर रूप से भुखमरी से प्रभावित लोगों की संख्या 70 करोड़ का आंकड़ा पार कर चुकेगी। इस भुखमरी का अन्त एवं आहार सुरक्षा का समाधान अधिक खाधान उत्पन्न कर रही किया जा सकता है इसके लिये देश में भारी क्षेत्रफल में पड़ी ऊसर भूमि को खाद्यान उत्पादन के लिये उपयुक्त बनाना और ऊसर सहनशील खाद्य फसलों का समुचित चुनाव करना होगा।

ऊसर भूमि का समुचित और लाभकारी उपाय कृषि व्यवस्था को बढ़ावा देना है। कृषि व्यवस्था अच्छी भूमि के साथ ऊसर एवं बंजर भूमि के प्रयोग की एक ऐसी पद्धति है जिसके अन्तर्गत भूमि के एक प्रखण्ड में बहुवर्षीय वृक्ष के साथ फसल चारा उत्पादन को सम्मिलित करते हैं। जिससे निरन्तर वटिकाऊ तथा प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके जैसे ईंधन की लकड़ी, पशुओं के लिये हरा चारा, रेशा, इमारती लकड़ी आदि। ऊसर भूमि के लिये निम्न वृक्षों का चुनाव करना चाहिए जैसे देशी बबूल, इजरायली बबूल, शीशम, नीम, इमली, बेर, आंवला, अंजन दीनानाथ घास, मोथा प्रजाति का पौधा आदि।

अध्ययन क्षेत्र (परिचय)-प्रस्तुत शोध-पत्र का अध्ययन क्षेत्र-प्रतापगढ़ जनपद है जो इलाहाबाद मंडल के उत्तर दिशा में स्थित है। यह प्रदेश के मानचित्र में दक्षिणी पूर्वी भाग में है। इसका विस्तार $25^{\circ} 34'$ एवं $26^{\circ} 11'$ अक्षांश तथा $18^{\circ} 19'$ एवं $82^{\circ} 27'$ देशांतर के मध्य में है। यह पश्चिम से पूर्व तक 110' कि.मी. एवं उत्तर से दक्षिण तक 40 किमी में फैला हुआ है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 37.17 वर्ग किमी है जो मंडल के कुल क्षेत्रफल 15130 वर्ग किमी का 24.5 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से चारों जनपदों में इसका स्थान तीसरा है। भूमंडल का यह भाग समुद्र तल से 137 मीटर की ऊंचाई पर है। यह उत्तर से सुल्तानपुर, पूर्व में जौनपुर, दक्षिण में इलाहाबाद एवं पश्चिम में रायबरेली जनपदों में घिरा हुआ है। जनपद मुख्यालय प्रदेश की राजधानी से 173 किमी. पूर्व में स्थित है। पश्चिम से पूरब की ओर अनवरत् प्रवाहशील सई नदी इस जनपद को दो भागों में विभक्त करती है। प्रशासनिक दृष्टि से जनपद कुल 05 तहसीलों एवं 17 विकासखंडों में विभक्त है जहां कुल 2219 ग्राम आबाद है। नगरी क्षेत्रों में एक नगरपालिका तथा 06 टाउन एरिया इकाई कार्यरत हैं।



मैदानी भाग में स्थित होने के कारण इस जनपद के क्षेत्रीय संबंध भी घनिष्ठ है। जनपद का मुख्यालय उत्तर रेलवे की ब्राडगेज रेलवे लाइन की इलाहाबाद-लखनऊ शाखा तथा सुलतानपुर-वाराणसी शाखा पर स्थित है। यह सई नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। राजकीय मार्ग संख्या 9, 36, 38 जनपद से होकर गुजरते हैं राज्यमार्ग संख्या 9 फैजाबाद-सुलतानपुर से इलाहाबाद तथा राज्यमार्ग 36 रायबरेली से वाराणसी को जाता है। मार्ग संख्या 38 उन्नाव से इलाहाबाद कुण्डा तहसील मुख्यालय से होकर जाता है। इसके अतिरिक्त जनपद के अन्य सभी प्रमुख स्थान पक्की सड़कों में जुड़े हैं। जिससे जनपद को क्षेत्रीय गन्तव्यता सुलभ है।

शोध-पत्र के मुख्य उद्देश्य- प्रस्तुत शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्यों के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं-

1. जनपद के आर्थिक विकास हेतु आंवले की खेती का विकास करना।
2. जनपद में जीवन यापन कर रहे निर्बल वर्ग के व्यक्तियों को आंवले की खेती द्वारा रोजगार दिलाना।
3. अध्ययन क्षेत्र के मुख्य उद्योगों में आंवले को एक प्राथमिक उद्योग के रूप में विकसित करना।
4. देश के अन्य क्षेत्रों के आर्थिक विकास हेतु जनपद को एक मॉडल रूप में प्रयोग करना।

शोध विधि-तन्त्र- प्रस्तुत शोध पत्र हेतु द्वितीयक आकड़ों का उपयोग किया गया है। इन तथ्यों को जनपद की विभिन्न जनगणना पुस्तिकाओं, गजेटियर, सांख्यिकी पत्रिकाओं

आदि से प्राप्त किया गया है। इसके साथ ही साथ प्रस्तुत शोध पत्र में व्यवस्थित अवलोकन को भी महत्वपूर्ण आधार बनाया गया है। जिससे यथा स्थिति दृष्टिगत हो सके।

भूमि उपयोग एवं कृषि संरचना - मानव सभ्यता के आदिकाल से ही भूमि प्राकृतिक संपदा के रूप में सबसे महत्वपूर्ण रही है। विश्व की विशिष्ट सभ्यताओं का विकास इसी का प्रतिफल है। यह मुख्यतः सीमित संसाधन है किंतु इसका अधिक से अधिक उपयोग होता रहा है। भूमि के वास्तविक एवं आदर्श उपयोग का विश्लेषण करने के लिए अनेक भूगोलविदों ने महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। सुप्रसिद्ध भूगोलविद् स्टेम्प (1962) तथा इनायदी (1964) ने कृषि भूगोलविदों का एक नई दिशा दी। भारत में मोहम्मद शफी ने (1960-72) भारत के विभिन्न क्षेत्रों की भूमि उपयोगिता, साधनता, क्षमता तथा कृषि संरचना पर कई महत्वपूर्ण शोध कार्य प्रकाशित किए हैं। आज भी देश की ऊसर एवं बंजर भूमि का अधिकांश भाग कृषि तथा अन्य फसलों के उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा रहा है।

अध्ययन क्षेत्र (प्रतापगढ़ जनपद) नदियों का मैदानी भाग होने के कारण काफी उपजाऊ है। पश्चिम से पूरब की ओर प्रवाहित सई नदी इस जनपद को दो भागों में विभक्त करती है। इसके अतिरिक्त चमरौरा, परैया, बकुलाही, सकरानी एवं लोनी नदियां भी हैं। नदियों के बड़े बरसाती नालों, बेती बिहार, रामपुर की झीलें तथा दाऊदपुर रंगोली के ताल जनपद की मुख्य धरोहर हैं।

जनपद प्रतापगढ़ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। संपूर्ण जनसंख्या का 94 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है, जिसमें 76 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। कृषि उत्पादन का प्रभाव जनपद की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। जनपद की धरातलीय संरचना इस प्रकार की है कि संपूर्ण कृषि के लिए उपलब्ध भूमि के अंतर्गत सई नदी के दक्षिणी संभाग, कुंडा, बाबागंज, कालाकांकर, बिहार एवं रामपुर खास विकास खंडों की भूमि भटियार एवं दोमट है जो कृषि के लिए अत्यंत उपयोगी है। उल्लेखनीय है कि कृषि उत्पाद जनपद की संपूर्ण जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपर्याप्त है और नदियों के किनारे की भूमि बलुई तथा क्षारीय है। अतः कृषि के अतिरिक्त यह जनपद-आंवला की खेती भी विस्तृत रूप से कर रहा है। आंवला की खेती और उत्पादन के लिए यह क्षेत्र पूरे देश में प्रसिद्ध है।

सारणी 01

जनपद में आंवला का क्षेत्रफल एवं उत्पादन का विवरण

क्र.	तहसील	विकास खंड का नाम	2011-2012		2013-2014		2015-2016		2017-2018		2019-2020	
			क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	उत्पादन (मैट्रिक टन में)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	उत्पादन (मैट्रिक टन में)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	उत्पादन (मैट्रिक टन में)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	उत्पादन (मैट्रिक टन में)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	उत्पादन (मैट्रिक टन में)
1.	सदर	1. सदर 2. मांछला 3. चडिका	2,855 275 1,979	13961 1267 8323	3044 287 2017	13471 987 6938	3098 296 2030	11538 1083 6999	3149 315 2050	10436 912 6129	3149 315 2050	20686 2047 13325
2.	पट्टी 1591 10341	1. पट्टी 2. मंगरौरा 3. आसपुर- देवसरा	1,458 1,347 511	6721 6209 2355	1560 1372 633	5366 4719 2177	1571 1387 634	5749 5076 2320	1591 1397 644	4248 5002 2309	1591 1397 644	4248 9080 4186
3.	रानीगंज	1. शिवगढ़ 2. बाबाबेल खरनाथ धाम गौरा 3. सांगीपुर	309 260 306	1424 1198 1410	487 372 509	1375 1279 1750	488 374 513	1486 1288 1877	494 378 523	1285 1271 1806	494 378 523	3211 2457 3399
4.	लालगंज	1. रामपुर लालगंज 2. रामपुर सरायगढ़ 3. लक्ष्मणपुर 4. सांगीपुर	77 29 49 977	354 133 225 4571	138 57 60 1039	378 145 231 1281	138 57 60 1046	405 208 249 1352	138 201 70 1049	402 201 241 1383	138 201 70 1049	897 370 455 6818
5.	कुंडा	1. कुंडा 2. कालाकांकर 3. बिहार 4. बाबागंज	58 11 32 10	267 44 147 18	85 21 49 19	233 38 107 14	85 21 49 19	311 47 119 23	87 24 50 20	301 38 102 21	87 24 102 20	565 156 325 130
योग			10,543	48,627	11,749	40,489	11,866	40,130	12,036	36,087	12,036	78,448
स्रोत : (कृषि)कृषि विभाग,उत्तरांचल जलिकृषि विभाग,राजभाषा												

स्रोत : (कार्यालय, जिला उद्यान अधिकारी, जनपद-प्रतापगढ़)

आंवला के आर्थिक विकास का इतिहास-जनपद प्रतापगढ़ के तहसील सदर के विकास खंड-सदर के ग्राम गोंडे में आंवला के बाग के रोपण हुए। इसके फल के उत्पादन से बागवानों को लाभ हुआ। इसी को देखकर बगल के विकास खंडों क्रमशः मंगरौरा, पट्टी, शिवगढ़ एवं सडवाँ-चंद्रिका में भी सघन रूप से इसका रोपण होने लगा। इन क्षेत्रों में आंवले की खेती के योग्य ऊसर एवं क्षारीय भूमि है जिसका पी मान 8 से 8.5 के मध्य होना चाहिए, उपलब्ध है।

उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में आंवले के फलों के उत्पादन को देखते हुए देश के अन्य प्रांतों एवं प्रदेश के अन्य जनपदों के इसके रोपण का क्षेत्रफल बढ़ने लगा है। जनपद के आंवला बागवान बाग रोपण के साथ कलमी पौधों का उत्पादन भी करने लगे जिससे भी आमदनी का स्रोत बढ़ा और आर्थिक स्तर के उठने से सहायता मिली है। वर्तमान में जनपद-प्रतापगढ़ में लगभग 85 निजी पौधशालाएं एवं 11 राजकीय पौधशालाएं हैं, जहां पर आंवला के कलमी पौधों का उत्पादन बृहद् रूप से किया जा रहा है। आंवला कलमी की जातियों में चकैया, फ्रांसिस, कंचन, कृष्णा, लक्ष्मी-52, एन.ए.-06, एन.ए. 07 एवं एन. ए.-10 मुख्य हैं, जो अधिकतर फल उत्पादन क्षमता की हैं।

वर्तमान में आंवले के फल से मुरब्बा, लड्डू, बरफी, कैडी, जूस, स्कावायस, अचार, जैम, जेली एवं मीठी चटनी बनाई जा रही है। इसी तरह आंवला फल से औषधि की जड़ी बूटियों के साथ-साथ पाचन चूर्ण एवं आंवला च्यवनप्राश बनाया जा रहा है। इस कार्य के अलिखित जनपद प्रतापगढ़ में औद्योगिक इकाइयों की संख्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि इन वस्तुओं के विक्रय से भी आर्थिक स्तर ऊँचा हो रहा है।

निष्कर्ष-प्रस्तुत शोध-पत्र का अध्ययन क्षेत्र प्रतापगढ़ है जहां नदियों के किनारे की बलुई तथा क्षारीय भूमि में आंवले की खेती विस्तृत रूप से की जा रही है। उल्लेखनीय है कि इस जनपद में आंवले की खेती का क्षेत्रफल एवं उत्पादन निरंतर बढ़ रहा है तथा क्षेत्र के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में आंवले की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसकी खेती से यहां के आर्थिक रूप से निर्बल वर्ग को रोजगार मिल रहा है तथा आंवले को एक प्राथमिक उद्योग के रूप में विकसित किया जा रहा है। न केवल इस जनपद में, बल्कि वर्तमान में प्रतापगढ़ के आंवले की खेती के विकास को देखकर देश के अन्य प्रांतों में भी ऊसर प्रतिरोधी भूमि में आंवले की खेती की जा रही है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. Stamp, L.D. (1962): The land of Britain, its use and misuse, IIIrd Edition, London: Longmans.
2. Enyedi, G.Y. (1964): Geographical Types of Agriculture Applied Geography in Hungary, Budapest.
3. Shafi, M. (1960): measurement of Agricultural Efficiency of Uttar Pradesh, Economic Geography Vol. 36, No. 4. PP-296-305.
4. Shafi, M. (1960): Measurement of Agricultural Productivity of the great Indian plains, Geography, Vol. 19, No. 1, PP-4-13.
5. जनपद सांख्यिकी पत्रिका, जनपद वार्षिक योजना आदि।

भारतीय लोक कला के विविध आयाम

• उपासना राज

सारांश- लोक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की लोक दर्शाने वाली धातु से हुई है, जिसका धातुज अर्थ है- देखने वाला। लोक समाज में प्रचलित सभी विचार आदर्श, मनोभाव, विश्वास, परम्पराएं, रहन-सहन, रीति-रिवाज, अनुष्ठान क्रियाएं आदि का सम्मिलित रूप ही लोक की पूँजी है। लोक मानव द्वारा रेखांकित समस्त कला के लोककला कहा जाता है।

मुख्य शब्द- लोक शब्द, विचार आदर्श, मनोभाव, विश्वास, परम्पराएं, रहन-सहन, रीति-रिवाज

परिचय- लोककला के विषय भी भारतीय जनता के साधारण जन-जीवन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, संस्कृति से सम्बन्धित है लोककला प्रागैतिहासिक कला का अभिन्न और विशेष अंग है। प्रागैतिहासिक चित्रों के विषय में अनेक विद्वानों की यह धारणा रही है कि उसमें उपयोगिता, अभिचारपरकता, अतिविश्वास आदि की भावनाएँ प्रमुख रही हैं: सौंदर्य- मूलक दृष्टि से उनकी रचना नहीं की गई है। किन्तु यह मत नितान्त भ्रामक है। ये चित्र उपयोगिता से भिन्न तत्वों का अस्तित्व भी प्रभावित करते हैं क्योंकि वर्तमान में भी जनजातियाँ लोग अपने घरों के बाहर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के माध्यम से ही आलेख बनाते हैं जो सौंदर्य भावना से प्रेरित होते हैं।

“लोक कला के अन्तर्गत उन समस्त तत्वों एवं साहित्यों का समावेश होता है, जो लोककला के हैं, जनता के लिए हैं और जनता के द्वारा लिखे गए हैं। अतः लोक-साहित्य में वह समस्त साहित्य आयेगा, जो लोककला को है, लोक कला के लिए है लोक द्वारा चित्रित किया गया है”

वास्तव में लोककला का जन्म मानव में कला की सृजनात्मक प्रवृत्ति अपनी रचना आरम्भ कर दी और कलाकार में अलंकरण की प्रकृति जागृत हुई। परिणामस्वरूप घरों की भित्तियों द्वारा आंगन आदि की सज्जा से इस प्रवृत्ति का विकास हुआ। हमारी भारतीय लोककला के विविध आयाम इस प्रकार है-

ऐतिहासिक- आदिम अवस्था में मनुष्य वनों में निवास करता था उसकी इस अवस्था ने ही उसे कलाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित किया। इसी अवस्था में लोककला चित्रों का जन्म मानव मन की मूल प्रवृत्तियों से हुआ। “आदिमकाल के चित्र गुफाओं के अंधेरे स्थानों पर प्राप्त हुए हैं अतः धार्मिक विश्वास अथवा जादू टोने जैसी किसी प्रवृत्ति का भी

चित्रकला के सृजन में अवश्य योगदान रहा है इस समय मानव भिन्न भिन्न प्रकार की अनुभूति करता था।”



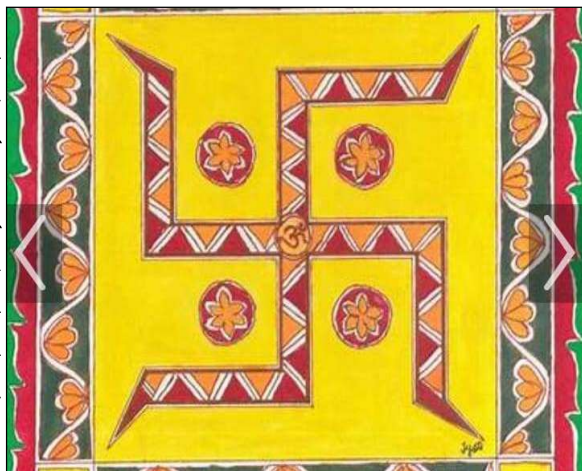
इस प्रकार के सर्वाधिक चित्र मध्यप्रदेश में भोपाल के निकट दक्षिण में भीमबेटका नामक स्थान पर सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र मिले हैं। यहाँ लगभग 500 गुफाओं में चित्र बने हैं कुल मिलाकर यहाँ लगभग 600 गुफाएँ हैं। इनमें लाल, पीले, सफेद रंगों के अतिरिक्त कहीं-कहीं हरे रंग का भी प्रयोग हुआ है। यहाँ के चित्रों में प्रायः हाथी, घोड़ा, गाय, बैल, आखेट, नृत्य आदि के चित्र चित्रित हैं। प्रो.सी.एल. झा, “लोक कला जीवन भावनाओं के साथ-साथ चली आ रही है, जो अति प्राचीन है।”



लोक कला का जन्म मानव सभ्यता के साथ ही हुआ है भारतीय लोक कला को स्त्रियों ने जीवित रखा है स्त्रियाँ ही लोक कला का प्रयोग व्रत, उपवास, उत्सव, धार्मिक, अनुष्ठानों पर अपने सम्पूर्ण कुटुम्ब की मंगल कामना हेतु अनेक माँगलिक कार्य करती हैं। इसके अलावा अन्य धार्मिक उत्सव, पर्वों पर लोक-कलाओं को निर्मित करने हेतु प्राचीन काल में प्राकृतिक व खनिज रंगों का प्रयोग किया जाता था। प्रागैतिहासिक काल में पशुओं के भय अपनी भूख मिटाने के कारण मानव के मस्तिष्क में सदैव पशुओं का ध्यान रहता था, इसी कारण प्रागैतिहासिक काल में इन चित्रों की अधिकता है प्रागैतिहासिक काल में इन चित्रों के साथ-साथ लोक कला के चित्रो व प्रतीक चिन्हों का भी चित्रण भी देखने को मिलता है जिसमें सूर्य, चक्र, स्वास्तिक, पीपल की पत्तियाँ, अष्टदल कमल, आयात, व्रत्त, आकृतियों आदि का अंकन प्राकृतिक रंगों द्वारा, गुफाओं की दीवारों, छतों, अनगढ़ पत्थर पर किया गया था। इन्हीं चित्रों की लोक कला से उच्चारित किया गया सिन्धु घाटी की सभ्यता में कई मोहरों पर अंकित शिव, पशुपति, लक्ष्मी की आकृतियाँ, मृदपात्रों पर अंकित लोक चित्र व कमल, हाथी, मीन, शंख, चक्र, स्वास्तिक और धार्मिक प्रतीक देखे जा सकते हैं।

धार्मिक— लोक कला छोटे नगरों व बड़े शहरी नगरों तथा अधिकतर गाँव के निर्धन कलाकारों द्वारा जन-जीवन, घरेलू सजावट, धार्मिक नृत्यों व उपाजन का साधन है। उसमें ग्रामीण वातावरण की सहज संवेदना, परम्परा, संस्कार एवं विश्वास की जीवित रखने की प्रवृत्ति धार्मिक होती है तथा शिशु के जन्म से लेकर मृत्यु संस्कार तक लोक-कला की भावना को देखा जा सकता है। भारतीय धर्म और परम्परा में स्वास्तिक का एक विशिष्ट स्थान है। सतिया स्वास्तिक का प्रतिरूप है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सतिया का प्रयोग किसी न किसी रूप में लोक जीवन में होता रहता है। सतिया को लोक कला में ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना जाता है इसका प्रयोग साक्षर, निरक्षर, आदिवासी, जनजाति, सभी समान रूप से करते हैं। यह कल्याण का प्रतीक है। सतिया का प्रयोग स्थान समय और सम्मान की उपलब्धता के अनुसार अलग-अलग तत्वों से बनाया जाता है जैसे हल्दी, रोली, चावल, खड़िया, आटा, और गोबर आदि से।

खाड़ी रेखा को ज्योतिर्लिंग का प्रतीक माना गया है। आर्य समाज के लोक इसकी चारों भुजाओं को चार वेद मानते हैं कहीं कहीं पर ये लकीरे कमल का प्रतीक मानी जाती हैं प्रत्येक माँगलिक अवसर पर उसका प्रयोग चाहे थापा हो, छापा हो, गोदना या फिर भित्ति चित्रण, सतिया का चिन्ह हो हर अवसर पर देखने को मिल जाता है।



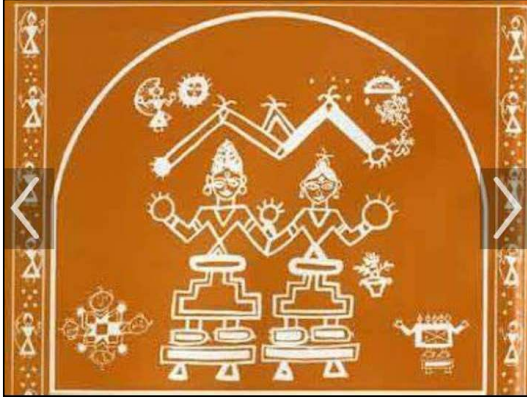
हमारी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण अहोई अष्टमी माता, चंडी देवी, करवा चौथ, छठ माता, देव उठावनी चित्र, नवरात्रों में साँझी माता के चित्रों की रचना सम्भव हो सकी। इन देवी-देवताओं के कला चित्रों के प्रति लोक समाज की इतनी अटूट श्रद्धा है कि अनेक विषम परिस्थितियों में पड़कर भी उनके समक्ष कभी सदाचरण से विचलित होने के अवसर नहीं आते। धार्मिक संस्कारों, रीति-रिवाजों, सामाजिक उत्सवों आदि के विशिष्ट अवसरों पर जो लोक चित्रण किया जाता है, उसमें सहयोग तथा सद्भावना प्रत्यक्ष अनुभव की जा सकती है। इस सन्दर्भ में विभिन्न स्थानों की कला को प्रसिद्धि मिली है जैसे राजस्थान, कुमाऊं, पश्चिमी बंगाल आदि। ये क्षेत्र लोक कला की खान माने जाते हैं। लोक कला के विकास में यहाँ के विभिन्न रीति-रिवाजों, के विभिन्न अंगों को महिला चित्रकारों ने मुख्य रूप से दर्शाया है इनमें मुख्यतः मांडना, गोदना, रोपण फड चित्र पट चित्र आदि रूपों को देखा जा सकता है।

भारत में अनेक त्यौहार मनाये जाते हैं जिनको विशिष्ट कलाकृतियों, गीतों एवं कथाओं से जोड़ दिया गया है ऐसे त्यौहारों में मुख्य रूप से अहोई अष्टमी, करवाचौथ, दीपावली, भैयादूज, दशहरा, रक्षाबन्धन, देवउठान साँझी, दुर्गा पूजा, नागपंचमी, रक्षाबन्धन, इत्यादि की गणना की जा सकती है।

सांस्कृतिक व सामाजिक- भारतीय लोक कला व भारतीय संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है जो उस समय की संस्कृति को कलाकार निष्ठापूर्वक लोककला के माध्यम से संजोए हुए है यही लोककला हमारे भारत देश की विशिष्ट पहचान है। कलाकार जिस अनुभूति को किसी माध्यम द्वारा रूप प्रदान करता है वह उसकी व्यक्तिगत अनुभूति होने के साथ-साथ उसके समय के समाज तथा परिस्थितियों से भी सम्बन्धित होती है जहाँ एक ओर इसमें बाल सुलभ सहजता है तो वहीं दूसरी ओर आदिम समाज की सामाजिकता है इसका सर्वांगीण विकास हमें घरेलू जीवन में ही मिल जाता है। लोककला मुख्य रूप से स्थानीय ही होती है। स्थानीय परम्पराओं की झलक लोक-कला में स्पष्ट दिखाई देती है। ये लोक कलाकृतियाँ लोक सापेक्ष होती हैं उसमें निहित भावनाएँ किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर समस्त समाज से सम्बन्धित होती हैं।

हमारी लोक कला व लोक-संस्कृति एक दूसरे से सम्बन्धित है। लोक कला संस्कृति को प्रभावित करती है या यह कहे कि लोक कलाएं ही संस्कृति को एक नया पथ देती हैं विकसित होने के लिए। प्रत्येक देश की लोक कलाएं वहाँ की संस्कृति का आईना होती हैं। जहाँ तक भारत की बात है भारत एक विशाल देश है और उसकी संस्कृति भी उतनी ही विशाल व अनोखी है। ग्रामीण अंचल हो या शहरी संस्कृति कण-कण में दिखाई देती है। यहाँ जन्म, विवाह, त्यौहार, और उत्सवों पर मंगल चिन्ह बनाना पुरानी परम्परा है। इन प्रतीकों द्वारा हम अपने भावों को मंगल कामना को प्रकट करते हैं। नागपंचमी हो, सावन, पूरन-मासी, होली, दिवाली, रक्षाबंधन, करवाचौथ, भैयादूज, देवउठान, नवरात्र प्रत्येक त्यौहार पर लोक-कलाओं का प्रदर्शन अपने मन उमंग को दर्शाने के लिए हम सब करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक क्षेत्र में अपनी खुशी को दर्शाने का एक नया तरीका व्यक्तिगत न होकर सामाजिक हो जाता है तो लोक कला का रूप धारण कर हमारी संस्कृति की पहचान बन जाती है।

भारत की विशाल जनसंख्या साक्षर न होते हुए भी संस्कारों से जुड़ी है और उसके रंग रंग में संस्कृति बसी है लोक कला संस्कृति के प्रभावी अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ आर्थिक जीवन का आधार भी होती हैं इन लोक कलाओं को आगे बढ़ाने का श्रेय ग्रामीण औरतों को ही जाता है जिसे अक्सर अनपढ़ व पिछड़ा बताकर अपेक्षा



की जाती है आज भी इस धरोहर को वह पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित कर रही हैं यह एक प्रकार से हमारे संस्कार थे जो एक से दूसरे को मिलते गए और लोक कला विकसित होती गई सामाजिक परिवर्तन के साथ साथ इस में परिवर्तन अवश्य हुआ किन्तु फिर भी एक दृढ़ रूप उसमें समाहित है जो आज भी हमारे देश की पहचान है। हमारे भारत जैसे विशाल देश में इतनी सारी लोक-संस्कृतियाँ हैं और उनमें इतनी विविधता है कि सभी को एक साथ समेटना इतना आसान नहीं है इसलिए अलग-अलग क्षेत्रों की लोककलाओं और संस्कृतियों की अपनी अलग पहचान है। विविधता होते हुए भी इन सभी में लोक संस्कृतियों में एकरूपता है।

अलंकारिकता— भारतीय लोक कला में अलंकरण का भी अत्यधिक महत्व है लोक चित्रकारों ने सौन्दर्यात्मक व अलंकरणात्मक भावना से प्रेरित होकर भी चित्रांकन किया है। मेहंदी अलंकरण लोक चित्रकला का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण है किन्तु लोक कला का विशेष रूप से अलंकरण के पास में है। सतिया, चक्र, पदम, मंगलप्रतीक, आदि अलंकरण के स्रोत हैं प्रकृति के नजदीक रहना मनुष्य का जन्मान्तरण स्वभाव रहा है यह स्वभाव उसे प्रागैतिहासिक काल से विरासत के रूप में मिला है तभी तो लोक कलाओं के चित्रों में फूल-पत्ती, पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों आदि की अधिकता है।

भारतीय लोक कला में सज्जा की भावना प्रागैतिहासिक शिलाचित्रों से ही दिखाई देती है, सिन्धु की सभ्यता से प्राप्त शवभाण्डों, दैनिक प्रयोग में आने वाले बर्तन तथा मूर्तियों पर अलंकारिक नमूने दिखाई देते हैं। सामान्य जनता त्यौहार एवं विवाह आदि के कार्यों में शुद्धता के साथ घर की दीवारों, आँगन, द्वार आदि के आकर्षक अलंकारिक आलेखनों को फूल, वृक्ष, लताओं, से सजाया जाता है। यह प्रसन्नता व उल्लास का प्रतीक माना जाता है।



अनुष्ठानिक लोक चित्रों का प्रारम्भ आदि चित्रों में जादू-टोने की भावना से बने हुए रूपों को देखा जा सकता है जैसे- बंगाल में नागपंचमी पर्व के लिए लोक कलाकारों द्वारा बहुत संख्या में नागराज के चित्र बनाए जाते हैं। केरल में भी सर्प पूजा का विशेष महत्व है। बहु प्रचलित अहोई अष्टमी के अवसर पर बनाए गए चित्र में पुत्र दीर्घायु की कामना का अनुष्ठान है। इसी प्रकार दुर्गा पूजा, सरस्वती पूजा, लक्ष्मीपूजन, गणेश चतुर्थी आदि पर्व पर लोक कलाकार एक से एक सुंदर दैनिक चित्रों व मूर्तियों को बनाते हैं। “सुंदरता का जीवन में अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। लोक कला भी इसलिए जीवन्त कला है, क्योंकि इसमें सुन्दरता का समावेश है।”

व्यक्तिवादी- व्यक्तिवादी लोककला वह कला है जिनसे व्यक्ति के व्यक्तिगत विचार प्रकट होते हैं अथवा यह भी कह सकते हैं कि इसके अन्तर्गत हम उन कृतियों को सम्मिलित करते हैं जिन्हें व्यक्ति अपनी आत्म-सन्तुष्टि के लिए बनाता है। आत्म-सन्तुष्टि के साथ-साथ उसमें अलंकरण की भावना भी निहित होती है। लोक कला वास्तव में जन सामान्य की सहज अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। मनुष्य अपने मन के भावों को लोक रूपों में व्यक्त करता है इन रचनाओं में व्यक्ति समाज के उन गुण रहस्य को इतने सरल ढंग से व्यक्त करता है कि जन सामान्य को उन लोक कृतियों से अपने आप को जोड़ने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता लोककला की यही सरलता, सहजता और व्यक्ति लौकिक रितियों का अनुसरण करते हुए लोक चित्रों का निर्माण करता है। लोक कला का यह एक महत्वपूर्ण गुण है कि वह व्यक्ति के समाज के पृथक् महत्व को स्वीकार नहीं करती। लोक कला में लोक रूपों से प्रभावित चित्रित चित्र कला कृतियाँ व्यक्तिवादी कला का ही स्वरूप है।



इस प्रकार लोक कला जीवन में सुख व आनन्द का संचार करती है। लोक कलाएं जीवन से निकली, जीवन से जुड़ी और जीवन पर्यंत चलने वाली ऐसी धरोहर है जो संस्कृति परिवर्तन के बाद भी पीढ़ी दर पीढ़ी चली आने वाली परिवर्तनशील आस्था है। इस प्रकार हमारी लोक कला समाज के प्रत्येक व्यक्ति, धर्म, व जाति से जुड़ी है, जो मानव के साथ उसके जन्म से लेकर मरने तक जुड़ी रहती है। लोक कला समाज को शक्ति एकता व शान्ति प्रदान करती है समाज में आपसी प्रेम रिश्ते को कायम रखती है लोक कला के

विविध आयाम सदा के लिए हमारी भारतीय संस्कृति को गौरवमयी बनाये रखने में एक विशेष महत्व रखते हैं जो हमेशा महत्वपूर्ण रहेगा।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. दा आर्डर एच. गैस्टर, स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फाल्क्लेर माईथोलोजी एंड लिगैन्ड
2. प्रदीप, डॉ. किरण, आकृति (2004) प्रथम संस्करण, कृष्ण प्रकाशन, मेरठ खण्ड (ग) लोक कला
3. अग्रवाल डॉ. गिराज किशोर, कला और कलाम, अशोक प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ 2009, पृष्ठ संख्या-21
4. धर्मयुग, 30 सितम्बर 1973 पृ. 9-10
5. शर्मा, डॉ. हरद्वारी लाल: कला मीमांसा के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृ. 52

भारतीय परम्पराओं में बसी विभिन्न प्रकार की लोक कलाएँ

• निशा गुप्ता

सारांश- प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को अब तक अक्षुण्ण रखने में भारतीय लोक कलाओं का विशेष महत्व रहा है। उससे प्रायः सभी सुपरिचित है। भारतीय संस्कृति में लोक कला का विशेष महत्व है। लोककला मानव मन की सरल, सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति स्वतन्त्र रूप से करता है। भारतीय संस्कृति में लोककला एक ऐसी कला है जो हमारे सामने किसी देश जाति-प्रजाति के विश्वासों, प्रतीकों, परम्पराओं आदि को प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से अगर लोक कला को देखे तो हमारे देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न लोक कलाएँ हैं और उन्हें राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रसिद्धि प्राप्त है। भारतीय संस्कृति का मानव जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध जोड़ती हुई लोककला निरन्तर सक्रिय रही है। भारतीय संस्कृति परिवेश में लोककला मानव के विकास, उसकी रुचि, अभिरूचियों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, स्वभाव, संस्कार आदि को परिलक्षित कर आगे बढ़ रही है।

मुख्य शब्द- लोक, माँडना, भारतीय संस्कृति, लोकाभिव्यक्ति, आडम्बरहीन

परिचय- हर क्षेत्र की लोक कला सांस्कृतिक परम्पराओं से ओतप्रोत रही है। सरलता व सादगी इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं लोक परम्परायें ही लोक कला का आधार हैं, क्योंकि ये ही मनुष्य के मन और बुद्धि में संस्कारों का रोपण करती हैं और जब मनुष्य इन सभी संस्कारों का अपने दैनिक जीवन में चित्रण करने लगता है तो परम्पराओं का यह चित्रण ही लोक कला कहलाती है। हमारी परम्पराओं और लोक रूचियों को जीवित रखने का कार्य भी लोक कलाओं ने किया है।

परम्परा से हमारा तात्पर्य उस धारणा से है जो एक बार समाज के द्वारा माने जाने के बाद लगातार अपनायी जाने वाली प्रक्रिया बन जाती है और संस्कृति के एक निश्चित अंग के रूप में दिखाई पड़ती है। सामाजिक अवधारणाओं में भारतीय परम्पराओं का जन्म मनुष्य अपने विभिन्न अनुभवों को स्थायी रूप देने के लिए करता है। परम्परा का विकास सामाजिक दर्शन और मूल्यों के सहारे होता है। लोक कला संस्कृति का एक अंग है और संस्कृति की अभिव्यक्ति एक निश्चित स्वरूप मानी गयी है। भारत की चौसठ कलाओं के अन्तर्गत ही लोक कला का स्थान है लोक कला इतनी पुरानी है जितनी की मानव

सभ्यता। लोक का अर्थ परम्परा से चली आ रही हस्तकला का वह आकार है जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक-दूसरे को हस्तान्तरित किया जाता रहा है।

डॉ. चिरंजीलाल झा, 'सृष्टि के प्रथम स्वर्णिम प्रभाव में जब मनुष्य ने श्रृंगार व उसके बनावट को देखा तो सौन्दर्य के प्रति उसकी भावना जागृत हुई और लोककला का जन्म हुआ उसमें धार्मिक पुट ने उसके अस्तित्व और आवश्यकता को द्विगुणित कर दिया, समाज के पारस्परिक सहयोग से लोककला का क्षेत्र विस्तृत हो गया।' लोककला का निर्माण लोको में प्रयोग के लिए होता है। एक ओर जहाँ लोककला को आत्मिक सुख व शान्ति के लिए जाना जाता है तो वहीं पर धार्मिक मान्यताओं के रूप में भी प्रचलित हुई।

मधुबनी (बिहार-मिथिला) लोक चित्र बिहार से सम्बन्धित है। बिहार के मिथिला की लोककला को मधुबनी चित्रकला के नाम से जाना जाता है। मधुबनी चित्रकला की ऐतिहासिक परम्परा को 1962 ई. के बाद से पुर्नजीवित किया गया है। मिथिला के सीतामढ़ी, दरभंगा, मधुबनी, सहरसा आदि स्थानों पर कला एवं संस्कृति का समृद्ध इतिहास दिखाई देता है। कुमाऊँ लोककला चित्रों की प्रमुख विद्या कहलाती है। कुमाऊँ में दीवारों पर लोक चित्रण की एक प्रचलित शैली वार बूंद है जिनका अभिप्राय रेखा एवं बिन्दु है।

कुमाऊँ लोक कला में वानस्पतिक रंगों का प्रयोग मिलता है परन्तु आज तक तैल रंग भी प्रयोग में लाया जाता है। पहले कुमाऊँ के कलाकार वानस्पति रंग नीले में चमक लाने के लिए दही का पानी मिलाते थे। कुमाऊँ की लोक भाषा में पीलें रंग को लड्डू रंग कहते हैं। ये कलाकार हरा रंग ढटेडा पेड़ की पत्तियों से बनाते, रतगली को पीसकर काला रंग बनाते, चावल को भिगोकर उसे पीसकर जो घोल तैयार किया जाता उसे विस्वर कहा जाता है। काले रंग को छोड़कर इन सभी रंगों को कच्चे दूध में घोला जाता है।

डॉ. चिरंजीलाल झा ने लोक कला के बारे में अत्यन्त ही सुन्दर शब्द कहे हैं, 'सृष्टि के प्रथम स्वर्णिम प्रभाव में जब मनुष्य ने श्रृंगार व उसके बनावट को देखा तो सौन्दर्य के प्रति उसकी भावना जागृत हुई और लोक कला का जन्म हुआ। उसमें धार्मिक पुट ने उसके अस्तित्व और आवश्यकता को द्विगुणित कर दिया। समाज के पारस्परिक सहयोग से लोककला का क्षेत्र विस्तृत हो गया, वहीं लोक संस्कृति बन गयी और संगठित समाज की धार्मिक, आध्यात्मिक, मनोरंजनात्मक, सौन्दर्य प्रसाधात्मक लोकाभिव्यक्ति साकार होने लगी। इसी लोकाभिव्यक्ति के अन्तर्गत भित्ति चित्र, माँड़ने, साँझी, गोदना, मेंहदी आदि है। इसी प्रकार के चित्रों में स्वयं तथा अपने वंश, जाति और देश के लिए शुभ-शकुन, वृद्धि व समृद्धि, मंगल कामना निहित है। इस प्रकार की कला कृतियाँ उस वृक्ष की एक-एक पत्तियाँ हैं, जिसकी जड़े पाताल में हैं। समस्त लोक जीवन इससे अनुप्राणित है।

यहाँ के भूमि चित्रों एवं दीवार चित्रों में 'साँझी' बहुत प्रचलित है। ब्रज और बुन्देलखण्ड क्षेत्र इसके प्रमुख केन्द्र माने जाते हैं। गोबर या गेरू से लिपी-पुती जमीन पर नवरात्रों के अवसर पर एक लड़की की आकृति बनाकर गोबर, मिट्टी, कौड़ी, रंग-बिरंगे फूल व सूखे रंगों से साँझी का रेखांकन व श्रृंगार किया जाता है। बुन्देलखण्ड में साँझी

स्थानीय कथा को लेकर बनायी जाती है, पितृ विसर्जन के हफ्तों पहले ग्रामीण महिलाएँ साँझी को विभिन्न आकार में गीली मिट्टी द्वारा बनाना प्रारम्भ कर देती है, जिसके लिए बालक एवं बालिकाएँ खेत या तालाब से मिट्टी लाते हैं, फिर उसे कूटकर गीला करके उसे साँझी के आकार बनाने लायक तैयार करते हैं तथा साँझी देवी के लोकगीत भी गाये जाते हैं। पूर्ण होने पर सितारों, शीशें आदि से सजाया जाता है। साँझी के अगल-बगल के अलंकरण के लिए एक तरफ सूरज, चाँद और चारों तरफ मोर डाल पर बैठे तोते एवं अन्य पक्षी, ढोल, कच्चाल तथा गाय, हाथी, साँझी का वाहन शेर आदि बनाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त ये गढ़वाल में 'अपना' एवं अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में 'आनी' है। तमिलनाडू में 'कोलम', आन्ध्रप्रदेश में 'मग्गू', हिमाचल प्रदेश में 'कौहरा', झारखण्ड में 'खोवर' नाम भले ही विभिन्न हो पर भावना एक ही है, लोक मंगल। भू अलंकरण पौराणिक कथाएँ, धार्मिक एवं लोक कथाएँ आदि विषय लेकर चित्रण होता है। इनमें ज्यामितिक आकारों का बाहुल्य होता है। भूमि सज्जा सम्पूर्ण भारत में स्त्रियों के द्वारा ही की जाती है। प्रत्येक माँगलिक अवसर पर चाहे धार्मिक उत्सवों, पूजनों या सामाजिक समारोह, चाहे वह जन्म का हो या विवाह का या सोलह संस्कारों में से किसी का हो, गृहणियाँ, कुंवारी कन्याएँ इनके द्वारा अपनी मंगल कामना प्रकट करती हैं। पुरुषों के द्वारा भू-अलंकरण केवल तांत्रिक विधानों में किया जाता है।

भूमि चित्र अत्यन्त पवित्र भावना है। इन चित्रों की पूजा नहीं होती पर इनमें भाव निहित है। यह हमारे राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। यह मूलतः एक प्रार्थना है। सुरक्षा, समृद्धि एवं दीर्घायु के लिए की गई ईश्वर से एक प्रार्थना है।

मुखौटा चेहरे का एक आच्छादन है जिसकी आड़ में मनुष्य वह बात करना चाहता है जो असल नहीं नकल है और मुखौटे पूरी क्षमता के साथ वह सत्य कह देते हैं। भारत में मुखौटों का संसार बेहद कल्पनाशील बहुआयामी, जादुई, धार्मिक और वैविध्यपूर्ण रहा है। मुखौटे धार्मिक और सामाजिक सम्बन्धों का प्रतीक भी है। विभिन्न नृत्यों एवं नाटकों में मुखौटे, मन्दिर में पूजा के मुखौटे, जादूगरों तथा आदिवासियों द्वारा प्रयुक्त विविध मुखौटे अपना अलग-अलग प्रभाव पैदा करते हैं।

अफ्रीका के आदिम मुखौटे विशाल आकार के होते हैं। पितरों के प्रतीक रूप में इनकी पूजा होती है। युद्ध, नृत्यों एवं मनोरंजन के कार्यक्रमों में भी मुखौटों का उपयोग होता है। इनमें कांगो के लकड़ी पर खरोदे गये मुखौटे आकर्षक होते हैं।

यूरोप में शव को मुखौटा लगाकर दफनाने का रिवाज रहा है। कम्बोडिया में शव को सोना, चाँदी, पीतल के मुखौटे पहनाकर दफनाने का प्रचलन है। जापान में भी शव को मुखौटा पहनाकर दफन करने की प्रथा थी। यूरोप के स्लाव जाति के मुखौटे बारहसिंग होते थे। उत्तरी पश्चिम क्षेत्र में वंश पोशाक 3-5 फिट तक लम्बे मुखौटे प्राप्त हुए हैं जो घर के खम्बो पर टंगे जाते हैं। मुखौटे का प्रयोग एशिया के देशों में धार्मिक कर्मकाण्डों व नाटकों, नृत्यों में होता है। भारत में कथककली, पक्षज्ञान, छारु नृत्य, रामलीला आदि में मुखौटों का प्रयोग होता है। मुखौटों में निहित मूल्य तथा उपयोग की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया ही उसके रूप तथा कार्य का निर्धारण करती है। भारत के विभिन्न भागों में मुखौटों का प्रयोग, नृत्य, उत्सव, नाटक के अवसरों पर धारण करने की परम्परा रही है।

भारत कला व संस्कृति की दृष्टि से एक धनी राष्ट्र है। यहाँ पर भिन्न-भिन्न जातियों के लोग निवास करते हैं जो वेशभूषा, रीति-रिवाज, संस्कृति आदि में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, उस जाति को हम वाल्मी के नाम से जानते हैं। वाल्मी शब्द 'वरल' शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है 'भूमि का टुकड़ा'। वाल्मी कला का जन्म 10वीं शताब्दी में हो चुका था, जब मनुष्य ने दीवार के घर बनाना सीख लिया था। वाल्मी कला अपनी सरलता एवं जीवन के प्रति उत्साह के कारण बहुत ही प्रसिद्ध हुई।

वाल्मी कला का माध्यम गेरूआ लाल रंग जो गेरू से प्राप्त होता है, चावल के घोल से बने सफेद रंग का ही बहुत प्रयोग किया जाता है। घरों की दीवार को पहले मिट्टी और गोबर के मिले घोल से पोतते हैं फिर उसके ऊपर गेरू रंग की धरातल बनाकर सफेद रंग से आकृतियाँ बनाते हैं। घरों की दीवारों के अभाव में बाँस के खम्भों को भी इसी शैली में सुन्दर ढंग से चित्रित किया जाता है। वाल्मी चित्रकला में मधुबनी या लघु चित्रों में निर्मित चित्रों जैसे विवरण या बारीकियाँ नहीं। आज वाल्मी कला छोटी-छोटी पेन्टिंग के रूप में कपड़ों और कागज पर आधुनिक कलाकारों के द्वारा निर्मित की जा रही है व कोका कोला प्रसिद्ध ब्राण्ड ने भी अपने प्रचार के लिए वाल्मी कला का प्रयोग किया है व आज बाजारों में सूट, चुन्नी, साड़ियों आदि पर भी वाल्मी कला देखने को मिलती है। वाल्मी के कलाकार-जिव्या सोमा म्हशे, सदाशिव व बालूम्हशे, हँसाबेन मेहता, सुमन संधालिया आदि।

बंगाल की लोक-कला में पट का विशेष स्थान है। साधारणतया पट का तात्पर्य चित्र से है। पट शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत और पालि के 'पट्ट' शब्द से हुई है। इस शब्द के दो अर्थ हैं - सुन्दर वस्त्र एवं वस्त्र के ऊपर अंकित कोई चित्र। पट चित्रित करने वाले शिल्पी पटुआ कहे जाते हैं जो निम्न जाति के अशिक्षित लोग होते हैं।

सर्वप्रथम पट चित्रों के अन्तर्गत देवी-देवताओं के चित्र बनते थे, इन चित्रों का प्रयोग पूजा के लिए किया जाता था। पट चित्र की शुरुआत धार्मिक रूप में हुई। बंगाल के पट सबसे पुराने उदाहरण हैं जो आज भी विद्यमान हैं। पट चित्रों की भाषा सरल, सीधी और आइम्बरहीन थी, रेखा पुष्ट थी, वस्तु का स्वरूप सार-संक्षिप्त तथा गत्यात्मक होता था। पटुआ कलाकारों का काम करने का तरीका बहुत ही स्वभाविक था। पटु वास्तव की हुबहु नकल नहीं करते थे। केवल उसका सार ही चित्रित करते थे। विषय-वस्तु की दृष्टि से पट को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. पौराणिक चित्र।
2. ऐतिहासिक चित्र।
3. कथा चित्र।
4. सामाजिक चित्र।
5. पशु-पक्षी।

लकड़ी की चौकी या भूमि पर गोबर और मिट्टी से लीपकर आटे और हल्दी से बनाया जाने वाला आलेखन (रंगोली) का चौक पूरना कहते हैं। चौक पूरना उत्तर-प्रदेश की प्रसिद्ध लोककला है। चौक शब्द आँगन के लिए प्रयुक्त होता है। अतः चौक पूरने का अर्थ आँगन की भूमि पर रंगों द्वारा चित्रण से है। इसे 'धूलि चित्र' भी कहते हैं, यह

अनुष्ठानिक कला का चित्रात्मक स्वरूप है। चौक पूरने की कला करवा चौथ, हवन, कथा, व्रत व शिशु के जन्म के छठे दिन व अन्य उत्सवों पर देखने को मिलती है। इनमें तूलिका के रूप सीक, हाथ की अंगुलियों एवं अंगूठो का प्रयोग होता है।

आकृति- स्वास्तिक, अष्टदल, कमल, नवग्रह, लहरिया आदि का चित्रण किया जाता है।

रंग- खड़िया, गेरू, कागज, हीरौजी, चावलों तथा दालों का घोल, गेहूँ का आटा, हल्दी आदि का प्रयोग किया जाता है।

राजस्थानी लोककला का सबसे अधिक विकसित और प्रचलित रूप है 'माँडना'। महाराष्ट्र की रंगोली तथा बंगाल के अल्पना से केवल कुछ ही भिन्न है। वैसे इनमें इस्तेमाल होने वाली सामग्री लगभग एक ही है।

माँडना की अलंकृत परिकल्पनाओं का प्रचलन यहाँ प्राचीन काल से ही रहा है। माँडना शब्द का अर्थ है- चित्रित करना या बनाना। वे सारी आकृतियाँ जो दीवार अथवा जमीन पर खड़ियाँ, गेरू, काजल और अन्य देशी रंगों से बनाई जाती हैं, माँडना कहलाती हैं। ये आकृतियाँ हाथों की अंगुलियों तथा कूची से बनाई जाती हैं। होली, दीपावली, दशहरा व अन्य त्यौहार पर जब समस्त घरों की लीपा-पोती और सजावट की जाती है तब यहाँ की महिलाएँ देहरी, आँगन, दीवार, आलों में माँडना की सुन्दर आकृतियाँ बनाती हैं।

घरों की सुन्दरता में चार चाँद लगाने वाले ये माँडने शुभ-शुगुन के प्रतीक माने जाते हैं। माँडना बनाने की कला यहाँ की लड़कियाँ अपने घर की बुजुर्ग व चतुर महिलाओं से विरासत में पाती हैं। विवाह व अन्य शुभ अवसरों पर यहाँ की चतुर सुहागनों द्वारा कलश व माँडने बनवाये जाते हैं और उन्हें नारियल व नगद दक्षिणा भी दी जाती है।

पूर्वी एवं पश्चिम बंगाल में 'कांथा' वहाँ के सभी समाज के धैर्य, सौन्दर्य, आशा प्रेम, उत्कण्ठा, कल्पना को प्रकट करता है। कांथा शब्द का अर्थ साड़ियों पर की गयी चित्रकारी से होता है। आवश्यकतानुसार लम्बाई तथा मोटाई हेतु बेकार साड़ियों की तहों की सिलाई करके उनके किनारों को अन्दर की ओर मोड़ा जाता है। इनके मध्य में सुन्दर कढ़ाई का कार्य सफेद धागों द्वारा होता है, किनारों को साड़ी के रंगीन धागों द्वारा ही सिला जाता है, उसके ऊपर विभिन्न आलेखनों को चित्रित किया जाता है। कांथाओं के टॉके इतनी कुशलतापूर्वक लगाये जाते हैं कि प्रत्येक कलाकृति अपने विशिष्ट रंग में कांथा के दोनो ओर दिखाई देती है। रंगीन धागों का प्रयोग किया जाता है। बंगाल में सात प्रकार के कांथा प्रचलित हैं।

उदयपुर के पास मोलेला ग्राम में लोक कला कलात्मक जीवन का रूप देवी-देवताओं की मूर्तियों तथा खिलौनों के माध्यम से दिखाई देता है। मोलेला ग्राम के शिल्पकारों ने शिव, श्री गणेश, हनुमान, भैरव, पार्वती आदि देवी-देवताओं की मूर्तियों का सृजन किया है। इन शिल्पकारों ने मूर्तियों का निर्माण चिकनी मिट्टी के लेंदे से किया है। इन मूर्तियों की माप 1 फीट, 2 फीट, 4 फीट होता है तथा 2 फीट की मूर्तियों का प्रचलन सबसे अधिक है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र गौरव, 2008, अर्चना प्रकाशन, मेरठ, पृ.सं. 143
2. शर्मा डॉ. लोकेश चन्द्र, 2006, भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, गोयल पब्लिकेशन हाउस, मेरठ दिल्ली, पृ.सं. 167-171
3. रानी, डॉ. अर्चना, 2009 'कला दिशा', आनन्द पब्लिकेशन, मेरठ, पृ.सं. 72-78
4. दुबे, डॉ. श्यामसुन्दर, लोक चित्रकला परम्परा एवं रचना दृष्टि, पृ.सं. 139
5. अग्रवाल डॉ. आर.ए. कला विलास, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ 2003, पृ.सं. 220
6. राय, नीहार रंजन, भारतीय कला के आयाम, कला और संस्कृति, पृ.सं. 165

दिव्यांग तथा संगीत का परस्पर संबंध

• निशा पाठक

सारांश- प्रस्तुत शोध पत्र में दिव्यांगों तथा संगीत के परस्पर संबंध पर दृष्टि डाली गई है। यदि देखा जाये तो दिव्यांग तथा संगीत का संबंध आज से नहीं बल्कि प्राचीन काल से चला आ रहा है, ऐसे कई उपलब्ध ग्रंथ एवं महाकाव्य हैं जिसमें दिव्यांगों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, यहाँ मात्र तीन दिव्यांगों का उदाहरण देकर हम अपनी तर्क की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं जैसे महाकवि सूरदास जी यह ऐसे महान ज्ञानी दिव्यांग पुरुष थे, जिन्होंने दिव्यांग होते हुए भी अनेक ग्रंथों की रचना की ऐसे ही वर्तमान में कई दिव्यांग कलाकार हुये हैं जैसे रविन्द्र जैन जी तथा सुधा चन्दन जी जिन्होंने अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है, ऐसे कई दिव्यांग कलाकार हैं जिन्होंने संगीत के माध्यम से अपना सशक्तिकरण किया है। संगीत वह कला है जो दिव्यांगों की रचनात्मक क्षमता को पकड़ने और उत्थान करने में सक्षम है तथा संगीत एक ऐसी कला है जो दिव्यांगों को पूर्णता प्रदान करती है प्रस्तुत शोध में उद्देश्य के रूप में दिव्यांगों के व्यक्तित्व निर्माण में संगीत के माध्यम से कितनी सहायता प्राप्त हो सकती है तथा संगीत को दिव्यांगों के रोजगार व मनोरंजन का किस प्रकार माध्यम बनाकर उनका सशक्तिकरण किया जा सकता है।

मुख्य शब्द- दिव्यांग सशक्तिकरण, जीविका, सशक्त, परिपोषण, रोजगार, प्रशिक्षित, आत्मविश्वास

परिचय- यदि संगीत के बारे में कहा जाये जो अनेक संगीतकारों ने संगीत की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। भातखण्डे जी के अनुसार, “वाद्य तथा नृत्य तीनों कलाओं का समावेश संगीत शब्द से होता है, वस्तुतः यह तीनों कलायें स्वतंत्र हैं किन्तु गीत प्रधान होने के कारण तीनों का समावेश संगीत में किया जाता है।” संगीत रत्नाकर के अनुसार संगीत की परिभाषा निम्नानुसार है, “संगीत एक अन्विति है जिसमें गीत वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश है, संगीत शब्द में व्यक्तिगत तथा समूहगत विधियों की अभिव्यंजना स्पष्ट होती है इसी कारण व्यक्तिगत गीत, बादन एवं नृत्य के साथ समूह गान समूह बादन तथा समूह नर्तन का समावेश इसके अन्तर्गत होता है”। यदि दिव्यांग के बारे में कहें तो समाज में कई प्रकार के लोग होते हैं जो किसी दुर्घटना के कारण या जन्मजात उनके अन्दर कोई क्षति रह जाती है, ऐसे व्यक्ति शारीरिक रूप में अक्षम या कमजोर होते हैं। ऐसे लोगों के लिये दुनिया में अनेक-अनेक शब्दों का प्रयोग होता था जैसे अपाहिज,

अपंग, विकलांग (Handicapped) जो शब्द एक प्रकार से हीनता का बोध कराने वाले अपमानजनक (Undignified) शब्द थे। अतः जब दिव्यांगों के प्रति जागृति आई तो इन शब्दों को शारीरिक व मानसिक रूप से चुनौतीपूर्ण (Physically or mentally challenged) कहा जाने लगा किन्तु अब इनके लिये काफी अधिक सम्मान पूर्व शब्द दिव्यांग प्रस्तुत किया जाने लगा है।

दरअसल 2014 की जनवरी माह की 22 तारीख को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी वाराणसी शहर गये थे, यहां उन्होंने शारीरिक रूप से असामान्य सामर्थ वाले लोगों के बीच उपयोगी उपकरणों का वितरण किया उसी सिलसिले में उन्होंने संबन्धित व्यक्तियों के लिये दिव्यांग शब्द का प्रयोग किया, इन अधिक सम्मान पूर्ण शब्दों के प्रयोग के साथ ही उन को दी जाने वाली सुविधाओं और विशेष अधिकारों में भी वृद्धि की जाती रही है तथा दिव्यांगों के लिये भारत सरकार की तरफ से अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं। जिसका दिव्यांग व्यक्ति को पूर्ण लाभ प्राप्त हो सके और सामान्य व्यक्तियों की भांति दिव्यांग व्यक्ति भी एक सम्मानित जीवन व्यतीत कर सकें। दिव्यांग व्यक्तियों के लिये भारत सरकार की तरफ से सरकारी नोकरियों में चार प्रतिशत आरक्षण शिखरों के माध्यम से दिव्यांगों को सहायता प्रदान की गई है तथा उन्हें सामान्य व्यक्तियों की तरह ही सम्मान दिया गया है।

भारत सरकार द्वारा दिव्यांगों के लिये चलाई जाने वाली योजनाएँ विकलांग पेंशन योजना

- विकलांग पेंशन योजना
- विकलांग बिजनेस लोन योजना
- दिशा प्रारम्भिक हस्तक्षेप और स्कूल चलो अभियान
- विकास: डे केयर
- समर्थ: राहत की देखभाल
- घरौंदा: वयस्कों के लिये सामूहिक
- निरमाया: स्वास्थ्य बीमा योजना
- सहयोगी: देखभाल के लिये प्रशिक्षण योजना
- ज्ञान प्रभा: शैक्षिक समर्थन
- प्रेरणा: विश्रण सहायता

अगर दृष्टिकोण डाला जाये तो दिव्यांगों तथा संगीत का संबन्ध आज से नहीं बल्कि दिव्यांगों का संबन्ध संगीत से आदि काल से वर्तमान काल तक हमारे उपलब्ध ग्रंथ एवं महाकाव्यों में दिव्यांगों की मुख्य भूमिका रही है। संगीत एक ऐसी कला है जिसे सामान्य तथा दिव्यांग सभी ग्रहण कर सकते हैं। अगर दृष्टि डाली जाये जो भगवान शंकर जी डमरू बजाते थे और उनके गड़ों में कुछ दिव्यांग भी थे किसी का एक हाथ नहीं किसी का पैर नहीं तो किसी की आँख नहीं जब भगवान डमरू बजाते थे तो सभी अदभुत नृत्य करते थे। यद्यपि महाकाव्य महाभारत पर दृष्टि डाली जाये तो उसमें ऐसे कई महान ज्ञानी दिव्यांग पुरुष हुये हैं। शुक्राचार्य जैसे महान शक्तिशाली गुरु धृतराष्ट्र तथा अष्टावक्र जैसे

महान आचार्य जो अत्यधिक ज्ञानी पुरुष थे, जिन्होंने दिव्यांग होते हुये भी अपने ज्ञान और बृद्धि का परिचय दिया तथा राजा जनक जैसे परम ज्ञानी तथा प्रतापी राजा को दिव्य ज्ञान दिया। यह दिव्यांगता उनसे जुड़ी हुई है, इसलिये इस शब्द को एक सम्मानजनक शब्द दिव्यांग दिया गया। दिव्यांग का अर्थ होता है देवताओं के सम्मान दिव्य अंग वाले जिसमें देवताओं के समान कोई विशेषता हो वह दिव्यांग है, ऐसे ही एक दिव्यांग पुरुष शुकुनी हुए हैं। अगर संगीत से परस्पर सम्बन्ध देखा जाये जो शुकुनी पैर से दिव्यांग थे। पैर से दिव्यांग व्यक्ति एक रिद्धि में चलता है तथा अपने गणतब्य स्थान तक पहुँच जाता है जो संगीत का एक प्रकार है। ऐसे ही एक महाकवि सूरदास जी हुए हैं जिन्होंने अनेक पद, रचनाओं तथा ग्रन्थों का निर्माण किया है, सूरदास जी एकमात्र ऐसे कवि थे जो जन्म से ही दिव्यांग थे, इसके बावजूद भी उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की वर्तमान में ऐसे बहुत से दिव्यांग संगीत कलाकर रहे हैं जिन्होंने समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाई है।

ऐसे ही एक दिव्यांग कलाकार का नाम लेते हुये हमें बड़े ही हर्ष की अनुभूति होती है, जिन्होंने अपनी आवाज का ऐसा जादू बिखेरा जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। रामानन्द सागर जी द्वारा रचित धारावाहिक रामायण में अपनी आवाज से सबको प्रभावित करने वाले कोई और नहीं एक दिव्यांग कलाकार रविन्द्र जैन जी थे, जिनका नाम आज समाज में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। ऐसी ही एक संगीत दिव्यांग कलाकार सुधा चन्दन जी हैं, जिन्हें 16 वर्ष की आयु में एक दुर्घटना के कारण अपने एक पैर को गंवाना पड़ा लेकिन उन्होंने उसके बाद भी हार नहीं मानी और कृत्रिम पैर की सहायता से नृत्य करना प्रारम्भ किया और अपने नृत्य से सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया उसके बाद भी उन्होंने हार नहीं मानी और अनेक फिल्मों तथा धारावाहिक में काम किया और अपने अभिनय से सबको आश्चर्यचकित कर दिया। यह कहना गलत नहीं होगा कि संगीत और दिव्यांग एक दूसरे से अनन्त काल से जुड़े हुये हैं, यहाँ महाभारत के पात्रों का उदाहरण देने का अभिप्राय यह है कि दिव्यांग होते हुए भी उनका सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा बौद्धिक स्तर बहुत ही उत्तम था, कहने का तात्पर्य है कि संगीत एक ऐसी कला है जिसे किसी भी दिव्यांग व्यक्ति के सशक्तिकरण का उचित माध्यम बनाया जा सकता है, अगर किसी भी दिव्यांग व्यक्ति को संगीत की उचित शिक्षा प्रदान की जाये जो वह व्यक्ति संगीत को अपनी जीविका का साधन बना कर अशक्त से इतना सशक्त बन सकता है कि वह अपने तथा अपने परिवार का पालन पोषण कर सके, संगीत को मात्र मनोरंजन का माध्यम माना जाता है, परन्तु ऐसा कहना कि संगीत मात्र मनोरंजन का माध्यम है सही नहीं होगा। संगीत वह कला है जिसके माध्यम से किसी भी व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से सशक्तिकरण किया जा सकता है। संगीत वह कला है जिसे पवित्रता एवं आस्था का स्थान प्राप्त है, संगीत एक ऐसी कला है जिसके माध्यम से हम किसी भी मानसिक रोगी का उपचार कर सकते हैं। अगर किसी दिव्यांग व्यक्ति को संगीत की उचित शिक्षा दी जाये जो सचमुच उस व्यक्ति का जीवन स्वर्ग के समान हो जाता है, जब कोई मनुष्य संगीत सीखता है तो वह संगीत समाज परिवार से जुड़ जाता है तथा संगीत एक ऐसा समाज है, जो हमारी

मानसिकता तथा हमारे अन्दर उत्पन्न नकारात्मक (negativity) विचारों को समाप्त कर सकता है, जब कोई व्यक्ति संगीत से जुड़ जाता है तो उसमें प्रेम आदर एवं भक्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है। दिव्यांग दो प्रकार के होते हैं मनोदिव्यांग और शारीरिक दिव्यांग, शारीरिक दिव्यांगों को संगीत की शिक्षा दी जा सकती है परन्तु मनोदिव्यांग को संगीत की शिक्षा देना थोड़ा चुनौतीपूर्ण है, (Challenging) शिक्षा पाना हर व्यक्ति का अधिकार है फिर सामान्य शिक्षा हो या संगीत शिक्षा व्यक्ति चाहें दिव्यांग हो या सामान्य सभी को समाज में बराबर का सम्मान मिलना चाहिए, कहा जाता है कि मिल्कत, धन दौलत, जमीन, जागीर यह सब में बंटबारा हो सकता है परन्तु खुद की बुद्धि, विवेक, ज्ञान, कौशल इन सब में बंटबारा नहीं किया जा सकता ऐसे कई दिव्यांग हुये जिन्होंने अपनी कुशलता से सामान्य व्याक्तियों को भी पीछे छोड़ दिया है और समाज में अपनी अलग पहचान बनाई है।

संगीत के क्षेत्र में जाने के इच्छुक दिव्यांग कलाकार के लिये रोजगार के कई अवसर हैं संगीत ऐसी कला है जिसको दिव्यांग अपने रोजगार का माध्यम बना सकते हैं। जैसे टेलिविजन, संगीत चैनल, स्टेशनों, आकाशवाणी, सांस्कृतिक और जनता के संबन्धों के सरकारी विभाग में एक संगीतज्ञ के रूप में संगीत अनुसंधान संगठनों, संगीत, कंपनियों, शैक्षिक संस्थानों कला केन्द्र आदि में रोजगार के अवसर पा सकते हैं और इसके अलावा घर पर निजि कक्षाएं चलाकर या संगीत स्कूल खोलकर तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेकर अपने रोजगार व मनोरंजन का माध्यम बना सकते हैं।

दिव्यांगों के सामाजिक विकास में भी संगीत की मुख्य भूमिका रही है सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तिकरण के लिये संगीत सबसे प्रभावी माध्यम रहा है। संगीत वह कला है जिसके माध्यम से कोई भी दिव्यांग अपना व्यक्तित्व विकास कर सकता है। अगर किसी भी दिव्यांग व्याक्ति को संगीत की उचित शिक्षा प्रदान की जाये जो वह व्यक्ति अपना तथा अपने परिवार का परिपोषण कर अपने को निर्बल से प्रतिबल बना सकता है अतः संगीत कला के पारंगत यह दिव्यांग इसे अपनी आय और रोजगार का श्रेष्ठ माध्यम बनाकर अपनी आर्थिक अधिकार (Economic empowerment) कर सकते हैं तथा उनकी आर्थिक अधिकारता जिससे उनका व्यक्तित्व निर्माण में काफी सहायता प्राप्त होती है, तथा यह कहना उचित होगा कि अगर उनकी आर्थिक अधिकारिता न बड़े है तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि उनकी सामाजिक अधिकारिता न बड़े यहाँ यह एक अन्य विशिष्ट तथ्य भी बहुत ध्यान देने योग्य है कि देश की कुल 2.1 प्रतिशत दिव्यांगों की सख्या में भी अधिकांश जनसंख्या 1.9 प्रतिशत शारीरिक रूप से दिव्यांगों की है जिसके लिये संगीत में निष्णात होना काफी आसान है बजाये अन्य किसी भी कौशल या विधा में संगीत कोई ऐसी विधा नहीं है जो दैविय रूप से प्राप्त होती है बल्कि यह एक ऐसी विधा है जिसमें कोई भी व्यक्ति निरन्तर कष्ट साध्य प्रयासों और परिश्रम से निष्णात होकर अपना सशक्तिकरण कर सकता है।

उद्देश्य

1. संगीत के माध्यम से दिव्यांगों के व्यक्तित्व निर्माण में सहायता प्राप्त करना।
2. संगीत को दिव्यांगों के मनोरंजनों का माध्यम बनाना।
3. संगीत से दिव्यांगों के सामाजिक जीवन को कैसे बेहतर बनाया जा सकता है।
4. संगीत के माध्यम से दिव्यांगों का किस प्रकार सशक्तिकरण किया जा सकता है।

निष्कर्ष- उपरोक्त विवरण से यह सहज रूप से स्पष्ट होता है कि संगीत एक ऐसी श्रेष्ठ कला है, जिसके माध्यम से कोई भी दिव्यांग अपना सशक्तिकरण करके अपने को उच्च अधिकारता संपन्न बना सकता है। संगीत कला एक ऐसी कला है जिसकी समाज में सर्वत्र तथा सर्व कालीन माँग रही है तथा संगीत में प्रशिक्षित होकर कोई भी दिव्यांग सार्वजनिक या निजी संगठित व असंगठित क्षेत्र में रोजगार प्राप्त कर सम्मान पूर्ण ढंग से जीवन व्यतीत कर सकता है संगीत में प्रशिक्षित होकर वह न केवल रोजगार की प्राप्ति कर सकता बल्कि इस प्रशिक्षण से वह अपने आत्मविश्वास में भी वृद्धि कर सकता है और अपने सामाजिक स्तर को भी बढ़ा सकता है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. भातखंडे, विष्णु नारायण: क्रमिक पुस्तक मालिका
2. संपादक, संत श्री ओम श्री रितेश भाई 'दिव्यांग सेतु' (2019) (मासिक पत्रिका) पृष्ठ संख्या 4-6
3. देव, शारंग: 'संगीत रत्नाकर' URL <http://www.scotbuzz.org/2020/07/sangeet.html>
4. Alex Lubet: Music, Disability and society (2011) Philadelphia, Temple University Press
5. George McKay: Shakin All Over: Popular Music and Disability(2013) Michigan University of Michigan

महाकवि कालिदास की कृतियों में संगीत

• निष्ठा शर्मा

सारांश- हमारे देश में जितने भी साहित्यकार या कवि हुए हैं, प्रायः सभी ने स्वर और लय के सान्निध्य में शब्द की चेतना शक्ति द्वारा भावाभिव्यक्ति की है। ऐसी भावाभिव्यक्ति कर भारत की सांस्कृतिक सभ्यता तथा उसका अनुमप एवं मनोरम चित्र उपस्थित करके अपना विशिष्ट स्थान बनाने वालों में विलक्षण प्रतिभा वाले महाकवि कालिदास विश्वविख्यात हैं। संस्कृत काव्य एवं नाटक के क्षेत्र में वे सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं।

मुख्य शब्द- उद्भावित, भावाभिव्यक्ति, निर्विवाद, परिलक्षित, परिवादिनी वीणा, मुरज, नाट्यशाला।

परिचय- भारतीय संगीत सरिता अनादि काल से इस धरा पर प्रवाहित हो रही है। संगीत की यह सूक्ष्म एवं अखण्ड धारा प्रकृति तथा चरा-चर जगत के प्रत्येक तत्व में समाहित है। अखिल विश्व को स्पंदित एवं आनन्दित करता हुआ हमारा संगीत सभ्यता के सभी चरणों में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। 'संगीत' के साथ ही 'साहित्य' ने भी सांस्कृतिक सभ्यता को समृद्ध एवं परिपूर्ण किया है। सृष्टि के आरम्भ से ही उद्भावित होने वाले संगीत के साथ भाषा का भी आपसी रिश्ता है। दोनों का ही ध्वनि स्रोत कंठ है। भारतीय संगीत परम्परा में वाद्य संगीत कंठ संगीत का अनुगामी माना गया है। भाषा के स्वरों की अपनी मात्रा होती है और संगीत का ताल सिद्धान्त मूल रूप से मात्रा के सिद्धान्त से प्रभावित है। इसलिए साहित्य के क्षेत्र में संगीत को विशिष्ट स्थान दिया गया है। हमारे देश में जितने भी साहित्यकार या कवि हुए हैं, प्रायः सभी ने स्वर और लय के सान्निध्य में शब्द की चेतना शक्ति द्वारा भावाभिव्यक्ति की है। ऐसी भावाभिव्यक्ति कर भारत की सांस्कृतिक सभ्यता तथा उसका अनुमप एवं मनोरम चित्र उपस्थित करके अपना विशिष्ट स्थान बनाने वालों में विलक्षण प्रतिभा वाले महाकवि कालिदास विश्वविख्यात हैं। संस्कृत काव्य एवं नाटक के क्षेत्र में वे सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं। विश्व की प्रायः सभी उन्नत भाषाओं में उनकी कृतियों का अनुवाद तथा व्यापक चर्चा हो चुकी है। रस, भाव, भाषा, विचार, छन्द, शिल्प, कल्पना आदि कला तत्वों को अपनी लेखनी से लिखकर सभी कीर्तिमान महाकवि ने स्थापित किए हैं।

• असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत गायन, महात्मा गाँधी बालिका विद्यालय(पी.जी) कॉलेज
फिरोजाबाद

महाकवि के जन्म समय एवं स्थान को लेकर व्यापक चर्चा हुई है तथा अनेक विद्वानों ने अपने कथन को सिद्ध किया है। इस सम्बन्ध में कालिदास के विशिष्ट अध्येता डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी का कथन है-‘संसार के प्रायः समस्त प्राचीन और अर्वाचीन देशी-विदेशी विद्वानों ने उनकी (महाकवि कालिदास) मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और उनको कवि कुलगुरु उपाधि से सम्मानित कर संस्कृत कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के इतने विवादों के बावजूद महाकवि की प्रतिभा और कृतित्व की श्रेष्ठता निर्विवाद है, सर्वमान्य है। वे चाहें जिस काल में रहे हों। चाहे जिससे प्रभावित हुए हों अथवा चाहे जितनों को प्रभावित किया हो परन्तु कालिदास अपने कृतित्व में, प्रतिभा में, अद्वितीय है, अनुपम और श्रेष्ठ है। तेरहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध आचार्य मल्लिनाथ ने कालिदास के ग्रन्थों की टीका करते हुए लिखा है कि कालिदास की वाणी का संसार स्वयं कालिदास, वाग्देवी सरस्वती अथवा चतुर्मुखी ब्रह्म, इन तीन ने समझा है-

कालिदास गिरासांर कालिदास सरस्वती

चतुर्मुखाऽथवा साक्षीद्विनान्येतुमादृशः।

इस उक्ति में मल्लिनाथ की विनम्रता के साथ ही कालिदास की अद्वितीयता की भी घोषणा है जो सर्वथा उचित है। महाकवि कालिदास अप्रतिम कवि हैं और उनके ग्रन्थों में उनका विविध शास्त्र विषयक पांडित्य परिलक्षित होता है। व्याकरण, दर्शन, आयुर्वेद, वनस्पतिशास्त्र तथा संगीत आदि सभी ललित कलाओं में कवि परम निष्णात थे। ‘गीत वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते’ संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन इन तीनों विधाओं में कालिदास का ज्ञान उनकी कृतियों में दृष्टिगत होता है।

रघुवंशम्- ‘रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण के अंक में वीणा सदैव विराजमान है तथा वे संगीत में अत्यन्त कुशल हैं-’

अंकमंकपरिवर्तनोचिते तस्य निन्तुरशून्यतामुभे।

वल्लकी च हृदयमसवना वल्लुवागपि च वामलोचना।।¹

राजा अग्निवर्ण पुष्कर वाद्य बजाने में निपुण है। नर्तकियों के साथ पुष्कर वाद्य के साथ संगति करते हैं। नर्तकियों द्वारा नृत्य-प्रयोग करते समय राजा आचार्यों के समक्ष अनेक करणों व लयों का ऐसा विलक्षण प्रयोग करते हैं कि नर्तकियों की अपनी लय और अभिनय में त्रुटियाँ होने लगती हैं, जिससे वे लज्जित होती हैं-

स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती

लोलमाल्यवल्लयो हरन्मनः।

नर्तकीरभिनयातिलंघिनी :

पाश्वर्वतिर्षुगुरुष्वलज्जयत्।।²

राजा अग्निवर्ण की अतःपुर की प्रमदायें संगीत शिल्प में कुशल कही गई हैं। शृंगार क्रीड़ा के कारण अंगों के क्षत-विक्षत होने पर भी वेणु तथा वीणा वादन अति कुशलता से करती हैं-

वेणुणा दशनपीडिताधरा वीषया

नखपदांकितोरवः।

शिल्पकार्य उभयेन वेजिता स्तं

विजिह्नयना व्यलोभयन।।³

मुनि शतकर्णि के जल-भवन में होने वाला संगीत मृदंग का घोष आकाशवाणी बताया है-

तस्यायमंतर्हित सौधभाजः

प्रसक्तसंगीत मृदंग घोषः।

वियदगतः पुष्पक चंदशालाः क्षणं

प्रतिश्रुन्मुखराः करोति।।⁴

इसी ग्रन्थ में महारानी के मृत शरीर की शिथिलता के भाव को व्यक्त करने हेतु महाकवि ने ऐसी तन्त्री वीणा का उल्लेख किया है, जिसके तार शिथिल अर्थात् विस्वर हैं तथा वीणा वादक उसे मिलाने के लिए अपनी गोद में रख लेता है, उसी प्रकार आज राजा इंदुमती की देह को गोद में उठाकर सहला रहे हैं। विदित है कि संगीत के ज्ञान से परिचित कवि ऐसी उपमा दे सकता है।

प्रतियोतिव्यवल्ल की सम वस्थामथ सत्वप्लिवात्।

स निनाय नितांतवत्सलः परिगृहाचितमंकमगनाम्।।⁵

अयोध्या की विलासिनी स्त्रियाँ जल-क्रीड़ा के समय जब गाती एवं बजाती थीं, तब जल में उनको हस्तक्रिया से मृदंग के प्रहार का स्मरण होता था। ऐसा प्रतीत होता था, मानो गीत का अनुसरण करने वाला वारि मृदंग कानों में रस घोल रहा हो-

श्रोत्रेषु सम्मूर्च्छति रक्तमांसा

गीतानुगं वारिमृदंगवाद्यम्।⁶

आठवें सर्ग में, नारद मुनि गोकर्णक्षेत्रस्थ शंकर के दर्शन के लिए जा रहे थे, उस समय उनकी वीणा से लगी हुई पुष्पमाला इंदुमती के वक्षस्थल पर गिर जाती है और उनकी मृत्यु हो गई, इसी प्रसंग में कवि लिखते हैं-

अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम्।

उपवीणायितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारदः।।

कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम्।

अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेवमारूतः।

भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः सृजती वाष्पमिवांजनावितम्।।⁷

महाकवि ने इस प्रसंग में उपवीणायितुं, आतोद्य, परिवादिनी, इन संगीत विषयक शब्दों का प्रयोग किया है। 'आतोद्य' का अर्थ वाद्य है। 'परिवादिनी' शब्द नारद की वीणा के लिए प्रयुक्त किया है। कहते हैं 'परिवादिनी' वीणा का उल्लेख सर्वप्रथम कालिदास ने ही किया है। तत्पश्चात् 'संगीत मकरंद' नामक ग्रन्थ में इसका नाम 'वीणा तु वल्लकी विपंची सा तु तंत्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी इत्यमरः।' उल्लेख किया है। कालिदास ने नारद की वीणा को परिवादिनी कहा है। ऋतुसंहार में दो स्थलों पर 'तंत्री' तथा 'वल्लकी' के काकलि गीत स्वर का प्रयोग उपलब्ध होता है-

सुतंत्रिगीतं मदनस्य दीपनं शुचौ

निशीथेऽनुभवति कामिनः।।⁸

स वल्लकीकाकलिगीतनिष्पैर्विबोध्यते

सुप्त इवाध मन्मथः॥⁹

मेघदूतम- इस ग्रन्थ में यक्ष मेघ से कहता है कि हे जलधर, तुम महाकाल के पास किसी भी समय पहुँच जाओ किन्तु सूर्य के आँखों से ओझल होने तक वहीं रहना, क्योंकि संध्या काल में महाकाल की आरती में तुम्हारा गम्भीर गर्जन पूजा का नगाड़ा बनकर बहुत प्रशंसा प्राप्त करेगा और तुम्हें इस सेवा से अखण्ड फल प्राप्त होगा-

अप्यन्यस्मिंजलधर! महाकालमासाद्य काले

स्थातत्यं ते नयनविषयं यावदर्थयेति भानुः।

कुर्वसंध्यावलिपटहतां शूनिलः श्लाघनीया

मामद्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्॥¹⁰

मेघ के गम्भीर गर्जन में पूजा के समय बजने वाले पटह की सम्भावना की गई है। पटह प्रायः शुभ अवसरों पर बजाया जाता है। 'पटह' को 'संगीत पारिजात' नामक ग्रन्थ में भेरी जाति का वाद्य बताया गया है तथा 'पटह' का अर्थ 'ढोलक' कहा गया है 'पटह ढोलक इति भाषायाम्'। 'मुरज' वाद्य का उल्लेख भी मेघदूत में अनेक स्थलों पर मिलता है-

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः, कीचिकाः पूर्यमाणः

संस्तुभिस्त्रिपुरविजयों गीयते किन्नरीमिः।

निहृदस्ते मुरज इव चेत्कंदरेषु ध्वनिः स्यात्।

संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी सेमग्रः॥¹¹

यक्ष की अलका नगरी के प्रासादों में संगीत की ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है, संगीत के सम्पादनार्थ मुरज (मृदंग विशेष) की स्निग्ध तथा गम्भीर ध्वनि सर्वत्र व्याप्त है-

सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद् वीणिभिर्मुक्तमार्गः¹²

पुष्कर वाद्य की धीर-गम्भीर ध्वनि के साथ यक्षगण अपनी प्रमदाओं को लेकर कामोद्दीपक मधुपान कर रहे हैं-

त्वदगंभीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वहतेषु।¹³

तन्त्री से कालिदास का अभिप्राय एकतन्त्री से ही है। भरत के काल में जिसे घोषक, घोषवती अथवा ब्राह्मी वीणा कहा जाता था, शारंगदेव के काल में उसे एकतन्त्री के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां

मद्रगोत्रांक विरचितपदं गेयमुद्गातुकाना

तन्त्रीभार्द्रा नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद

भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छना विस्मरंती॥¹⁴

कुमार सम्भव- महाकवि के ग्रन्थों में संगीत की चर्चाओं से स्पष्ट है कि उन्हें संगीत का ज्ञान था तन्त्री के स्वर में मिलाये जाने की प्रक्रिया से कवि पूर्णतया परिचित है। संगीत सम्बन्धी उपमांसे ही कवि पार्वती के मधुर स्वर का वर्णन करते हैं। मधुर स्वर में पार्वती के बोलने पर मधुर स्वर के लिए प्रसिद्ध कोकिल का स्वर श्रोता के लिए उतना ही श्रुति कटु होता था, जितना कि वितन्त्री का स्वर। संगीत से अपरिचित जन के लिए सुस्वर तथा बेसुर में भले ही कोई अन्तर न हो, किन्तु संगीतताभिज्ञ के लिए वितन्त्री का स्वर अरुचिकर होता है।

स्वरेण तस्याममृतसुतेव प्रज्ञल्पितायामभिजातिवाचि।

अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूल शब्दा श्रोतुर्वितंत्रीरिव ताड्यमाना॥¹⁵

जिस प्रकार 'मेघदूत' में मेघगर्जन की सम्भावना पटह (ढोलक, नगाड़ा) से की गई है, उसी प्रकार यहाँ भी कवि कहते हैं कि ओषधिप्रस्थ नगर के गृहों पर घिरे हुए मेघों के गर्जन से मिश्रित मृदंग-ध्वनि ताल और लय से पहचानी जाती थी। ताल और लय ही मेघ गर्जना तथा मृदंग-ध्वनि के भेदक तत्व थे-

शिखरासक्तमेधानां व्यज्येते यत्र वेश्यमान्।

अनुगर्जित संदिग्ध करणैर्मुर्जस्वना॥¹⁶

कार्तिकेय के जन्मोत्सव पर पटहों के बजाये जाने का उल्लेख करते हुए कवि लिखते हैं कि कार्तिकेय के जन्मोत्सव पर शिव के गणों द्वारा बजाये गये नगाड़ों की गम्भीर ध्वनि सभी दिशाओं में फैलती हुई धरती तक पहुँच गई-

दिक्षुप्रसर्पस्तदधीश्वराणां मथामराणामिव मध्यलोके।

महोत्सवं शंसितुमाहतोन्मैर्दध्वनि धीरः पटहः पटीयान्॥¹⁷

संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रसन्नता एवं शुभ अवसरों पर देवताओं द्वारा दुर्दम्भि-वादन के उल्लेख प्राप्त होते हैं। यहाँ भी कुमार कार्तिकेय के जन्मोत्सव पर सभी घरों में शंख की गम्भीर ध्वनि के साथ दुर्दम्भि वादन होता है तथा देवतागण विमान से आकर आकाश से पुष्प-वृष्टि करते हैं-

गम्भीरशंखध्वनिमिश्रमुच्चैर्गहोद्भवा दुंदभयः प्रणेदुः।

दिवौकसां व्योम्नि विमानसंधा विमुच्य पुष्पप्रचयान्प्रसस्युः॥¹⁸

चौदहवें सर्ग में भेरी की गम्भीर ध्वनि का उल्लेख इस प्रकार है-

गम्भीरभेरीध्वनितैर्यंकरैर्महागुहांतप्रतिनादमेदुरैः।¹⁹

'मेघदूत' में भी कवि वीणा-वादक के लिए प्रवीण शब्द का प्रयोग करते हैं, यहाँ भी लिखते हैं।

विश्वासंसुप्राहग्रहरैः प्रवीणैः संगयिमानत्रिपुरावदानः।²⁰

विश्वासु इन्द्रसभा के संगीतज्ञ थे तथा गंधर्वों के प्रमुख थे तथा उनकी वीणा का नाम 'वृहती' था। अतः कवि ने विश्वासु का नाम लिया क्योंकि प्रवीण का अर्थ कवि वीणा वादन गान से लेते हैं।

मालविकाग्निमित्र- नृत्य के सन्दर्भ में भी कालिदास ने अनेक प्रसंगों को वर्णित किया है। 'मालविकाग्निमित्र' के चतुर्थ अंक में कवि लिखते हैं- 'जब समुद्र गृह में मालविका के समक्ष राजा प्रणय निवेदन करता है, उसके कथन 'हस्तं कम्पयते रूपाद्धि' आदि के उपरान्त उसकी प्रणय-केलि केवल नृत्य के माध्यम से ही प्रदर्शित की जा सकती है। प्रथम अंक में कवि लिखते हैं कि मृदंग की मायूरी मार्जना से लोगों को ज्ञात हो जाता है कि मालविका का नृत्य प्रारम्भ होने वाला है-

जमितूस्तनितविशंकिभिर्यमूरैरुद्ग्रीवैरनुरसितस्य।

निहादिन्युपहितमध्यमस्त्रीत्था मायूरी मदयति मार्जना मंनसि।²¹

विशुद्ध नृत्य की योजना कवि द्वितीय अंक में 'छलियांणामण्टटअम्' के रूप में की है। यहाँ नायिका नाट्यशाला में राजा के समक्ष चतुष्पद गीत गाती है। इस प्राकृत गीत

के अन्त में रंग निर्देश 'ततोयथारसमभिनयति' दिया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि 'छलिक' एक नृत्य प्रकार ही है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में सूत्रधार का मन मनोहर संगीत से वशीभूत हो जाता है और वो कहता है-

आर्ये, साधु गीतम्।

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं छतः।

एष राजेव दुष्यन्तः सारगडे.णातिरंहसा।।²²

हंसपदिका के गीत को सुनकर दुष्यन्त उसकी प्रशंसा करते हैं-

अहो रागपरिवाहिणी गीतिः²³

इस प्रकार महाकवि दुष्यन्त के संगीत के ज्ञान के भी दर्शन कराते हैं। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में कवि ने चमत्कारपूर्ण योजना सानुमती अप्सरा के 'उद्भ्रान्तक नृत' के रूप में षष्ठ अंक में दर्शाया है। इस प्रकार महाकवि कादिलास की कृतियों में संगीत सम्बन्धी उल्लेख से स्पष्ट है कि कवि संगीत की तीनों विधाओं में परम निष्णात थे। कवि की प्रत्येक रचना संगीत कला कौशल तथा शास्त्रीय एवं क्रियापरक अनेक विधि उल्लेखों से युक्त है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. कालीदास, रघुवंश, एकोनविंशः सर्गः/13
2. कालीदास, रघुवंश, एकोनविंशः सर्गः/14
3. कालीदास, रघुवंश, एकोनविंशः सर्गः/35
4. कालीदास, रघुवंश, त्रयोदशः सर्गः/40
5. कालीदास, रघुवंश, अष्टमः सर्गः/41
6. कालीदास, रघुवंश, षोडशः सर्गः/64
7. कालीदास, रघुवंश, अष्टमः सर्गः/33-35
8. कालीदास, ऋतुसंहार, 1/3 अनुवाद-रांगेय राघव पृष्ठ-3
9. कालीदास, ऋतुसंहार, 1/7 अनुवाद-रांगेय राघव पृष्ठ-7
10. कालीदास कृत मेघदूतम् अनुवाद-राय देवी-प्रसाद पूर्ण, धारा धर धावन, सम्पादक-नरेश चन्द्र चतुर्वेदी पूर्व मेघ-35, पृष्ठ-24
11. कालीदास कृत मेघदूतम् अनुवाद-राय देवी-प्रसाद पूर्ण, धारा धर धावन, सम्पादक-नरेश चन्द्र चतुर्वेदी पूर्व मेघ-57, पृष्ठ-40
12. कालीदास कृत मेघदूतम् अनुवाद-राय देवी-प्रसाद पूर्ण, धारा धर धावन, सम्पादक-नरेश चन्द्र चतुर्वेदी पूर्व मेघ-46, पृष्ठ-32
13. महाकवि कालीदास प्रणीतम् मेघदूतम्, सम्पादकः त्रिपाठी डॉ. बाबूराम, उत्तरमेघ-5, पृष्ठ-8
14. महाकवि कालीदास प्रणीतम् मेघदूतम्, सम्पादकः त्रिपाठी डॉ. बाबूराम, उत्तरमेघ 26, पृष्ठ-45
15. कालीदास, कुमार संभव, 1/45
16. कालीदास, कुमार संभव, 6/40
17. कालीदास, कुमार संभव, 11/33
18. कालीदास, कुमार संभव, 11/38

19. कालीदास, कुमार संभव, 14/27
20. कालीदास, कुमार संभव, 7/48
21. कालीदास, मालविकाग्निमित्र, 1/21
22. कालीदास, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, प्राक्कथन लेखक-डॉ. त्रिपाठी बाबूराम, प्रथम अंक, पृष्ठ-15
23. कालीदास, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, प्राक्कथन लेखक-डॉ. त्रिपाठी बाबूराम, पंचम अंक, पृष्ठ-42

संगीत में विद्युतीय उपकरणों की भूमिका

• खुशबू

सारांश- ललित कलाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने वाली संगीत कला मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। वैदिक काल से ही मनुष्य ने संगीत को गुरु शिष्य परम्परा के अन्तर्गत आत्मसात करते हुए अगली पीढ़ी में हस्तान्तरित किया है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों ने पहले की अपेक्षा आज के विद्यार्थी को अधिक प्रगतिशील बना दिया है। वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग ने संगीत सम्बन्धी प्रस्तुतियों को अल्प समय में अत्यन्त सुविधाजनक रूप से उपलब्ध कराकर संगीत विद्यार्थियों, कलाकारों तथा संगीत प्रेमियों के लिए असीमित सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये हैं। इस सदी की नई पीढ़ी वैज्ञानिक प्रगति के साथ कदम से कदम मिला कर संगीत को नई दिशा की ओर ले जा रही है।

मुख्य शब्द- उपकरण, ललित कला, संगीत, वैज्ञानिक प्रगति

परिचय- गुरुमुखी विद्या के रूप में प्रचलित इस संगीत कला ने समय परिवर्तन के साथ स्वयं को सुरक्षित व संवर्धित करते हुए वर्तमान में भी अपने अस्तित्व को संजोकर रखा है। हमारी संस्कृति को प्रदर्शित करने वाली यह कला आधुनिकता से अछूती नहीं है। वैज्ञानिकता को स्वयं में आत्मसात करते हुए यह कला अविरल रूप से अपने गन्तव्य की ओर प्रवाहित हो रही है। 20 वीं शताब्दी में वैज्ञानिक प्रगति के साथ शास्त्रीय संगीत ने भी उन्नति की। वैज्ञानिक प्रगति एवं संचार क्रान्ति के इस युग में तकनीक के अत्याधुनिक साधनों जैसे ऑडियो, विडियो माध्यम ग्रामोफोन, टेपरिकॉर्डर सी.डी. प्लेयर, आईपॉड इत्यादि, संचार के आधुनिक उपकरणों जैसे रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर व मोबाइल पर इन्टरनेट के द्वारा संगीत शिक्षण में क्रान्तिकारी परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं।¹

विषय प्रवेश- संगीत एक कलात्मक विषय है और इसका आदान-प्रदान सदियों से चलता चला आ रहा है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक संगीत का विस्तार होता रहा। मध्यकाल में संगीत विद्या कुछ दरबारों व रियासतों में सिमट कर रह गयी थी। परन्तु 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में दो महानायकों पं. विष्णु नारायण भातखण्डे व पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत को दरबारों व रियासतों से बाहर निकाला तथा विभिन्न विद्यालयों व संगीत सम्मेलनों द्वारा इसे जनसामान्य के बीच लाकर सर्वसुलभ बना दिया।

चूँकि यह समय परिवर्तन का समय था जिसके फलस्वरूप विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों ने भी संगीत जगत में क्रांति का संचार किया। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध से ही संगीत के क्षेत्र में विद्युतीय माध्यमों के आगमन से संगीत के प्रचार प्रसार में तेजी आई। फलस्वरूप इन्हीं वैज्ञानिक अथवा विद्युतीय उपकरणों के माध्यम से आज हम न सिर्फ घर बैठे बैठे ही कलाकारों के गायन व वादन का आनन्द उठा सकते हैं बल्कि दुनिया के किसी भी कोने में रहकर संगीत सीख सकते हैं। अतः इन इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने संगीत को संरक्षित रखने, जनसामान्य में रुचि उत्पन्न करने तथा संगीत के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

विद्युतीय उपकरण—आज के वैज्ञानिक युग में इलेक्ट्रॉनिक टेक्नॉलाजी की अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक ध्वनि तथा छाया उपकरणों ने संगीत की अपार सहायता की है। अब तो गायन वादन की सभाओं में अपनी कला प्रस्तुत करने वाले कलाकारों की ध्वनि एवं उसकी प्रत्यक्ष प्रस्तुति हम सुन एवं देख सकते हैं।¹

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार में सहायक इलेक्ट्रॉनिक एवं संचार माध्यमों को उनके गुणों के आधार पर 2 वर्गों में बांटा जा सकता है। पहला श्रव्य और दूसरा दृश्य श्रव्य। श्रव्य का अर्थ है, ऐसे माध्यम जिनसे प्रसारित ध्वनि को हम अपने कानों द्वारा सुन सकते हैं, जैसे रेडियो, ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स, टेप रिकार्डर, सी.डी. आदि और जिन माध्यमों से प्रसारित सामग्री को सुनने के साथ साथ हम अपनी आँखों से देख भी सकें वे सभी दृश्य श्रव्य माध्यम कहलाते हैं।

1. ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स— शास्त्रीय संगीत के आदान प्रदान में ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स का स्थान सर्वोपरी है। इसके माध्यम से शास्त्रीय संगीत महलों व राज दरबारों से निकल कर जनमानस तक पहुँचा। ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स ने सभी दिग्गज कलाकारों की कला को न केवल जन साधारण तक पहुँचाया बल्कि सदियों तक सुरक्षित भी रखा। जिससे कई पीढ़ियाँ हमारे देश के प्रसिद्ध कलाकारों की कला का आनन्द उठा सकते हैं और उनसे कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकें। ध्वनि अंकन एवं पुनः श्रवण की परिकल्पना वैज्ञानिकों में बहुत दिनों से थी। परन्तु सर्व प्रथम अमेरिका के वैज्ञानिक थॉमस एडिसन ने सन् 1877 में वह पहली मशीन बनाई जो ध्वनि को रिकार्ड कर एवं पुनः प्रसारित करने में समर्थ हुई।³

2. टेपरिकॉर्ड्स एवं सी.डी. प्लेयर— ग्रामोफोन की तरह कैसिट्स और सी.डी. भी शास्त्रीय संगीत को प्रचारित करने और सुरक्षित रखने का शसक्त माध्यम है। अन्तर यह है कि ग्रामोफोन में डिस्क की सतह पर सुई जैसी तेज धार वाली वस्तु से रेखायें बन जाती हैं और ध्वनि अंकित हो जाती है। जबकि टेप रिकार्डर में फीते की सतह पर चुम्बकीय परिवर्तनों से ध्वनि अंकित की जाती है।

टेप रिकार्डर के द्वारा किसी विशेष घराने व परम्परा के गायक या वादक के रिकार्ड से तुलनात्मक अध्ययन काफी सरल हो गया है। इस प्रकार शास्त्रीय संगीत के संकलन या ध्वनि लाइब्रेरी बनाने में इन रिकार्ड्स की उपयोगिता महत्वपूर्ण है। आधुनिक समय में कैसेट्स की अपेक्षा सी.डी. बहुत उन्नत तकनीक है। जिससे संगीत को अधिक बारीकी से सुना जा सकता है और अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

3. रेडियो- भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में रेडियों की भूमिका अपरिहार्य रही है। आकाशवाणी को ही अंग्रेजी में ऑल इण्डिया रेडियों कहा जाता है। जिसे हम आम भाषा में रेडियो कहते हैं। बिना केवल या तार की सहायता से ध्वनि को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने वाले रेडियों की कहानी 19 वीं सदी में स्कॉटलैंड के वैज्ञानिक जेम्स क्लार्क मैक्सवेल ने शुरू की। परन्तु इसको आधुनिक रूप देने का श्रेय इटली के वैज्ञानिक गुलैलियो मारकोनी को जाता है। हमारे देश में आकाशवाणी द्वारा प्रसारण का कार्यक्रम सर्वप्रथम कलकत्ता में सन् 1893 में हुआ और आज देश में लगभग 150 से भी अधिक इसके प्रसारण केन्द्र हैं।

भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार, शिक्षा और मनोरंजन में रेडियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके माध्यम से हम घर बैठे, संगीत शिक्षा के कार्यक्रम से देश के श्रेष्ठ कलाकारों द्वारा संगीत की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक शनिवार को आकाशवाणी से संगीत का अखिल भारतीय कार्यक्रम प्रसारित होता है। डेढ़ घंटे के इस कार्यक्रम में हम देश के बड़े से बड़े कलाकार को सुन लेते हैं।⁴

4. पेन ड्राइव- पेन ड्राइव कम्प्यूटर में उपयोग की जाने वाली एक इन्टरनल डिवाइस है जिसकी सहायता से हम कम्प्यूटर के फाइल व डाटा का बैकअप बना सकते हैं। आकार में बहुत छोटा और वजन में बहुत हल्का यह उपकरण संगीत सम्बंधी ऑडियो, विडियो आदि डाटा को सुरक्षित रखने व आदान प्रदान में सहायक है। इसका आविष्कार आई.बी.एम. कम्पनी द्वारा 1998 में किया गया था।

5. टेलीविजन- टेलीविजन जिसे संक्षेप में टी.वी. कहते हैं, शास्त्रीय संगीत को प्रचारित और प्रोत्साहित करने वाले माध्यमों में सबसे अधिक प्रभावी है क्योंकि इसके कार्यक्रमों को केवल सुना ही नहीं बल्कि देखा भी जा सकता है। टेलीविजन ग्रीक भाषा के शब्द टेली और लैटिन भाषा के विजियों के संयोग से बना है। जिसका संयुक्त अर्थ है दूर से देखना। इसका आविष्कार अमेरिका के वैज्ञानिक आई.एन.बेयर्ड. ने सन् 1994 में किया था। दूरदर्शन और संगीत का घनिष्ठ सम्बंध है। इसमें हम गायन ही नहीं सुनते बल्कि कलाकार की मुख-मुद्रा, हाव-भाव, पहिनावा, ओढ़ावा आदि सभी कुछ देख सकते हैं।⁵

भारत में सर्वप्रथम 1959 में टेलीविजन की नींव रखी गयी थी। इस प्रसारण सेवा का नाम दूरदर्शन रखा गया। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में टेलीविजन ने क्रान्ति ला दी। संगीत का अखिल भारतीय कार्यक्रम, संगीत पाठ सुप्रभात सुर शान्ति, भक्ति संगीत राग-रिदम इत्यादि कार्यक्रमों ने शास्त्रीय संगीत को देश के कोने-कोने तक पहुँचाया। भारतीय कला और संस्कृति को समर्पित चैनल डी. डी. भारती ने जनसाधारण में शास्त्रीय संगीत के प्रति रुचि और उत्साह उत्पन्न करने में अहम भूमिका निभाई है। दूरदर्शन के रियल्टी शो इतने लोकप्रिय हुए हैं कि इनका अनुमान लगाना कठिन है।

6. कम्प्यूटर- कम्प्यूटर विज्ञान की अनेक नई-नई उपलब्धियों में विशेष स्थान रखता है। आधुनिक समय में कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी की सहायता से इन्टरनेट पर हम सभी प्रकार की संगीत सम्बंधी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इन्टरनेट ने शास्त्रीय संगीत के प्रचार व प्रसार में सभी माध्यमों को पीछे छोड़ दिया है। हमारे देश की कला और संस्कृति को विश्वव्यापी बना दिया है। आज कम्प्यूटर पर इन्टरनेट के माध्यम से

हम किसी भी कलाकार को विश्व के किसी कोने में रहकर प्रत्यक्ष देख और सुन सकते हैं। लाखों लोग संगीत सुन और सीख सकते हैं। विश्व में हमारे देश के संगीत को प्रसारित करने और रुचि उत्पन्न करने में इंटरनेट की भूमिका अपरिहार्य है। इंटरनेट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से संगीत कला अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय हुई है। संगीत से सम्बंधित प्रमुख जानकारीयों जैसे- वीडियो, ऑडियो कलाकार से सम्पर्क, सीडी सूची इत्यादि सब इंटरनेट पर मौजूद है।

7. मोबाइल- मोबाइल का आविष्कार मार्टिन कूपर ने सन् 1973 में किया था। जिसका वजन 2 कि.ग्रा. था, यह एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस है जो बहुकार्यन प्रणाली के आधार पर कार्य करता है। इसमें विभिन्न प्रकार की ऐप्स जैसे- व्हाटसेप, यू-ट्यूब, इन्स्टाग्राम, फेसबुक, गूगल इत्यादि के द्वारा बड़ी ही आसानी से संगीत का आदान-प्रदान किया जा सकता है। इसके साथ ही मोबाइल में ट्यूनर ऐप को डाउनलोड करके वाद्यों को मिलाया जा सकता है तथा नगमा, साथ संगत और ताल माला ऐप्स के माध्यम से संगीत में अभ्यास व प्रदर्शन भी किया जा रहा है। वर्तमान समय में ये किफायती और सुविधाजनक होने के कारण संगीत विद्यार्थियों व कलाकारों के बीच अधिक प्रचलित व लोकप्रिय है।

वर्तमान समय में संगीत के प्रचार - प्रसार में जो भूमिका वैज्ञानिक उपकरणों ने निभाई है, वह अभूतपूर्व है। वैज्ञानिक युग के माध्यम से संगीत सुनना बहुत हद तक सुभल हो गया है। एक समय था जब शास्त्रीय संगीत का क्षेत्र बहुत ही सीमित था। घरानेदार लोग अपनी कला का प्रदर्शन बहुत ही कम लोगों के समक्ष करते थे जिस कारण कुछ लोग ही उनकी कला का रसास्वादन कर पाते थे।

विद्युतीय संगीत वाद्य यन्त्र- विद्युतीय संगीत वाद्य यन्त्र इलेक्ट्रॉनिक सर्किट का उपयोग करके ध्वनि उत्पन्न करते हैं। सभी इलेक्ट्रॉनिक संगीत वाद्ययन्त्रों को आडियो सिग्नल प्रोसेसिंग अनुप्रयोग के सबसेट के रूप में देखा जा सकता है। 21 वीं सदी में इलेक्ट्रॉनिक संगीत वाद्ययन्त्र अब संगीत की अधिकांश शैलियों में व्यापक रूप से उपयोग किये जाते हैं। संगीत शास्त्र में इन सभी वाद्ययन्त्रों को इलेक्ट्रोफोन के रूप में भी जाना जाता है और वाद्य वर्गीकरण में चार श्रेणियों के बाद इस प्रकार के वाद्यों को पाँचवीं श्रेणी में रखा जा सकता है। जिन्हें संगीत विद आमतौर पर इलेक्ट्रोफोन के रूप में वर्गीकृत करते हैं।

1. इलेक्ट्रॉनिक स्वर पेटी- बिजली की सहायता से बनने वाला यह वाद्य आकार में बहुत छोटा होता है। इस वाद्य का प्रयोग कलाकार संगत वाद्य के रूप में करते हैं और आवागमन से सुविधाजनक होने के कारण यह वाद्य अत्यन्त लोकप्रिय भी रहा है।

2. इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा - यह इलेक्ट्रॉनिक उपकरण भारतीय तंत वाद्य तानपुरा या तम्बूरा की ध्वनि को दोहराते हुए बजता है। इसे इलेक्ट्रॉनिक तम्बूरा, इलेक्ट्रॉनिक श्रुति बॉक्स या केवल श्रुति बाक्स भी कहते हैं। यह वाद्य वर्तमान में कलाकारों के बीच बहुत प्रचलित व लोकप्रिय है। इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा का आविष्कार पहली बार 1979 में श्री जी राज नारायण द्वारा किया गया था।⁶ इसमें स्वरों को अपनी इच्छानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

3. इलेक्ट्रॉनिक ताल माला- इस इलेक्ट्रॉनिक वाद्य का प्रयोग संगत वाद्य के रूप में किया जाता है। इसमें निहित तालों को अपनी आवश्यकता के अनुसार विलम्बित, मध्य और द्रुत लय में स्थापित करके कलाकार अभ्यास और कहीं कहीं अपने कार्यक्रम में प्रयुक्त भी करते हैं।

4. मेट्रोनोम- टिक-टिक की ध्वनि करने वाला इस छोटे से वाद्य का प्रयोग शास्त्रीय संगीत में लय को पक्का करने के लिए किया जाता है। इसमें लय की आवश्यकता कम या ज्यादा किया जा सकता है। प्रतिदिन अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों के लिए यह बहुत उपयोगी वाद्य है। इसका प्रयोग अधिकतर अवनद्ध वाद्यों के कलाकार अधिक करते हैं।

5. इलेक्ट्रॉनिक तबला- इलेक्ट्रॉनिक तबला बोलचाल में तबले की तरह बजने वाला एक विद्युतीय उपकरण है। इसमें दाहिने और बांये तबले की तरह दो मुँह हैं और दोनों का तबले की तरह ही वादन होता है। इसे तबला टच प्रो के नाम से भी जाना जाता है। इसका आविष्कार लंदन के कुलजीत भामरा द्वारा किया गया है। इसमें पिच कंट्रोलर के माध्यम से इसको किसी भी स्केल में सिर्फ एक बटन दबाने से मिलाया जा सकता है। इसके साथ ही इसमें न केवल तबला बल्कि अन्य अवनद्ध वाद्यों जैसे ढोलक, खोल, मृदंग इत्यादि की ध्वनि को भी निकाला जा सकता है। यह वाद्य अभी भारत में बहुत प्रचलित नहीं है।

उपसंहार- विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों ने संगीत जगत में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यद्यपि इलेक्ट्रॉनिक उपकरण शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार, संवर्धन व प्रदर्शन में सहायक होने के साथ साथ सुविधाजनक भी रहे हैं। परन्तु संगीत के पूर्ण व यथार्थ आनन्द की प्राप्ति सजीव प्रस्तुतियों में ही होती है। इस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक संगीत वाद्य यंत्र भी वैकल्पिक साधन तो हो सकते हैं परन्तु ये स्वयं में परिपूर्ण नहीं हैं। इसकी पूर्णता के लिए अभी और प्रयास की सम्भावनायें की जा सकती हैं।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. डॉ. पूनम दत्त, भारतीय संगीत शिक्षा और उद्देश्य, पृ. 72
2. डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे, ताल वाद्य शास्त्र, पृ. 67
3. आचार्य श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, ताल परिचय भाग -3, पृ. 136
4. आचार्य श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, लयताल विचार मंथन, पृ. 97
5. आचार्य श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, लयताल विचार मंथन, पृ. 98
6. लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स - विजया घोष 1994 पृ. 121

कोविड-19 के ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा- चुनौतियां

• स्मिता मसीह

सारांश- शिक्षा हमारे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। हम अच्छी शिक्षा प्राप्त करके ही अपने भविष्य को उज्जवल बना सकते हैं। आज ऑनलाइन एजुकेशन का दौर चल रहा है। वर्तमान समय में, ऑनलाइन शिक्षा काफी लोकप्रिय हो रही है। ऑनलाइन शिक्षा पढ़ाई का एक नया डिजिटल तरीका है जिससे छात्र घर बैठे पढ़ाई कर सकते हैं। ऑनलाइन शिक्षा शिक्षण या शिक्षा की एक ऐसे प्रणाली है जिसके जरिये विद्यार्थी इंटरनेट के माध्यम से घर बैठे अपने इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों जैसे, कंप्यूटर, लैपटॉप, स्मार्टफोन और टेबलेट आदि के उपयोग से ऑनलाइन पढ़ाई कर सकते हैं। ऑनलाइन शिक्षा एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम से दुनिया के किसी भी कोने से इंटरनेट के इस्तेमाल से शिक्षक और छात्र एक दुसरे से जुड़ सकते हैं।

मुख्य शब्द- ऑनलाइन एजुकेशन, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, ज्ञान, इंटरनेट।

परिचय- आपदा जहाँ एक ओर विनाश लाती है वहीं दूसरी ओर नए खोज, आविष्कारों और नई जीवन शैली को अपनाने के सुनहरे अवसर भी देती है। कोरोना आपदा भी पूरी दुनिया के लिए एक ऐसी ही आपदा है जिसका दुखद पहलू यह है कि इसने अब तक लाखों लोगों की जान ले ली। और कई लोगों में अभी भी इसके संक्रमण का खतरा मँडरा रहा है। मगर इसका सुखद पहलू भी है। इस आपदा के बाद दुनिया के कई देशों ने आत्मनिर्भरता की तरफ कदम बढ़ाए। भारत भी उनमें से एक है। कोरोना आपदा से लड़ने के लिए वैज्ञानिकों ने दवाई व वैक्सीन की खोज करनी शुरू कर दी। लोगों ने भी अपनी जीवनशैली में बदलाव करना शुरू कर दिया। एक बार फिर लोग स्वच्छ पर्यावरण और प्रकृति के बारे में सोचने को मजबूर हुए। शिक्षा के क्षेत्र में भी इस आपदा से एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया। जिसे हम ऑनलाइन शिक्षा के नाम से जानते हैं। इस आपदा ने न सिर्फ ऑनलाइन शिक्षा के महत्व को बढ़ाया बल्कि इसके माध्यम से लाखों बच्चे लाभान्वित भी हुए। लोगों ने ऑनलाइन शिक्षा को बेझिझक अपनाया। ऑनलाइन शिक्षा ने अपनी सुविधा और संचालन की आसान प्रक्रिया की वजह से दुनिया भर में जगह बना ली है। लॉकडाउन में जहाँ सभी शिक्षा के स्रोत बंद हैं वहीं ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली ने शिक्षा को एक नया रूप देकर एक अलग दुनिया बना ली है। आज दुनिया भर में शिक्षा का नया

• अतिथि विद्वान, अर्थशास्त्र शासकीय कन्या महाविद्यालय कटनी

और डिजिटल तरीका अपनाया जा रहा है। आज विश्व के सभी देशों में ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से बच्चे पढ़ाई कर पा रहे हैं। ऑनलाइन शिक्षा हासिल करने के लिए आपको सिर्फ एक तेज इंटरनेट कनेक्शन की जरूरत होती है। इस डिजिटल शिक्षा प्रणाली के तहत शिक्षक वीडियो के माध्यम से इंटरनेट का उपयोग करके बच्चों को शिक्षित करते हैं। इंटरनेट की सहायता से ऑनलाइन शिक्षा वर्षों से लोकप्रिय है। आपको बता दें, की ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली 1993 में ही वैध कर दी गयी थी। आज के दौर में, अध्ययन की यह प्रणाली अपनी लोकप्रियता में तेजी से इजाफा करती जा रही है। ऑनलाइन शिक्षा का सबसे अच्छा और बड़ा लाभ यह है, इसके माध्यम से सभी उम्र के लोग पढ़ाई कर सकते हैं। दुनिया की वर्तमान स्थिति के कारण आज बच्चे स्कूल, कॉलेजों में पढ़ाई नहीं कर पा रहे हैं लेकिन ऑनलाइन शिक्षा ने उनके लिए पढ़ाई का रास्ता पहले से ज्यादा बढ़िया और आसान कर दिया है। इसके माध्यम से बच्चे बड़ी आसानी से घर बैठे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आज स्कूल, कॉलेजों के बंद होने के कारण बच्चे पढ़ाई नहीं कर पा रहे हैं। कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जिनके पास अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए प्रयाप्त साधन नहीं होते हैं, वे कोचिंग स्कूल भी नहीं जा पाते हैं, उनके लिए और सभी छात्रों के लिए ऑनलाइन शिक्षा उपयोगी साबित हो रही है। कोई भी स्टूडेंट, चाहे विद्यार्थी की स्थिति कैसे भी हो, ऑनलाइन शिक्षा की मदद से अपनी पढ़ाई पूरी कर सकता है और ऑनलाइन ही परीक्षा देकर अपनी डिग्री प्राप्त कर सकता है। आजकल हर तरह की पढ़ाई ऑनलाइन हो रही है, आप चाहे कोई भी कोर्स ऑनलाइन कर सकते हैं। ऑनलाइन शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है जो तकनीकी पर आधारित है। घर बैठे-बैठे इंटरनेट व अन्य संचार उपकरणों के माध्यम से ली जाने वाली शिक्षा को ऑनलाइन शिक्षा कहा जाता है। ऑनलाइन शिक्षा हमारी पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था से थोड़ा सा अलग है।

पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था में बच्चे स्कूल की क्लास रूम में बैठकर अपने शिक्षक से प्रत्यक्ष रूप से जुड़कर पुस्तकों के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते हैं। जबकि ऑनलाइन शिक्षा में कंप्यूटर और इंटरनेट कनेक्शन के माध्यम से शिक्षक छात्रों से जुड़ कर शिक्षा देते हैं। इसकी कुछ निश्चित सीमाएं भी हैं। ऑनलाइन शिक्षा के लिए विद्यार्थियों के पास एक इंटरनेट कनेक्शन, एक कंप्यूटर या मोबाइल फोन होना आवश्यक है। इनकी मदद से विद्यार्थी किसी ऐप के जरिए अपने शिक्षक से जुड़ कर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं जैसे गूगल मीट, जूम, स्काइप, व्हाट्सएप, वीडियो कॉल आदि।

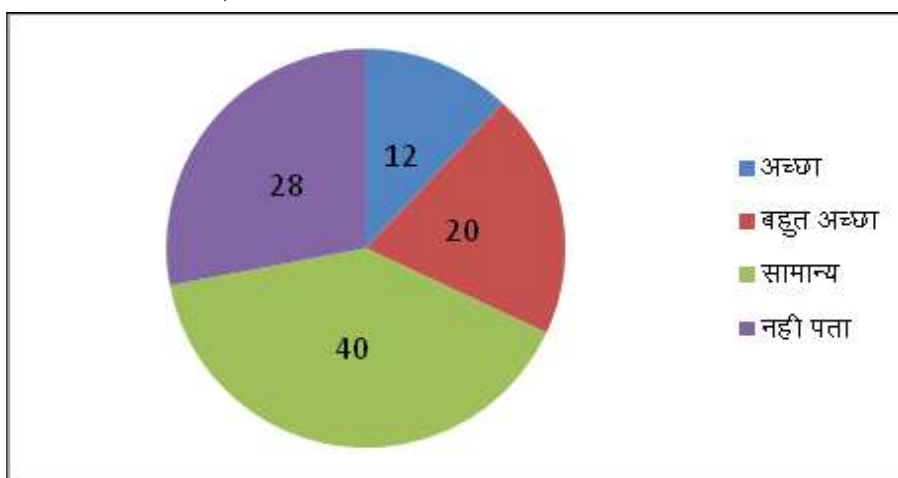
मुख्य उद्देश्य- भारतीय शिक्षा प्रणाली में समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन हुए लेकिन कोविड-19 के आने से शिक्षा में एक और नया परिवर्तन आया जो ऑनलाइन लाइन शिक्षा प्रणाली है जो हमारे देश के लिए नई शुरुआत है जिसने हमें शिक्षा को तकनीक से जोड़ा है। इस महामारी ने ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा दिया है क्योंकि इस महामारी में सभी लोग प्रत्यक्ष रूप में नहीं मिल सकते थे इसलिए ऑनलाइन शिक्षा की शुरुआत हुई इस शोध पत्र ऑनलाइन शिक्षा को कितना बढ़ावा मिला, विद्यार्थियों पर क्या प्रभाव पड़ा, सार्थकता किस प्रकार रही, छात्रों का शिक्षक से समाजस्य से संबंधित विषय का विवेचन इस शोध पत्र में किया गया है।

शोध प्रविधि- शोध पत्र को तैयार करने में प्राथमिक एवं द्वितीयक समंक के साथ महाविद्यालय में आने वाली छात्राओं से उनकी अभी मति लेकर गूगल फॉर्म से जानकारी को जानने का प्रयास किया गया कोविड-19 के दौरान ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा कहां तक और किस रूप में मुख्य उद्देश्य का संकलन सारणी व पाई चार्ट के माध्यम से किया गया है

तालिका क्रमांक 01
कोविड 19 का विद्यार्थियों पर प्रभाव

मत	संख्या	प्रतिशत
अच्छा	6	12
बहुत अच्छा	10	20
सामान्य	20	40
नही पता	14	28

स्त्रोत-स्वयं का सर्वेक्षण

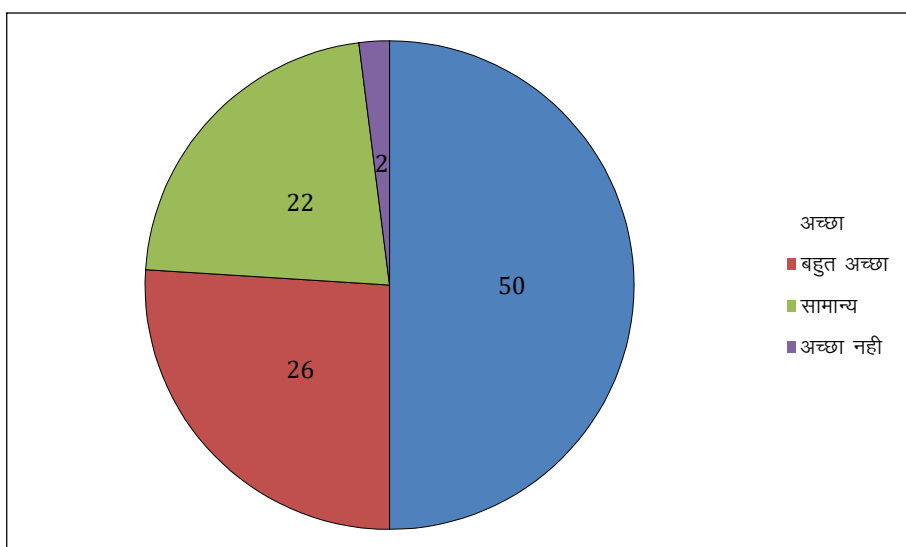


उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से पता चला कि कोविड 19 का विद्यार्थियों पर प्रभाव कैसा रहा पूछने पर 12 प्रतिशत विद्यार्थियों ने बताया की अच्छा रहा ज्ञान के साथ आने जाने एवं समय की बचत हुई, 20 प्रतिशत ने बहुत अच्छा रहा, 40 प्रतिशत का कहना था कि सामान्य प्रभाव रहा भौतिक कक्षाओं के सामान समग्र बातों का विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त नहीं होती शोध में 28 प्रतिशत ऐसे भी विद्यार्थी थे जिन्हें कुछ नहीं पता था।

तालिका क्रमांक 02
ऑनलाइन शिक्षा का विद्यार्थियों पर प्रभाव

मत	संख्या	प्रतिशत
अच्छा	25	50
बहुत अच्छा	13	26
सामान्य	11	22
अच्छा नहीं	01	02

स्त्रोत-स्वयं का सर्वेक्षण

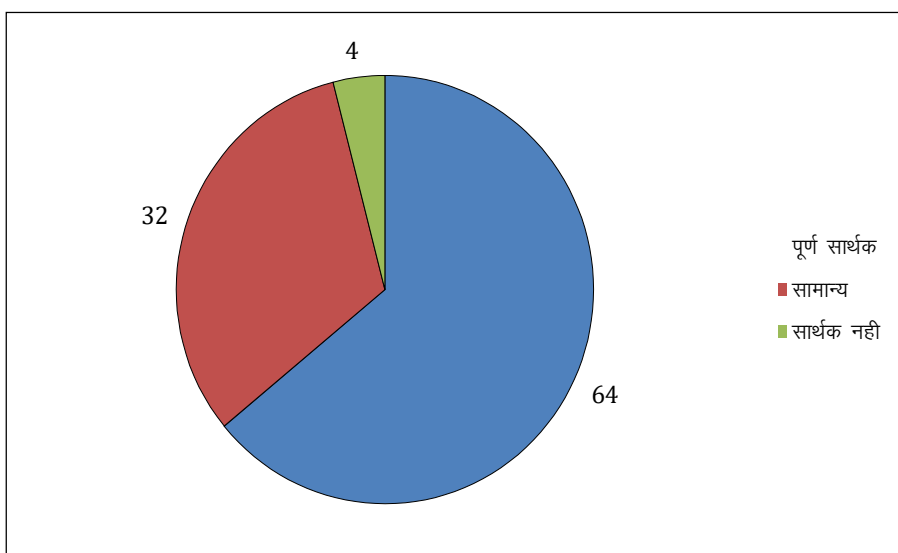


उपरोक्त सारणी के माध्यम से अध्यनरत विद्यार्थियों से ऑनलाईन शिक्षा का विद्यार्थियों पर प्रभाव किस प्रकार रहा संबंधी जानकारी जानने की कोशिश की गई। ऑनलाईन शिक्षा का विद्यार्थियों पर प्रभाव का विश्लेषण करने पर 50 प्रतिशत ने अच्छा कहाँ, 26 प्रतिशत ने बहुत अच्छा, 22 प्रतिशत ने सामान्य, 02 प्रतिशत का कहना है कि ऑनलाईन अच्छा नहीं है।

तालिका क्रमांक 03
ऑनलाईन शिक्षा की सार्थकता कहाँ तक किस प्रकार रही

मत	संख्या	प्रतिशत
पूर्ण सार्थक	32	64
सामान्य	16	32
सार्थक नहीं	02	04

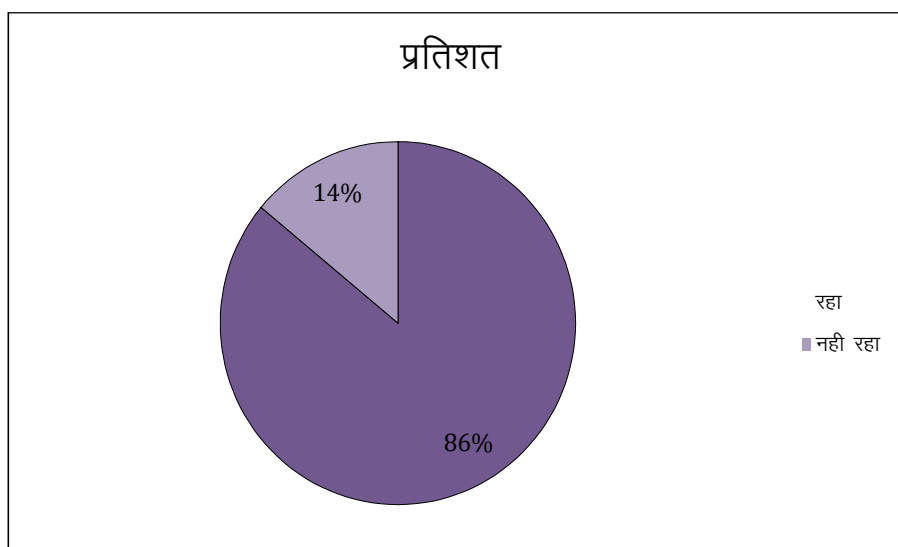
स्त्रोत-स्वयं का सर्वेक्षण



उपरोक्त सारणी के माध्यम से अध्यनरत विद्यार्थियों से ऑनलाईन शिक्षा की सार्थकता कहों तक किस प्रकार रही संबंधी जानकारी जानने की कोशिश की गई साररणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 64 प्रतिशत ऑनलाईन शिक्षा को पूर्ण सार्थक मानते हैं, 32 प्रतिशत विद्यार्थी सामान्य तथा 04 प्रतिशत सार्थक नहीं मानते।

तालिका क्रमांक 4
छात्र शिक्षक सामंजस्य

मत	संख्या	प्रतिशत
रहा	43	86
नहीं रहा	07	14



उपरोक्त सारणी के माध्यम से अध्यनरत विद्यार्थियों से छात्र शिक्षक सामंजस्य का प्रभाव किस प्रकार रहा संबंधी जानकारी जानने की कोशिश की गई छात्र शिक्षक सामंजस्य विद्यार्थियों पर प्रभाव का विश्लेषण करने पर 86 प्रतिशत न छात्र शिक्षक सामंजस्य रहा तथा 14 प्रतिशत का कहना था कि छात्र शिक्षक के मध्य सामंजस्य नहीं रहा। ऑनलाइन शिक्षा से लाभ कोरोना आपदा ने हमें एक नई शिक्षा प्रणाली को अपनाने का मौका दिया। हालांकि शुरुआती दिनों में यह बहुत कठिन रहा लेकिन धीरे-धीरे सभी शिक्षण संस्थानों ने अपने पास उपलब्ध सीमित साधनों से अपने आप को ऑनलाइन एजुकेशन के अनुरूप बनाया और छात्रों को ऑनलाइन शिक्षा देनी प्रारंभ की। इस आपदा ने ऑनलाइन एजुकेशन को खूब फलने फूलने का मौका दिया। ऑनलाइन शिक्षा में समय व जगह की अनिवार्यता नहीं है। छात्र किसी भी जगह से और किसी भी समय ऑनलाइन शिक्षा ले सकते हैं। ऑनलाइन शिक्षा कई रूपों में ली जा सकती है। जैसे शिक्षक सीधे गूगल मीट या अन्य ऐप के माध्यम से अपने छात्रों से जुड़ सकते हैं। इसके अलावा फाइल लिंक, वेबपेज, वीडियो, ऑडियो व अन्य माध्यमों से भी शिक्षक विषय से संबंधित तथ्यों को छात्रों को भेज सकता है। ऑनलाइन शिक्षा का एक फायदा यह भी है कि शिक्षक द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषय का वीडियो बनाकर भी रखा जा सकता है। अगर किसी छात्र को कहीं पर किसी तथ्य को समझने में कोई दिक्कत हो तो, वह वीडियो को बार-बार देखकर उसे समझ सकता है। ऑनलाइन शिक्षा का एक और फायदा यह है कि स्कूल, कॉलेज या शिक्षण संस्थाओं में जाने-आने वाले समय की बचत हो जाती है। इस बचे हुए समय को बच्चे अपनी प्रतिभा को निखारने या कुछ अन्य चीजों को सीखने में लगा सकते हैं। स्कूल, कॉलेज या शिक्षण संस्थाओं में जाने-आने में परिवहन में लगने वाला खर्चा भी बच जाता है। ऐसे ग्रामीण क्षेत्र या दूरदराज के क्षेत्र, जहां स्कूल कॉलेज बहुत दूर हैं। और आसानी से यातायात के साधन भी उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसी जगहों में ऑनलाइन शिक्षा छात्रों के लिए बहुत उपयोगी हो सकती है। यह शिक्षा उन बच्चों के लिए भी बहुत फायदेमंद है जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं। और पढ़ाई के साथ-साथ अपना खर्चा निकालने के लिए नौकरी करना चाहते हैं। ऑनलाइन शिक्षा के क्षेत्र में कुछ बड़े बैनर्स मुफ्त में क्लासेज या वीडियो उपलब्ध कराते हैं जिनका फायदा आर्थिक रूप से कमजोर या कोई भी छात्र ले सकता है। अगर कोई छात्र, ऐसा कोई कोर्स करना चाहता है, जो उसके विश्वविद्यालय में उपलब्ध नहीं है। तो वह भारत या दुनिया के किसी भी विश्वविद्यालय से ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से उस कोर्स को कर सकता है। क्योंकि अब छात्रों के पास ऑनलाइन शिक्षा में बहुत सारे विकल्प होते हैं। ऑनलाइन शिक्षा को सफलतापूर्वक पूरा करने के बाद, अब विश्वविद्यालय छात्रों को सर्टिफिकेट और डिग्री भी देने लगे हैं।

ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को बेहतर बनाने के उपाय- वर्तमान में लगभग सभी प्राइवेट स्कूलों और कुछ सरकारी स्कूलों ने ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से बच्चों को शिक्षित करना शुरू कर दिया है। लेकिन हमारे देश में अभी भी ऑनलाइन शिक्षा प्रारंभिक अवस्था में ही है। इसको बेहतर बनाने के लिए कई उपाय करने होंगे भारत की लगभग 66

प्रतिशत आबादी गांवों में रहती हैं। कुछ गांवों तक तो इंटरनेट नेटवर्क पहुंच गया है। लेकिन अधिकतर गांवों या दूरदराज के क्षेत्रों में इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध नहीं है। अगर कहीं इंटरनेट सुविधा उपलब्ध भी है तो सिग्नल बहुत कमजोर होते हैं जिसकी वजह से इंटरनेट एक्सेस ढंग से नहीं हो पाता है। जो बच्चों की ऑनलाइन शिक्षा में सबसे बड़ी बाधा है। सरकार को सबसे पहले गांव-गांव तक व सुदूर सीमावर्ती क्षेत्रों तक इंटरनेट नेटवर्क को पहुंचाने के लिए ठोस कदम उठाना होगा ताकि बच्चे बिना किसी बाधा के पढ़ाई कर सकें। दूर दराज के इलाकों में आजादी के इतने साल बाद भी बिजली नहीं पहुंची है। और बिना बिजली के कंप्यूटर, लैपटॉप या मोबाइल चल नहीं सकते। इसीलिए बिजली गांव-गांव तक पहुंचाकर ऑनलाइन को मजबूती प्रदान की जा सकती है। ऑनलाइन शिक्षा में छात्र और शिक्षक प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के आमने-सामने नहीं होते हैं। इसीलिए शिक्षकों को छात्रों को समझने और उनका मूल्यांकन करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसका कोई समाधान निकालना पड़ेगा। ऑनलाइन एजुकेशन को दूरस्थ शिक्षा के लिए सबसे बेहतर माना गया है।

ऑनलाइन शिक्षा की चुनौतियां- जिन शहरों, गांव अथवा कस्बों में इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध नहीं है वहां ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को शुरू कर पाना बेहद मुश्किल है। इसके साथ ही ऐसे क्षेत्र जहां इंटरनेट की स्पीड कम होती है, वहां भी ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली अपनाना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इंटरनेट पर समस्त पाठ्यक्रम, भाषाओं के अनुरूप अध्ययन सामग्री की कमी होने से छात्रों को अध्ययन में समस्या हो सकती है। ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के लिए कुशल शिक्षकों की भी कमी है, अधिकांश शिक्षकों को ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं मिला है। जिन विषयों में प्रैक्टिकल नॉलेज की आवश्यकता होती है, उनका ज्ञान लेना मुश्किल होता है।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष- आज इंटरनेट में कार्य व्यवहार के प्रत्येक आयाम को अपने जद में ले लिया है, आज मनुष्य की हर गतिविधि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इंटरनेट के जरिये प्रभावित हो रही है इसी कड़ी में वर्तमान समय में शिक्षा व्यवस्था भी है जिसका स्वरूप पूरी दुनिया में ऑनलाइन होता दिख रहा है। शिक्षा के ऑनलाइन माध्यम का तात्पर्य वेब आधार के माध्यम से बिना स्कूल कॉलेज या विश्वविद्यालय में भौतिक रूप से गये क्षेत्र या अध्येता अभासी रूप से कक्षाओं और अध्यापकों का लाभ उठा सकेंगे। कोविड 19 का विद्यार्थियों पर प्रभाव कैसा रहा पूछने पर 12 प्रतिशत विद्यार्थियों ने बताया की अच्छा रहा ज्ञान के साथ आने जाने एवं समय की बचत हुई, 20 प्रतिशत ने बहुत अच्छा रहा, 40 प्रतिशत का कहना था कि सामान्य प्रभाव रहा भौतिक कक्षाओं के सामान समग्र बातों का विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त नहीं होती शोध में 28 प्रतिशत ऐसे भी विद्यार्थी थे, जिन्हें कुछ नहीं पता था। ऑनलाइन शिक्षा का विद्यार्थियों पर प्रभाव का विश्लेषण करने पर 50 प्रतिशत ने अच्छा कहा, 26 प्रतिशत ने बहुत अच्छा, 22 प्रतिशत ने सामान्य, 2 प्रतिशत का कहना है कि ऑनलाइन अच्छा नहीं है। ऑनलाइन शिक्षा में समय व जगह की अनिवार्यता नहीं है। छात्र किसी भी जगह से और किसी भी समय ऑनलाइन शिक्षा ले सकते हैं। ऑनलाइन शिक्षा कई रूपों में ली जा सकती है। जैसे शिक्षक सीधे गूगल मीट या अन्य ऐप के माध्यम से अपने छात्रों से जुड़ सकते हैं। इसके अलावा फाइल

लिंक, वेबपेज, वीडियो, ऑडियो व अन्य माध्यमों से भी शिक्षक विषय से संबंधित तथ्यों को छात्रों को भेज सकता है। ऑनलाइन शिक्षा का एक फायदा यह भी है कि शिक्षक द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषय का वीडियो बनाकर भी रखा जा सकता है। 64 प्रतिशत ऑनलाइन शिक्षा को पूर्ण सार्थक मानते हैं, 32 प्रतिशत विद्यार्थी सामान्य तथा 04 प्रतिशत सार्थक नहीं मानते। छात्र शिक्षक सामंजस्य विद्यार्थियों पर प्रभाव का विश्लेषण करने पर 86 प्रतिशत न छात्र शिक्षक सामंजस्य रहा तथा 14 प्रतिशत का कहना था कि छात्र शिक्षक के मध्य सामंजस्य नहीं रहा। जिन शहरों, गांव अथवा कस्बों में इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध नहीं है वहां ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को शुरू कर पाना बेहद मुश्किल है।

इसके साथ ही ऐसे क्षेत्र जहां इंटरनेट की स्पीड कम होती है, वहां भी ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली अपनाना चुनौती पूर्ण हो जाता है। जिन विषयों में प्रैक्टिकल नॉलेज की आवश्यकता होती है, उनका ज्ञान लेना मुश्किल होता है। सरकार को सबसे पहले गांव-गांव तक व सुदूर सीमावर्ती क्षेत्रों तक इंटरनेट नेटवर्क को पहुंचाने के लिए ठोस कदम उठाना होगा ताकि बच्चे बिना किसी बाधा के पढ़ाई कर सकें। दूर दराज के इलाकों में आजादी के इतने साल बाद भी बिजली नहीं पहुंची है और बिना बिजली के कंप्यूटर, लैपटॉप या मोबाइल चला नहीं सकते। इसीलिए बिजली गांव-गांव तक पहुंचाकर ऑनलाइन शिक्षा को मजबूती प्रदान की जा सकती है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. बिहार डिस्ट्रिक्ट फैक्ट बुक
2. www.who.in
3. मानव संसाधन विकास मंत्रालय 20 मार्च 2020 कोविड 19 डिजिटल इनिशेटिव।
4. onlineeducation.com
5. गुप्ता के एल शोध प्रविधि के विविध आयाम रघुराज प्रकाशन आगरा
6. ऑनलाइन आधारित शिक्षा एक अवलोकन, प्रकाशित शोध
7. ऑनलाइन शिक्षा का समग्र प्रभाव 21वीं सदी इंटरनेट की सदी है, प्रकाशित शोध
8. jansatta.com 04 aug 2021
9. www.orfonline.org/hindi/research.

उच्च शिक्षा में परिवर्तन एवं अवलोकन

• प्रत्यूष वत्सला द्विवेदी

सारांश- शिक्षा मानव जाति का प्रकाश स्तम्भ है। शिक्षा के प्रकाश के द्वारा ही सम्पूर्ण मानव जाति आलोकित हो रही है। वस्तुतः शिक्षा के द्वारा ही यह लोक यात्रा प्रवर्तित हो रही है। यदि मानव जाति के पास यह शिक्षा का दिव्य प्रकाश न हो तो सम्पूर्ण मानव जाति एक विचित्र अन्धकार में डूब जायेगा। अतएव उस अन्धकार से बचने के लिये शिक्षारूपी प्रदीप का सदैव प्रदीप्त रहना आवश्यक है। सच कहा गया है शिक्षा के द्वारा ही एक दानव भी आदर्श मानव बन सकता है। हमारे भारत देश में प्राचीनकाल से शिक्षा का विशेष महत्त्व रहा है। इसीलिये हमारे देश ने जगद्गुरु की गौरवमयी पदवी प्राप्त की है। वेद, पुराण, स्मृति, दर्शन एवं अन्य विविध शास्त्र शिक्षा के प्रकाश में आलोकित है। अतएव मानव जाति की परिपूर्णता और सम्यक् विकास के लिये एक आदर्श शिक्षा की सतत् अपरिहार्यता है।

मुख्य शब्द- अनुसंधान, संवर्द्धन, संकीर्णता, परिपोषिका, अध्ययनकाल, परिलक्षित

“अस्ति शिक्षा महत्त्वं परं भूतले,
शिक्षया दानवो मानवो जायते।
यत्र सत्यं शिवं शोभते,
प्राप्य शिक्षां नराः सर्वदा मोदते॥”

शिक्षा संसार के सभी प्राणियों के लिये आवश्यक है। मानव जाति तो शिक्षा के बिना अपूर्ण ही है। सम्प्रति शिक्षा के बिना मानव अज्ञानरूपी अंधकार में ही भटकता रहेगा। वस्तुतः शिक्षा के आलोक में ही मानव अपने जीवन पथ पर अग्रसर हो सकता है। शिक्षा के प्रसाद के द्वारा मानव मात्र की लोक यात्रा सम्भव है। यदि शिक्षा रूपी प्रकाश इस संसार में न हो तो यह सारा संसार अज्ञानरूपी अन्धकार में निमग्न हो जायेगा।

“शिक्षयाः सम्प्रसादेन लोक यात्रा प्रवर्तते।
इदमन्धतंतमाः कृत्स्नां जायेत भुवनत्रयम्।”
यदि ह्युयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥¹

अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि यह संसार सूर्य सदृश है तो शिक्षा है उसका प्रकाश मुग्ध मंजरी। यदि संसार दुग्ध सदृश शुभ्र है तो शिक्षा मनोभावन नवीन नवनीत। अतएव मानव जीवन में शिक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। तत्त्वपरिजात में कहा गया है।

शिक्षा नाराणां नेत्रं तृतीयम्।²

भारत में विशेष रूप से प्राचीन काल में शिक्षा का विशेष महत्त्व रहा है। यहाँ के ऋषियों ने कठोर साधना एवं गहन अध्ययन तथा अनुसंधान के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में मानव जाति को अतिविशिष्ट तत्त्व प्रदान किए हैं।³ गम्भीर अध्ययन एवं अनुसंधान से यहाँ के तत्त्व दृष्टा मनीषी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि समस्त विद्याओं और ज्ञान की कोटियों में अध्यात्म विद्या ही सर्वश्रेष्ठ है। अतएव श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण का कथन है -

अध्यात्मविद्या विद्यानाम्।⁴

अर्थात् समस्त विद्याओं में मैं अध्यात्मविद्या हूँ। अन्यच्च -

विद्याया जायते बोधः विद्यया लभ्यते धनम्।

विद्यया प्राप्यते मोक्षः विद्यया भिन्न लभ्यते।।

इस देश में शिक्षा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। वेद जो कि विश्व के आदि ग्रन्थ माने जाते हैं उनमें सर्वत्र ज्ञान या शिक्षा अभिव्याप्त है। वेद शब्द स्वयमेव ज्ञान का वाचक है। जो कि प्रकारान्तर से शिक्षा के भाव को ही उजागर कर रहा है। प्राचीन भारत में जो लोग ज्ञान या शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहे हैं, उन्हें सर्वाधिक सम्मान दिया गया है और उन्हें समाज में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। ज्ञान को मनुष्य का तृतीय नेत्र बतलाया गया है। यह भी कहा गया है कि ज्ञान के बिना इस संसार सागर से मोक्ष सम्भव ही नहीं है - ऋते ज्ञानान् मुक्तिः।⁵

भारत में लौकिक शिक्षा या विद्या की अपेक्षा अलौकिक अध्यात्मविद्या की अत्यधिक प्रतिष्ठा रही है। यही कारण है कि विद्या को विमुक्ति का साधन बतलाया गया है। छान्दोग्योपनिषद् के भाष्य में शंकराचार्य लिखते हैं कि विद्या तीनों लोकों के राज्य से भी गुरुतर है।⁶ यजुर्वेद में कहा गया है कि शिक्षा या विद्या हमारे योग और क्षेत्र की श्रीवृद्धि करे।⁷

अप्राप्त की प्राप्ति को योग कहते हैं और प्राप्त के रक्षण को क्षेम कहते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म-तत्त्व का ज्ञाता अर्थात् अध्यात्म विद्या में पारंगत व्यक्ति परमपद को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मविद् की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य ने भी लिखा है -

ब्रह्मभूतो विद्वान् ब्रह्मस्वरूपेणैव सर्वान् कामान् समश्नुते।⁸

विद्या या ज्ञान के महत्त्व के विषय में बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि एक ब्रह्म-अक्षर का ज्ञाता परमपद का अधिकारी होता है। उस अक्षर ब्रह्म-तत्त्व को जानकर उपासक ब्रह्मरूप हो जाता है। महाभारत के शान्तिपर्व में विद्या के विषय में सम्यक् प्रकाश डाला गया है -

“नास्ति विद्यासमं चक्षु नास्ति सत्यं समं तपः।”⁹

मानव जीवन में शिक्षा का महत्त्व है। शिक्षा के बिना मानव अधरा है। उसके सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षा अनिवार्य है। जैसा कि शिक्षा पारिजात मंजरी में कहा गया है -

अस्ति शिक्षामहत्त्वं परं भूतले, शिक्षया दानवो मानवो जायते।

तत्र देवत्वभावस्ततो वर्द्धते, वर्द्धते, वर्द्धतां वर्द्धतां शिक्षया मानवः।।¹⁰

आधुनिक शिक्षा में अनेक समस्याएँ आ गयी हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास एवं मानवीय मूल्यों का संवर्द्धन है। परन्तु शिक्षा को अतिभौतिकवादी बना देने से उसमें भी भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। आज का विद्यार्थी शिक्षा की चिन्ता न करके डिग्री पाने की होड़ में लग गया है। उसका लक्ष्य ज्ञान न होकर केवल अर्थ प्राप्ति हो गया है। अतः वह येन-केन प्रकारेण डिग्री पाकर नौकरी हथियाने की कोशिश में है। अतएव वह “सा विद्या या विमुक्तये” के महान उद्देश्य से भटक रहा है। इस समस्या के समाधान के लिये यदि वर्तमान शिक्षा में औपनिषदीय शिक्षा को जोड़ दिया जाये तो निश्चित ही वर्तमान शिक्षा में गुणवत्ता बढ़ जायेगी और वह मूल्यपरक बन जायेगी।”¹¹

भारतीय शिक्षा मानवीय मूल्यों, मानवता एवं संवेदनाओं की रक्षा करने में सक्षम है। यह सत्य, शिव और सुन्दर की परिपोषिका है। इसके द्वारा मुक्तिबोध का मार्ग प्रशस्त होता है। इससे आज की सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं का समाधान हो सकता है। आज पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का हास हो रहा है। आपसी भाईचारा, सद्भाव, श्रद्धा, विश्वास आदि मानवीय गुण विलुप्त होते चले जा रहे हैं। छल, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, स्वार्थ, संकीर्णता आदि अवगुण बढ़ रहे हैं। आधुनिक शिक्षा इसे रोक पाने में समर्थ नहीं हो पा रही है।¹²

अतएव इसे समुचित रूप से जोड़ने में भारत की मौलिक शिक्षा पद्धति पर ध्यान देना आवश्यक है। इस शिक्षा पद्धति में गुरु शिष्य परम्परा को विशेष महत्त्व दिया गया था। भारतीय परम्परा में गुरु, आचार्य, उपाध्याय आदि शब्दों का पारिभाषिक अर्थों में प्रयोग मिलता है। परन्तु गुरु शब्द सर्वत्र व्याप्त है। प्राचीन साहित्य की समीक्षा करने से यह सुस्पष्ट होता है कि तान्त्रिक प्रधान धर्म सम्प्रदायों के मध्य में तथा अध्यात्म साधना के क्षेत्रों में गुरु की अपरिहार्यता है। अध्यात्म एवं साधना का वैशिष्ट्य आरम्भ से ही महिमामयी मूर्ति के रूप में अंगीकृत है। दीक्षा के कारण कुलार्णवतन्त्र आदि के अनुसार गुरु की अनेक प्रकार की व्याख्या के साथ महत्त्व वर्णित है।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत्।।¹³

मोक्ष की प्राप्ति ही सम्प्रदाय का परम उद्देश्य है और इसकी प्राप्ति गुरु से दीक्षित हुए बिना सम्भव नहीं हो सकती है। अतः स्वतः ही गुरु का महत्त्व लक्षित होता है।

बिना दीक्षां न मोक्षं स्यात् तदुक्तं शिवशासने।

सा च न स्याद्धिनाऽऽचार्यमित्याचार्यपरम्परा।।

मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्म गुरु संयत इन्द्रियसम्पन्न, शान्त चित्त, समीप में आये शिष्य के अनुसार उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान करे।

गुरु परम्परा के कारण शिक्षा का सांस्कृतिक महत्त्व है। इससे केवल भौतिक ज्ञान नहीं अपितु मानवता का सर्वांगीण विकास लक्ष्य रहा है। शिक्षा भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग रही है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि विद्या के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है। ‘विद्ययाऽमृतमनुते’¹⁴ डॉ. अनन्त सदाशिव अल्टेकर प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्य पर इस प्रकार प्रकाश डालते हैं –

1. ब्रह्मचारी के चरित्र का रूपान्तर एवं उत्तम संस्कार तथा अभ्युदय के लिए सक्षम बनाना।

2. उनमें नैतिक भावनाओं का सम्यक् विकास।
3. उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास।
4. नागरिक और सामाजिक कर्तव्यों के पालन की भावना भरना।
5. सामाजिक योग्यता तथा सुख की वृद्धि।
6. राष्ट्रीय परम्पराओं और संस्कृति का संरक्षण तथा प्रचार-प्रसार।

आधुनिक शिक्षार्थियों में अनेक अवगुण पैदा हो गये। यही कारण है कि अधिकांश शिक्षाशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अमूल-चूल बदलाव किये जाने चाहिए। देश की आवश्यकताओं को देखते हुए आधुनिक शिक्षा के निम्नलिखित पाठ्य विषय हैं, जैसे- व्यावसायिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, मानसिकता सम्बन्धी विषय, विज्ञान की शिक्षा, चरित्र की शिक्षा।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में गुरु और शिष्य का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त असंतोषजनक है। वर्तमान युग के पढ़े-लिखे शिष्यों का यह स्वभाव सा बन गया है कि वे अपने शिक्षकों को मूर्ख समझते हैं, उनके कार्यों में अवगुण देखते हैं और विद्यार्थी गुरु की निंदा करते हैं, वे उनकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं और उनको अपमानित भी करते हैं। प्राचीन काल में शिक्षक और विद्यार्थी का सम्बन्ध केवल अध्ययनकाल तक ही सीमित नहीं था अपितु उनका जीवनपर्यन्त का सम्बन्ध था। आधुनिक युग में शिक्षक विद्यार्थी सम्बन्ध केवल अध्ययनकाल तक ही सीमित रहा है।

उधर अगर देखा जाय तो वर्तमान समय में शिक्षक भी प्रायः विद्यार्थी के चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं देते हैं, जिससे कि वे चरित्रहीन हुए जा रहे हैं। आज शिक्षकों का उद्देश्य न विद्यार्थियों को शारीरिक शक्ति उत्पन्न करना है न तो ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति कराना और न ही चरित्र को शक्तिशाली एवं उज्ज्वल बनाना है, अपितु पढ़ाना तथा विद्यार्थी से धन एकत्रित करना है। इस शिक्षा पद्धति में शिक्षक विद्यार्थी को न तो कर्तव्य पालन की शिक्षा देते हैं और न ही नैतिक शिक्षा की।

आधुनिक शिक्षा पद्धति पाश्चात्य शिक्षा पद्धति पर विशेष प्रभाव परिलक्षित हो रही है। भारत में अंग्रेजों ने पर्याप्त काल तक शासन किया। अपने शासनकाल में जिस शिक्षा प्रणाली को उन्होंने भारतवासियों के लिये अपनाया था, उसका गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय शिक्षा पर पाश्चात्य शिक्षा का क्या प्रभाव पड़ा? इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार भारत नव-जागरण की व्यवस्था हेतु पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली आवश्यक है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों के अनुसार हमारे नैतिक और सांस्कृतिक उन्नति में सबसे अधिक योगदान पाश्चात्य शिक्षा ने दिया है। भारतीय शिक्षा पर पाश्चात्य शिक्षा के निम्न प्रभाव पड़ते हैं - सांस्कृतिक गौरव का पुनरुत्थान, विज्ञान की प्रगति, सामाजिक चेतना और विकास, तार्किक दृष्टिकोण का विकास, आर्थिक क्षेत्र में प्रगति, देश साहित्य का विकास, स्त्रियों की दशा में सुधार।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से अतिशय प्रभावित है। यहाँ विचारणीय यह है क्या हमें पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को आत्मसात् कर लेना चाहिये या पूर्ण रूप से त्याग देना चाहिये। इस विषय पर गम्भीर चिन्तन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि न तो हमें पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को

पूर्ण रूप से आत्मसात् करना चाहिये और न ही उसका परित्याग। वर्तमान शिक्षा पद्धति में हमें अपनी प्राचीन शिक्षा पद्धति के नैतिक मूल्यों यथा – गुरु शिष्य परम्परा, माता-पिता और गुरुजनों के प्रति सम्पूर्ण आदर भाव, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह सन्तोष, तप, समर्पण, साधना आदि को जोड़ लेना चाहिये। इससे पूर्णतः आ जायेगी। आधुनिक जगत में विज्ञान का विशेष महत्त्व है। अतएव वह शिक्षा का अपरिहार्य अंग है। हम विज्ञान और नैतिक मूल्यों के संयोजन से शिक्षा में सोने में सुगन्ध की युक्ति को चरितार्थ कर सकते हैं। अतएव इस दिशा में भारतीय शिक्षा के आचार्यों को विशेष सावधानी से गहन चिन्तन करना चाहिये और शहर के सर्वांगीण विकास के लिये एक ऐसी शिक्षा पद्धति का आविष्कार करना चाहिये जिससे मानव मात्र का अभ्युदय और कल्याण हो सके।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. शब्दतत्त्वपारिजात - 5/15, 16
2. तत्त्वपारिजात - 3/11
3. भारतीय शिक्षा के सिद्धान्त, डॉ. दीपशिक्षा, पृ.सं. 15
4. श्रीमद्भगवद्गीता 10/3, पृ.सं. 137
5. वेदभारती, डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृ.सं. 3
6. छान्दोग्योपनिषद् - 8/7/2 शांकर भाष्य
7. यजुर्वेद - 22/22
8. तैत्तिरीयोपनिषद् शांकर भाष्य
9. महाभाष्य शान्तिपर्व - 170/33
10. शिक्षातत्त्व वल्लरी - 2/17
11. भारतीय शिक्षा का विकास - डॉ. अननत राम चौबे, पृ.सं. 71
12. भारतीय शिक्षा के मूल तत्त्व - डॉ. अननत राम चौबे, पृ.सं. 117
13. कृ.त. - 14
14. ईश. उप. "लोक, डॉ. विशम्भर नाथ द्विवेदी, पृ.सं. 27

मुगल काल में राजपूतों की सामाजिक स्थिति

• मीनाक्षी सिंह कर्चुली
• एस.एस. चौहान

सारांश- मुगलकाल में मुगलों और राजपूतों की सभी क्षेत्र आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संबंध थे। उदाहरण के तौर पर जब कालींजर के चंदेल शासक ने हुमायूँ के सामने आक्रमण कर दिया तो हुमायूँ ने उनका राज्य वापस कर दिया। इसी तरह हुमायूँ ने गुजरात के शासक बहादुर शाह खिलाफ चित्तौर के राणा के मदद करने नीति अपनाई चित्तौर की रानी कर्मवती द्वारा हुमायूँ की राखी जिसके एवज में हुमायूँ ने शेरशाह ने हुमायूँ को दिल्ली-आगरा से निकाल दिया। अकबर ने राजपूतों के विभिन्न तरीकों से मुगल साम्राज्य का अहम् हिस्सा बनाया। जिस वक्त अकबर बादशाह बना उसको सबसे बड़ा खतरा अफगानों से लगा। अकबर ने अपने राज्य को अफगानों से सुरक्षित नहीं समझा। राजपूत भारतीय सामाजिक संरचना के अनुसार एक योद्धा और शासक वर्ग अकबर ने अपने समाज पर पूरी तरह मुगलों का एकाधिकार की योजना बनाई थी। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अकबर ने मेवाड़ जैसी राजपूत राज्य पर हमला किया क्योंकि इसके शासक राणा प्रताप सिंह ने अकबर संप्रभुता को मानने से इंकार कर दिया था। कुछ राजपूत शासकों को शक्ति द्वारा एवं कुछ को वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी सहयोगी एवं अधीन शासक बनाया। अकबर ने अमेर के बाद दूसरे राजपूताना राज्यों से संबंध स्थापित करना शुरू किया। राजपूतों से सबसे ताकतवर राज्य मेवाड़ ने अकबर ने मुगल राजपूत संघ में शामिल होने से मना कर दिया।

मुख्य शब्द- मुगल, राजपूत, साम्राज्य, सामाजिक संरचना

मुगल शासक जहीरुद्दीन मोम्मद बाबर (1526-30) द्वारा उत्तर भारत विजय के साथ ही मुगल राजपूत संबंधों का आधार और स्वरूप निश्चित हो गया था। बाबर को खनवा युद्ध के समय ही पता चल गया था कि राजपूतों का भारत की राजनीतिक स्थिति में महत्वपूर्ण स्थान था। बाबर का सैन्य जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। बाबर के अनुसार चित्तौड़ का शासक राणा संग्राम सिंह अपनी वीरता और तलवार से एक बड़े राज्य का शासक बन चुका था। चूंकि बाबर ने भारत में ज्यादातर समय युद्धों में व्यतीत किया, इसलिए वह राजपूतों के प्रति कोई निश्चित नीति नहीं बना सका। लेकिन नशिरुद्दीन

- शोधा छात्रा, इतिहास, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
- प्रभारी प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय कुसमी, जिला सीधी (म.प्र.)

मोम्मद हुमायूँ (1530-40 एवं 1555-1556) ने राजपूतों के साथ अपने संबंधों को राजनीतिक शक्ति की हिस्सेदारी सिद्धांत पर आधारित था। हुमायूँ ने गुजरात के शासक बहादुर शाह के खिलाफ चित्तौड़ के राणा की मदद करने की नीति अपनाई। 17 वीं शताब्दी ई. के राजस्थानी ग्रंथ चित्तौड़ की रानी कर्मवती द्वारा हुमायूँ को राखी भेजे जाने का जिक्र करते हैं। अहम बात यह है कि शेरशाह ने हुमायूँ को दिल्ली, आगरा से निकाल दिया उस वक्त अमरकोट के राजपूत राजा विरशाल ने हुमायूँ को अपने राज में पनाह दी। अकबर के शासन काल में राजपूत शासकों का विशेष महत्व था मुगलकाल में राजपूतों की स्थिति का विवरण इस प्रकार है।

बाबर के समय राजपूत संबंध- महाराणा कुंभा के उपरान्त महाराणा संग्राम सिंह ही मेवाड़ के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण शासक हुआ था जिसने भुजबल से मेवाड़ साम्राज्य का विस्तार किया तथा राजपूताने के समस्त राजपूत नरेशों को अपनी ध्वजा के नीचे संगठित किया। महाराणा संग्राम सिंह जो इतिहास में सांगा के नाम से अधिक प्रख्यात है का राज्याभिषेक 1509 ई. में हुआ जब राणा कुंभा की निर्मम हत्या 1467 ई. में ही कर दी गई थी। यह 42 वर्ष का समय मेवाड़ के राजनीतिक इतिहास में बड़ी उथल-पुथल का रहा। सिंहासन प्राप्ति के लिए किए गये प्रयास इस उथल-पुथल के प्रमुख कारण रहे। उन विषम परिस्थितियों में राणा सांगा ही मेवाड़ के कीर्ति कलश रहे। वे पश्चिमी भारत के हिन्दू राजा और राजपूत सरदारों के सर्वमान्य नेता बनकर रहे। भारत में मुगल सत्ता का संस्थापक बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है, “जब उसने (बाबर ने) भारत पर आक्रमण किया था, हिन्दुस्तान में सांगा सर्वाधिक बलवान सम्राट थे और उन्होंने वर्तमान उच्च महत्व अपनी वीरता और तलवार से प्राप्त किया था।”

हुमायूँ और राजपूत- 1527 ई. में राणा सांगा की पराजय के बाद राजपूतों की एकता समाप्त हो गई। मेवाड़ उस समय कानौता व बसवा तक विस्तृत था। अजमेर, रणथंभौर तथा उसके निकट के स्थानों पर भी मेवाड़ का प्रभुत्व स्थापित था। बूंदी राज्य के हाड़ा शासक भी मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करते थे।

राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज (संत मीरा का पति) की राणा सांगा के जीवनकाल में मृत्यु हो चुकी थी। राणा सांगा ने अपनी रानी कर्मवती के प्रभाव में आकर अपने विशाल राज्य को अपने जीवन काल में ही अपने पुत्रों में बांट दिया था। रणथंभौर तथा पचास-साठ लाख की जागीर उसने अपने पुत्र विक्रमादित्य तथा ऊदा को दे दी थी। शेष राज्य का स्वामी रतनसिंह को बना दिया था। परन्तु राज्य का विभाजन कर राणा ने बड़ी राजनीतिक भूल की। इसके दुष्परिणाम शीघ्र ही दिखाई देने लगे। रानी कर्मवती रतनसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर नहीं देख सकी। रानी ने इसका विरोध किया। उसने रतनसिंह को मेवाड़ की गद्दी से हटाने व विक्रमादित्य को बिठाने के लिए बाबर तक से सहायता मांगी किन्तु अन्य बातों में व्यस्त होने के कारण बाबर मेवाड़ के पारिवारिक झगड़ों से लाभ नहीं उठा सका।

मेवाड़ का गौरव शनैः शनैः घटता जा रहा था। रानी कर्मवती के चचेरे भाई हाड़ा सूरजमल और रतनसिंह के संबंध दिनों दिन कटु होते जा रहे थे। जनवरी 1531 में रतनसिंह ने मालवा पर आक्रमण भी किया, परन्तु वह पूर्व का गौरव नहीं लौटा सका।

उधर अफगान बहादुरशाह की शक्ति दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। इसी अंतराल में शिकार खेलता हुआ रतनसिंह बूंदी के समीप जा पहुँचा। आमंत्रण पर सूरजमल भी वहीं पहुँचा। मार्च-अप्रैल 1532 ई. में दोनों आपस में लड़ मरे। इस तरह हाड़ा तथा सीसोदिया के परम्परागत झगड़े की नींव पड़ी।

रतनसिंह के उपरान्त विक्रमादित्य मेवाड़ का राणा 1531-36 बना। इससे रणथंभौर का विवाद तो समाप्त हो गया, किन्तु विक्रमादित्य क्षुद्र बुद्धि तथा अयोग्य शासक था। उसके और सामंतों के नहीं बनती थी। आपसी क्लेश से मेवाड़ की महिमा और घट गई।

मेवाड़ के दक्षिण में बागड़ राज्य था। 1530 ई. में बहादुरशाह ने बागड़ पर चढ़ाई कर दी। रावल उदयसिंह ने अपने जीवनकाल में बागड़ का पूर्वी भाग अपने छोटे पुत्र जगमल को दे दिया था। इस कारण उसका ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज नाराज हो गया था। खानवा के युद्ध में उदयसिंह की मृत्यु के उपरान्त पृथ्वीराज गद्दी पर बैठा। उसने पूर्वी भाग पर भी अधिकार कर लिया। बहादुरशाह ने पृथ्वीराज को उसके पिता द्वारा किए गये बंटवारे को मनवाने के लिए बाध्य किया। इस झगड़े का परिणाम यह निकला कि जगमल ने बांसवाड़े नवीन राज्य की स्थापना और कर ली। परन्तु दो राज्यों में विभक्त हो जाने के कारण बागड़ एक कमजोर राज्य हो गया।

मुगल सम्राट अकबर एवं राजपूत- हुमायूँ ने राजपूतों के अच्छे संबंध बनाये रखे। लेकिन मुगल बादशाह जलाऊद्दीन मोहम्मद अकबर (1558-1605) ने मुगल राजपूत संबंधों को एक नया रूप दिया अकबर ने अपने साम्राज्य को अफगान से सुरक्षित नहीं समझा और न ही अफगानों से सहयोग की उम्मीद रखी। अकबर अपने साम्राज्य पर पूरी तरह मुगलों का एकाधिकार स्थापित करने की कोई योजना नहीं बनाई थी। यह एक स्थापित ऐतिहासिक तथ्य है कि अकबर ने मेवाड़ जैसे राजपूत राज्य पर हमला किया क्योंकि इसके शासक राणा प्रताप सिंह ने अकबर की प्रभुसत्ता को मानने से इंकार कर दिया था। इस तरह कुछ राजपूत शासकों को शक्ति द्वारा एवं कुछ को भैजी एवं वैवाहिक संबंधों द्वारा अपने सहयोगी एवं अधीन शासक बनाया। अकबर ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए राजपूतों को एक शासक वर्ग का ही हिस्सा माना और मुगल साम्राज्य का सबसे बड़ा हितैशी राजपूतों को ही माना। अकबर जब अपने राज्यारोहण के पश्चात् आगरा पहुँचा तो आमेर का राजा भारमल उससे मुलाकात करने के लिए आगरा आया। 1562 ई. में जब अकबर खाजा मुइन-उद्दीन चिश्ती की कीजियारत करने अजमेर जा रहा था। तो कछवाहा राजा भारमल अकबर से मिला और उससे गुजारिश की यह मेवाड़ के गवर्नर मुहम्मद शरफुद्दीन को आमेर के खिलाफ नीति को रोके। अकबर ने राजा भारमल को हर संभव सहायता का भरोसा दिलाया। इस मुलाकात से ही अकबर और भारमल के बीच एक राजनैतिक मैत्री संबंध की स्थापना होती है। अकबर की आमेर कछवाहा खानदान से मित्रता होने पर मुगल सम्राट को सिर्फ राजा भारमल का ही सहयोग नहीं मिला, बल्कि पूरे राजपूताना में मुगल-राजपूत संबंधों का एक नया अध्याय शुरू हुआ। अकबर ने आमेर के बाद दूसरे राजपूताना के राज्यों से संबंध स्थापित करना

शुरू किया। हालांकि राजपूताना के सबसे ताकतवर राज्य मेवाड़ ने अकबर के मुगल-राजपूत संघ में शामिल होने से मना कर दिया, मारवाड़, बीकानेर और जैसलमेर जैसे राज्यों ने अकबर की प्रभुसत्ता को स्वीकार किया, जिसकी वजह से अकबर को ना सिर्फ मेवाड़ के खिलाफ एक वृहत युद्ध योजना लागू करने की प्रेरणा मिली, बल्कि राजपूतों के सहयोग के जरिये पूरे भारतवर्ष में एक विशाल मुगल साम्राज्य बनाने का मौका भी मिला। अकबर ने जिस मुगल-राजपूत संघ की स्थापना की वह उसके उत्तराधिकारियों द्वारा जारी रखा गया।

राजा मानसिंह एवं मुगल- मुगल सम्राट अकबर और आमेर के कछवाहा खानदान की मित्रता तीन पहलुओं पर आधारित थी, पहला मुगल राजपूत वैवाहिक संबंध, दूसरा राजपूतों को मुगल प्रशासनिक सेवाओं में शामिल किया जाना और तीसरा राजपूतों द्वारा नियमित रूप से मुगलों को सैनिक सेवा प्रदान करना और अपने राज्य की आय का एक भाग के रूप में मुगल शासकों को देना। जहाँ तक अकबर और आमेर राजा भारमल के बची वैवाहिक संबंध की बात है, तो यह सही है कि भारमल ने अपनी बेटी हरका बाई का विवाह अकबर के साथ किया था। इलाहाबाद स्तम्भ के समुद्र गुप्ता के थिरलरलेचर से पता चलता है कि सभी अधीनस्थ शासकों के लिए यह आवश्यक था कि वो शाही खानदान में अपनी एक पुत्री का विवाह करे। इसी तरह से अलाउद्दीन खिलजी 1296-1316 ने देवगिरी के राजा राम देव की पुत्री के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया और 1485 में गुजरात के शासक मुहम्मद शाह ने ईडर के शासक राजा मान की पुत्री के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया।

अकबर के पूरा शासन काल का इतिहास यह दर्शाता है कि उसकी राजपूत नीति को सफल बनाने में सबसे ज्यादा कछवाहा राजपूतों का योगदान था। इस बात को अकबर भी स्वीकार करता था। इसलिए उसने कछवाहा खानदान के राजा भारमल, मगशन दास और राजा मानसिंह को सबसे बड़ी अपना विश्वास पात्र बना रखा था। अकबर और कछवाहा राजा संबंध दोनों मुगलों और राजपूतों के लिए फायदेमंद साबित हुए। एक तरफ मानसिंह जैसे सेना नायक ने अकबर की पूरे भारत वर्ष में मुगल साम्राज्य स्थापित करने में मदद की और दूसरी तरफ अकबर ने कछवाहा राजपूतों को मान सम्मान से नवाजा और उनके राज्य की खुद मुख्तारी बनाये रखने में पूरी मदद की। आइन-ए-अकबरी के अनुसार अकबर के 27 महत्वपूर्ण मनसबदार राजपूत थे, उनमें से 13 सिर्फ कछवाहा खानदान से थे। कछवाहा खानदान की प्रतिष्ठा मुगल बादशाह शाहजहाँ 1628-58 और औरंगजेब 1658-1707 के जमाने भी बनी रही। राजा जयसिंह इन बादशाहों के सरसे बड़े विश्वास पात्र थे। राजा रायसिंह एवं मुगल मुगलों ने बीकानेर राज्य के साथ भी मित्रता पूर्वक संबंध बनाये रखे। 1570 से मुगलों और बीकानेर के राजपूत शासकों के बीच राजनीतिक सम्बन्धों का दौर शुरू होता है। जब अकबर नागौर में था तब बीकानेर के राजा राय कल्याण मल अपने बेटे राजा रायसिंह के साथ मुगल सम्राट से मिला। अकबर ने कल्याण मल के भाई को बेटी से विवाह किया। दोनों कल्याण मल और राजा रायसिंह को अकबर ने मुगल प्रशासनिक सेवा में शामिल किया। अकबर ने रायसिंह को जोधपुर और सिरोही का भी कार्य भार सौंपा। राजा राम

सिंह ने मुगलों की सेवा में कोई कमी नहीं रखी। इब्राहीम मिर्जा जो कि अकबर का विरोधी था, जब गुजरात से भाग कर नागौर पर अधिकार कर लिया, उस वक्त रायसिंह ने जोधपुर के राजा रामसिंह के साथ मिलकर मिर्जा इब्राहीम पर आक्रमण कर दिया और मिर्जा को नागौर से खदेड़ दिया।

औरंगजेब राजा जसवंत सिंह के पुत्र अजीत सिंह को मनसब देने को तैयार हो गया, लेकिन उसने अजीत सिंह को जसवंत सिंह का उत्तराधिकारी मानने से इंकार कर दिया। जिसकी वजह से 1679 से मुगल-राजपूत संबंध खराब हुए और यह मुगल-राजपूत दोनों के हितों के खिलाफ सिद्ध हुआ।

सवाई राजा जयसिंह एवं मुगल- मुगल सम्राट अकबर के जमाने से ही कछवाहा राजपूतों का मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में एक अहम भूमिका थी। राजा भारमल, भगवानदास और राजा मानसिंह ने अकबर के अन्तर्गत विभिन्न पदों पर आसीन हुए थे और अकबर के साम्राज्य विस्तार में देश के अनेकों हिस्सों में सेनानायक के रूप में कार्य किया था। जयसिंह की योग्यता और मुगल साम्राज्य के प्रति निष्ठा को औरंगजेब ने पूरी तरह से स्वीकार किया और उन्हें मुगल साम्राज्य की नीतियों में भागीदार बनाया। औरंगजेब के समय में राजा जयसिंह मुगल साम्राज्य का सबसे महत्वपूर्ण मनसबदार और उन्हें 7000 जात और उदार का मनसब प्रदान किया। औरंगजेब ने उन्हें गुजरात और बाद में दक्षिण का गवर्नर नियुक्त किया। औरंगजेब ने दक्षिण के समस्त अमीरों एवं मनसबदारों को राजा जयसिंह के अधीन रहकर कार्य करने का आदेश दिया। मिर्जा राजा जयसिंह दक्षिण से जिस मनसबदार की सिफारिश भेजता था, बादशाह उसे स्वीकार कर लेता था। 1667 में मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् भी कछवाहा राजपूतों और मुगलों के बीच भिन्नता पूर्वक समय रहे। राजा रामसिंह को औरंगजेब ने 5000 जात और 5000 सवार का मनसब प्रदान किया। रायसिंह से बादशाह काफी नाराज था क्योंकि उसने शिवाजी को शाही दरबार से भागने में मदद दी थी। फिर राजा जयसिंह की मृत्यु पर उस पर विशेष अनुकम्पा की गई और चार हजार के मनसब से सम्मानित किया था। आसाम अभियान उसके मनसब में एक हजार थी। शाह आलम ने राजा रामसिंह की वीरता तथा दक्षता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उसे चकल्क अफगानिस्तान की थानेदारी सौंपी थी। 1688 में जब राजा रामसिंह की मृत्यु हुई तो उनके उत्तराधिकारी राजा विशन सिंह को 3000 का मनसब मिला और मुगल सम्राट ने उन्हें मथुरा का फौजदार नियुक्त किया।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. डॉ. श्यामसिंह-रत्नावत, मुगल-राजपूत संबंध, 1526-1707 ई. गौतम बुक कम्पनी 260/05 राजमार्ग जयपुर, 302004, प्रथम संस्करण 2009
2. डॉ. अर्शीवादी लाल श्रीवास्तव-भातर का इतिहास, 1000-1707 ई. तक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक विक्रेता आगरा-3, 1991
3. बी.एन. लुणिया-मुगल साम्राज्य का उत्कर्ष 1526 से 1658 तक, 1986 द्वितीय संस्करण कमल प्रकाशन-54, प्रिंस यशवंत रोड इंदौर

4. डॉ. अवध बिहारी पाण्डेय-डी.फिल. मध्ययुगीन भारत 712-1761 ई., 1967 सेंट्रल बुक डिपो इलाहाबाद
5. डॉ. संजीव जैन, पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन भारत का आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास, 650 ई. 1707 ई. तक, 2008, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल
6. डॉ. अर्शीवादी लाल श्रीवास्तव-मुगलकालीन भारत, 1526-1803 ई. तक, 1983, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी इंदौर

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति एवं विकास

• निशा राठौर

•• जितेन्द्र सिंह

सारांश- शिक्षा मानव विकास की आधारशिला है। यह निर्विवाद है कि शिक्षा का कोई विकल्प नहीं है। आज वर्तमान में हम ने शिक्षा के बल पर अनेकों ऊंचाइयों को पार किया है। मनुष्य जन्म से ही अनौपचारिक रूप से परिवार व समाज से शिक्षा ग्रहण करने लगता है। औपचारिक शिक्षा की शुरुआत वह प्राथमिक स्कूलों से करता है, प्राथमिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा रूपी इमारत की बुनियाद है। शिक्षा किसी भी सभ्य समाज या राष्ट्र के विकास की प्रमुख सूचक होती है। देश की सुंदरता और जीवन शक्ति उसके शिक्षित कर्णधार पर टिकी होती है।

मुख्य शब्द- ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, मध्यान्ह भोजन, सर्व शिक्षा अभियान, निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा, अनुच्छेद

प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी व प्रथम सीढ़ी होती है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में “मैं देश के हर बच्चे की आंखों में आने वाले हिंदुस्तान की तस्वीर देखता हूँ।”¹ अर्थात् बच्चे हमारे देश की धरोहर ही नहीं बल्कि देश के कर्णधार व भविष्य निर्माता भी होते हैं। अतः देश की सरकार व प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य बनता है कि वह अपने नव ननिहालओं को उत्तम से उत्तम शिक्षा मुहैया कराएं। वर्तमान में सर्व शिक्षा अभियान व मध्यान्ह भोजन योजना जैसे अनेक कार्यक्रम सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की दिशा में निःसंदेह महत्वपूर्ण कदम हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकारों में शामिल करते हुए 86 वां संविधान संशोधन 2002 पारित किया गया। इसके तहत अनुच्छेद 45 में यह बात जोड़ी गई कि राज्य को सभी बच्चों के लिए शुरुआती देखभाल और शिक्षा व्यवस्था करने के लिए प्रयास करना होगा जब तक केवल 6 वर्ष के नहीं हो जाते। आज प्राथमिक शिक्षा में अध्ययन- अध्यापन शिक्षण पद्धतियों, कक्षा- कक्ष प्रक्रियाओं जैसे अनेकों प्रकार के मुद्दों में नवाचार व शैक्षणिक सुधार हेतु नित्य नूतन प्रयोग समय-समय पर किए जा रहे हैं। ताकि माध्यमिक व उच्च शिक्षा प्राप्त करने में किसी भी बच्चे को कोई कठिनाई सामने ना आए। इसीलिए राज्य सरकारें प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए नई नई योजनाएं बनाती हैं।

• एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा
•• शोधार्थी, इतिहास विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा

प्रस्तावना- शिक्षा सामाजिक विकास के महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जिसके द्वारा व्यक्ति का नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, एवं बौद्धिक विकास का होना स्वाभाविक है। इसके माध्यम से व्यक्ति का जीवन सफल एवं सार्थक बनता है। शिक्षा से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है और मानवीय गुणों का विकास होता है। जो देश समाज और विश्व कल्याण के लिए आवश्यक है। इसलिए शिक्षा का महत्व हर युग में रहा है और हर युग में शिक्षा व्यवस्था अपने-अपने ढंग से प्रचलित थी। भारत में प्राथमिक शिक्षा गुरुकुलों मठों, व मकतबों में दी जाती थी लेकिन आजादी के बाद भारत में प्राथमिक शिक्षा को लेकर कोठारी आयोग 1964-66 ने महत्वपूर्ण कदम उठाए। कोठारी आयोग ने अपने प्रतिवेदन में पूर्व प्राथमिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा का एक अंग स्वीकार करते हुए कहा कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए प्रत्येक राज्य में विकास केंद्र तथा जनपद स्तर पर पूर्व प्राथमिक शिक्षा केंद्र स्थापित किए जाएं।¹ 1990 के दशक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के माध्यम से पूर्व प्राथमिक शिक्षा को सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया तथा पूर्व बाल्यावस्था एवं शिक्षा को विशेष महत्व देते हुए कहा गया कि हमें अब समन्वित बाल विकास सेवा कार्यक्रम प्रारंभ करना चाहिए। इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में पूर्व प्राथमिक शिक्षा का जो प्रसार हुआ उसे जनसंख्या के अनुपात में संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। पूर्व प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में स्वैच्छिक संगठनों तथा निजी प्रयासों की भूमिका सराहनीय है। भारत में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिए निम्न प्रकार के विद्यालय चल रहे हैं, जैसे- किंडर गार्डन स्कूल, नर्सरी स्कूल, मांटेसरी स्कूल, पूर्व बेसिक विद्यालय, शिशु शिक्षा मंदिर, अन्य विद्यालय प्रमुख हैं।²

प्राथमिक शिक्षा राष्ट्रीय जीवन का महत्वपूर्ण व सर्वश्रेष्ठ अंग है। यहीं से व्यक्ति माध्यमिक व उच्च शिक्षा के लिए आधार प्राप्त करता है। सरल शब्दों में कहें तो सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय की स्थापना तथा सांप्रदायिकता के विनाश के लिए प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। खुल्लर समिति के अनुसार “देश शैक्षिक पुनर्जागरण के दौर से गुजर रहा है शिक्षा में निवेश धीरे-धीरे बढ़ रहा है आज आवश्यकता इस बात की है कि पूरा समाज प्राथमिक शिक्षा के प्रति जागरूक हो क्योंकि यही शिक्षा बालक के भविष्य की नींव है यह सहज ही महसूस किया जा सकता है एक कमजोर नींव से एक मजबूत और सुंदर कैसे बन सकेगा।”³ यह सर्वविदित है कि बच्चे राष्ट्र की आंखें होते हैं और शिक्षा उसकी रोशनी तो यह आकलन स्वयं ही कर लेना चाहिए कि अंधी आंखों से विकास और खुशहाल उत्तर प्रदेश का सपना कैसे साकार होगा।

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के लिए चलाई जा रही प्रमुख योजनाएं एवं कार्यक्रम- 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए अधिक प्रयास किए गए। इससे पहले प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के लिए इतने प्रयास नहीं किए गए। 1972 से पूर्व उत्तर प्रदेश में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय स्थानीय निकायों के प्रबंध से संबंधित अधिनियम द्वारा गठित जिला परिषद एवं नगर निगम एवं नगर पालिका द्वारा नियंत्रित किए जाते थे। प्रदेश में साक्षरता की प्रगति की आवश्यकता को समझते हुए प्रदेश सरकार द्वारा सुनियोजित परियोजनाओं के माध्यम से हस्तक्षेप किए जाने का अनुभव किया गया। जिसके परिणाम स्वरूप उत्तर प्रदेश शासन द्वारा बुनियादी

शिक्षा पर बल देते हुए उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा परिषद का गठन अनिवार्य समझा गया। इसे मूर्त रूप देने के लिए दिनांक 25.07.1972 को “उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद अधिनियम”⁵ के नाम से गठित कर दिया गया। इस अधिनियम का क्षेत्र उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा परिषद के गठन को एक व्यापक रूप प्रदान करना था। जिसमें प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं, नॉर्मल स्कूल और अन्य बुनियादी शिक्षा के प्रशिक्षण विद्यालयों का प्रशासन, अध्यापकों का वेतन, नियुक्तियाँ, विद्यालयों के लिए सुविधाएं उपलब्ध कराना आदि को सम्मिलित किया गया। इस अधिनियम को 1975-77 में संशोधित कर और अधिक व्यापक बना दिया गया। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में वर्षों पुरानी विकेंद्रित शिक्षा व्यवस्था को उत्तर प्रदेश शासन के अंतर्गत केंद्रित कर दिया गया।

इसके बाद उत्तर प्रदेश सरकारों द्वारा एक के बाद एक योजना प्राथमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा रखने के लिए निरंतर रूप से बनाई गई। जिसमें से कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं का जिक्र इस शोध पत्र में किया जा रहा है।⁶ जैसे-

- राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
- ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना।
- उत्तर प्रदेश सभी के लिए शिक्षा परियोजना।
- जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम।
- मध्यान्ह भोजन योजना।
- शिक्षा मित्र योजना।
- शिक्षा गारंटी योजना।
- सर्वशिक्षा अभियान योजना।
- स्कूल चलो अभियान।
- उत्तर प्रदेश निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार नियमावली 2011।

आदि इस प्रकार की योजनाएं उत्तर प्रदेश की प्राथमिक शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए वर्तमान में मौजूद हैं।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद- प्राथमिक विद्यालयों के लिए पाठ्यपुस्तक के निर्माण, पत्रकार एवं अन्य साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन करने के लिए लखनऊ में 1981 ईस्वी में इस परिषद की स्थापना की गई। इसके गठन का मूल उद्देश्य शोध प्रावधान, प्रकाशन एवं विस्तार कार्य है। साथ ही समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्रात्मक एवं अन्य घटकों जैसे सांस्कृतिक धरोहर, मानवीय मूल्यों, नर-नारी समानता, वैज्ञानिकदृष्टिकोण का विकास आदि को क्रियान्वित करना है।

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना- इस योजना की शुरुआत 1987-1988 में हुई। इस योजना के तहत विद्यालय की बिल्डिंग, शिक्षक उपकरण, खेल सामग्री, श्यामपट्ट तथा फर्नीचर, लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग प्रसाधन, पेयजल आदि बेसिक जरूरतों को इसमें शामिल किया गया।

उत्तर प्रदेश सभी के लिए शिक्षा परियोजना- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए 1993 में यह परियोजना लागू की गई। इसे सुचारू रूप से संचालित करने के लिए इसके संगठनात्मक स्वरूप में दो पक्ष प्रबंधकीय और अकादमिक शामिल हैं। प्रबंधकीय

व्यवस्था के अंतर्गत राज्य स्तर पर सबके लिए शिक्षा परियोजना परिषद्, जनपद स्तर पर जिला शिक्षा परियोजना समिति, विकासखंड स्तर पर ब्लॉक शिक्षा समिति, ग्राम स्तर पर ग्राम शिक्षा समिति और अकादमिक व्यवस्था के अंतर्गत राज्य स्तर पर राज्य शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशिक्षण संस्थान, जनपद स्तर पर जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, विकासखंड स्तर पर ब्लॉक संस्थान के केंद्र, न्याय पंचायत स्तर पर न्याय पंचायत संसाधन केंद्र को शामिल किया गया है।⁷

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम- इस कार्यक्रम के माध्यम से बालिकाओं की शिक्षा, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बच्चों तथा विकलांग बच्चों की शिक्षा एवं बाल श्रमिकों की शिक्षा के विशेष कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं उत्तर प्रदेश में इसकी शुरुआत 1977-1998 में हुई।

पोषाहार वितरण योजना या मध्याह्न भोजन योजना- इस योजना का मुख्य उद्देश्य बच्चों को पुष्टाहार सुलभ कराने के साथ-साथ बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की ओर आकर्षित करना और उनकी नामांकन की गति को बढ़ाना है। 15 अगस्त 1995 को संपूर्ण उत्तर प्रदेश में इसे लागू किया गया। प्रथम चरण में 38 जिलों के 248 विकास खंडों को चुना गया द्वितीय चरण में 643 ने विकास खंडों को इसमें शामिल किया गया। इस प्रकार अब यह योजना उत्तर प्रदेश के 891 विकास खंडों में चल रही है। इस योजना के अंतर्गत प्रति छात्र जिसकी माह में 80 परसेंट उपस्थिति है उसे 3 किलोग्राम की गेहूँ या चावल प्रतिमाह की दर से वितरित किया जा रहा था। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 28 नवंबर 2001 को एक निर्देश जारी किया गया उस निर्देश को ध्यान में रखकर प्रदेश में 1 सितंबर 2004 से प्राथमिक विद्यालयों में पका हुआ भोजन उपलब्ध कराए जाने की योजना प्रारंभ कर दी गई। इस योजना के अंतर्गत खिचड़ी के स्थान पर दूध, फल, अंडे, रोटी, दाल, हरी सब्जियाँ आदि बच्चों के लिए बनाए जाने के निर्देश दिए गए वर्तमान में है योजना लागू है।

शिक्षा मित्र योजना- इस योजना की शुरुआत उत्तर प्रदेश में प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की कमी को दूर करने के लिए की गई जहां प्राथमिक विद्यालय में शिक्षकों की कमी थी वहां शिक्षामित्र उप शिक्षक के रूप में तैनात किए गए और वेतन की जगह इन मानदेय पर रखा गया लेकिन वर्तमान में शिक्षामित्रों को निष्कासित कर दिया गया है और उनकी जगह पर स्थाई शिक्षकों की नियुक्ति की जा रही है।

शिक्षा गारंटी योजना- उत्तर प्रदेश में इस योजना का कार्यान्वयन सन 1999-2000 में हुआ इसमें उन बच्चों को शामिल किया गया जो स्कूली शिक्षा से वंचित रह गए थे। उन बच्चों के लिए अलग से स्कूल खोलने का प्रावधान था वर्तमान में इन केंद्रों को प्राइमरी स्कूलों में परिवर्तित कर दिया गया है या तो बंद कर दे गए हैं।

सर्व शिक्षा अभियान योजना- 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए प्रारंभिक शिक्षा को मूलभूत अधिकार बनाने के लिए सदन ने 86 वां संविधान संशोधन किया और अधिनियम 2002 पारित किया। राज्यों के शिक्षा मंत्रियों का जो सम्मेलन अक्टूबर 1998 में संपन्न हुआ उसकी सिफारिशों के आधार पर सर्व शिक्षा अभियान योजना विकसित की गई। जिसमें सभी को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया इसे नवंबर 2000 में निर्धारित किया गया। सर्व शिक्षा अभियान के लक्षण निम्न प्रकार हैं⁸ -

- 6 से 14 वर्ष के सभी बालक वर्ष 2003 तक स्कूल शिक्षा गारंटी योजना केंद्र या ब्रिज कोर्स में जाएं।
- वर्ष 2007 तक सभी बालकों की 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण हो जाएं।
- जीवनोपयोगी शिक्षा पर बल देते हुए संतोषजनक गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया जाए।
- वर्ष 2007 तक प्राथमिक स्तर पर ही लिंगभेद जातिभेद आदि को समाप्त किया जाए।
- वर्ष 2010 तक बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या 0 की जाए।

स्कूल चलो अभियान- वर्ष 2004 में उत्तर प्रदेश के समस्त जिलों में स्कूल चलो अभियान प्रारंभ किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य विद्यालय ना जाने वाले बच्चे और पढ़ाई में रुचि रखने वाले बच्चों को विद्यालय तक पहुंचा कर शिक्षा की असमानता एवं अवरोध को समाप्त करना है।

उत्तर प्रदेश निशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार नियमावली 2011- निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार 2009 के तहत उत्तर प्रदेश में निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार नियमावली 2011 को लागू किया। गया जो आठ भागों में विभक्त है। जिसमें विभिन्न धाराओं और उप धाराओं के माध्यम से निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार के विशेष प्रावधान किए गए हैं।⁹

निष्कर्ष- यह कथन सत्य है के प्राथमिक शिक्षा राष्ट्र व राज्य की प्रगति का आधार है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा की प्रगति के बिना शिक्षा का कोई भी स्तर ऊंचा नहीं उठ सकता। किंतु शिक्षा की नींव, प्राथमिक शिक्षा इस समय सरकार की प्रयोगशाला बन कर रह गई है। सन् 1972 में जब प्रदेश में बेसिक शिक्षा अधिनियम बना तब से आज तक अनेकों नियमों व कानूनों में परिवर्तन हुए सरकारें बदली सबने अपने-अपने ढंग से प्राथमिक शिक्षा का प्रयोग किया फिर भी आज तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध नहीं हो पा रही है। विभिन्न सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन के बाद भी प्राथमिक विद्यालयों की दुर्गति हो रही है। विद्यालयों में बच्चे हैं तो पर्याप्त शिक्षक नहीं, कहीं शिक्षक हैं तो पर्याप्त बच्चे नहीं, भवन है पर संसाधन उपलब्ध नहीं, किसी विद्यालय की बाउंड्रीवाल नहीं, तो कहीं पर पानी का हेड पंप नहीं, कहीं पर शौचालय नहीं तो कहीं पर बिजली व पंखों की व्यवस्था नहीं वर्तमान में उत्तर प्रदेश में प्राथमिक विद्यालय की स्थिति बहुत खराब है। इन में पढ़ने वाले बच्चे संसाधनों की कमी से जूझते हैं। सुविधाओं के अभाव में शिक्षक पढ़ा नहीं पाते हैं। उनके लिए भी यह बहुत बड़ी परेशानी है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सूत्र बताते हैं कि शिक्षकों की भारी कमी के कारण सर्व शिक्षा अभियान अपने निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने में विफल होता नजर आ रहा है। अतः हम यह कह सकते हैं कि स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा को लेकर योजनाएं तो बहुत बनी लेकिन जमीनी स्तर पर कुछ योजना ही सफल हो पाई है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. प्राथमिक शिक्षक, शैक्षिक संवाद पत्रिका, अक्टूबर 2015-जनवरी 2016
2. शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 1964-66 “शिक्षा और राष्ट्रीय विकास” शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
4. एस.पी. सुखिया “विद्यालय प्रशासन एवं संगठन” विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. सरदिंदु आर. एस. त्यागी “उत्तर प्रदेश में शैक्षिक प्रशासन” वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2002
6. प्रो. एस.पी. गुप्ता “भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्याएं” शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2006
7. उत्तर प्रदेश सभी के लिए शिक्षा परियोजना रिपोर्ट लखनऊ 2012
8. पी.एल. मल्होत्रा “भारत में विद्यालय शिक्षा”, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् 1986
9. असर रिपोर्ट उत्तर प्रदेश ग्रामीण 2012

राष्ट्रीय शिक्षा नीति: 1986 की शैक्षिक जगत को देन

• रवेन्द्र राजपूत

सारांश- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के ऊपर संसद में सन् 1986 के बजट सत्र में चर्चा की गई थी तथा इसे स्वीकार किया गया था। चर्चा के दौरान मानव संसाधन मंत्री ने शिक्षा नीति को लागू करने के लिए कार्यान्वयन कार्यक्रम तैयार करने तथा उसे संसद के मानसून सत्र में प्रस्तुत करने का आश्वासन दिया था। इस आश्वासन की पूर्ति हेतु मानव संसाधन मंत्रालय ने कार्यान्वयन कार्यक्रम तैयार करने की दिशा में प्रयास करने प्रारम्भ कर दिए। सर्वप्रथम 23 कार्य दल गठित किए गए, जिनमें प्रख्यात शिक्षाशास्त्री, विशेषज्ञ एवं केन्द्रीय व राज्य सरकारों के वरिष्ठ प्रतिनिधियों को संयुक्त किया गया। प्रत्येक कार्यदल को राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में समाहित होने वाला एक-एक विशिष्ट विषय दिया गया। कार्यदलों से अनुरोध किया गया कि वे उन्हें दिए गए विषय से सम्बंधित वर्तमान स्थिति का अवलोकन करें तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में किए गए संकल्पों के अनुरूप विस्तृत कार्य योजना प्रस्तुत करें। सीमित समय के बावजूद कार्यदलों ने अपना कार्य पूरा करके जुलाई 1986 में अपनी आख्यायें प्रस्तुत कर दी। कार्यदलों की इन आख्याओं पर मानव संसाधन विकास मंत्री के द्वारा अनेक बैठकों में विचार-विमर्श किया गया। तत्पश्चात् 20 जुलाई 1986 को राज्य सरकारों के शिक्षा सचिवों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्रशासकों की एक कांफ्रेंस आहूत की गई कांफ्रेंस में किए गए विचार-विमर्श तथा दिए गए सुझावों पर ध्यान-पूर्वक विचार करके राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को लागू करने के लिए कार्यान्वयन कार्यक्रम लागू किया गया। तैयार किए गए कार्यान्वयन कार्यक्रम पर 1 व 2 अगस्त 1986 को नई दिल्ली में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद (C.A.B.E.) की बैठक में विचार-विमर्श किया गया। बैठक में भाग लेने वाले शिक्षा मंत्रियों, प्रशासकों तथा शिक्षाशास्त्रियों के द्वारा दिए गए सुझावों को ध्यान में रखकर कार्यान्वयन कार्यक्रम को अंतिम रूप दिया गया।

मुख्य शब्द- संसाधन कार्यान्वयन, विशिष्ट, कार्यदल, अनुरोध, अवलोकन, आहूत, द्योतक, आलोचनीय, क्रिया-कलापों, जनसमुदाय, सहभागिता, कार्यान्वयन, आहूत

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया के दौरान भारत सरकार ने

• असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, श्री वार्धेय महाविद्यालय, अलीगढ़

अगस्त 1985 में एक दस्तावेज- “शिक्षा की चुनौती : नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य” जारी किया था। इस दस्तावेज को जारी करने का उद्देश्य शिक्षा नीति के सम्बन्ध में देशव्यापी विचार विमर्श को प्रोत्साहित करना था जिससे कि नई शिक्षा नीति के निर्माण के लिये पर्याप्त आधार तैयार हो सके तथा समाज के विभिन्न वर्ग अपने विचारों, माँगों तथा आवश्यकताओं को नई नीति के निर्माणकों के सम्मुख रख सकें। आशा के अनुरूप इस दस्तावेज पर सम्पूर्ण भारत में पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ तथा विभिन्न वर्गों-बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक, प्रशासकीय आदि ने अपनी-अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। कुछ ने इस दस्तावेज में प्रस्तावित नीति का स्वागत किया तथा कुछ ने उस पर आपत्तियाँ उठाईं। मई 1986 में भारत सरकार ने शिक्षा नीति-1986 का प्रारूप तैयार करके जारी कर दिया। मानव संसाधन विकास मन्त्रालय ने इस नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति को सुचारू ढंग से लागू करने के लिए एक कार्यान्वयन कार्यक्रम (Programme of Action-POA) भी तैयार किया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 को कुल बारह खण्डों में बाँटा गया है जिनमें कुल 157 बिन्दुओं के - अन्तर्गत नई शिक्षा नीति को लिपिबद्ध किया गया है। जो इस प्रकार हैं:-

खण्ड एक:- प्रस्तावना (Introductory):- राष्ट्र आर्थिक एवं तकनीकी विकास के एक ऐसे दौर में पहुँच गया है जबकि उपलब्ध संसाधनों से अधिकतम लाभ उठाने तथा परिवर्तन का लाभ सभी वर्गों तक पहुँचाने के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक मार्ग शिक्षा है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने जनवरी 1985 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण करने की घोषणा की थी।

भारतीय शिक्षा आज दोराहे पर खड़ी है। न तो सामान्य रेखीय वृद्धि और न ही सुधार की वर्तमान गति तथा प्रकृति सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। इसके अतिरिक्त नई चुनौतियों तथा सामाजिक आवश्यकताओं ने सरकार के लिए यह जरूरी कर दिया है कि वह एक नई शिक्षा नीति का निर्माण करें तथा उसे क्रियान्वित करें।

खण्ड दो:-

शिक्षा का सार तथा भूमिका (The Essence and Role of Education):- हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा सभी के लिये है। हमारे सर्वांगीण विकास-भौतिक तथा आध्यात्मिक का यह आधार है। शिक्षा संवेदनशीलता तथा प्रत्यक्षीकरण को परिमार्जित करती है जो राष्ट्रीय एकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा मस्तिष्क व आत्मा की स्वतन्त्रता को बढ़ाते हैं। इस प्रकार से शिक्षा संविधान में स्वीकृत समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातान्त्रिकता के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न स्तरों के लिए, शिक्षा मानव-शक्ति को विकसित करती है।

खण्ड तीन:-

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली (National System of Education):- शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली से अभिप्राय है कि एक निश्चित स्तर तक, सभी छात्रों की जाति, मत या लिंग के भेदभाव के बिना, तुलनीय गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुँच हो।

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली में एक समान शिक्षा संरचना समाहित है। 10 + 2 + 3

संरचना को राष्ट्र के सभी भागों में स्वीकार किया जा चुका है। प्रथम दस वर्षीय शिक्षा को प्रायः विभाजित करने के लिये 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा तथा 2 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा वाली प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली के प्रयास किये जायेंगे जिसका अनुगमन दो वर्ष की हाई स्कूल शिक्षा करेगी।

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली राष्ट्रीय-पाठ्यक्रम ढाँचे पर आधारित होगी जिसमें पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य अंग तथा शेष लोचनीय अंग होंगे।

उच्च शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा में अन्तर्क्षेत्रीय गतिशीलता के लिये प्रयास किया जायेगा।

शैक्षिक प्रत्यावर्तन, प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण, प्रौढ़ साक्षरता, वैज्ञानिकी व तकनीकी अनुसंधान के कार्यक्रमों को संसाधन सहायता प्रदान करने का उत्तरदायित्व राष्ट्र एक समग्र की तरह से उठायेगा।

शिक्षा प्रक्रिया का एक पोषक उद्देश्य जीवनपर्यन्त शिक्षा है। युवकों, गृहणियों, कृषकों, औद्योगिक मजदूरों तथा प्रोफेशनलों को अपनी शिक्षा जारी रखने के अवसर प्रदान किये जायेंगे। मुक्त एवं दूरस्थ अधिगम पर जोर दिया जायेगा।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC), अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा (AICTE), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) तथा भारतीय चिकित्सा परिषद (IMC) को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए सु-ढ किया जायेगा। एकीकृत योजना को लागू किया जायेगा। ये संस्थाएँ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद (NCERT), राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (NIEPA) तथा अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा संस्थान (IISTE) के साथ मिलकर शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में सहभागी होंगे।

यद्यपि राज्यों के शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्व अपरिवर्तित रहेंगे, परन्तु शिक्षा के राष्ट्रीय व एकीकृत स्वरूप को सुदृढ़ करने, गुणवत्ता व मानकों को बनाये रखने, विकास के लिए जरूरी मानवशक्ति को जानने व नियन्त्रित करने, अनुसंधान व उच्च अध्ययन की आवश्यकताओं की देखरेख करने; शिक्षा, संस्कृति व मानव संसाधन विकास के अन्तर्राष्ट्रीय पक्षों को देखने, तथा सम्पूर्ण राष्ट्र में शिक्षा के सभी स्तरों पर श्रेष्ठता के उन्नयन करने में केन्द्र सरकार अधिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करेगा।

खण्ड चार:-

समानता के लिए शिक्षा (Education for Equality)- नई शिक्षा नीति असमानता को दूर करने तथा शैक्षिक अवसरों की समानता पर विशेष ध्यान देगी। महिलाओं की स्थिति में आधारभूत परिवर्तन लाने के लिये शिक्षा का उपयोग किया जायेगा। स्त्री निरक्षरता तथा प्रारम्भिक शिक्षा तक महिलाओं की पहुँच के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के कार्य को द्रुतगामी प्राथमिकता दी जायेगी।

अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास में मुख्य बात उनको अन्य जातियों के समान लाना है। इसके लिए प्रोत्साहन, पूर्व मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना, लगातार सूक्ष्म योजना, अनुसूचित जातियों के अध्यापकों की नियुक्ति, तथा अनुसूचित जाति क्षेत्रों में स्कूलों, बाल-बाड़ियों तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना आदि उपायों को किया जायेगा।

अनुसूचित जनजातियों को अन्य जातियों के समान लाने के लिए जनजाति क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूल खोलने को प्राथमिकता देने, पाठ्यक्रम व जनजाति भाषाओं में अनुदेशन सामग्री विकसित करने, आवासीय स्कूल खोलना, प्रोत्साहन योजनाएँ बनाने जैसे उपायों को यथाशीघ्र लागू किया जायेगा।

शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े सभी लोगों को विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में उपयुक्त प्रोत्साहन दिया जायेगा। पर्वतीय व रेगिस्तानी जिलों, दूरवर्ती व अगम्य क्षेत्रों तथा द्वीपों में शिक्षा संस्थाओं का वांछित जाल फैलाया जायेगा।

शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जायेगा। अपंगों के लिए जिला मुख्यालयों में विशेष स्कूल खोले जायेंगे, उनके व्यावसायिक प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जायेगी, तथा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम को इस तरह से पुनर्गठित किया जायेगा कि अध्यापक अपंग छात्रों की समस्याओं से निबट सकें।

सतत शिक्षा के लिए केन्द्र स्थापित करके, नियोक्ताओं, ट्रेड संघों व सम्बन्धित सरकारी संस्थाओं के द्वारा, मजदूर शिक्षा के द्वारा, रेडियो, टेलीविजन फिल्म, जनसंचार माध्यमों के उपयोग के द्वारा, दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा के एक व्यापक कार्यक्रम को लागू किया जायेगा।

खण्ड पाँच:-विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुनर्गठन (Re-organisation of Education at different Stages:-

पूर्व बाल्यकाल परिचर्या व शिक्षा - पोषण, स्वास्थ्य तथा सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक व संवेगात्मक विकास की दृष्टि से पूर्व बाल्यकाल परिचर्या तथा शिक्षा (ECCE) को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी तथा इसे यथासम्भव एकीकृत बाल सेवा (ICDS) कार्यक्रमों से जोड़ा जायेगा।

प्रारम्भिक शिक्षा - प्रारम्भिक शिक्षा में दो बातों- (1) 14 वर्ष की आयु तक के बालकों के सार्वभौमिक स्थायित्व एवं (2) शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार पर जोर दिया जायेगा।

प्राथमिक स्कूलों में आवश्यक सुविधाओं का प्राविधान किया जायेगा। स्कूल छोड़ कर जाने वाले बालकों की समस्या का समाधान करने को उच्चतम प्राथमिकता दी जायेगी।

माध्यमिक शिक्षा- माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच को बढ़ाया जायेगा जिससे वर्तमान में छूट गये क्षेत्र भी माध्यमिक शिक्षा की पहुँच के अन्दर हो सकें।

विशिष्ट योग्यता या अभिवृत्ति वाले बालकों के लिए गति निर्धारक स्कूल (Pace Setting School) देश के विभिन्न भागों में खोले जायेंगे।

व्यावसायीकरण - व्यावसायीकरण शिक्षा के व्यवस्थित, योजनाबद्ध तथा दृढ़ता से लागू कार्यक्रम प्रस्तावित शैक्षिक पुनर्गठन के लिए आवश्यक है।

व्यावसायिक पाठ्यक्रम या संस्थाओं की स्थापना करने का उत्तरदायित्व सरकार एवं सरकारी व गैर सरकारी क्षेत्रों के नियोक्ताओं पर होगा।

नवसाक्षरों, प्राथमिक शिक्षा प्राप्त युवकों, स्कूल छोड़ देने वालों, कार्यरत व्यक्तियों तथा बेरोजगार या अर्ध-बेरोजगार व्यक्तियों को व्यावसायिक शिक्षा के

अनौपचारिक, गत्यात्मक तथा आवश्यकताओं पर आधारित कार्यक्रम भी उपलब्ध कराये जायेंगे।

सन् 1990 तक उच्च माध्यमिक छात्रों के दस प्रतिशत को तथा सन 1995 तक पच्चीस प्रतिशत को व्यावसायिक पाठ्यक्रम देने का प्रस्ताव है।

उच्च शिक्षा- वर्तमान उच्च शिक्षा संस्थाओं के एकीकरण तथा सुविधाओं के विस्तार पर जोर दिया जायेगा। उच्च शिक्षा व्यवस्था को हास से बचाने के लिए शीघ्र उपाय किये जायेंगे।

जब तक कि वर्तमान संबद्धक प्रणाली विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के एक अधिक स्वतन्त्र तथा सृजनशील संघ से प्रत्यावर्तित नहीं की जाती है, स्वायत्त कालिजों की संख्या को बढ़ाना होगा। विश्वविद्यालय में स्वायत्त विभागों को भी प्रोत्साहित किया जायेगा। पाठ्यक्रमों तथा कार्यक्रमों को पुनः रचित करना होगा। भाषायी योग्यता पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। संस्थाओं में न्यूनतम सुविधाओं का प्रावधान किया जायेगा तथा प्रवेश को क्षमता के अनुसार नियन्त्रित किया जायेगा। विश्वविद्यालयों में अनुसंधान को अधिक सहायता दी जायेगी तथा उच्च गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के उपाय किये जायेंगे।

खुला विश्वविद्यालय व दूर अधिगम- उच्च शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने तथा शिक्षा को जनतान्त्रिक करने के साधन के रूप में खुला विश्वविद्यालय प्रणाली आरम्भ की गई है। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय को सुदृढ़ किया जायेगा।

डिग्री की विलगता- चुने हुए क्षेत्रों में रोजगार को डिग्री से विलग करने की शुरुआत की जायेगी। विलगता उन सेवाओं में लागू की जायेगी जिनके लिए विश्वविद्यालय उपाधि योग्यता की आवश्यकता नहीं है। विलगता के साथ-साथ राष्ट्रीय परीक्षण सेवा (NTS) जैसी उपयुक्त मशीनरी स्थापित की जायेगी जो स्वैच्छिक आधार पर विभिन्न रोजगारों के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्तता जानने के लिए परीक्षण करेगी।

ग्रामीण विश्वविद्यालय- ग्रामीण विश्वविद्यालय का नया पैटर्न विकसित किया जायेगा। गाँधीजी की बेसिक शिक्षा की संस्थाओं तथा कार्यक्रमों को सहायता दी जायेगी।

खण्ड छह:- तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा (Technical and Management Education)- तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा के पुनर्गठन में 20वीं शताब्दी के अन्त तक की अनुमानित परिस्थितियों, विशेषकर, अर्थव्यवस्था, सामाजिक वातावरण उत्पादन व प्रबन्ध प्रक्रियाओं में होने वाले सम्भावित परिवर्तन, ज्ञान की तीव्र गति से बढ़ोत्तरी तथा विज्ञान व तकनीकी की विराट उन्नति को ध्यान में रखना होगा। क्योंकि कम्प्यूटर महत्वपूर्ण तथा सर्वत्र उपयोगी साधन बन गए हैं इसलिए कम्प्यूटरों का प्रारम्भिक ज्ञान तथा उनके उपयोग का प्रशिक्षण प्रोफेशनल शिक्षा का एक अंग होगा। महिलाओं, आर्थिक व सामाजिक रूप से कमजोर वर्गों तथा विकलांगों के लाभ के लिए तकनीकी शिक्षा के उपयुक्त औपचारिक तथा अनौपचारिक कार्यक्रम बनाये जायेंगे। क्योंकि तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा अधिक व्यय साध्य है, इसलिए लागत प्रभावशीलता के लिए तथा श्रेष्ठता बढ़ाने के लिए उपाय किये जायेंगे। तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा के प्रसार में अपनी भूमिका अदा करने के लिए प्रोफेशनल संघों को प्रोत्साहित एवं तैयार किया जायेगा।

खण्ड सात:-शिक्षा प्रणाली का क्रियान्वयन (Making the System Work)-सर्वोच्च बौद्धिकता, लक्ष्य की गम्भीरता तथा नवाचार व सृजनशीलता के लिए आवश्यक स्वतन्त्रता के वातावरण में शिक्षा का प्रबन्ध करने की आवश्यकता है। सभी अध्यापकों को पढ़ाना चाहिए तथा सभी छात्रों को पढ़ना चाहिए। अध्यापकों का अधिक उत्तरदायित्व, सुधरी छात्र सेवाएँ तथा व्यवहार के स्वीकृत मानकों पर जोर, संस्थाओं में अधिक सुविधाएँ तथा राष्ट्रीय या राज्यी मानदण्डों व मानकों के अनुरूप संस्थाओं का मूल्यांकन करने की व्यवस्था करनी होगी।

खण्ड आठ:-शिक्षा के पाठ्यक्रम तथा प्रक्रिया का अभिनवीकरण (Reorienting the Content and Process of Education)- शिक्षा के पाठ्यक्रम तथा प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक पाठ्यवस्तु से सु-ढ़ किया जायेगा। शिक्षा को सार्वभौमिक तथा सनातन मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिये। पुस्तकों तक सभी वर्गों के छात्रों की पहुँच आसानी से हो, इसके लिए प्रयास किये जायेंगे। पुस्तकों की गुणवत्ता सुधारने, अध्ययन आदतों को बढ़ाने, तथा रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहित करने के उपाय किये जायेंगे। लेखकों के हितों का ध्यान रखा जायेगा। वर्तमान पुस्तकालयों के सुधार तथा नयों की स्थापना के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाया जायेगा। सूचनाओं के प्रसारण, अध्यापकों के प्रशिक्षण, गुणवत्ता को बढ़ाने, कला एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता बढ़ाने, मूल्यों का विकास करने में शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जायेगा।

हिंसा, अलगाववाद आदि को बढ़ाने वाली तथा घातक प्रभाव वाली प्रवृत्तियों पर फिल्मों, रेडियो, टेलीविजन तथा अन्य जनसंचार साधनों में अंकुश लगाया जायेगा। कार्य अनुभव, जिसे सभी स्तरों की शिक्षा का आवश्यक अंग माना जाता है, को सुधार रूप से तैयार किये गये कार्यक्रमों के द्वारा प्रदान किया जाता है। गणित को सोचने, विचारने, विश्लेषण करने तथा तार्किक तालमेल के प्रशिक्षण का साधन समझना चाहिए। इसे न केवल एक विषय के रूप में वरन, विश्लेषण तथा तर्क से युक्त किसी भी विषय के सहगामी के रूप में स्वीकार करना चाहिए। विज्ञान शिक्षा को इस तरह से सुदृढ़ करना होगा कि यह बालकों में जिज्ञासा, सृजनशीलता, वस्तुनिष्ठता जैसी योग्यताओं तथा मूल्यों को विकसित करें।

विज्ञान शिक्षा कार्यक्रम इस तरह से बनाने चाहिये कि छात्र समस्या समाधान तथा निर्णय लेने के कौशल को सीखने योग्य बन सके तथा विज्ञान का स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग व जीवन के अन्य पक्षों से सम्बन्ध को खोजने योग्य बन सकें। खेलकूद तथा शारीरिक शिक्षा अधिगम-प्रक्रिया के अभिन्न अंग है तथा इनको मूल्यांकन में शामिल किया जाना चाहिए। युवकों को शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से राष्ट्रीय तथा सामाजिक विकास के कार्य में सम्मिलित होने के अवसर दिये जाने चाहिए। छात्रों को N.S.S., N.C.C. जैसी योजनाओं में से किसी एक में भाग लेना होगा।

छात्रों के विकास का मापन करने की वैध एवं विश्वसनीय विधि सुनिश्चित करने तथा शिक्षण-अधिगम में सुधार का साधन बनाने के लिए, परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन करने होंगे। इसके लिए संयोग व विषयनिष्ठता की अत्यधिकता को समाप्त

करने, स्मरण पर कम बल देने, सतत व व्यापक मूल्यांकन लागू करने, मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने, परीक्षा संचालन में सुधार करने, माध्यमिक स्तर से सत्र प्रणाली शुरू करने, तथा अंकों के स्थान पर ग्रेड का प्रयोग करने जैसे उपाय करने होंगे।

खण्ड नौ:-अध्यापक (The Teacher)- अध्यापकों को रचनात्मक एवं सृजनात्मक दिशा में प्रोत्साहित एवं प्रेरित करने वाली परिस्थितियों के लिये तैयार करने के लिए सरकार व समुदाय को प्रयास करना चाहिये। श्रेष्ठता, वस्तुनिष्ठता तथा आवश्यकता से अनुरूपता को सुनिश्चित करने के लिये अध्यापक-चयन विधियों को पुनर्गठित करना चाहिये। अध्यापकों का वेतन तथा सेवा शर्तें उनके सामाजिक तथा प्रोफेशनल उत्तरदायित्वों के अनुरूप तथा इस प्रोफेशन में प्रतिभाओं को आकर्षित करने योग्य होने चाहिये। सम्पूर्ण राष्ट्र में एक समान वेतन तथा सेवा शर्तों के प्रयास किये जायेंगे। अध्यापक मूल्यांकन की एक खुली, सहभागी तथा समंक आधारित व्यवस्था होनी चाहिए तथा उच्च ग्रेडों में प्रोन्नति के तर्कसंगत अवसर दिये जाने चाहिये।

प्रोफेशनल ईमानदारी तथा अध्यापक मर्यादा को बढ़ाने एवं प्रोफेशनल कदाचार को रोकने में अध्यापक संघों को सार्थक भूमिका अदा करनी चाहिए।

अध्यापक-शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है तथा इसकी पूर्व-सेवा एवं सेवारत धारा अविभेद्य है। प्रथम कदम के रूप में, अध्यापक शिक्षा प्रणाली में सुधार किया जायेगा।

प्रारम्भिक स्कूल शिक्षकों तथा अनौपचारिक व प्रौढ़ शिक्षा में कार्यरत व्यक्तियों के लिए पूर्व-सेवा एवं सेवारत पाठ्यक्रम आयोजित करने के लिए जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) स्थापित किये जायेंगे।

खण्ड दस:-शिक्षा का प्रबन्ध (The Management of Education)- शिक्षा की योजना एवं प्रबन्ध प्रणाली में परिवर्तन को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी। दीर्घकालीन योजना बनाने, विकेन्द्रीकरण व शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता की भावना का निर्माण, योजना व प्रबन्ध में महिलाओं की सहभागिता, उद्देश्यों व मानकों के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व, इस परिवर्तन में निर्देशक बिन्दु होंगे। शिक्षा की उचित प्रबन्ध संरचना में अखिल भारतीय सेवा के ढंग पर भारतीय शिक्षा सेवा (IES) की स्थापना को सम्मिलित करना होगा। शिक्षा नियोजकों, प्रशासकों तथा संस्थाओं के प्रधानों के प्रशिक्षण को विशेष प्राथमिकता दी जायेगी। गैरसरकारी एवं स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहित किया जायेगा। इसके साथ-साथ शिक्षा का व्यापार करने के लिए खोली जाने वाली संस्थाओं की स्थापना को रोकने में कदम उठाये जायेंगे।

खण्ड ग्यारह:-संसाधन तथा समीक्षा (Resources and Review)- दान, उपहार, शुल्क आदि की सहायता से संसाधनों को अधिकतम सम्भव बढ़ाया जायेगा। अनुसंधान तथा तकनीकी व वैज्ञानिक जनशक्ति के विकास में लगी हुई संस्थाएँ अपने उपभोक्ता के प्रतिष्ठानों पर कर लगाकर, संसाधन जुटा सकती हैं। शिक्षा को राष्ट्रीय विकास एवं संघर्ष के लिए निवेश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र माना जायेगा। आठवीं पंचवर्षीय योजना से शिक्षा निवेश को एकरूप ढंग से राष्ट्रीय आय के 6 प्रतिशत से अधिक करने को सुनिश्चित किया जायेगा।

नई नीति के विभिन्न प्राविधानों के क्रियान्वयन की प्रत्येक पाँच वर्ष बाद समीक्षा की जानी चाहिए। क्रियान्वयन में हुई प्रगति तथा समय-समय पर दृष्टिगोचर प्रवृत्ति को जानने के लिए अल्प अन्तराल पर मूल्यांकन भी किया जायेगा।

खण्ड बारह:- भावी स्वरूप (The Future)- भारतीय शिक्षा का भावी स्वरूप इतना जटिल होगा कि इसे ठीक-ठीक आँकना सम्भव नहीं है। मुख्य कार्य शिक्षा प्रणाली के निचले स्तर का सुदृढ़ करना है जिसमें इस शताब्दी के अन्त तक लगभग एक अरब लोग होंगे। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि शिक्षा प्रणाली के सबसे ऊपरी स्तर के लोग विश्व के श्रेष्ठतम व्यक्तियों में सम्मिलित हों।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 1986 का मूल्यांकन- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के विवेचन से स्पष्ट है कि यह नीति काफी अंशों में पूर्ववर्ती शिक्षा नीति से मिलती-जुलती है। वास्तव में जब तक शासन पद्धति में या जन-आवश्यकताओं में या सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में कोई आमूल-चूल परिवर्तन नहीं होता है तब तक नई नीति पर पुरानी नीति की स्पष्ट छाप रहती है। नई नीति से अभिप्रायः पूर्णरूपेण नवीन नीति से न होकर वरन पुरानी नीति की कमियों को दूर करके नई परिस्थितियों के अनुरूप उसे नूतन रूप देना होता है। नई नीति वास्तव में पुरानी नीति का ही परिमार्जित रूप होती है। इसलिए शिक्षा नीति- 1986 का पुरानी नीति से साम्य स्वाभाविक एवं तर्कसंगत ही प्रतीत होता है। परन्तु इसके साथ-साथ नई नीति अपने साथ अनेक नये संकल्पों को लेकर आती है। नई शिक्षा नीति के साथ भी यह सत्य है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 1986 के अवलोकन से स्पष्ट है कि इसमें सम्मिलित किये गये नये संकल्प मुख्य रूप से निम्नवत हैं-

1. 10+2+3 प्रणाली के प्रथम 10 वर्षों को 5+3+2 में विभक्त करने की राष्ट्रीय संरचना
2. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम
3. शैक्षिक अवसरों की समानता एवं शिक्षा गुणवत्ता की तुलनीयता पर बल
4. केन्द्र सरकार का अधिक दायित्व
5. पूर्व प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिकता
6. प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता का उन्नयन
7. पेस सेटिंग स्कूलों की स्थापना
8. स्वायत्त कालिज तथा स्वायत्त विभाग
9. ग्रामीण विश्वविद्यालय
10. कम्प्यूटर ज्ञान पर बल
11. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान
12. भारतीय शिक्षा सेवा

नई शिक्षा नीति में राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा में एकरूपता लाने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा संरचना, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम, अवसरों की समानता, शैक्षिक गुणवत्ता की तुलनीयता, केन्द्र का अधिक दायित्व, भारतीय शिक्षा सेवा जैसे प्राविधान इस दिशा में मील के पत्थर सिद्ध हो सकेंगे। इनसे प्रजातान्त्रिक राष्ट्र की एक मूलभूत मान्यता पुष्ट हो सकेगी। पेस सेटिंग स्कूल प्रतिभाशाली एवं सुयोग्य छात्रों के लिए वरदान होंगे। इनसे

विश्व के सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवी निकल सकेंगे, जो वैज्ञानिक व तकनीकी क्षेत्रों में राष्ट्र का नेतृत्व कर सकेंगे। स्वायत्त कालेज, स्वायत्त विभाग तथा डिग्री की रोजगार से विलगता के द्वारा उच्च शिक्षा की गुणात्मक उन्नति होने की आशा तो की ही जा सकती है। कम्प्यूटर के ज्ञान की महत्ता से भारत न केवल आधुनिकता की दौड़ में पिछड़ेपन से बच सकेगा, वरन् साथ ही साथ प्रशासन में चुस्ती-फुर्ती भी आ जायेगी। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान अध्यापकों को अधिक प्रभावशाली बनाने में सार्थक योगदान कर सकते हैं। ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना में ग्रामीण अंचलों के युवाओं को अपनी शैक्षिक उन्नति करने से अधिक अवसर मिल सकेंगे तथा ग्रामीण परिवेश एवं आवश्यकताओं के अनुरूप अनुसंधान कार्य करके कम मूल्य की उपयोगी तकनीक विकसित करने को बढ़ावा मिल सकेगा।

केन्द्र सरकार द्वारा घोषित इस नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर तीव्र आलोचनाएँ भी की गईं। कुछ लोग नई शिक्षा नीति को पुरानी पुस्तक पर नई जिल्द बताते हुए कहा है कि इसमें कुछ भी नया नहीं है। प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण, जनशक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति, व्यावसायीकरण, प्रौढ़ शिक्षा पर जोर जैसे प्रस्ताव पिछली शिक्षा नीतियों में भी किये जा चुके हैं। देश के विभिन्न भागों में चल रही बहसों में नई शिक्षा नीति की आलोचना मुख्यतः निजी क्षेत्र को प्रधानता देने, माडल स्कूल खोलने, उच्च शिक्षा को सीमित करने, डिग्री को रोजगार से अलग करने, तथा शिक्षा जगत में प्रजातान्त्रिक अधिकारों पर रोक लगाने जैसे मुद्दों पर की जा रही है।

शैक्षिक वर्ग में यह आशंका व्यक्त की जा रही है कि नई शिक्षा नीति के अनुसार निजी क्षेत्र को दी जाने वाली प्रधानता से जहाँ एक ओर शिक्षा महंगी हो जायेगी वहीं दूसरी ओर उसके मूलभूत उद्देश्य भी समाप्त हो जायेंगे। शिक्षा हेतु गैर सरकारी साधनों के विनियोग की नीति के फलस्वरूप निजी प्रबन्धतन्त्र के अधिकार बढ़ जायेंगे तथा कैपीटेशन शुल्क जैसी अनुचित विधियों को प्रोत्साहन मिलेगा। वित्तीय भार रहित शिक्षा संस्थाओं की स्थापना पर विचार शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति पर एक बड़ा आघात सिद्ध होगा। सरकार के नीति वक्तव्य से ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार सर्वव्यापी तथा निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के दायित्व से मुकरना चाहती है।

प्रत्येक जिले में एक-एक गति निर्धारक स्कूल (नवोदय विद्यालय) खोलने के सरकारी प्रस्ताव पर भी जनसाधारण का चौंकना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। एक तरफ तो शिक्षा को सभी लोगों तक पहुँचाने का संकल्प किया जा रहा है तथा दूसरी तरफ देश की बहुसंख्यक अशिक्षित जनसंख्या की शैक्षिक आवश्यकताओं को अनदेखा करके बहुत थोड़े से साधन सम्पन्न अभिजात्य वर्ग के लिए सुविधा सम्पन्न नवोदय विद्यालय खोलने का प्रस्ताव है। जब हजारों-लाखों साधारण स्कूलों के लिए श्यामपट, टाट पट्टी, पक्की इमारत, पुस्तकें, अध्यापकों आदि का अभाव है, तब उनको इसी बदतर स्थिति में छोड़कर रेडियो, टी. वी. वीडियो, कम्प्यूटर आदि से युक्त मॉडल स्कूलों की स्थापना का विचार कहाँ तक औचित्यपूर्ण है? इन स्कूलों पर भी पब्लिक स्कूलों व केन्द्रीय स्कूलों की तरह से विशिष्ट वर्गों का ही आधिपत्य होगा। तर्क दिया गया कि नवोदय विद्यालयों में प्रवेश छात्रों की योग्यता के आधार पर होगा, परन्तु प्रश्न है कि जहाँ प्राथमिक शिक्षा की ही

कोई ठीक व्यवस्था न हो वहाँ के बच्चे नवोदय स्कूलों में जाने के लिए आवश्यक योग्यता कहाँ से लायेंगे। नवोदय स्कूल योजना वास्तव में समरूप शिक्षा प्रणाली के अनुरूप नहीं है। यह बहुत थोड़े साधन सम्पन्न लोगों के हित में होगी जबकि अधिसंख्य साधनविहीन लोगों को शैक्षिक दृष्टि से और भी अधिक दरिद्र बना देगी।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा के विस्तार को संकुचित करने के लिए तर्क दिया जाता है कि उच्च शिक्षा में छात्रों की संख्या विस्फोटक होती जा रही है। ऊपर से देखने पर यह ठीक प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इस समय देश के 17-23 वर्ष आयु वर्ग का मात्र पांच प्रतिशत ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा है। विकसित राष्ट्रों के लिए एक आदर्श अनुपात कहीं अधिक है। उच्च शिक्षा को सीमित करने की सरकारी नीति शायद उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों को रोजगार उपलब्ध न करा सकने की सरकार की असफलता का परिणाम है। यदि ऐसा है तो इसे शैक्षिक बेरोजगारी की समस्या का एक कुटिल समाधान ही कहा जायेगा।

जहाँ तक डिग्री को रोजगार से विलग करने की बात है तो वास्तव में देखा जाये तो पृथक् प्रतियोगिताओं के द्वारा रोजगार के लिए चयन होने की वर्तमान स्थिति ने डिग्रियों का महत्व समाप्त सा ही कर दिया। सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के लिपिकों, प्रशासनिक सेवाओं तथा माध्यमिक व उच्चस्तरीय अध्यापकों को छोड़ कर अन्य क्षेत्रों में डिग्री की आवश्यकता तो वर्तमान में भी नहीं है। जब सभी क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त आवश्यक प्रशिक्षण देकर रोजगार में लेने की चर्चा की जा रही है। यदि डिग्री को रोजगार से अलग कर दिया जाता है तो इसके अप्रत्यक्ष प्रभाव से यह लाभ तो अवश्य होगा कि धांधली तथा परीक्षा के लिए रटन्त स्मरण पर आधारित वर्तमान दूषित शिक्षा व्यवस्था चकनाचूर हो जायेगी। इससे विश्वविद्यालय शिक्षा व्यवस्था को एक आघात तो लगेगा परन्तु वह शीघ्र ही अपने पैरों पर खड़ी हो जायेगी। डिग्री को रोजगार से अलग करने के विचार के पीछे, विश्वविद्यालयी शिक्षा का गुणात्मक उन्नयन होने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है। परन्तु साथ ही इस बात पर भी विचार करना होगा कि डिग्री को रोजगार से अलग करने का विचार, सरकार की उच्च शिक्षा को कम करने के सतत प्रयास की दिशा में एक कदम तो नहीं है या विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता, विशेषकर शैक्षिक स्वायत्तता, का हनन करने के प्रयास की असफलता की चिट तो नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अनेक विश्वविद्यालयों ने राजनैतिक हस्तक्षेप के बावजूद भी अपनी स्वायत्तता को बनाये रखा है तथा इनमें राजनैतिक दलों या अफसरशाही को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। ऐसा तो नहीं कि सत्तारूढ़ राजनैतिक दल तथा अफसरशाही डिग्रियों की आवश्यकता को समाप्त करके प्रतिशोधात्मक रूप से इन ज्ञान मन्दिर रूपी वृक्षों की जड़ों में डाल रहे हों। यह भी देखना होगा कि क्या राजनैतिक नेताओं, उच्चस्तरीय अफसरों तथा अभिजात्य वर्ग के पुत्र-पुत्रियों के द्वारा विश्वविद्यालयी डिग्रियों को प्राप्त करने की असफलता ने इनके लिए उच्चस्तरीय रोजगार का मार्ग तो अवरुद्ध नहीं कर दिया है तथा परिणामतः उनके लिए उच्चस्तरीय रोजगार का मार्ग प्रशस्त करने के लिए डिग्री को रोजगार से अलग करने का विकल्प खोजा गया हो।

शिक्षा जगत में प्रजातान्त्रिक अधिकारों पर रोक लगाना भी नवीन शिक्षा नीति की आलोचना का एक खास मुद्दा है। शैक्षिक वर्ग, विशेषकर अध्यापक, इस का तीव्र विरोध कर रहे हैं। इससे विश्वविद्यालयों, विशेषकर अध्यापकों, की शैक्षिक स्वायत्तता का हनन होगा तथा वे निष्पक्ष होकर अपना कार्य नहीं कर पायेंगे। यदि अध्यापक को शिक्षा व्यवस्था का सूत्रधार बनाना है तो अध्यापकों को एक सम्मानजनक तथा सुविधापूर्ण स्थिति मिलनी ही चाहिए। अध्यापक अपनी गिरी हुई आर्थिक स्थिति को समाज से मिली सहानुभूति तथा भीख की तरह मिली प्रतिष्ठा के सहारे कब तक झुठलाते रहेंगे। प्रोन्नति रहित रोजगार, सुविधा विहीन कार्य-परिस्थितियाँ, आर्थिक शोषण, सिर पर लटकता अफसरशाही परिपत्रों का सिलसिला ही उन्हें शायद राजनीति में कदम रखने के लिये प्रेरित करता है। नौकरी प्रारम्भ करने वाले पद से ही सेवा निवृत्त कर देने वाली यह संसार की शायद अनोखी व इकलौती नौकरी है।

नवीन शिक्षा नीति के विभिन्न पक्षों पर किये जा रहे विचार-विमर्श से स्पष्ट है कि इन विभिन्न प्रस्तावों के पीछे क्या दर्शन छिपा हुआ है तथा सरकार का क्या इरादा है? सामान्य वर्ग की शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाना या अभिजात्य वर्ग के लिए और भी अधिक सुविधायें जुटाना परन्तु स्पष्ट है कि यदि वर्तमान नौकरशाही प्रवृत्तियाँ तथा परम्परायें समाप्त नहीं की जाती हैं तो निजी क्षेत्र को प्रधानता देने, नवोदय विद्यालय खोलने, उच्च शिक्षा को सीमित करने, डिग्री को रोजगार से अलग करने तथा शिक्षा जगत में प्रजातान्त्रिक अधिकारों पर रोक लगाने जैसी व्यवस्थाओं से हमारी शिक्षा प्रणाली अभिजात्य वर्ग की सेवक बन कर रह जायेगी तथा सन् 1835 में लार्ड मैकाले के द्वारा देखा स्वप्न स्वतन्त्र भारत में साकार रूप ले लेगा।

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की आलोचनाओं के बावजूद भी कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में किये गये कुछ प्राविधान स्वागत योग्य हैं। परन्तु इनसे वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए नई नीति को पूर्ण ईमानदारी एवं दृढ़ता से लागू करना होगा। शिक्षाविदों के द्वारा नई नीति में कुछ भी पूर्ण-रूपेण नया न खोज पाने तथा इसे “नई बोटल में पुरानी शराब” की संज्ञा देने की चर्चा करना आवश्यक है। इन लोगों का कहना है कि नई नीति की लगभग सभी बातों पर डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता वाले शिक्षा आयोग (1964-66) के प्रतिवेदन में चर्चा की जा चुकी है। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी होगी कि नीति का निर्माण शून्य में नहीं होता है तथा प्रजातन्त्र में सरकार विशेषज्ञों के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चयन करती है। शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के लिए शिक्षा विशेषज्ञ, शिक्षा आयोग तथा बुद्धिजीवी वर्ग समय-समय पर विकल्प प्रस्तुत करते रहते हैं। केन्द्र या राज्य सरकार अपने संसाधनों तथा प्राथमिकता के आधार पर इनमें से कुछ विकल्प स्वीकार कर लेती है तथा शेष को विभिन्न कारणों से अस्वीकार कर देती है। समय-समय पर स्वीकृत विकल्पों को ही एक क्रमबद्ध रूप देकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति की रचना की जाती है। ऐसी परिस्थिति में भारत सरकार के द्वारा घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में पूर्ववत् सुझाई गयी बातों का होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। नई शिक्षा नीति में नयापन पुरानी नीति के क्रियान्वयन के सन्दर्भ में आई कठिनाइयों व असफलताओं के सन्दर्भ में खोजना शायद लाभप्रद हो

सकता है। नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने की दृष्टि से मानव संसाधन विकास मन्त्रालय ने एक कार्यान्वयन कार्यक्रम (Programme of Action) भी तैयार किया है जिससे इस शिक्षा नीति के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था नियोजित ढंग से की जा सके।

सन् 1989 में केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में गठन होने के उपरान्त राजनैतिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में राजीव गांधी सरकार द्वारा सन 1986 में घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परिवर्तन की माँग उठने लगी। तब सात मई 1990 को केन्द्र की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक 17 सदस्यीय समिति का गठन किया गया जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा उसके कार्यान्वयन की समीक्षा करके शिक्षा नीति में आवश्यक परिवर्तनों के सम्बन्ध में सुझाव देने का कार्य सौंपा गया। समिति अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत भी न कर पाई थी कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हो गया तथा श्री चन्द्रशेखर ने प्रधानमन्त्री का पद भार संभाला। दिसम्बर 1990 में आचार्य राममूर्ति समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी, परन्तु इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। इस रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही हो भी नहीं पाई थी कि मध्यावधि चुनाव के फलस्वरूप जून 1991 में केन्द्र में श्री नरसिम्हा राव के नेतृत्व में पुनः कांग्रेसी सरकार ने कार्य भार संभाल लिया। इस सरकार ने सन 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को जारी रखने की घोषणा करते हुए आचार्य राममूर्ति समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने का आश्वासन दिया तथा इसे विचार के लिए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद (CABE) के पास भेज दिया।

निष्कर्ष:- सन 1986 में शिक्षा की नई नीति की राष्ट्रीय घोषणा की गई। इस नीति में राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की भूमिका को विशेष महत्व दिया गया है। इस नीति में 10 + 2 + 3 की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को अपनाने, शैक्षिक अवसरों की एक समान उपलब्धता सुनिश्चित करने, विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुनर्गठन करने, तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा में सुधार करने, अध्यापकों के उत्तरदायित्वों को सुनिश्चित करने, सुधरी छात्र सेवाएँ, पाठ्यक्रमों के अभिनवीनीकरण करने, अध्यापक शिक्षा में सुधार करने, राष्ट्रीय सेवा प्रारम्भ करने, शैक्षिक निवेश को बढ़ाने, नवोदय विद्यालय खोलने, उपाधि को नौकरी से विलग करने, स्वायत्तता को बढ़ाने, कम्प्यूटर ज्ञान का विस्तार करने तथा शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने जैसे संकल्प किये गये हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मूल तत्व या विशेषताएँ-

1. शिक्षा प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया जाएगा।
2. शिक्षा की व्यवस्था हेतु पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की जाएगी।
3. राष्ट्रीय विकास के लिए शिक्षा को विशेष महत्व।
4. सम्पूर्ण राष्ट्र में 10 + 2 + 3 शिक्षा प्रणाली लागू होगी।
5. विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन।
6. पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।
7. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति।
8. माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन किया जाएगा।
9. उच्च शिक्षा का प्रसार एवं उन्नयन।

10. तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा के सुधार पर बल।
11. परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन में सुधार
12. शिक्षकों के स्तर और शिक्षक-प्रशिक्षण में सुधार पर बल।
13. प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा।
14. सतत् शिक्षा की व्यवस्था।
15. शैक्षिक तकनीकी के प्रयोग पर बल।
16. शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाया जाएगा।
17. शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए ठोस कदम उठाए जाएँगे।
18. महिला शिक्षा पर विशेष बल।
19. अनुसूचित जाति-जनजातियों के बच्चों की शिक्षा पर बल।
20. पिछड़े वर्ग व पिछड़े क्षेत्रों के बच्चों की शिक्षा पर बल।
21. अल्प संख्यकों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष बल।
22. विकलांग और मन्दबुद्धि बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।

समीक्षा- नई शिक्षा नीति 1986 के विभिन्न पहलुओं के कार्यान्वयन की समीक्षा प्रत्येक 5 वर्षों में अवश्य की जाएगी। कार्यान्वयन की प्रगति और समय-समय पर उभरती हुई प्रवृत्तियों की नाँच करने के लिए मध्यावधि मूल्यांकन भी किए जाएँगे।

भविष्य - भारत में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त जटिल है उसके बारे में स्पष्ट रूपरेखा बना सकना सम्भव नहीं है। फिर भी हमारी उन परम्पराओं को देखते हुए जिन्होंने सदैव बौद्धिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों को महत्व दिया है, इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि हम अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने से सफल होंगे।

आज सबसे बड़ा कार्य है शैक्षिक पिरामिड की आधारशिला को सुदृढ़ बनाना जिसमें इस शताब्दी के अन्त तक लगभग 100 करोड़ व्यक्ति होंगे। यह सुनिश्चित करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि जो इस पिरामिड के शिखर पर हों वो विश्व के सर्वोत्तम स्तर के हों। अतीत में इन दोनों सिरों को हमारी संस्कृति के मूल-स्रोतों से भली-भाँति सिंचित रखा किन्तु विदेशी आधिपत्य और प्रभाव के कारण इस प्रक्रिया में विकार पैदा हो गया है। इसलिए मानव संसाधन विकास का एक राष्ट्रव्यापी प्रयास पुनः प्रारम्भ होना चाहिए जिसमें शिक्षा अपनी बहुमुखी भूमिका पूर्ण रूप से निभाए।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. गुप्ता एस. पी., भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ
2. लाल एवं शर्मा, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ
3. सक्सेना वन्दना, सिंह सविता, समकालीन भारत एवं शिक्षा
4. यादव गुप्ता, गुप्ता, समकालीन भारत एवं शिक्षा
5. तिवारी, चौधरी, समकालीन भारत एवं शिक्षा
6. सक्सेना सविता, कुमार अनिल, विषयों एवं विद्यालयी विषयों की समझ

प्रवासी साहित्यिक परिदृश्य मे उषा प्रियंवदा का साहित्य

• अमित शुक्ल

सारांश- प्रवासी कथाकारों में महिला कथाकार उषा प्रियंवदा का महत्वपूर्ण स्थान है। अंग्रेजी में एम.ए. करने के बावजूद उनका झुकाव हिन्दी साहित्य की ओर रहा और उन्होंने प्रवासी हिन्दी साहित्य के रूप में हिन्दी भाषा साहित्य के प्रति सहज आकर्षण होने के कारण अपने रचनात्मक साहित्य का माध्यम हिन्दी को ही बनाया। उनके साहित्य में भारत की सौंथी मिट्टी की सुगंध तो बनी रही पर विदेशी प्रवास के दर्शन के साथ। नारी जीवन की समस्याओं और नारी चेतना पर जिस साहस के साथ उन्होंने लेखन कार्य किया वह अत्यन्त दुर्लभ है।

मुख्य शब्द- परिदृश्य, साहित्य, रचनात्मक, प्रवासीत

विदेशों में रहते हुए भी प्रवासी साहित्यकार दुनिया को भारतीय चश्मे से देखते हैं, इसलिए उनका लेखन नयेपन के बावजूद भी पाठक के दिल के करीब होता है और मन को स्पर्श कर जाता है। हिन्दी का प्रवासी साहित्य भारतेत्तर देशों को भारत से जोड़ने का एक सेतु बनता है, जिसके मूल में भारतवासियों का स्वदेश प्रेम, भाषा प्रेम, सहयोग प्रेम के साथ उनकी आत्मीय संलग्न सहभागिता एवं सहयोग अटूट रूप से जुड़ा होता है, यह सेतु विश्वव्यापी हिन्दी साहित्यिक समाज की रचना करता है, भारतेत्तर देशों को हिन्दी लेखक एवं हिन्दी समाज भारत की हिन्दी को विदेश में सबल एवं स्थायी बनाते हैं। प्रवासी हिन्दी कथाकारों के प्रयत्न से आज हिन्दी साहित्य में पूरे विश्व की छवि देखी जा सकती है। भारतीय एवं पश्चिमी संस्कृति के बीच झूलते प्रवासी भारतीयों के मानसिक आंदोलन का चित्रण प्रवासी हिन्दी साहित्य में हुआ है प्रवासी हिन्दी लेखकों की रचनाओं में सोच, संवेदना दो संस्कृतियों की टकराहट और भूमंडलीकरण का दबाव दिखाई पड़ता है।

नये कथा साहित्य के क्षेत्र में उषा प्रियंवदा अपनी ही कोटि की विलक्षण कथा लेखिका हैं। वे आधुनिकता बोध की सशक्त प्रवासी साहित्यकार हैं। भारतीय मन और विदेशी परिस्थितियों का द्वंद उनके साहित्य की विशेषता है। नारी चित्रण में महारथ हासिल करने वाली उषा प्रियंवदा हिन्दी कथा साहित्य की प्रमुख लेखिका हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है कि जो बात उन्हें बहुत सताती थी वह है समाज में नारी शोषण। उन्होंने समाज की परतों दर परतों में नारी के प्रति लगातार होने वाले अन्याय और असमानता

• प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह, महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

को अत्यंत निकट से देखा और परखा है उषा जी का यह मानना है कि भारतीय समाज में बचपन से ही लड़के और लड़की में अंतर किया जाता है जिसके कारण पुरुष प्रारंभ से ही अपने को श्रेष्ठ समझने लगता है, जिसके कारण नारी हीन भावना का शिकार हो जाती है। उसके मन में यह बात बचपन से ही आ जाती है कि उसकी सारी खुशी, मान-सम्मान तब सब उसके पति व बच्चों पर आश्रित है। यदि कभी वो उस संबंध से अलग होना चाहती है तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि उसे जीने का कोई अधिकार नहीं। उषा प्रियंवदा की दृष्टि में दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई आत्महत्याओं का एक कारण यह भी है कि स्त्रियों में कभी यह बोध जाग्रत ही नहीं हुआ कि वह समाज का एक अहम हिस्सा है। नारी की घुटन, दयनीय व पारिवारिक प्रताड़ना से मुक्त करने का प्रयास ही उषा प्रियंवदा का लक्ष्य है। जिसे अपने विभिन्न उपन्यास साहित्य में उकेरने का प्रयास उन्होंने किया है। उनके प्रवासी साहित्यिक परिदृश्य में अमेरिका वातावरण की उन्मुक्तता सेक्स के प्रति अकुंठा इसके लिए सहायक बन गयी। उषा प्रियंवदा का भारत छोड़कर अमेरिका समाज और जीवन में प्रवेश उनके लिए और उनके संपूर्ण साहित्य के लिए समान रूप से एक मुक्ति का अनुभव था। इसी कारण से नारी के संदर्भ में अपने लिए अपने आप की जिम्मेदारी और आर्थिक स्वतन्त्रता उषा प्रियंवदा के साहित्य का कथ्य है। विदेश प्रवास से संबंधित अनुभवों को चित्रित करने में उषा प्रियंवदा का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने विदेशी परिवेश के साथ-साथ वहां रहने वाले भारतीयों की मानसिक स्थितियों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में अंकित किया है। स्वदेश लौटने पर उन्हें अजनबी स्थिति का एहसास होता है। प्रवासी व्यक्ति अपने संस्कारों से आबद्ध होकर भी वहां के उन्मुक्त वातावरण से प्रभावित होता है। पाश्चात्य और देशी सभ्यता के प्रभाव से जीने वाले पात्रों के मानसिक तनाव व वैचारिक रूपान्तरण को उन्होंने वाणी दी है। उषा प्रियंवदा जी ने अपने कथा साहित्य के पात्रों को पूर्ण रूप से विदेशी परिवेश के अनुरूप ढालकर उसे अपने अनुरूप बना लिया।

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों की सभी नायिकाएं अपनी संस्कृति से जुड़ी दिखाई देती हैं। पचपन खंभे लाल दीवार की नायिका सुषमा यदि स्वेच्छाचारिणी होती है तो नील के साथ जाकर अपना जीवन यापन कर सकती थी, पर उसे अपना परिवार और उनकी जरूरत महसूस होती है। वह यह भी भली भांति जानती है कि उसका परिवार उसे केवल पैसा कमाने का जरिया मानता है पर उसके लिए घर ही सब कुछ है। नारी चित्रण के परिदृश्य में रूकोगी नहीं राधिका उषा प्रियंवदा का लोकप्रिय उपन्यास है। उपन्यास की नायिका राधिका को अपने पिता से अत्यंत स्नेह रहा है। उसे अपने पिता का दूसरा विवाह करना बुरा लगता है। वह घर को घर जैसा नहीं पाती। राधिका के इस बेगानेपन को बढ़ाने में इस बदले परिवेश का महत्वपूर्ण हिस्सा है। निकट संबंधियों के व्यवहार और उनमें आने वाले बदलाव का भी जहां परिवार अपने बच्चों को सुसंस्कृत बनाने का हिमायती होता है वहीं समाज की भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कुछ पाने के लिए बहुत कुछ खोना पड़ता है। अतः वह ध्यान रखता होता है कि हमने अपनी संस्कृतियों का कितना पालन किया। राधिका की प्रतिक्रिया मनोवैज्ञानिक रूप से सही प्रतीत होती है। राधिका विदेश जाती है वह शिक्षित समझदार, साहसी, आधुनिक स्त्री है। जिसके जीवन में आने वाला

कोई पुरुष न उसके फैसलों पर हस्तक्षेप कर सकता न उन्हें बदलने के लिए दबाव बना सकता है। राधिका अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेती है। जीवन में बदलाव होने पर पहले की तरह वापसी कहां हो पाती है। वह राधिका हो या उसके पापा। राधिका अंधेरे में जबाब देते समय यह सोचती है कि वह पापा का मुंह नहीं देखेगी। पिता कहते हैं कि रूकोगी नहीं राधिका? मैंने अपने बारे में कुछ सोचा ही नहीं है। चाहता हूँ तुम यहीं रहो राधिका पहले की तरह। राधिका एकदम अप्रत्याशित उत्तर देती है नहीं पापा मैं जाती हूँ। मनीष मेरे एक बंधु बाचतीत छोड़ वह रुक गयी। साथ ही उसके कंधे पर रखा पापा का हाथ हट गया। इस उपन्यास में भीड़ में अकलेपन का एहसास आत्मनिर्वासित होने का बोध निरर्थकता की अनुभूति पलायन। विदेशी संस्कृति में भी स्वयं को अकेला स्वीकार करना अलग-अलग रहना सबसे बड़ा सत्य अपने भीतर के हिमखंड के पिघलने की संभावना से दूरी तथा वर्तमान यांत्रिक जीवन जीने की विवशता। साथ ही अथाह अकेलापन जो वर्तमान समय की देन है। उषा प्रियंवदा ने अपने व्यक्तित्व विकास की कड़ी में जो उपन्यास साहित्य पर लेखनी चलाई वह प्रवासी साहित्य का अनूठा दस्तावेज है। जिसकी श्रृंखला में रूकोगी नहीं राधिका उपन्यास नारी मन के अंतर्द्वंद को लेकर उसके मन की उथल-पुथल को बड़े ही यथार्थ रूप से प्रस्तुत कर नारी मन की भावनाओं को चिंतन-मनन हेतु प्रेरित करता है। रूकोगी नहीं राधिका भी ठीक वैसा ही उपन्यास है जिसमें भारतीय रीतिरिवाजों का उल्लंघन करने वाली राधिका जैसी भारतीय नारी को उषा प्रियंवदा ने प्रस्तुत कर एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया। सन् 1968 का यह उपन्यास वर्तमान समय के प्रवासी साहित्यिक परिदृश्य में आज भी प्रासंगिक है। प्रस्तुत उपन्यास का वह अंश जिसमें माँ की मृत्यु के पश्चात पिता बेटी राधिका को अत्यंत स्नेह से पालन पोषण करते हैं। पिता के अत्यधिक निकट होने के कारण राधिका अपने जीवन में किसी दूसरे का प्रवेश नहीं चाहती। माँ की मृत्यु के अठारह वर्ष के पश्चात राधिका के पिता अपने से बीस वर्षीय छोटी विद्या से विवाह करते हैं। पिता से प्रतिशोध लेने के लिए राधिका डैन नामक विदेशी पत्रकार के साथ अमेरिका चली जाती है। डैन में राधिका अपने पिता तुल्य स्नेह को दूढ़ना चाहती है जो उसे उससे नहीं प्राप्त होता इस कारण उसे डैन को छोड़ना पड़ता है। राधिका मिसेज होमर के मकान में रहने का इन्तजाम करती है। काम के साथ पढ़ाई करके फाइन आर्ट में एम.ए. की डिग्री लेने के बाद राधिका का स्वेदश लौटने का मन होता है। पिता से अपने व्यवहार पर माफी मांगते हुए चिट्ठी लिखती है भारत पहुंचने पर एयरपोर्ट में उसे लेने घर से कोई नहीं आया। विद्या की सहेली का भाई अक्षय उसे अपने फ्लैट पर ले जाता है। रात की ट्रेन पकड़ कर वह घर चली जाती है। वह लखनऊ में मामा-मामी के पास रुकती है। घर आने पर विद्या सहर्ष उसका स्वागत करती है। सौतेली होने के कारण राधिका कभी उससे स्नेहपूर्ण व्यवहार करने का प्रयास नहीं करती। घर पर पिता नहीं मिले। विद्या से पता चलता है कि पिता गंगा पार खाली कोठी में अकेले रहकर किसी पुस्तक की रचना में संलग्न है। वहां जाकर राधिका पिता से भेंट करती है। लेकिन वह उस वातावरण में नहीं रह पाती और अगले दिन राधिका दिल्ली की ओर लौट जाती है। दिल्ली में अक्षय से राधिका की मुलाकात होती है। अक्षय को राधिका से प्यार हो जाता है। लेकिन वह उसके अतीत के प्रति शंकालू है। राधिका यह जानती है इसलिए वह अक्षय के प्रति

प्यार होते हुए भी अपने से दूर रखती है। दिल्ली में राधिका की मनीष के साथ भेंट होती है। दोनों का परिचय विदेश में ही हुआ था। मनीष दिल्ली का एक बड़ा आर्ट इन्स्टीट्यूट का डायरेक्टर है। हमेशा सुन्दर और नई-नई लड़कियों से रिश्ता स्थापित करने में रुचि रखने वाले मनीष राधिका को नई प्रेमिका के रूप में स्वीकार करते हैं। राधिका का भाई बिजनेस के काम से दिल्ली आते हैं और राधिका को अपने साथ लखनऊ ले जाते हैं। वहां रहते समय मनीष विवाह प्रस्ताव लेकर उसके घर आते हैं। राधिका को विद्या के आत्मघात का समाचार मिलता है। घर पहुंचने पर पिता राधिका से उसके साथ रहने को कह देते हैं। लेकिन वह मानती नहीं। राधिका मनीष के साथ चले जाने का निर्णय लेती है। राधिका दोनों संस्कृतियों के पाटों में पिसकर अनिर्णय और अकेलेपन को झेलती है। उषा प्रियंवदा इस संबंध में संकेत देती हैं कि राधिका की कहानी यथार्थ जीवन की कथा है जिसमें मुख्य भूमिका निभाने वाली पात्र राधिका लेखिका की एक बन्धु है। शिक्षा से उसने शिष्ट जीवन की परम्परा पायी है, जिसे अपने जीवन में उतार लिया है। उसका शील और विवेक परंपरागत पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप नहीं, बल्कि वह व्यक्तिनिष्ठ है। प्रतिभाशाली मननशील राधिका में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह है। उसके जीवन की मान्यता को ठेस लगी है। इसलिए वह अतीत को भूलना चाहती है। वह पाश्चात् संस्कृति से प्रभावित है, पर वह प्रभाव कहीं भी उसके व्यक्तित्व पर थोपा हुआ सा प्रतीत नहीं होता। वह बस वहीं तक ही उसका व्यक्तित्व उसे ग्रहण नहीं कर सका है। इसलिए उसके विचारों में गंभीरता है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने से पहले बेटी का जीवन पिता पर निर्भर है। वह उन्हें अत्यधिक प्रेम करती है, इसका कारण मां के अभाव में पिता ही उसका अपना सर्वस्व है। वह पिता को ही अपने जीवन की धुरी मानती है। उषा प्रियंवदा का उपन्यास रुकोगी नहीं राधिका की नायिका कुछ ऐसा ही है कि वह अपने पति में ही वही प्रेम ढूंढना चाहती है जो पिता से उसे प्राप्त हुआ। राधिका की मां की मृत्यु के बाद उसके पापा सारा समय बेटी के पालन-पोषण में व्यतीत करने लगे वर्षों तक यह क्रम चलता रहा। पापा उसका अपना है वह उनके पास अपने को सुरक्षित महसूस करती है और किसी का होना वह नहीं चाहती। इसलिए युवती विद्या से पापा का विवाह होने पर उसे राधिका पसन्द नहीं करती। राधिका अपने पापा से प्रतिशोध लेने के लिए कम परिचित विदेशी पत्रकार डैन के साथ अमेरिका चली जाती है। डैन के साथ जाते समय राधिका पिता से विचार विमर्श नहीं करती। पिता बेटी के उस गहरे संबंध का विच्छेद हो जाता है। स्वार्थ भावना से राधिका यह समझती नहीं कि मां के न रहने पर पापा ने अकेले कैसा जीवन जिया है। वह साहस करके स्वयं अपना जीवन पथ प्रशस्त करती है। पापा और विद्या की शादी का परामर्श सुनते ही क्षणांश में राधिका के उपर से एक तूफान गुजर जाता है। विद्या के साथ रहने का सुझाव वह मानती नहीं इसलिए कुछ तीखे स्वर में वह कह देती है- मैं अब आप लोगों के साथ नहीं रहूंगी। पापा से नाराज होने पर राधिका घर छोड़कर भाग जाने की धमकी देती है वह अपनी ही शर्तों पर जीने का दुराग्रह रखती है। भाई से अपने विवाह का प्रस्ताव सुनकर राधिका का क्रोध बढ़ जाता है। दृढ़ शब्द में वो उत्तर देती है कि वह विवाह करना नहीं चाहती। पापा आशा करते हैं कि राधिका उसके साथ रह जाये तो वह क्रोध में कहती है- जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यों हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है? मैं आपकी बेटी हूँ, यह

ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करूँगी। राधिका के विदेश जाने के बाद पिता शिथिल हो जाते हैं। लाइली बेटी के इस धिक्कारपूर्ण व्यवहार से राधिका के पापा को जबरदस्त नर्वस ब्रेक डाउन हो जाता है। जानने वालों को पता है कि इसका कारण राधिका है। पिता बेटी का संबंध जितना गहरा है, उतना ही वह कमजोर होता चला जाता है। पापा बेटी को पास पाकर आश्वासन पाना चाहते हैं तो बेटी बदले में उन्हें कष्ट ही देती है। राधिका की हालत तो उससे बुरी है। कोई दूसरा आकर पितृ प्रेम का भागीदार बने यह सोचने में भी वह असमर्थ है। सौतेली मां के आगमन पर वही पापा का स्नेहपात्र बनेगी यह विचार राधिका को पिता से तन-मन से इतना दूर कर देता है कि पिता-बेटी संबंध एक क्षण में टूट जाता है। वह चाहती तो यह पुनीत संबंध रख सकती थी लेकिन वह कठोर मार्ग चुन लेती है। अपनी वेदना को दबाकर पिता के साथ रहने के लिए वह तैयार नहीं होती असफल प्रेम की आत्मग्लानि से राधिका पिता से माँफी मांगती है। पुनर्मिलन के संदर्भ में राधिका पापा के एकदम पास पहुंचने से पहले ही ड्राइवर से रोकने को कहती है गाड़ी पूरी तरह रुकने के पहले ही उतरती है। मन ही मन वह पापा के साथ रहना चाहती है लेकिन पापा के स्वर की दूरी औपचारिकता से राधिका के पूरे शरीर में हताश कम्पन दौड़ आता है। इसलिए वह अपनी इच्छा प्रकट नहीं करती और प्रसन्नता को अपनी आवाज में भरने की चेष्टा करती है। पापा और बेटी के बीच सन्नाटे की वहज से राधिका के अन्दर रुलाई के लिए दम घुटने लगता है। स्पष्ट है कि मानवीय संबंधों में ठण्डापन, औपचारिकता, उदासीनता का प्रवेश होता है। यह आज का दौर सांस्कृतिक संकट है। बेटी के जीवन में बाधा बनना पापा नहीं चाहते। इसलिए भेंट के अवसर पर वह पूछते हैं कि अभी तो रहोगी। पिता का साथ चाहते हुए भी राधिका का जबाब है-नहीं कल जाऊंगी। पिता जानता है कि उसे रोक लेना उसके बस की बात नहीं इसलिए वह नहीं रोकते। राधिका परंपरागत मान्यताओं को तोड़ने का साहस दिखाती है। उसके संदर्भ में परंपरागत दृष्टिकोण ही बदल गया। अहं की गांठ के कारण अपने को छोटा दिखाने के लिए राधिका भी तैयार नहीं। विद्या के मृत्यु के पश्चात पापा अत्यन्त निरीह, कातर, दुःखी बन जाते हैं। वह अपने बारे में कुछ सोचते ही नहीं और चाहते हैं कि राधिका पहले की तरह उनके पास ठहर जाये। लेकिन राधिका नहीं मानती। अपनी इच्छा के विरुद्ध वह पापा के व्यवहार के कारण दूर रहती है, और प्रेम की तलाश में घूमती है। रुकोगी नहीं राधिका की राधिका अपने को किसी व्यक्ति से जुड़ने नहीं देती। डैनियल परिसमन भारत में शिकागो के एक समाचार पत्र के संवाददाता बनकर आते हैं। वह विदेशियों के लिए भारत दर्शन नाम की एक गाइड बुक लिख रहे हैं। पापा की एक पुस्तक के लिए रिसर्च करने राधिका पुरातत्व विभाग की लाइब्रेरी जाती है और वहीं डैन से उसका परिचय होता है। अपनी आयु की हर विद्यार्थी की तरह राधिका का भी विदेश भ्रमण का एक स्वप्न है। राधिका समझती है कि घर की असहनी स्थिति से उबरने का यह एक अच्छा तरीका है। डैन के व्यक्तित्व से राधिका प्रभावित होती है। आयु में वह उससे उन्नीस-बीस साल बड़ा है। गर्म जलवायु में उसका रंग तप कर तांबेई हो गया था, और उस वर्ण में स्लेटी रंग की आंखों की दृष्टि अत्यंत बेध देने वाली लगती थी। कुछ समय लाइब्रेरी में बैठने के बाद डैन के साथ उसके घर चाय पीनेचले जाना राधिका का नियम बनता जा रहा है। डैन से पहले राधिका के चरित्र का

विश्लेषण कभी किसी ने नहीं किया था। डैन के मुंह से अपनी स्वभावगत विशेषताएं सुनकर राधिका के मन में यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि उसे डैन की बात मानकर एक बार विदेश अवश्य जाना चाहिए। डैन उसे शिकागो विश्वविद्यालय में प्रवेश दिलाते हैं और जीवन निर्वाह के लिए अपने सहायक के रूप में उसकी नियुक्ति करवाते हैं। विदेश में एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर डैन उसे अपनी जिन्दगी से मुक्त करता है। डैन की राय में राधिका ने कभी एक क्षण के लिए भी उसे प्यार नहीं किया। वह डैन में अपने पिता को ढूंढती है। जिन्हे संकट में डालकर वह डैन के साथ विदेश चली गयी थी। राधिका की स्थिति बड़ी असमंजसपूर्ण है। वास्तव में डैन राधिका में अपना खोया हुआ यौवन खोजता है जो उसे नहीं मिलता वो अपनी पत्नी को छोड़कर चले जाने की कड़वाहट को भूलाना चाहते हैं। लेकिन दोनों अपने-अपने संकल्प में सफल नहीं हुए। डैन के अनुसार राधिका हिम कन्या सी जमी हुई संगमरमर की प्रतिमा के समान है। राधिका समझती है कि डैन जो कह रहा है उसमें सच का एक बहुत बड़ा अंश है संबंध विघटन के पूर्व डैन राधिका से वादा करता है-मैं तुम्हारे लिए कुछ प्रबन्ध कर जाऊंगा। मेरे मित्र तुम्हारी देखभाल करेंगे। तुम्हारे प्रति मैं अपना उत्तरदायित्व बाखूबी निभाऊंगा। डैन की सहानुभूति स्वीकार करने के लिए राधिका तैयार नहीं होती, वह स्वयं रहने का प्रबंध करती है। स्वदेश लौटने के अवसर पर उसका यह विश्वास है कि पापा उसे अवश्य ही लेने आयेंगे। भले ही विद्या न आये, उसे एयरपोर्ट पर अक्षय मिला। पहले ही दृष्टि में वह राधिका को अच्छा लगा। अक्षय की उदारता और शालीनता से राधिका प्रभावित होती है। राधिका यह भी जानती है कि अक्षय कभी क्षुद्रता पर नहीं उतरेगा। दूसरी ओर अक्षय राधिका की असाधारणता से बड़ा आकर्षित होता है। ऑफिस में काम करते समय वह सोचता है कि क्या है वह, जो उसे असाधारण बना देता है। अधिकाधिक परिचित होने पर दोनों एक दूसरे से प्यार करते हैं। अक्षय समझता है सुन्दर न होते हुए भी उसमें आकर्षण था, मेधावी होने के तेज, सहज व्यवहार और बेहद आत्मविश्वास का। इसलिए वह राधिका को जीवनसाथी बनाने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। लेकिन अक्षय राधिका के विगत जीवन से संतुष्ट नहीं है। एक वर्ष तक राधिका डैन के साथ उसकी पत्नी बनकर रहती थी और उसके बाद न जाने कितने पुरुषों से राधिका का संबंध रहा है। अक्षय के मन में संशय की चिंगारिया जलती रहती है। यह बात राधिका जानती है इसलिए वह अक्षय का प्यार तोड़ने के लिए बाध्य हो जाती है। राधिका के रिश्ते देशी संस्कारों के अनुकूल नहीं प्रतीत होते। इस प्रकार की नारियों को स्वीकार करना मुश्किल होता है।

डैन के मित्रों में एक लम्बा सा भारतीय पुरुष मनीष भी है। डैन उसका परिचय कराता है। उसके बाद राधिका और मनीष का परिचय बढ़ता चला जाता है। स्वदेश में उनका पुनः मिलन होता है। राधिका की राय में मनीष में कुछ ऐसा आकर्षण है कि अनजाने ही उसका सिर गोद में रख लेने की चाह होती है। युवती नारियों से जल्दी ऊबने वाले मनीष के चरित्र से राधिका परिचित है। इसलिए मनीष पति रूप में स्वीकार करने योग्य नहीं। फिर भी राधिका को पिता से दूर रहना ही है तो विवश होकर मनीष के साथ चलने का निर्णय लेती है। इस प्रकार राधिका के जीवन में पुरुषों का आना महज एक संयोग ही नहीं अपने पिता से दूर रहने की भावना और विद्या से प्रतिशोध लेने की चाह है जो

उसे पिता के प्रेम से वंचित कर देता है। राधिका के प्रत्येक दृश्य मानव मन के प्रेम की भावनाओं में उथल-पुथल मचा देते हैं। राधिका के जीवन में पिता का यह प्रतिशोध कहां से कहां लेकर जाता है यह पाठक वर्ग में जिज्ञासा को जन्म देता है। उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में अत्यंत सूक्ष्म रूप से उन समस्त भारतीय परिवारों की जीवनशैली का विश्लेषण किया है। जो बेहतर अवसरों की तलाश और आशा में प्रवासी हो जाता है। और फिर शुरू होता है उनका प्रवासी जीवन संघर्ष। वह संघर्ष रुकोगी नहीं राधिका और शेषयात्रा उपन्यासों में भी दृष्टिगत होता है। वास्तव में लेखिका उषा जी ने साहित्यिक दिग्गजों से अपने संबंध विद्यार्थी जीवन में ही बनाने, उनसे प्रेरणा लेकर अपनी जीवनधारा को दिशा और गति देने में सफल हुई। वास्तव में उन्होंने विश्व साहित्य का अध्ययन किया जिसका प्रतिफल उनके उपन्यासों में देखने को मिलता है। उन्होंने नारी पात्रों के माध्यम से उपन्यास साहित्य को नयी दशा और दिशा दी।

निष्कर्ष यह है कि प्रवासी कथाकारों में महिला कथाकार उषा प्रियंवदा का महत्वपूर्ण स्थान है। अंग्रेजी में एम.ए. करने के बावजूद उनका झुकाव हिन्दी साहित्य की ओर रहा और उन्होंने प्रवासी हिन्दी साहित्य के रूप में हिन्दी भाषा साहित्य के प्रति सहज आकर्षण होने के कारण अपने रचनात्मक साहित्य का माध्यम हिन्दी को ही बनाया। उनके साहित्य में भारत की सौंधी मिट्टी की सुगंध तो बनी रही पर विदेशी प्रवास के दर्शन के साथ। नारी जीवन की समस्याओं और नारी चेतना पर जिस साहस के साथ उन्होंने लेखन कार्य किया वह अत्यन्त दुर्लभ है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. हिन्दी महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदनाएं-डॉ. उषा यादव पृ. 79
2. उषा प्रियंवदा का कथा साहित्य डॉ. साधना शर्मा, पृ. 91
3. रुकोगी नहीं राधिका, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली। सन् 1968 पृ. 18, 25, 30
4. स्वयं का सर्वेक्षण व निष्कर्ष

हिन्दी मीडिया सामाजिक उपादेयता संकट और संभावनाएँ

• सूरजमुखी

सारांश- हिंदी के प्रचार प्रसार में मीडिया की महती भूमिका रही है। टीवी के हर चैनल पर विज्ञापन हिंदी में अधिक से अधिक दिखाए जाते हैं और हिंदी साहित्य का भी योगदान रहा है। कंप्यूटर, इंटरनेट से जुड़ने के बाद तो इसमें और भी प्रगति हुई है। दूरदर्शन के कारण लोगों की रुचि पुस्तकों से हट गई है। लेकिन इसके लिए हमें ऐसी पुस्तकें लिखनी होंगी जो जनसामान्य में लोकप्रिय हो सकें। पाठक हमसे कैसी उम्मीद कर रहा है, वह कैसा साहित्य चाहता है, इसके साथ ही उनकी कीमत जनसामान्य के अनुरूप होनी चाहिए। आज अमेरिका, यूरोप में भी हिंदी भाषा का साहित्य पढ़ाया जा रहा है, हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।

मुख्य शब्द- मीडिया, उपादेयता, साहित्य

आज मीडिया शब्द से हम सभी भलीभाँति परिचित हैं। मीडिया ने मानव को चहुँपाश से जकड़ लिया है या यह कहें कि मानव आज पूर्णरूप से मीडिया पर निर्भर हो गया है। जैसे-अखबार, टेलीविजन, सिनेमा, टेलीफोन, मोबाइल, ई-मेल, ब्लॉग आदि मानव के अभिन्न अंग बन गए हैं। मीडिया के प्रमुख स्वरूप निम्नवत हैं-

1. पारंपरिक मीडिया
2. प्रिंट मीडिया
3. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया
4. डिजिटल मीडिया
5. ईमेल ब्लॉग लेखन आदि

उक्त सभी एक दूसरे के पूरक होने के साथ-साथ एक दूसरे के लिए चुनौती भी खड़ी कर रहे हैं। कोई भी भाषा इससे अछूती नहीं है। भाषाओं के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। भारतीय युग हिंदी मीडिया का युग है मीडिया ने जिस प्रकार से आम और खास मनुष्य को अपनी पकड़ में लिया है उससे यही लगता है कि अगर मीडिया को व्यापक अर्थ में लिया जाए और हिंदी भाषा से उसके संबंध को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवहार के संदर्भ में जाँचा-परखा जाए तो बहुत से वे पक्ष उजागर होने लगते हैं, जो सामान्यतः छिपे ही रहते हैं। हिंदी भाषा की चर्चा की जाए तो यह नितांत सत्य है कि खड़ी बोली ही आज की हिंदी है। संपूर्ण हिंदी भाषा क्षेत्र खड़ी बोली को

साहित्य और कामकाज की भाषा के रूप में अपना चुके हैं। देश के हिंदी मीडिया की भाषा भी यही है। पत्र-पत्रिकाओं, टेलीविजन की भी भाषा यही है। संपूर्ण भारत में एवं भारत के बाहर हिंदी के तीव्र प्रचार-प्रसार का श्रेय कुछ समय पूर्व तक हिंदी सिनेमा को दिया जाता था, लेकिन अब इस काम को मनोरंजन चैनल, समाचार चैनल, खेल चैनल, कई धार्मिक चैनल जिस तीव्र गति से आगे बढ़ा रहे हैं, वह वास्तव में एक चौंकाने वाली घटना है। लगभग पौने दो सौ वर्षों में दिल्ली-मेरठ के क्षेत्र से निकलकर कोई भाषा करोड़ों लोगों की भाषा बन जाएगी यह कल्पनातीत लगता है। मगर यह सच्चाई है। विश्व में शायद ही किसी भाषा का इतना तीव्र विकास और व्यापक फैलाव हुआ होगा मगर ये सच्चाई है। इसका प्रमुख कारण आज समूची भारतीय समाज, राजनीति सहित बाजार की ताकतों के रहमोकरम पर है। यह ताकतें देशी और विदेशी दोनों हैं। यदि किसी देशी-विदेशी कंपनी को अपना कोई उत्पाद बाजार में उतारना होता है तो उसकी प्रथम दृष्टि हिंदी क्षेत्र पर पड़ती है।

इस प्रकार हमारा प्रत्यक्ष अनुभव यही है कि हिंदी क्षेत्र में मीडिया के प्रयोग की जो गतिविधियां चल रही हैं। वह हिंदी को समृद्ध कर रही हैं। अगर चैनलों ने क्षेत्र का विस्तार किया है तो हिंदी क्षेत्र में चल रही प्रायोगिक, सूचनात्मक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक गतिविधियों ने हिंदी की आंतरिक संरचना को सामान, अभिव्यक्तियों की दृष्टि से अत्यंत से लचीला और सरल बनाया है। बाजार एवं वैश्वीकरण के दबावों ने हिंदी को जरूरत और मांग के अनुसार ढलने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। हिंदी की समृद्धि के मुख्य कारण हिंदी क्षेत्र के दलित आदिवासी, स्त्री आदि विमर्शों ने विशेष सहयोग दिया है। अनेक शब्दों का अर्थ विस्तार हुआ है। जैसे हिंदी में अधिकार, न्याय, समानता, स्वतंत्र, जनहित, कल्याण आदि।

कंप्यूटर, इंटरनेट, डिजिटल ब्लॉग लेखन जैसी सूचना तकनीक ने भी हिंदी को बहुत कुछ दिया है। हिंदी की इस समृद्धि, शक्ति, प्रसार पर किसी भी हिंदी भाषी का सीना फूल सकता है। बहुत से हिंदी प्रेमी लेखक भी इस बात पर मुग्ध हैं वे इसी से प्रसन्न हैं कि हिंदी चाहे जैसे और जिस रास्ते पर बढ़ रही है मगर बढ़ तो रही है। आज स्थिति अलग है आज दुनिया का हर दूसरा व्यक्ति हिंदी भाषी है। विदेशों में 250 से ऊपर विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। 70 करोड़ लोगों द्वारा हिंदी पढ़ी-लिखी, बोली व समझी जाती है। राष्ट्रसंघ की संस्थाओं में हिंदी को प्रवेश मिल चुका है। वह यूनेस्को की आधिकारिक भाषा है। देश के समस्त उद्योगों में सिनेमा का द्वितीय स्थान है जो कि हिंदी भाषा में चल रहा है। भारत की भाषाओं में सर्वाधिक प्रकाशन हिंदी में ही होता है। आज अमेरिका में भारतीय, पाकिस्तानी, लंकाई, बांग्लादेश और कुछ हद तक अफगानिस्तानी लोगों की आपसी बोलचाल की भाषा हिंदी ही बन गई है। वहाँ सामान्य विषयों में आधे ग्रेडस का प्रश्नपत्र प्रायः हिंदी में होता है। अमेरिका में आकाशवाणी और दूरदर्शन में पचास प्रतिशत कार्यक्रम हिंदी में होते हैं। वहाँ से भारत समाचार, साप्ताहिक हिंदी पत्रिका का प्रकाशन 26 जनवरी सन 1985 से हो रहा है। स्टार स्पोर्ट्स ने इसी नजाकत को देखते हुए अपने प्रसारण में क्रिकेट मैच हिंदी में शुरू किया है। इतना ही नहीं जापान के आठ विश्वविद्यालय एवं संस्थान हिंदी की पढ़ाई में जुटे हैं। जापान में हिंदी का शिक्षण सर्वप्रथम

आज से लगभग 60 वर्ष पूर्व टोक्यो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर वायाओ दोई ने आरंभ किया था। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. एंव पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की थी। उन्होंने प्रेमचंद के उपन्यास गोदान का जापानी में अनुवाद किया था। जापान में आकाशवाणी से नियमित रूप से हिंदी में समाचार ही नहीं बल्कि अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रसारित होते हैं। लगभग 20 वर्षों से जापान में सर्वोदय नामक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। कुछ वर्ष पहले 'जापान भारती' का प्रकाशन भी शुरू किया गया है। इसके साथ ही कोरिया में भी अनेक हिंदी कृतियों का कोरियाई भाषा में अनुवाद का कार्य भी चल रहा है। वर्मा में भी हिंदी साहित्य सम्मेलन की शाखाएँ हैं। नार्वे, स्वीडन, ब्रिटेन, कनाडा आदि अनेक देशों में अनेक हिंदी पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। दूर संचार माध्यमों फिल्मों, गीतों आदि ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी मुख्य भूमिका निभाई है। विदेशों से प्रकाशित हिंदी पत्रिकाएं भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। हिंदी स्वयं में एक अंतरराष्ट्रीय जगत को समाहित किए हुए है।

मीडिया की उपयोगिता अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग है। मानव के जीवन यापन के लिए समाज की मुख्य भूमिका होती है। समाज से हमारा आशय है परिवार (माता-पिता, भाई-बहन, बेटे-बेटियाँ, नाते-रिश्तेदार, परिचित आदि) के बिना मानव अधूरा है। इनके सुख-दुख खबर-सुध आदि की जानकारी लेने के लिए और अपने बारे में बताने के लिए वार्तालाप करना या संदेश भेजना है और माँगता भी है। आदि सब की पूर्ति मानव मीडिया द्वारा ही करता है। अतः सामाजिक जीवन में मीडिया का अस्तित्व सर्वाधिक है। किसी से मिलना कहीं जाने के लिए रिजर्वेशन कराने के लिए हमें रेलवे स्टेशन या हवाई अड्डे पर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि एक फोन करके काम चल जाता है। पहले घंटों समय बर्बाद होता था। इतना ही नहीं जरूरत पड़ने पर किसी बैंक से किसी स्थान से रूपया निकाला जा सकता है। यह मीडिया का ही कमाल है। अचानक स्वास्थ्य बिगड़ने पर आपातकालीन गाड़ी को फोन करके बुलाना और या अपने किसी प्रिय की जान बचाना इसके साथ ही घर में बैठे-बैठे विदेशों के हाल पता लगाना आदि।

आज अपने देश में और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रों में मीडिया का क्षितिज बहुत बढ़ गया है। अब हम इस नए विद्युत माध्यम के द्वारा जन संचार क्रांति के योगदान को नहीं भुला सकते हैं। विद्युत और कंप्यूटर क्रांति के युग में रेडियो दूरदर्शन जैसे जनसंचार माध्यम लोगों के ड्राइंग रूम में जाकर बतियाने लगे हैं। इनके महत्व को किसी भी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता है। इनका प्रयोग वहाँ तक ही किया जाए जहाँ तक कि प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक पुनर्निर्माण को बढ़ावा दे रहे हो या जन जागरण में उपयोगी है।

जनसंचार माध्यमों को अगर आने वाले युग में देश की प्रगति का ध्वजवाहक बनना है तो इनकी उपयोगिता को केवल विकास, शांति, प्रगति के कार्य तक सीमित नहीं किया जा सकता बल्कि देश या किसी भी क्षेत्र में अचानक पैदा हो गई संकटकालीन परिस्थितियों में भी मीडिया स्थिति को सामान्य करने में योगदान दे सकती है। सीमा पर सुद्ध आतंकवादियों द्वारा तोड़फोड़ आंतरिक सुरक्षा में विदेशियों की

घुसपैठ आदि में उपयोगी भूमिका अदा कर सकते हैं। एकता की भावना को मजबूत कर सकते हैं। इस प्रकार मीडिया को बढ़ावा देना जरूरी है। अपने देश के अतीत को संजोकर रखने, वर्तमान को बेहतर बनाने और भविष्य के निर्माण के लिए इन माध्यमों की उपयोगिता एवं सामर्थ्य बहुत बढ़ गई है।

संकट-

1. मीडिया के अत्याधिक प्रयोग ने संपूर्ण विश्व को हिलाकर रख दिया है। आज चारों ओर भूमंडलीकरण का शोर मचा हुआ है। हमारा देश ही नहीं बल्कि विश्व की अन्य भाषाओं पर भी यह संकट मंडराने लगा है। कुछ समय पूर्व फ्रांस, जर्मनी, पोलैंड, रूस आदि देशों ने अंग्रेजी के विशुद्ध कानेन बनाए हैं। आइसलैंड सरकार ने तो शब्द समितियाँ गठित की हैं। भाषाएँ लगातार मर रही हैं। इसको देखकर फ्रांस ने भाषा संरक्षण के कदम उठाए हैं। भाषाविदों का अनुमान है कि वैश्वीकरण और समरूपीकरण के आक्रमण ने कई भाषाओं को लुप्त कर दिया है। ऐसा अंदाज है 21 वीं सदी के अंत तक विश्व की लगभग 3000 से अधिक भाषाएं विनाश की स्थिति में आ जाएगी। इस दृष्टि से सोचें तो पूर्व केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल का सुझाव स्वागत योग्य है कि हिंदी को एक 'लिंगवा फ्रांका' यानी संपर्क भाषा के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। वैसे वर्तमान में देश के बाजारों में हिंदी का संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग हो रहा है लेकिन विभिन्न प्रांतों के लोगों ने अपनी सुविधानुसार प्रयोग किया है इसलिए अलग-अलग प्रांतों की अलग-अलग ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। इससे हिंदी भाषा तो संपर्क भाषा बन सकती है लेकिन स्थानीय बोलियाँ जो हिंदी रूपी वट वृक्ष के नीचे फल एवं बढ़ रही हैं उन पर खतरा मंडरा सकता है और मंडरा रहा है। हिंदी को बढ़ाने और सरल मधुर लालित्यपूर्ण बनाने में उसकी बोलियों का महत्वपूर्ण स्थान है। बालियों के नष्ट होने से हमारी सामाजिक संस्कृति भी नष्ट हो जाएगी। जिन मूल्यों के द्वारा भारतीय संस्कृति विश्व रंगमंच पर अनी सुगंध बिखेरती है यदि वे बोलियाँ भाषाएं ही खत्म हो गईं तो हमसे हमारी पहचान छिन जाएगी।

2. हिंदी में मीडिया की चकाचौंध ने दूसरा संकट इस प्रकार बढ़ गया है-साहित्य और ज्ञान को हिंदी में लाने के लिए आवश्यकतानुसार प्रयास नहीं किए जा रहे हैं जबकि अन्य देशों में सरकार द्वारा देश की भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए पर्याप्त प्रयास किए जाते हैं, लेकिन हमारे यहाँ नहीं। विदेशी शब्द सिर्फ हिंदी में ही नहीं आ रहे हैं, शायद अंग्रेजी में इससे भी ज्यादा शब्द आते हैं लेकिन दूसरे देशों में इन शब्दों का हिसाब रखा जाता है। हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए कोई ठोस प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। हिंदी को जो लोकतंत्र नहीं दे पाया वह बाजार ने उसे दिया है। हिंदी अंग्रेजी मीडिया के दबाव से मुक्त होने लगी है जिसके कारण इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में फैलाव आया है। एफ.एम. रेडियो का विस्तार हुआ। हिंदी की वेबसाइट खुलने लगी। देश के दस बड़े अखबार हिंदी और भारतीय भाषाओं के हैं। हिंदी चैनलों को मुनाफे की दृष्टि से कामयाब बताया जाता है, किंतु हिंदी की आंधी में गुणात्मकता का अभाव है। भाषा में अराजकता है जिस को हटाने के लिए सरकार एवं हम हिंदी सेवियों को प्रयास करने चाहिए।

3. रीति-रिवाजों एवं व्रत त्योहारों एवं संस्कृति का बाजारीकरण मीडिया द्वारा किया जाता है। जैसे दुर्गा पूजा के अवसर पर सजने संवरने तथा आभूषण खरीदने के तरीके बताए हैं। प्रथम दिन से लेकर नवमी तक अलग-अलग रंग के कपड़े पहनाने के लिए रिवाज का बहाना लिया गया है। पूरा ब्यौरा एक तरफ से मीडिया द्वारा लिया गया विज्ञापन है। इसी प्रकार से राखी के मौके पर सोने चांदी की राखी तथा उनके मूल्य भी बताए जाते हैं, अर्थात् प्रेम को भुनाने का प्रयास किया जाता है।

4. संकट का एक महत्वपूर्ण तीसरा कारण यह भी है आज हिंदी के साथ दो प्रकार का व्यवहार हो रहा है। अंग्रेजी भक्त हिंदी की उपेक्षा और विरोध पहले से अधिक खुलकर कर रहे हैं। विशेषतः भारत में व्यापार के वैश्वीकरण के आरंभ से ज्यों-ज्यों वैश्वीकरण का विस्तार होता जा रहा है और बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपना जाल बिछाती जा रही हैं त्यों-त्यों हिंदी की स्थिति इयनीय होती जा रही है। दूसरी ओर कुछ हिंदी पत्रकार और लेखक हिंदी को भ्रष्ट करने पर लगे हैं कुछ हिंदी समाचार पत्रों में उनके अग्रलेखों तथा समाचारों में ऐसी अशुद्ध और अंग्रेजी मिश्रित हिंदी छपी जा रही है कि उसे हिंदी के बजाय हिंग्लिश कहा जा सकता है। लिंग वचन की अशुद्धियों की बात छोड़ दीजिए क्योंकि यह प्रादेशिक अभ्यास और स्थानीय रंगत के कारण हो सकता है। वह शुद्धस्तरीय और मानक हिंदी के नमूने वहां चौंकाने वाले हैं जहाँ एक वाक्य अंग्रेजी छौंक के बिना नहीं लिखा जा सकता। तत्सम तद्भव शब्दों के विचित्र युग्म और अंग्रेजी हिंदी मिश्रित समासों की प्रदर्शनी मिलती है। फारसी और संस्कृत के मिश्रण से विचित्र युग्म बनाए जाते हैं। फूहड़ प्रयोग करके हिंदी को जानबूझकर विकृत करने की कोशिश की जा रही है। इसी प्रकार से सिनेमा, केबल चैनलों पर प्रसारित विभिन्न कार्यक्रमों में जो भाषा प्रयुक्त हो रही है वह न केवल अशुद्ध है बल्कि फूहड़ और कुरुचिपूर्ण भी है। इसी खिचड़ी और लंगड़ी भाषा को अंग्रेजी उर्दू एवं फारसी की बैसाखी के सहारे खड़ा किया जाता है। हिंदी का प्रयोग हिंदी की प्रकृति एवं परंपरा के अनुकूल होना चाहिए शब्दों के साथ उनके जन्म स्थान, क्षेत्र और देश की संस्कृति बँधी होती है और वहाँ की सामाजिक परंपराओं पर उनकी छाप होती है जिसे समझे बिना आज हिंदी में मनमाना प्रयोग हो रहा है।

5. विज्ञापन एक महत्वपूर्ण कारण है- श्रव्य एवं दृश्य संचार माध्यमों पर जो विज्ञापन प्रसारित होते हैं उनकी भाषा तो अकथनीय है। समाचार पत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों की भाषा का अध्ययन किया जाए तो अद्भुत परिणाम निकलेंगे। सभी समाचार पत्रों में ऐसे विज्ञापन छापे जाते हैं जिनकी भाषा खिचड़ी होती है वह भी अनपकी खिचड़ी। ऐसे विज्ञापन कभी पूरे पृष्ठ पर होते हैं कभी आधे या चौथाई पृष्ठ पर। जैसे किसी कलम के विज्ञापन में छपा गया लिखे सबसे क्लियर। इसी प्रकार एक पंखे के विज्ञापन की भाषा देखिए केनस्टार ऑन गर्मी गॉन। नो लापरवाही, डैन्ड्रफ गायब आदि अनेक खिचड़ी भाषा के विचित्र नमूने मिलते हैं। देवनागरी लिपि को अपदस्थ करने का अभियान तो बहुत सी देशी-विदेशी कंपनियों ने जोर-शोर से शुरू कर रखा है। उत्पाद बेचने के लिए उन्हें हिंदी की जरूरत है पर उसकी लिपि को नहीं। शब्द हिंदी के रहेंगे पर लिपि रोमन रहेगी जैसे-Life Ban Jaye Chutki Mein (लाइफ बन जाए चुटकी में) ऐसे एक नहीं हजारों

उदाहरण है। इसी प्रकार से मोबाइल पर जो संदेश लिखे जाते हैं उनकी भाषा भी हिंदी है लेकिन रोमन लिपि में लिखी जाती है।

इसी प्रकार टेलीविजन, रेडियो, इंटरनेट, फिल्मों एवं खासतौर पर हिंदी के अखबारों द्वारा इधर जिस तरह की हिंदी प्रयोग में आ रही है उसे देखते हुए इस चिंता से उभरना अस्वाभाविक नहीं है कि कहीं यह हिंदी वालों के द्वारा ही हिंदी को विदा कर देने की कोशिश तो नहीं हो रही है? हिंदी में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग तो उसकी उदारता एवं विकास की निशानी हो सकता है पर तभी जब वह भाषा के मूल ढांचे को विकृत करके उसे हिंग्लिश बना देने वाले क्रियालीकरण हद तक नर चला गया हो। अब से जो फिक्र की जा रही है वह रोग के लक्षणों पर केंद्रित होकर रह जाने पर सार्थक बहस में नहीं बदल पाएगा। इसके लिए हमें गहरे में उतरना होगा। हिंदी के उद्भव और विकास को फिर से उठाना होगा और स्पष्ट तय करना होगा कि हिंदी के द्वारा हमें जो हासिल करना है वह कैसे और किन के द्वारा हो सकता है। इसी प्रकार उक्त सभी बिंदु हिंदी को संकट की ओर ले जा रहे हैं। हमें शीघ्र इनका समाधान करना होगा। संभावना- संभावनाओं के सहारे मानव अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देता है और एक दिन इस संसार को छोड़कर हमेशा के लिए इतनी दूर चला जाता है जहाँ से वह कभी वापस नहीं लौटता लेकिन ऐसी स्थिति हिंदी की नहीं है। प्रिंट मीडिया में हिन्दी को विगत दो शताब्दी में बोली से भाषा में बदला। अब जनसंख्या मार्केट, मीडिया मिलकर उसे फिर एक बड़ी बोली जाने वाली भाषा में बदल रहे हैं। प्रिन्ट मीडिया ने उसे ग्लोबल बोली बनाया। इस अर्थ से राष्ट्रीय भाषा बनें न बने अन्तरराष्ट्रीय भाषा बन चली है। मीडिया के द्वारा व्यापक परिवर्तन संभव है। विश्व के अनेक देशों में समाज के चेहरा बदलने के ऐतिहासिक अभियान शुरू किए गए हैं जिनमें संचार माध्यमों का प्रयोग बढ़ चढ़कर किया जा रहा है। ब्रिटेन में मध्ययुगीन समाज में चुड़ैल समझकर हजारों स्त्रियों को मौत के घाट उतार देने की परंपरा रही या भारत में बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा उन सबको समाज द्वारा स्वीकृत कराने के पीछे मीडिया और उससे पैदा हुई जन जागृति की निर्णायक भूमिका रही है। उस समय जनसंचार के साधनों के बहुमुखी उपक्रमण से प्रभावित होता है। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि इन साधनों के कारण जागरूकता और जिज्ञासा बढ़ी है। मनुष्य नई नई बातें जानता है और जो ठीक है उन्हें स्वीकारना चाहता है। हम यह निसंकोच कह सकते हैं कि जनसंचार माध्यमों को समाजिक परिवर्तन का शस्त्र बनाया जा सकता है। पुरानी परम्पराओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों के कारण जो सामाजिक सोच बन जाती है उसे एकाएक बदलना इतना आसान भी नहीं है, धीरे-धीरे परिवर्तन किया जाता है। व्यक्ति और समाज का विश्वास अर्जित करना पड़ता है बहुत सारी सामाजिक मान्यताओं और अंधविश्वास की बन्द गली से निकालकर वैज्ञानिक विवेक के खुले उजले चौराहे तक लाने में मीडिया से क्रांतिकारी भूमिका निभाई है।

सभी संचार माध्यमों से विभिन्न अभियान चलाए जाते हैं जो सरकार की नीतियों के परिपूरक होते हैं। जन सामान्य का सरकार की नीतियों से अवगत कराते हैं और उन्हें देश के पुनर्निर्माण में भागीदार बनाने के लिए प्रेरित करते हैं। कृषि, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, पिछड़ी जातियों के उत्थान, छुआछुत, राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक

सद्भाव आदि में संचार माध्यम बहुत बड़ा कर्तव्य निभाते हैं। मीडिया सरकार और समाज को संभावित संकटों के प्रति आगाह करता है ताकि सारी व्यवस्था ठीक से काम करें, स्वराज बने लोकतंत्र मजबूत हो विषमता एवं शोषण के हालात ना बने लगातार प्रगति होती रहे। कुरीतियाँ ओर अंधविश्वास की जड़ें जमनें न पाए। सरकार के फैसले कहीं भी बीच में ना रूकें, उन पर ईमानदारी से अमल हो, जिसके लाभ सामान्य जनता तक पहुँचे। मीडिया की मुख्य भूमिका होती है। इसी प्रकार जनसंचार माध्यमों ने आज गजब की प्रगति की है। नई तकनीक ने इसमें अदभुत क्रांति ला दी है। रॉकिट, सैटेलाइट से दूर-दूर के स्थानों का सचित्र वर्णन टीवी के द्वारा संपूर्ण विश्व के कोने में पहुँच रहा है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज विश्व में जिस प्रकार से अंतराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी की आवश्यकता है ठीक उसी प्रकार वर्तमान भारत में राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की अनिवार्यता असंदिग्ध है। अत्याधुनिक संचार साधनों - कंप्यूटर, इंटरनेट, ईमेल आदि पर हिंदी को अधिक बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जिसमें हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाएं रोजगारपरक बन सकें। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की सामग्रियों का परिष्कृत एवं परिमार्जित अनुवाद किया जाना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य रूप में मातृभाषा में दी जानी चाहिए और माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी में हो। उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा एवं अंग्रेजी में होना चाहिए। उक्त उपायों के साथ साथ हम भारतीयों को हिंदी के प्रति समर्पित होना पड़ेगा। आज अनेक पत्र-पत्रिकाएँ, हिंदी ब्लॉग प्रचार प्रसार में लगे हुए हैं। इससे देश में ही नहीं विदेशों में रह रहे लोगो को भी लाभ पहुँच रहा है। जिसे जब जो जानकारी, सूचना जो पत्रिका पढ़नी हो पढ़ ले। इस प्रकार परिस्थितियों का सामना करते हुए हिंदी आगे की ओर अग्रसर हो रही है और लोगो के हृदय में अपनी जगह बना रही है। कहीं कम तो कहीं अधिक रूप में इन्ही बातों से प्रभावित होकर अमेरिका देश ने भारत से लगभग 14000 हिंदी शिक्षकों की माँग की है। इस प्रकार स्पष्ट कहा जा सकता है कि हिंदी अपनी राह से भटक नहीं रही है बल्कि भूमंडलीकरण स्तर पर अपने विभिन्न रूपों में आगे बढ़ रही है। हिंदी के प्रचार प्रसार में मीडिया की महती भूमिका रही है। टीवी के हर चैनल पर विज्ञापन हिंदी में अधिक से अधिक दिखाए जाते हैं और हिंदी साहित्य का भी योगदान रहा है। कंप्यूटर, इंटरनेट से जुड़ने के बाद तो इसमें और भी प्रगति हुई है। दूरदर्शन के कारण लोगों की रुचि पुस्तकों से हट गई है। लेकिन इसके लिए हमें ऐसी पुस्तकें लिखनी होंगी जो जनसामान्य में लोकप्रिय हो सकें। पाठक हमसे कैसी उम्मीद कर रहा है, वह कैसा साहित्य चाहता है, इसके साथ ही उनकी कीमत जनसामान्य के अनुरूप होनी चाहिए। आज अमेरिका, यूरोप में भी हिंदी भाषा का साहित्य पढ़ाया जा रहा है हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. जनसंचार – संपादक डॉ राधेश्याम शर्मा
2. स्मृति उपायन – आगरा कॉलेज आगरा
3. हिंदी अनुशीलन – भारतीय हिंदी परिषद प्रयाग मासिक जून 2006
4. विश्व बाजार में हिंदी – संपादक – महिपाल सिंह एवं देवेन्द्र मिश्र
5. वर्तमान साहित्य मार्च 2007, अक्टूबर 2009

रामभक्ति व विधायक भावनाओं का आकर ग्रन्थ-रामचरित मानस

• सुनीता द्विवेदी

सारांश- गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना।' इस अनुभूति में ज्ञान व भक्ति का विलक्षण समन्वय होता है। इसमें अनुभूति इतनी गहरी हो जाती है कि प्यासे और जल में कोई अन्तर नहीं रह पाता। बस ऐसे ही रस के प्रवाह में विभारे हो आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। इस रस-साधना का समाज में परिलक्षित होने वाला परिणाम है- 'व्यक्तित्व का सम्यक् विकास एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष।'

मुख्य शब्द- व्यक्तित्व, ज्ञान, भक्ति, समन्वय

भारतीय मनीषा परम सत्य को जो सम्पूर्ण सृष्टि का स्रोत है उसे सच्चिदानन्द कहती है। वही आनन्द ब्रह्म है। जब किसी छिपी महान शक्ति के प्रति जिज्ञासा विस्मय और अनुभव करने की उत्सुकता प्रकट की जाती है तो वह रहस्यानुभूति की अवस्था कहलाती है। ज्ञानी उसे बुद्धि से पकड़ने की कोशिश करता है तथा संवेदनशील और भावुक व्यक्ति काव्य और संगीत से अनुभव करने की इच्छा करता है। इस अनुभूति में ज्ञान व भक्ति भाव का विलक्षण समन्वय होता है। ज्ञान मार्ग में ज्ञानी को साधना करनी पड़ती है और भाव मार्ग में उस गुह्य सत्ता के साथ रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर काव्य संगीत या कलात्मक चित्रण से उसे प्रकट करना होता है। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं, "हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।"

इसमें अनुभूति इतनी गहरी हो जाती है कि प्यासे और जल में कुछ भी अन्तर नहीं रह पाता। बस ऐसे ही रस के प्रवाह में विभोर हो आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। इस रस साधना का (जो स्वयं साध्य भी है) समाज में परिलक्षित होने वाला परिणाम है- "व्यक्तित्व का सम्यक् विकास एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष।"

भारतीय भक्ति भावना का विकास रामभक्ति से शताब्दियों पूर्व हो चुका था। ज्ञान और कर्म के समान भक्ति का उद्गम स्थल भी वेद माना गया है। वेद मन्त्रों में ईश्वर के लिये की गयी भावुक स्तुतियाँ मिलती हैं। ये स्तुतियाँ भक्ति और प्रेम के बिना की गयी हों, यह असम्भव है। वेद में प्राप्त इस बीज रूप भक्ति का पल्लवन भागवत धर्म में हुआ जिसमें कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। डॉ. मुन्शीराय शर्मा के अनुसार यही से वैष्णव भक्ति का मूर्ति पूजा के रूप में प्रारम्भ हुआ है।

• एसोसिएट प्रोफेसर, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

वैष्णव भक्ति की दूसरी धारा के उपास्य देव राम के अवतारवाद को लेकर कुछ विद्वानों का विचार है कि कृष्ण के अवतार रूप का विकास होने पर कालान्तर में कुछ महापुरुषों को भी विष्णु का अवतार माना जाने लगा था जिसमें दशरथ पुत्र राम प्रमुख हैं।² किन्तु रामायण में कुछ ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि ग्रन्थ के रचना काल³ में ही राम विष्णु के अवतार माने जाते थे। जैसे उत्तर काण्ड में ब्रह्म ने भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों की बात कहकर राम के रूप में अवतरित हुये उन्हें पुनः देवलोक लौट आने के लिये कहा है। कुछ विद्वान ऐसे प्रसंगों को रामयण का मूल अंश नहीं मानते हैं। उनके अनुसार ईसा की तीसरी शताब्दी में ये प्रसंग जोड़े गये हैं। विद्वानों के इस वक्तव्य को मान लेने पर यही सिद्ध होता है कि रामावतार की भावना कृष्णावतार के पहले से विद्यमान थी क्योंकि भागवत् पुराण का रचना काल ईसा की छठी शताब्दी माना जाता है।⁴ श्रीमद्भागवत पुराण में राम विष्णु के अवतार माने गये हैं-

“सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः,
सर्वाव्यना यः सुकृतज्ञयुत्तयम्।
भजेत् राम मनुजाकृतिं हरिम्,
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवम्॥”⁵

अर्थात् देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य कोई भी हो, श्री राम का ही भजन करना चाहिये, क्योंकि राम नररूप साक्षात् श्री हरि हैं। विष्णु के अवतारों में भारतीय संस्कृति की दृष्टि से रामावतार सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।⁶ अवतार पुरुष राम का चरित्र अनुकरणीय है, राम हैं तो भारत की संस्कृति की चर्चा है, उनके साथ मर्यादा जुड़ी है। निरन्तर बढ़ती हुई अवतार लीला की इस भावना का रामोपासना के विकास में एक विशिष्ट योगदान रहा है। इस प्रकार रामभक्ति का प्रारम्भ मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में हुआ।

रामायण के परवर्ती काल में आठवीं शताब्दी से रामभक्ति धारा का क्रमिक रूप प्राप्त होता है। इस काल में थोड़े से रूप परिवर्तन के साथ रामभक्ति धारा की जो शाखा प्रस्फुटित हुई उसकी प्रशाखा के रूप में 15वीं शताब्दी में रामावत् सम्प्रदाय विकसित हुआ। 800 से 1100 ईसवी के बीच दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन जोरों पर था। ईश्वर प्रेम को जनमानस में प्रवाहित करने के लिये इस काल में वहाँ शैव और वैष्णव दो प्रकार के सन्त हुये। इन वैष्णव सन्तों को ‘आलवार’ कहा जाता है। प्रमुख आलवार, संख्या में 12 माने जाते हैं। आलवार का अर्थ है, “भगवद् भक्ति में डूबा हुआ व्यक्ति।” तमिल में लिखे इन भक्तों के पद संग्रह को ‘दिव्य-प्रबन्धम्’ कहते हैं। ये भक्ति पद आज भी दक्षिण के मन्दिरों में गाये जाते हैं। आलवारों में प्रथम चार विष्णु के पूजक थे और पाँचवे आचार्य शठकोप मुनि भगवान राम के गोपी भाव के उपासक थे।⁷ डॉ. भगवती सिंह ने इनकी माधुर्य भक्ति का वर्णन करते हुए इन्हें कान्ताभावोपासक बताकर इनके ग्रन्थ ‘सहस्रगीति’ का निम्न उदाहरण दिया है जो शठकोप जी के कान्ताभाव को प्रमाणित करता है:-

“..... दीर्घाभूतदहत्कठिन चापो
मत्काकुत्स्थोनायाति मरणोपायं न जानामि प्रबल
पापाहं स्त्रीजन्या।।”⁸

आज रामभक्ति का रसिकोपासक वर्ग इन्हें अपनी परम्परा का प्रथम आचार्य मानता है। इन्हीं की शिष्य परम्परा में 11वीं शताब्दी में (1017-1137) आचार्य रामानुज का आविर्भाव हुआ। इस काल में वैष्णवों के चार सम्प्रदाय बने- श्री, सनक, ब्रह्म एवं रुद्र। इनके क्रमशः आचार्य थे:- रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी। उत्तर भारत में विशेष रूप से मथुरा-वृन्दावन में पुष्पित कृष्ण भक्ति की परम्परा आचार्य निम्बार्क एवं विष्णुस्वामी से सम्बद्ध है। श्री एवं ब्रह्म सम्प्रदाय में राम भक्ति को विशेष महत्व दिया गया। रामानुजाचार्य जी के 13वीं गद्दी के आचार्य स्वामी राघवानन्द जी तीर्थ दर्शन के उद्देश्य से काशी और अयोध्या आये और काशी में स्थायी रूप से रहने लगे।

स्वामी राघवानन्द ने काशी में रहते हुये रामदत्त नामक ब्राह्मण को राममन्त्र की शिक्षा दी जो आगे चलकर रामानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये। इस प्रकार रामभक्ति का बीज स्वामी राघवानन्द के साथ दक्षिण भारत से लाकर काशी में रोपा गया, जो 15वीं शताब्दी में आविर्भूत हुये रामानन्द के प्रयासों से सर्वदा समृद्ध हुआ। इसी कारण स्वामी रामानन्द को रामभक्ति धारा के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। रामानन्द जी ने केवल राम के भक्तों का वर्ग तैयार किया, जो रामावत सम्प्रदाय कहलाया। रामानन्द ने नवधा भक्ति के साथ प्रेमाभक्ति को जोड़कर दशधा भक्ति बतलाई, अर्थात् राम के प्रति विशेष रागयुक्त भक्ति का सिद्धान्त बताया। श्री सम्प्रदाय के अन्तर्गत आने वाला रामभक्तों का यह वर्ग आचार-व्यवहार में अन्यो की अपेक्षा अधिक उदार था। सर्वविदित है कि आचरण में इस परिवर्तन का कारण तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति भी थी।

लगभग यही समय था जब रामानन्दाचार्य जी के शिष्य अनन्तानन्दाचार्य जी थे जिनके प्रिय शिष्य थे नरहर्यानन्द जी। भगवत्कृपा से इन्हीं नरहर्यानन्द जी के परम रामभक्त शिष्य हुये गोस्वामी श्री तुलसीदास जी। जिन्होंने बहुत ही सरल, सहज भाषा में रामचरित मानस लिखकर बुन्देखण्ड व अवध क्षेत्र को ही नहीं वरन् सम्पूर्ण उत्तर भारत के रामभक्तों को कृतकृत्य कर दिया। अतिशयोक्ति ना होगी यदि ये कहा जाये कि रामचरित मानस प्रत्येक उत्तर भारतीय हिन्दु के घर में अवश्य उपलब्ध होगा भले ही रामायण की एक भी प्रति नामिले।

प्रस्तुत शोध पत्र में विधायक भावनाओं की बात की गयी है। विधायक भावनायें हैं दया, प्रेम, करुणा, ममता, संकोच, त्याग, धैर्य, नीति पालन आदि। आज के समाज में चहुँ ओर इन्हीं भावनाओं का पूर्णतया अभाव दिखाई दे रहा है। परिणामतः आज मनुष्य शान्त नहीं, बेचैन है, आनन्दित नहीं, पीड़ा में है। तमाम सुख-सुविधा के साधन होते हुये भी मनुष्य अपनी नींद और शान्ति भंग करके चिन्ता-तनाव से पीड़ित है। चारों तरफ प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या और हिंसा बढ़ रही है। समाज में बढ़ती हिंसात्मक घटनाओं को देखकर हम पल भर के लिये चिन्तित हो उठते हैं, प्रश्न भी उठता है, ऐसा क्यों हो रहा है? परन्तु अगले ही पल सब कुछ भूलकर हम भौतिक सुखों की खोज में चल रही अन्धी दौड़ में पुनः भागने लगते हैं।

समाज में बदलाव लाने के लिये हमें सर्वप्रथम विधायक भावनाओं के रोपण पर विचार करना होगा। इस हेतु हमें नैतिक मूल्यों की भण्डार रूपी रचना रामचरित मानस को आत्मसात करने के साथ ही साथ अगली पीढ़ी में सफलतापूर्वक हस्तान्तरित करने की महती आवश्यकता है। मानस में एक-दो-चार उद्धरण नहीं, पूरी की पूरी रचना ही जीवन मूल्यों पर आधारित है। नकारात्मकता का स्थान ही नगण्य है। रामचरित मानस में वर्णित जीवन मूल्यों को लेकर अनन्त उद्धरणों में से चिन्तनोपरान्त कुछ दृष्टान्त निम्नवत् प्रस्तुत किये जा रहे हैं:-

संकोच- “गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।”

बालकाण्ड, दोहा-248

लज्जा- तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी,

दुहुँ संकोच सकुचति बर बरनी।

बहुरि बदन बिधु अँचल ढाँकी। पिय तन चितई भौह करि बाँकी। आपके पति कौन हैं? ये पूछे जाने पर माता सीता का उत्तर-वाह से आह तक की स्थिति में पहुँचाता है। कई-कई बार इन पंक्तियों को पढ़कर अकथनीय आनन्द प्राप्त होता है। क्या आज कहीं ऐसी सहजशीलता और लज्जा दृष्टिगत होती है?

भरत पर प्रीत को दर्शाती ये पंक्तियाँ- “लोभ न रामहि राजुकर,

बहुत भरत पर प्रीत”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-31

माता कौशल्या का धैर्य व नीति पालन-

“जौ केवल पितु आयसु ताता,

तौ जनि जाउ जानि बड़ि माता।

जौ पितु मातु कहेहु बन जाना,

तौ कानन सत अवध समाना॥”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-55 के बाद

माता-पिता के आदर व आज्ञापालन का भाव-

“सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी,

जो पितु मातु बचन अनुरागी॥”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-40 के बाद

तुलसीदास जी कहते हैं-

“पितु आयसु भूषण बसन तात तजे रघुवीर,

बिसमउ हरष न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥”

पाप, पुण्य, परोपकार का अति सुन्दर उदाहरण-

“परिहित बस जिन्हके मन माहि, जिन्ह कहु जग दुर्लभ कछु नाही। ”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-30 के बाद

उत्तर काण्ड में भी कहा है-

“परहित सरिस धर्म नहि भाई,

परपीड़ा सम नहि अघ माई।”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-40 के बाद

भगवान राम के प्रति अपनी भक्ति भाव को बताते हुये गो. तुलसीदास जी प्रेमाभक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं-

“कामिय नारि पियारि जिमि, लोभी प्रिय जिमि दाम।

अस भगवान निरन्तर, प्रिय लागो मोहि राम।।”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-130 ख

तुलसीदास जी ने इस लोक के लिये परम पद मार्ग मोक्ष का भी रामभक्ति के आगे निरादर कर दिया-

“मुक्ति निरादर भगति लुभाने।”

गोस्वामी जी ने केवल जीवन मूल्यों का आदर्श रूप ही नहीं प्रस्तुत किया है वरन् एक अत्यन्त दूरदर्शी की भाँति कुछ कटु सत्य कहते हुये भविष्य के लिये लोगों को सचेत भी किया है। आज के समाज में वो सब कुछ घटित होता दिख रहा है। जैसे कि-

“कलि काल बिहाल किये मनुजा,

नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा।।”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-101 के बाद

“मातु पिता बालकहिं बोलावहिं,

उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं।”

गुरु-शिष्य पर तो ऐसा कह दिया तुलसीदास जी ने कि अवाक् होकर ये सोचना पड़ता है कि 16वीं शताब्दी में बैठकर कैसे 21वीं शताब्दी में घट रही घटनाओं का चित्रण कर दिया-

“गुरु सिष बधिर अन्ध का लेखा,

एक ना सुनई एक नहि देखा।

हरहिं सिष्य धन सोक न हरई,

ता गुरु घोर नरक मा परई।”

- अयोध्याकाण्ड, दोहा-98 के बाद

रामचरित मानस जीवन मूल्यों का भण्डार है, तमाम उत्कृष्ट चरित्रों का प्रबल चित्रण है, सन्मार्ग पर चलने का अखण्ड आदेश है। पुण्य विधायक भावनाओं संकोच, प्रेम, दया, ममता, त्याग, अनुशासन, विनम्रता, करुणा, क्षमा, धैर्य, आदर आदि के उदाहरणों से व अनुकरणीय चरित्रों से भरा पड़ा है रामचरित मानस ग्रन्थ। बस आज आवश्यकता है इस ओर युवा समाज का रूख मोड़ दिये जाने की। यह समय की आवश्यकता है, विकास भी है और पाश्चात्य की नकल भी, किन्तु इस दौर में आज का युवा वर्ग कुछ भटक रहा है और Drink, Disko, Dance, Drugs में लिप्त होकर सुख पाने का असफल प्रयास कर रहा है। यह पूरे समाज के लिए बहुत बड़ी चिन्ता का विषय है। युवाओं की तेजी से बदलती रूचियों और व्यवहार को यकायक मोड़ पाना निश्चित रूप से कोई सरल कार्य नहीं है परन्तु सद्भावना के साथ प्रारम्भ करने में ऐसा कोई अति दुष्कर कार्य भी नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है-

“प्रातः काल उठि के रघुनाथा,
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥”

संस्कारों की सीख देती हुई इन पंक्तियों पर अमल करने की शुरुआत माता-पिता घर में बिल्कुल बाल्यकाल से कर सकते हैं और धीरे-धीरे आगे का मार्ग भी सुगम बना सकते हैं। ऐसी सुभेच्छा है। इति॥

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. ऋग्वेद 8/98/11
2. डॉ. भगवती प्रसाद सिंह, राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 39
3. वही पृ. 35
4. वही पृ. 38
5. श्रीमद्भागवत पुराण, 5/19/8
6. डॉ. फादर कामिल बुल्के, रामकथा, पृ. 147

‘गो’ पद की अर्थ मीमांसा

• ज्योत्स्ना द्विवेदी

सारांश- पदों और वाक्यों के एक और अनेक अर्थ होते हैं। जिन पदों के अनेक अर्थ होते हैं, उनका कारणों के होने पर किसी प्रकरण में एक ही अर्थ प्रतीत होता है। प्राचीन और अर्वाचीन काल के भेद से भी पदों का प्रयोग भिन्न अर्थों में होने लगता है। इस प्रकार के कई पद हैं जिनका स्वरूप भिन्न है पर वे एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं। इन पदों को पर्याय कहा जाता है।

लोक और वेद में पदों का यह स्वरूप अनेक उदाहरणों में प्रसिद्ध है। वाचक पदों के उस स्वरूप पर उचित ध्यान न देने के कारण विद्वानों में मतभेद प्राचीन काल में भी होता था। जो लोग लौकिक प्रयोगों में प्रकरण के अनुसार अनेक अर्थ के वाचक पद का किसी अर्थ विशेष में प्रयोग उचित मानते हैं, वे भी कुछ अवसरों पर त्याग कर देते हैं। उसका कारण प्राचीन ग्रन्थों में मतभेद है।

वाचक पदों के उस स्वरूप को प्रतिपादित करने के लिए प्रस्तुत लेख में ‘‘गोपद’’ का विप्लेशन किया गया है। क्योंकि ‘‘गो’’ पद विभिन्नार्थक है जिससे मध्यकालीन संस्कृत ग्रन्थों और भाष्यों में विरोधाभास प्रतीत होता है। वस्तुतः वाचक की भिन्नता मात्र इसका कारण है।

मुख्य शब्द- पद, वाक्य, प्रतिपादक, गोपद, गो

संस्कृत वाङ्मय में अनेकत्र ऐसे शब्द दृष्टिगोचर हो जाते हैं, जिनका प्रचलित भाषा में अनुवाट करने से भ्रान्ति उत्पन्न होती है और वक्ता का भाव विरुद्ध प्रतिपादित होता है क्योंकि संस्कृत भाषा में पदों और वाक्यों के एक और अनेक अर्थ होते हैं। प्राचीन और अर्वाचीन काल के भेद से भी पदों का प्रयोग भिन्न अर्थों में होने लगता है। यथा ‘‘गौतम’’ शब्द में गो+तमप् करने पर सीधा अर्थ सबसे उत्तम गाय से है परन्तु व्यक्ति विशेषवाची गौतम शब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय¹ करने पर गौतम शब्द सिद्ध होता है जो कि वर्तमान समय में भी उपनाम प्रयुक्त होता है।

गो शब्द अनेक अर्थों का वाचक है इस पद का अधिक प्रसिद्ध अर्थ गौ (गाय) है जो मनुष्येतर चौपाया प्राणी है। परन्तु वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में भी यह ‘गो’ पद विभिन्नार्थों में प्रयुक्त है। अथर्ववेद का ‘‘ब्रम्हागवी’’ सूक्त² इसका उत्तम प्रमाण माना जा सकता है। शास्त्रों में अत्यन्त सूक्ष्मज्ञान से युक्त मनुष्य भी गोपद का वाच्यार्थ है जो विद्वानों में अधिक विद्वान हो वह गौतम कहा जाता है।

• सहायक प्राध्यापक, संस्कृत), शा.के.शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज रीवा (म0प्र0)

निरुक्त के अनुसार सूर्य, द्युलोक, पृथिवी, रश्मि, वाणी आदि अनेकार्थों में 'गौ' शब्द का प्रयोग है। निरुक्त के कर्ता यास्क कहते हैं – सूर्य रसों को दूर-दूर तक पहुँचाता है और द्युलोक में गति करता है। इसलिए उसको गौ कहते हैं। निरुक्त के अनुसार द्युलोक को भी गौ कहा जाता है। द्यौ पृथिवी से बहुत दूर है इसलिए वह भी गौ कही जाती है। नक्षत्र आदि ज्योतियाँ इसमें चलती हैं इसलिए द्यौ को भी गौ कहते हैं।³ गौ का अर्थ वाणी भी है।⁴ पशु और वाणी अर्थ में गौ पद का प्रयोग प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने अनेक बार किया है। आचार्य पाणिनि का सूत्र है – “गवियुधिभ्यां स्थिरः”⁵ इस सूत्र में अपनी वाणी पर स्थिर रहने वाले की “गविष्ठिरः” कहा गया है। यहाँ पर “संज्ञायाम्”⁶ इस सूत्र से नित्य समास है। जहाँ संज्ञा नहीं है वहाँ गविस्थिररूप होगा। स्थिर के स को मूर्धन्य श नहीं होगा।

गोष्ठी पद में भी गोपद वाणी का वाचक है। वाणी का स्थान होने कारण सभा और परस्पर मिलकर वार्त्तालाप का नाम गोष्ठी है। गौओं के रहने का स्थान होने के कारण गौशाला को भी गोष्ठ कहते हैं। मेदनी-कोष का वाक्य है-गोष्ठं गोस्थानं गोष्ठी सभासलापयोरु स्त्रियाम्।⁷ व्याकरण के महान् विद्वान् भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में “दाषगोध्नौ संप्रदाने” सूत्र की व्याख्या के अवसर पर गोध्नः पद का अर्थ इस प्रकार किया है- “गां हन्ति यस्मै गोध्नोऽतिथिः।”⁸ इस व्याख्या से अतिथि के लिए भी पशु की हत्या का विधान प्रतीत होता है। स्मृतियों में कुछ वाक्य इस प्रकार के पाये जाते हैं जिनमें अतिथि के आने पर गो हत्या का विधान माना जाता है। यथा- “महोक्षं वा महानं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्।” ऐसे उद्धरणों को देखकर दीक्षित जी ने केवल गां हन्ति लिखकर व्याख्या कर दी। यहाँ पर वाणी अर्थ में गो पद के प्रयोग को स्पष्ट रूप से नहीं कहा। विचार से प्रतीत होता है कि यहाँ गौ नामक चौपाये पशु के अर्थ में गोपद का प्रयोग नहीं मानना चाहिए। यहाँ गो का अर्थ वाणी है। हन्ति का अर्थ वाणी का प्रयोग है। अतिथि का गौ अर्थात् वाणी के सत्कार का प्रयोग किया जाता है इसलिए अतिथि का नाम गोध्नः पड़ा। हन् धातु का अर्थ जिस प्रकार हत्या और गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) है उसी प्रकार शब्दों का प्रयोग भी है। उपोद्धात पद में हन् धातु का घञ् प्रत्यय के साथ प्रयोग है। अमरकोष के उपोद्घात उदाहारः इसकी व्याख्या में श्री भट्टोजिदीक्षित के पुत्र विद्वद्वर श्री भानुजीदीक्षित ने लिखा है – उप समीपे उद्धननं ज्ञापनं भावे घञ्।¹⁰ जो प्रकृत अर्थ हो उसके प्रतिपादन के लिये उपयोगी अर्थ के वर्णन को उपोद्घात कहा जाता है। उत् उपसर्ग के साथ ही हन् धातु का वाणी द्वारा प्रतिपादन अर्थ में प्रयोग होता है ऐसा नहीं समझना चाहिए। अपितु धातुओं में उन सब अर्थों के प्रतिपादन की शक्ति होती है, जिनके धातु के साथ संयुक्त होकर उपसर्ग प्रतिपादित करते हैं। गौ का एक नाम अध्न्या भी, इसके अनुसार गौ हत्या के योग्य नहीं है। इसलिए गोध्नः पक्ष में गोपद का प्रयोग वाणी के अर्थ में ही मानना चाहिए।

अब स्मृति के वाक्य में जो ‘महोक्ष’ और ‘महाज’ पद हैं उनके विचार का अवसर है। शतपथ ब्राह्मण का एक वाक्य इस स्मृति के वाक्य के समान है- “राज्ञे वा ब्राह्मणाय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेत्तदह मानुशां हविर्देवा नामेवमस्मा एतदातिथ्यं करोति।” स्मृति ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार है। इन दोनों ग्रंथों के ‘महोक्ष’ और ‘महाज’ पद का अर्थ युक्त रूप से करना चाहिये। कहीं-कहीं पर युक्ति के विरुद्ध होने पर भी प्राचीन

विद्वानों ने अनेक अर्थ के वाचक शब्द का प्रयोग उस अर्थ में मान लिया है जो उनके काल में अति प्रसिद्ध था। गौ और अजा पद का अर्थ गौ और बकरी नाम के दो पशु भी हैं। उक्षा और अजा नाम दो औषधियों का पाक करने के लिए शतपथ ब्राह्मण ने और उसका अनुसरण करके स्मृति ने विधान किया है। यह ग्रंथ प्रकरण के अनुसार भी है। जो शतपथ ब्राह्मण “धेन्वनडुहयोर्नाप्नीयात्” कहकर गौ और बैल के खाने का निषेध करता है वह महान् बैल को पकाने का निर्देश नहीं कर सकता। यहाँ पर पचेत् पद को देखकर अनर्थ किया गया है अपितु पाक शब्द का अर्थ पवित्र भी है। ऋग्वेद का मन्त्रांश “पाकेन मनसा पश्यम” प्रमाण है। जिसका अर्थ है पवित्र मन से देखें। विचार से परिपक्व मन को – पाक मन कहा है। इस पवित्रवाची पाक शब्द का प्रयोग फारसी भाषा में अतिप्रसिद्ध है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत¹⁴ के अनुसार अजा नाम की औषधि होती है। इस औषधि के कन्द बकरी के स्तन की समान होते हैं। शंख कुन्द और चन्द्रमा के समान इसका वर्ण श्वेत होता है। चरक ने भी कहा है – अजा नाम की औषधि है।

गोजिह्वा भी एक पद है जिसके गो शब्द को गौ प्राणी का वाचक माना जाय तो उसका अर्थ होगा मनुष्य से भिन्न गौ प्राणी की जीभ। अब यदि संस्कृत भाषा में ‘गोजिह्वा भक्षिता’ इस प्रकार का प्रयोग हो तो प्राणी गौ के अर्थ में गौ की जीभ खाई यह अनर्थ हो जायेगा। परन्तु गोजिह्वा का अर्थ ‘गोभी’ नामक प्रसिद्ध शाक है। लौकिक संस्कृत में यह प्रसिद्धि भी है।

मेदिनी कोष के अनुसार पुल्लिङ्ग गो शब्द के वाच्य अर्थ चतुशपाद् गो पशु, दृष्टि, बाण, दिशा, वाणी और पृथ्वी है। बहु-वचन में गो पद का प्रयोग जलवाची है।¹⁵ गोधूम और गवाक्ष शब्दों का भी इसी प्रकार गाय का धुआँ य गाय की आँख अर्थ नहीं है अपितु गृध्र धातु से अङ् प्रत्यय करके गोधूम शब्द बना और गेहूँ का प्रयोग अधिकांश गूँथकर होने इसमें रूढ़ि हो गया। इसी प्रकार गो शब्द दृष्टि वाचक होने से देखने के लिये घरों में बनाई गई खिड़की गवाक्ष शब्द से अभिहित हुई। परन्तु कुछ शब्द इस प्रकार के भी हैं जिनका एक अर्थ प्राचीनकाल से प्रसिद्ध था पर अर्वाचीन काल में वह बहुत अप्रसिद्ध हो गया। नवीनकाल में शब्दविज्ञों ने इस प्रकार के शब्द का प्राचीन अर्थ में प्रयोग देखकर शब्द और अर्थ के वाच्यवाचक भाव को मुख्यरूप से अयुक्त समझकर लक्षणा के द्वारा उत्पन्न किया। इस तथ्य को वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी¹⁶ में कुछ इस प्रकार निरूपित किया है –

अन्यतर और अन्यतम शब्द व्युत्पत्ति से रहित हैं। दो में से किसी एक का निश्चय करना हो तो अन्यतर शब्द का और बहुतों में से किसी एक निष्चय करना हो तो अन्यतम शब्द का प्रयोग होता है। इन दोनों शब्दों का यह स्वभाव है। इस स्वभाव के अनुकूल प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में बहुत है। इसके प्रतिकूल प्राचीन आचार्यों ने अन्यतम् शब्द का प्रयोग असाधारण वस्तु के अर्थ में भी किया है।

न्यायवार्तिक के व्याख्याकार आचार्य वाचस्पति मिश्र अत्यन्त प्रसिद्ध माननीय विद्वान् हैं। उनके काल में अन्यतम् पद का अर्थ बहुतों में एक ही प्रसिद्ध था। अपने काल के इस प्रसिद्ध अर्थ को मानने पर प्रमाण का प्रधानभाव नहीं सिद्ध हो सकता इसलिए आचार्य वाचस्पति मिश्र ने न्यायवार्तिक¹⁷ की तात्पर्य टीका में अन्य हेतु से असाधारण रूप

अर्थ को अन्यतम् पद का बोध्य सिद्ध किया। जो शब्द अनेक अर्थों को साधारण रूप से प्रतिपादित करता है वह भी प्रकरण के बल से अर्थविशेष का बाधक हो जाता है। पालकी उठाने का अवसर हो तो पुरुष को लाओ, इस वाक्य के बोलने पर पुरुष शब्द सामान्य पुरुष का वाचक नहीं रहता, पालकी उठाने में समर्थ पुरुष विशेष का वाचक हो जाता है। इसी प्रकार यहाँ पर अर्थ को प्रकाशित करने में प्रमाता आदि साधारण कारण है और प्रमाण के विशेष धर्म को प्रकाशित करने के लिये यहाँ अन्यतम शब्द का प्रयोग है इसलिए वह अर्थज्ञान के असाधारण कारण का वाचक है। उपर्युक्त व्याख्यानसार गो पद विभिन्नार्थों के वाचक होने में सन्देह विराम है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. तस्यापत्म् (अष्टाध्यायी-अ 04। पाद 1। सूत्र-92।
2. अथर्ववेद-कांड-18। सूक्त-5।
3. निरुक्त, अ. 2, पाद-4।
4. तदेव।
5. अश्वध्यायी-8,3,85।
6. अष्टा. 2,1,44।
7. मेदनी.-39,4।
8. अष्टा.-3,4,7,3
9. हन् हिंसागत्योरु। आदान चेत्येके। धातुपाठ।
10. अमरकोष-3,4,18।
11. षत. ब्रा. 3,4,1,21,1।
12. षत. ब्रा. 3,1,2,2।
13. ऋग्वेद 10,114,4।
14. सुश्रुत चि. अ. 30।
15. चरक चि. अ. 1।
16. अमर कोष, सुधा व्याख्या सहित 2,60।
17. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, तत्त्वबोधिनी सहित, पृष्ठ 60।

मृच्छकटिक कालीन सामाजिक प्रथा एवं कुरीतियाँ

• लक्ष्मीकान्त मिश्र
• कमलेश कुमार थापक
• आदित्य तिवारी

सारांश- किसी काल की सामाजिक परिस्थितियों को ज्ञात करने का सबसे उत्तम माध्यम तत्कालीन साहित्य होता है। साहित्य, समाज और लेखक का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि लेखक समाज में विद्यमान परिस्थितियों पर चिन्तन-मनन करता है जिस कारण समाज का स्वरूप, रीति-रिवाज, स्थितियों, विचारों, भावों अथवा परिवेश को साहित्य के स्थान देता है। यह बात मृच्छकटिकम् के लागू होती है। मृच्छकटिकम् में भी तत्कालीन समाज की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्राप्त होता है। मृच्छकटिक कालीन सामाजिक स्थिति भी बहुत दयनीय थी। सम्पूर्ण प्रजा राजा में निहित थी। राजा की इच्छा सर्वापरि होती थी। किन्तु न्याय व्यवस्था उचित नहीं थी। 'मृच्छकटिकम्' की एक ओर प्रासंगिकता है तो दूसरी ओर अनेक अप्रासंगिक सामाजिक कुरीतियाँ यथा- चोरी, बलात्कार, द्यूतक्रीड़ा, शराब, हत्या एवं अपहरण आदि हमारे समाज में आज भी विद्यमान हैं। इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये शासन, प्रशासन अथवा जन समुदाय द्वारा प्रयत्न करने के बावजूद भी समाज में इनका प्रभाव बना हुआ है जो कि सम्पूर्ण समाज को प्रभावित कर रहा है।

मुख्य शब्द- मृच्छकटिक, समाज, कुरीतियाँ, प्रथायें, शूद्रक

मनुष्य अपने ज्ञान एवं आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति काव्य रचना के द्वारा करता है। भाव अभिव्यक्ति के मुख्यतः दो भेद- दृश्य एवं श्रव्य काव्य स्वीकार किये गये हैं। इनमें से दृश्य काव्य को वाणी के साथ-साथ अभिनय द्वारा भी चित्रित किया जाता है। शूद्रक संस्कृत-साहित्य के एक मात्र नाटककार हैं जिन्होंने देवी-देवताओं, राजा अथवा श्रृंगारिकता को छोड़कर तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को नाटक का विषय बनाया है। नाटककार शूद्रक ने इस प्रकरण में मानव-जीवन और समाज की विसंगतियों को पूर्णतः प्रतिबिम्बित किया है।¹ तत्कालीन समाज मद्यपान जैसी कुप्रथा

• शोध छात्र (संस्कृत), कला संकाय, म.गॉ.चि.ग्रा.वि.वि., चित्रकूट, सतना (म.प्र.)
• एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), कला संकाय, म.गॉ.चि.ग्रा.वि.वि., चित्रकूट, सतना (म.प्र.)
• एम.एस-सी. कृषि (एग्रोनामी) म.गॉ.चि.ग्रा.वि.वि., चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

प्रचलित थी। नारी असुरक्षित थी, उनका अपहरण किया जाता था साथ ही हत्या तक करने के प्रयास किये जाते थे। नारी सायंकाल में भ्रमण नहीं कर सकती थीं। द्यूतक्रीड़ा को मान्यता प्रदान की गई थी यहाँ तक की द्यूतक्रीड़ा में व्यवधान डालने वाले को सजा का प्रावधान था। चोरी, दास प्रथा प्रचलित थी। मनुष्य का क्रय-विक्रय किया जाता था। मृच्छकटिक कालीन समाज की कुरीतियों का वर्णन निम्नानुसार है- 'मृच्छकटिकम्' की सामाजिक कुरीतियाँ यथा- चोरी, बलात्कार, द्यूतक्रीड़ा, शराब, हत्या एवं अपहरण सम्पूर्ण समाज को प्रभावित कर रहा है। शर्विलक का गणिका मदनिका में आसक्त होना इस कथन की पुष्टि करता है।

“अहं हि चतुर्वेदविदोऽप्रतिग्राहकस्य पुत्रः शर्विलक नाम ब्राह्मणो गणिकामदनिकार्थमकार्यमनुतिष्ठामि।”²

इसी प्रकार निम्न जाति के व्यक्तियों का उच्च पदों पर आसीन होना क्षत्रिय वर्ग का दुराचारी एवं विवेकहीन होना सर्वत्र दिखाई होता है। तत्कालीन समाज में द्यूतक्रीड़ा को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। इस क्रीड़ा में व्यवधान डालने वाले व्यक्ति को सजा दी जाती थी। समाज में मद्यपान जैसी कुप्रथा प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त दास प्रथा प्रचलित थी। मनुष्य का क्रय-विक्रय किया जाता था। तथा पराधीन व्यक्ति को धन देकर स्वतन्त्र भी किया जाता था। शूद्रकालीन समाज में उपर्युक्त वर्णित दुर्व्यसन एवं कुरीतियाँ होने के कारण नारी असुरक्षित थी। पुरुषों द्वारा उनका अपहरण किया जाता था। कभी-कभी हत्या करने का प्रयत्न भी किया जाता था। महिलायें इच्छानुसार भ्रमण (विशेष रूप से सायंकाल में) नहीं कर सकती थीं। विभिन्न विषम परिस्थितियों के पश्चात् भी तत्कालीन समाज में नारी का आदर्श स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। गणिका बसन्तसेना के चरित्र में सन्निहित अनेक सदगुण जैसे- सच्चे प्रेम का मूल्य जानना, उचित-अनुचित को ध्यान में रखते हुए कार्य करना, माता के आग्रह करने पर भी दुष्ट शकार की संगति का विरोध करना, सेवकों पर दया करना तथा चारुदत्त की पत्नी धृता की पति के प्रति सच्ची निष्ठा इत्यादि कथन नारी के आदर्श रूप की पुष्टि करते हैं। नारी निम्नजातीय होने के पश्चात् भी उच्च कुलवधू बन सकती थी। ब्राह्मण शर्विलक द्वारा मदनिका को वधू बनाना इसका उदाहरण है। इनके अतिरिक्त अनेक प्रसंग हैं जोकि तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

साहित्य का पुनरावलोकन- साहित्यिक पुनरावलोकन के अन्तर्गत विभिन्न वैज्ञानिकों, विषय से जुड़े अन्वेषकों एवं राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस तथ्य से जुड़े शोध अध्ययनों के तथ्यों को संकलित कर सारांश को निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है।

ओमशंकर मिश्र (2002)³ ने अपने अध्ययन में पाया गया कि वर्तमान विकसित समाज के मध्य यद्यपि मृच्छकटिकम् नाट्य ग्रन्थ में वर्णित पूर्वोक्त तथ्यों का सिद्धान्त रूप में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि सिद्धान्तता तो आज भी भारतीय संविधान में सर्वधर्म समभाव की वाक्यावलि समाविष्ट है परन्तु उसका यथार्थ रूप में क्रियान्वयन का अभाव ही कहा जाना चाहिये। वस्तुतः यदि पूर्वोक्त तत्वों (धार्मिक, राजनीतिक व व्यापारिक को शनैः शनैः प्रचारित किया जाये तो वह दिन दूर नहीं की भारतीय समाज में अन्त व वाह्य रूप में सुख शान्ति का चतुर्दिक रूप में वातावरण प्रचारित होगा।

बबीता त्रिपाठी (2006)⁴ ने अपने अध्ययन में प्रकरण कालीन, राजनैतिक चेतना, सामाजिक संगठन विषयक चेतना, पारिवारिक जीवन विषयक चेतना पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

Rajkumar (2007)⁵ ने अपने अध्ययन में पाया गया कि इस युग में नारी के तीन रूप अप्रकाशनारी (बधू), प्रकाशनारी (वेश्या) और भुजिष्या (दासी) प्राप्त होते हैं। केवल प्रथम रूप को ही सम्मानित दर्जा प्राप्त था। इसलिए वसन्तसेना एवं मदनिका इस रूप को प्राप्त करने के लिए लालायित रहती थी। विवाह सम्बन्धों की स्थिति इस कदर ऊँची उठ गई थी कि ब्राम्हणों एवं गणिकाओं में विवाह होने लगे थे। इस काल की कलाओं में संगीत, वास्तु, चित्र तथा संवाहन को प्रमुख स्थान प्राप्त है। कुछ कुत्सित प्रथाएं जैसे वेश्या, दास, सती, द्यूत एवं चौर्य प्राप्त होती हैं, जो समाज के विकृत पक्ष को प्रस्तुत करती हैं। Harsh Purwar (2008)⁶ मृच्छकटिका सबसे प्रसिद्ध प्रकरणों में से एक है। एक नाटक जिसका कथानक आंशिक रूप से इतिहास से लिया गया है और आंशिक रूप से प्राचीन भारत के लेखकों की कल्पना है जो महाकाव्य सामग्री पर आधारित नहीं है और दुष्टों से भरा है।

Shahaji Subrao Mastud (2019)⁷ शूद्रक का हास्य असाधारण रूप से ठीक था, अगोचर था जो मनुष्य के शरारती पक्ष पर था। हालांकि, उन्होंने अपने हास्य के लिए इंसान के कमजोर वर्ग, गरीबी और ढीले चरित्र का भी इस्तेमाल किया। उनका हास्य न केवल बंजर है बल्कि जीवंत और फलदायी है। सूत्रधार, संस्थानाक, शकरा, और मैत्रेय, विदुषक, अपनी कमजोरी के साथ महत्वपूर्ण चरित्र हैं, फिर भी वे रक्त और मांस चरित्र के साथ हैं। वास्तव में, आज भी, यह भारतीय शास्त्रीय नाटक के सौंदर्यशास्त्र में एक ताजा और मुक्त बहने वाला हास्य है। शूद्रक ने अपने हास्य के माध्यम से मनुष्य की कमजोरियों को इंगित किया और उन्हें अपने कुलीन जीवन के पुनर्निर्माण का अवसर दिया।

सोमनाथ सरकार (2021)⁸ मृच्छकटिक जीवन से असंतोष के बारे दर्शाता एक नाटक है। लड़का असंतुष्ट था क्योंकि वह सोने की गाड़ी से खेलना चाहता था। चारुदत्त अपनी गरीबी के कारण असंतुष्ट थे। वसन्तसेना अपनी सामाजिक स्थिति के कारण असंतुष्ट थी। सकार असंतुष्ट था क्योंकि वह वसन्तसेना को पाने में विफल रहा। नाटक का अंत सुखद नोट के साथ होता है। वसन्तसेन योग्य ब्राह्मण चारुदत्त की पत्नी बनीं। चारुदत्त का खोया हुआ वैभव पुनः प्राप्त हुआ। हालांकि सतह पर मृच्छकटिका शीर्षक केवल मिट्टी की गाड़ी की बात करता है। लेकिन बड़े कैनवास पर यह जीवन की अधूरी इच्छाओं के कारण असंतोष को दर्शाता है।

शोध प्रविधि-प्रस्तुत शोध अध्ययन वैज्ञानिक एवं विवरणात्मक है। अध्ययन हेतु विश्लेषणात्मक प्रविधि को अपनाया गया है।

सामाजिक प्रथायें एवं कुरीतियाँ-समाज एवं राष्ट्र के उत्कर्ष में सामाजिक प्रथायें तथा रीति-रिवाजों का योगदान है। इन प्रथाओं में कुछ तो ऐसी होती हैं जो पारम्परिक ढंग से हमेशा चलती हैं, कुछ ऐसी होती हैं जो उसी युग तक सीमित रहती हैं। ये सामाजिक प्रथायें अच्छी व बुरी दोनों ही प्रकार की होती थी। तत्कालीन समाज की प्रचलित प्रथायें एवं कुरीतियाँ निम्नानुसार हैं-

1. कामदेवोत्सव- मृच्छकटिकम् में स्पष्ट प्राप्त होता है कि उस मसय चतुर्दशी के दिन एक भव्य रूप में एक उत्सव मनाया जाता था जिसे 'कामदेवोत्सव' के नाम से जानते थे। चारुदत्त पर नायिका बसन्तसेना इसी कामदेवोत्सव के दिन प्रणय हेतु आकर्षित हो गई थी। यह उत्सव शहर के बाहर उद्यान में जहाँ पर कामदेव का मंदिर था वहीं पर मनोरंजन के लिये मनाया जाता था।

2. चौर्य-कर्म- चौर्य कला एक जन-साधारण कार्य न होकर चतुराई का कार्य था। जिसके लिये एक लम्बी अवधि, एक लम्बे प्रशिक्षण की आवश्यकता थी। शिक्षा बल के साथ-साथ शारीरिक शक्ति तथा साहस व निर्भीकता का होना इस कार्य के लिये अत्यावश्यक था। शर्विलक इस कला में पूर्णतया प्रशिक्षण प्राप्त था इसके लिये वह अपने आपको गर्वित अनुभव करता था। सेंध लगाना भी चौर्य कला के अन्तर्गत एक विशिष्ट कला होती थी जिसके विभिन्न तरीके होते थे। कार्तिकेय, कनक शक्ति तथा भास्कर नन्दी चोरों के देवता एवं आराध्य थे। चोर उस समय अपने आपको स्कन्द का पुत्र बतलाते थे। शर्विलक ने जिस तरीके से चारुदत्त के घर पर सेंध लगाई है, वह सेंध संबंधी नियमों पर आधारित अत्यन्त व्यवस्थित है। चोरों की भी अपनी एक आचरण संहिता थी परन्तु चोरी का कार्य गर्हित एवं निम्नकोटि का समझा जाता है। चोरी कार्य पर शर्विलक कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है- “जो लोगों के सो जाने पर वृद्धि पाता है, विश्वस्त जनों का प्रत्यहरण रूपी पराभव करने वाला है, वह चौर्य कर्म शूरों का कार्य नहीं है।” जिस घर में केवल नारियाँ होती थी, चोर अपनी आचरण संहिता का पालन कर उस घर में सेंध नहीं लगाते थे। ब्राम्हण के लिये सुरक्षित सुवर्ण और यज्ञ के लिये आयोजित सामग्री की चोरी नहीं की जाती थी।⁹

मृच्छकटिक के तृतीय अंक में शर्विलक ने सेंध संबंधी सम्पूर्ण तरीका का स्पष्ट वर्णन किया है। सेंध के तरीकों के साथ-साथ उनकी विभिन्न आकृतियों का वर्णन भी हमें नाटक में प्राप्त होता है। उसके अनुसार सात प्रकार की सेंधों का वर्णन हमें देखने को मिलता है।¹⁰ शर्विलक उक्त सेंधों में से पूर्ण कुंभ- नामक सेंध को बनाता है।

चौर्य कर्म के समय मंत्र-शक्ति व तांत्रिक शक्ति का भी प्रयोग होता था। कुछ ऐसे लेप इत्यादि का भी प्रयोग शरीर पर किया जाता था जिससे कि शरीर पर किसी प्रकार का प्रहार न हो सके। विवेच्य नाटक के पात्र शर्विलक ने भी अपने गुरु योगाचार्य द्वारा प्रदत्त योगरोचन नामक लेप का प्रयोग चोरी करते समय किया है।¹¹ इसके अतिरिक्त अन्य उपयोगी साधनों में दीपक बुझाने का आग्नेय क्रीड़ा, भूमि में गड़े हुये धन की जांच करने के लिये जादू से युक्त बीज आदि का प्रयोग भी उस समय किया जाता था। उक्त सभी सूक्ष्म बातों से यह स्पष्ट होता है कि चौर्य कर्म उस समय विधिवत् किया जाता था।

3. द्यूत क्रीड़ा- मृच्छकटिकम् कालीन समाज में जुआ की प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी। प्रत्येक जुआरी पर नियंत्रण रखने हेतु जुआरियों के संगठन बने हुये थे।¹² संगठन हेतु नियम निर्मित थे जिसका पालन अनिवार्य था। मण्डली का अध्यक्ष सभिक कहलाता था जो लाभ हानि का लेखा रखता था। संगठन के अध्यक्ष के आदेशानुसार द्यूत क्रीड़ा आयोजित की जाती थी। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जुआ खेलना प्रतिबंधित नहीं था। जबकि इस कार्य के लिये न्याय व्यवस्था का विधान था। धनी वर्ग के लोगों को द्यूत

अत्यधिक प्रिय था। तत्कालीन समय में लोग बिना रोक टोक से जुआ खेलते थे।

4. निर्धनता- निर्धनता, सामाजिक बुराईयों के अतिरिक्त भी तत्कालीन समाज की एक सबसे बड़ी बुराई थी। राजा-प्रजा के पश्चात् दूसरा भेद उस समय धनी एवं निर्धन का था। जिस प्रकार आधुनिक समाज में शोषक-शोष्य, पूंजीपति-मजदूर वर्ग का साम्राज्य है उसी प्रकार तत्कालीन समाज में भी धनिक-निर्धन वर्ग विद्यमान था। धनिक जन इस उक्ति को चरितार्थ करते थे तो निर्धन वर्ग में समस्त दुर्गुणों का आश्रय था। 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते'। दरिद्र-व्यक्ति को जीवन की कठोर अपत्तियों का समाधान करना पड़ता था। यहां तक कि उसे चारित्रिक सुरक्षा की भी सर्वदा चिन्ता बनी रहती थी। हमारे इस कथन की पुष्टि चारुदत्त के निम्न कथन से अपने आप में हो जाती है, "वास्तविकता पर कौन विश्वास करेगा? सभी मुझे हल्का (तुच्छ अपराधी) समझेगे, क्योंकि इस संसार में पौरुष विहीन निर्धनता शंका के योग्य होती है।¹³ तत्कालीन समाज में गुणों की अपेक्षा धन अधिक पूज्य था। निर्धन मनुष्य की समाज में अत्यन्त दयनीय स्थिति थी। वह निर्धनता से इतना दुःखी था कि उसके स्थान पर मृत्यु को अधिक अच्छा समझता था।¹⁴

5. वेश्यालय- वेश्यालय भी तत्कालीन समाज की एक संस्था थी। यद्यपि सामान्यतया लोगों की दृष्टि में यह एक निन्दनीय स्थान था परन्तु फिर भी सभी वर्गों में कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो वहां जाते थे। प्रकरण की नायिका वसन्तसेना का भी भव्य प्रासाद उज्जयिनी में निर्मित था। नाटक के चतुर्थ अंक में इस प्रासाद के प्रत्येक कक्ष का वर्णन हमें देखने को मिलता है इस प्रासाद के सौंदर्य से प्रभावित होकर मैत्रेय ने इसकी तुलना कुबेर भवन से की है।

6. सती प्रथा- मृच्छकटिक कालीन समाज में सती प्रथा का प्रचलन था किन्तु कठोरता से इस प्रथा का पालन नहीं किया जाता था। किसी स्त्री के पति की मृत्यु होने पर उसे सती होने के लिये विवश नहीं किया जाता था। 'मृच्छकटिक' में पतिव्रता द्यूता पति का मृत्यु की अमंगल सूचना सुनने से पूर्व अपनी इच्छा से अग्नि में प्रविष्ट होना चाहती है।

7. पर्दा-प्रथा- मृच्छकटिक के 10वें अंक में कुलवधू बनने पर वसन्तसेना द्वारा 'अवगुण्ठन; धारण करने की घटना को आधार बना कर कुछ विद्वानों का यह मत है कि तत्कालीन समाज में पर्दा-प्रथा प्रचलित थी। जबकि इसके विपरीत अनेक विद्वान इससे उचित नहीं मानते हैं। यह क्योंकि नाटक में इस घटना के अलावा अन्य कहीं भी अवगुण्ठन का वर्णन नहीं मिलता। अतः पर्दा-प्रथा जिस को कि आज कल बुरा समझा जाता है, वह उस समय विद्यमान नहीं थी।

8. दास-प्रथा- 'मृच्छकटिक' कालीन समाज में भी दास-प्रथा व्याप्त थी। ऐसे व्यक्ति जिन्हें क्रय किया जाता था वह दास कहलाते थे। उस समय भी समाज में जानवरों की भाँति मनुष्य का क्रय एवं विक्रय किया जाता था। वसन्तसेना की दासी मदनिका इसी प्रकार खरीदी गई थी है। दासों की मुक्ति या तो स्वामी की प्रसन्नता से या निश्चित धन देने से हो सकती थी। शर्विलक का जब उससे प्रणय चलता है तो वह उसे गुलामी से छुड़ा कर अपनी प्रेमिका बनाना चाहता है तथा उसी कारण चारुदत्त के यहां चोरी भी करता है। चारुदत्त अपने दास स्थावरक चेट को स्वयं ही अपनी इच्छा से मुक्त कर देता है-

“सुवृत्त, अदासो भवतु”। दास व दासियाँ यद्यपि पूर्ण रूपेण अपने मालिक के आधीन रहते थे। पर अनैतिक कार्य नहीं करते थे। इसी कारण शकार का चेट शकार के अनैतिक कार्य करने के लिए कहने पर स्पष्ट कर देता है कि “आप मेरे शरीर के मालिक है, चरित्र के नहीं। आप मुझे पीटें या मारे, मैं अकार्य नहीं करूँगा।”¹⁵

उपसंहार—उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि ‘मृच्छकटिकम्’ में प्रतिपादित सामाजिक प्रथाएँ एवं कुरीतियाँ वर्तमान में भी पूर्णतः अप्रासंगिक एवं हानिकारक हैं। अतः समाज को दूषित एवं विघटित करने वाले इन घटकों के निर्मूलन हेतु प्रत्येक मनुष्य को स्वतः प्रयत्न करना होगा जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन साहित्य की महत्ता का ज्ञान होने के साथ-साथ राष्ट्र का सर्वांगीण विकास भी सम्भव होगा।

सामाजिक सुरक्षा हेतु कानून बनाकर अधिकारियों की नियुक्ति करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि प्रत्येक मानव को उचित-अनुचित का ध्यान रखते हुए अपने कर्तव्य का निर्वहन करना होगा। समाज में फैले अंधविश्वास, जातिप्रथा, पर्दाप्रथा, द्यूतक्रीड़ा, चोरी, हिंसा, वेश्यावृत्ति एवं सती प्रथा जैसी कुरीतियों का उन्मूलन आवश्यक है। समाज को सुदृढ़ तथा समरसता हेतु महिलाओं को शिक्षित करने, जागरूकता लाने, सुरक्षा के साथ साथ हिंसा पर रोक आवश्यक है। अतः विशेष रूप से महिला शिक्षा को बढ़ावा देना होगा ताकि प्रत्येक व्यक्ति अधिकारों, नियम कानूनों को ज्ञात करके जागरूक हो सके साथ ही साथ स्वविकास एवं संरक्षण हेतु प्रयत्न कर सके।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. तनूजा सामन्त एवं डॉ.(श्रीमती) आभा शर्मा (2018), मृच्छकटिकम् में प्रतिपादित सामाजिक अवधारणा-वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, जर्नल ऑफ आचार्य नरेन्द्र देव रिसर्च इंस्टीट्यूट, पृष्ठ 93-96
2. मृच्छकटिकम्- महाकविशूद्रक, तृतीय अंक।
3. ओमशंकर मिश्र (2002) वर्तमान परिवेश में महाकवि शूद्रक प्रणीत मृच्छकटिकम्, पी-एच.डी शोध प्रबन्ध, श्री छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, पृ.225
4. बबीता त्रिपाठी (2006), “महाकवि शूद्रक की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना एक अनुशीलन” वीर बहादुर सिंह पूर्वान्वल विश्वविद्यालय, जौनपुर,
5. राजकुमार (2007) मृच्छकटिकम्- एक समीक्षात्मक अध्ययन, शोध प्रबन्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्वल विश्वविद्यालय, जौनपुर पृ. 428
6. Harsh Purwar (2008), A critical appreciation of Mricchakatika, Indian Institute of Science Education & Research, Kolkata, SCRIBD
7. Shahaji Subrao Mastud(2019), Humour in the Shudraka's Mricchakatika, Smart Moves Journal IJELLH Volume 7 issues 5
8. Somnath Sarkar(2021) the-mricchakatika-Significance of the Title, <https://www.eng-literature.com>
9. मृच्छकटिक अंक 4/6
10. मृच्छकटिक अंक 3/13
11. मृच्छकटिक अंक 4 पृ. 182
12. मृच्छकटिक अंक 2 पृ. 76
13. मृच्छकटिकम् अंक 3 पृ. 24
14. शूद्रक का मृच्छकटिक : एक आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ. विश्वनाथ शर्मा, हंसा

प्रकाशन, पृ. 240

15. शूद्रक का मृच्छकटिक : एक आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ. विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, पृ. 238

साहित्य के संवर्धन में महिलाओं का योगदान (संस्कृत साहित्य के संदर्भ में)

• मधु

सारांश- संस्कृत साहित्य की परंपरा पांच हजार वर्षों से अधिक प्राचीन है। शास्त्र और कविता की विभिन्न विधाओं में यह साहित्य सम्पन्न तथा अनुपम है। ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में कतिपय स्त्रियों का ऋषि के रूप में उल्लेख है। स्त्री के ऋषि होने का अर्थ है कि वह मंत्रों का साक्षात्कार कर लेती है। मंत्रों का साक्षात्कार कर लेना या काव्य रच लेना वैदिक काल में ऐसा कर्म है जो स्वाधीनता की परम स्तिथि को प्रकट करता है। जो स्त्री ऋषि के रूप में मंत्रद्रष्टा हो जाती है, वेद उसके लिए जन्म जात अधिकार बन जाता है। कौशीतकी ब्राह्मण में बताया गया है, कि वेद में पारंगत स्त्रियों को पाठ्यस्वस्ति वाक की उपाधि से सम्मानित किया था। वेदों की ऋचाओं को गढ़ने तथा आधुनिक साहित्य में संस्कृत को पहचान दिलाने में बहुत सी स्त्रियों का योगदान रहा है।

मुख्य शब्द- संस्कृत साहित्य, शास्त्र, कविता, स्त्री, संवर्धन

स्त्रियों के योगदान का मूल्यांकन वैदिक संस्कृत साहित्य में करना हो या आधुनिक संस्कृत साहित्य में वह किसी भी साहित्य में पीछे नहीं है। महिलाओं में बढ़ती चेतना और जागरूकता ने उनकी काव्य प्रतिभा को और अधिक पल्लवित किया है। वैदिक से आधुनिक युग तक ऋषिकायें, कवियित्री, लेखिकायें संस्कृत साहित्य के संवर्धन अतुलनीय योगदान दिया है। संस्कृत लेखिकाओं की सुदीर्घ परम्परा रही है। महिलाओं ने संस्कृत साहित्य का जिस तेजी से विस्तार किया है वह नारी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य का प्रतीक है। उनका योगदान संस्कृत साहित्य इतिहास में अमर है।

संस्कृत साहित्य की परंपरा पांच हजार वर्षों से अधिक प्राचीन है। शास्त्र और कविता की विभिन्न विधाओं में यह साहित्य सम्पन्न तथा अनुपम है। ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में कतिपय स्त्रियों का ऋषि के रूप में उल्लेख है। स्त्री के ऋषि होने का अर्थ है कि वह मंत्रों का साक्षात्कार कर लेती है। मंत्रों का साक्षात्कार कर लेना या काव्य रच लेना वैदिक काल में ऐसा कर्म है जो स्वाधीनता की परम स्तिथि को प्रकट करता है। जो स्त्री ऋषि के रूप में मंत्रद्रष्टा हो जाती है, वेद उसके लिए जन्म जात अधिकार बन जाता है। कौशीतकी ब्राह्मण में बताया गया है, कि वेद में पारंगत स्त्रियों को पाठ्यस्वस्ति वाक की उपाधि से सम्मानित किया था। वेदों की ऋचाओं को गढ़ने

• असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, एस. आर. डी. ए. कन्या, स्नातकोत्तर महाविद्यालय हाथरस

में बहुत सी स्त्रियों का योगदान रहा है। उनमें से कुछ स्त्रियों का वर्णन प्रस्तुत शोध पत्र में किया जा रहा है।

ब्रह्मादिनी ऋषि गार्गी- भारतीय इतिहास में ऐसी अनेको महान नारियां हुई हैं जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता, ज्ञान-विज्ञान में निष्णात होने पर और प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की बराबरी कर अपने धर्म का पालन किया। प्राचीन काल में गर्गवंश में वचकनु नामक ऋषि थे, जिनकी एक पुत्री थी वाचकानवी गार्गी। ब्रह्दारण्यक उपनिषद् में वर्णित याज्ञवल्क्य तथा गार्गी शास्त्रार्थ विश्वविदित हैं।

एक बार महाराज जनक ने श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी की परीक्षा लेने के लिए एक सभा का आयोजन किया। जिसमें ऋषि याज्ञवल्क्य ने विदुषी गार्गी से स्वयं प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान की तब विदुषी गार्गी ने ऋषि याज्ञवल्क्य से बड़ा सरल सा प्रश्न पूछ लिया कि- हे.. ऋषिवर! जल में हर पदार्थ बड़ी सरलता से घुल मिल जाता परंतु मेरा आपसे प्रश्न है कि यह जल किस में जाकर मिलता है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने गार्गी के इस प्रश्न का बड़ा ही तार्किक तथा वैज्ञानिक उत्तर दिया कि जल अंततः वायु में ओत प्रोत हो जाता है।

गार्गी ने पुनः प्रश्न किया, स्वर्गलोक से ऊपर जो कुछ भी है और पृथ्वी से नीचे जो कुछ भी है और इन दोनों के मध्य जो कुछ भी है और जो हो चुका है और जो अभी होना है, ये दोनों किस में ओतप्रोत है? आधुनिक भाषा में यदि गार्गी के इस प्रश्न रूपांतरण किया जाए गार्गी ने ऋषि याज्ञवल्क्य से सीधे-सीधे अंतरिक्ष और समय के बारे में प्रश्न किया था। गार्गी के प्रश्नों का अभिप्राय था, सारा ब्रह्मंड किसकी सत्ता के अधीन है अर्थात् किसके शासन या अनुशासन में यह सारा ब्रह्मंड कार्य कर रहा है या गतिशील है। गार्गी के तीखी धारवाले इन प्रश्नों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर ऋषि याज्ञवल्क्य ने बड़े प्रेम से उत्तर देते हुए कहा- प्यतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी। अर्थात् हे गार्गी! यह सारा ब्रह्मण्ड एक अक्षर अविनाशी तत्त्व के शासन प्रशासन और अनुशासन में गतिशील है।

परम ऋषियों की सभा में इतने उत्कृष्ट विषय पर आयोजित शास्त्रार्थ में ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों से प्रश्न पूछने का साहस करने वाली गार्गी आज भी नारियों के लिए आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं। गार्गी जैसी महान विदुषी नारियों का होना हम सब लिए गर्व की बात है।

ब्रह्मादिनी ऋषि मैत्रेयी- मैत्रेयी ने तत्व मीमांसा का काफी अध्ययन दिया था इसलिए मैत्रेयी को धर्म और शिक्षा दोनों क्षेत्रों में काफी प्रसिद्धि प्राप्त थी। मैत्रेयी मित्र ऋषि की कन्या तथा महर्षि याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी थी। महर्षि याज्ञवल्क्य की पहली पत्नी कात्यायनी थीं, वे भारद्वाज ऋषि की पुत्री थीं। एक दिन याज्ञवल्क्य ने गृहस्थ आश्रम छोड़कर वानप्रस्थ जाने का फैसला किया ऐसे में उन्होंने दोनों पत्नियों के सामने अपनी संपत्ति को बराबर हिस्सों में बांटने का प्रस्ताव रखा। कात्यायनी ने पति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। लेकिन बेहद शांत स्वभाव की मैत्रेयी को अध्ययन, शास्त्रार्थ तथा चिंतन आदि में काफी रुचि थी। वे जानती थी कि संपत्ति आदि

से आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए उन्होंने पति के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहा कि मैं भी आपके साथ वन में जाऊंगी तथा ज्ञान व अमरत्व की खोज करूंगी। वृहदारण्यकोपनिषद् में मैत्रेयि का अपने पति याज्ञवल्क्य के साथ रोचक संवाद उल्लेखनीय है।

दार्शनिक लोपामुद्रा-लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी होने के साथ ही उस वैदिक युग की एक महान दार्शनिक महिला थीं। इनके बारे में जाना जाता है कि ऋग्वेद काल 1950 ई.पू. 1100 ई. पू. की महिला दार्शनिक थी। ऋग्वेद में उनके योगदान के रूप में कई भजनों का समावेश है। उन्होंने हिन्दू धर्म की श्री कुल शाक्त परम्परा के हादी पंचदशी मंत्र की कल्पना की थी। वह प्रमुख ब्रह्वादिनी में से एक थीं।

आधुनिक विदुषियों तथा कवियत्रियों का वर्णन निम्नवत है -

1- सर्वशक्ता सरस्वती विजयाना की लौकिक संस्कृत में भूमिका सराहनीय रही है। उनके पदों की सौष्ठवता देखते ही बनती है। नीलकमल की पंखुड़ियों की तरह विजयाना अपनी रचना से अद्भुत लेखन कला का परिचय देती है।

2- पण्डिता समाराव आधुनिक युग की लेखिकाओं में सुविख्यात है। उन्होंने संस्कृत साहित्य में नूतन विधाओं तथा विषयवस्तु का अवतरण किया। गांधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित होकर उन्होंने सत्याग्रहगीता नामक अपने सर्वप्रसिद्ध महाकाव्य की रचना की जो 1932 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। इसको तीन भागों में विभक्त किया गया है।

1-सत्याग्रह गीता, 2-उत्तर सत्याग्रह गीता, 3-गांधी चरित। सत्याग्रह गीता में कुल 18 अध्याय तथा 659 श्लोक हैं। इनकी कथा पंचकम (1933), ग्राम ज्योति (1954) तथा कथा मुक्तावली (1956) तीन गद्य रचनाएं हैं। मीरा लहरी नाम की एक मुक्तक रचना भी इन्हीं की देन है। इन्होंने 7 एकांकी नाटक, 4 तीन अंकों वाले नाटक, 4 पद्यमय जीवन चरित, 35 लघु कथाएँ, विविध निबन्ध ग्रन्थ की रचना की है। इन्होंने श्री तुकारामचरित- 9 सर्ग, 435 पद्य श्री रामदासचरित (13 सर्ग) 674 पद्य श्री ज्ञानेश्वरचरित (8 सर्ग) स्वराजविजयः (54 अध्याय, 1740 पद्य) आदि महाकाव्यों की रचना की है।

अपने पिता की जीवनी लेखन शंकरजीवानाख्यानम काव्य से पण्डिता क्षमा ने संस्कृत साहित्य में नई विधा का सूत्रपात किया। उसके प्रस्ताव में श्रीनृसिंह केलकर ने मार्मिक टिप्पणी करते हुए कहा कथं हि न करिष्यन्ति कन्याभ्यः पितरः स्पृहाम् ऋणम् तत् पैतृकम् पुण्यमपाकुरतदीहताः ॥ पिता पुत्रियों की स्पृहा क्यों नहीं करेंगे, क्योंकि वे भी पुण्य पितृ ऋण को उतारने में पूर्ण रूप से समर्थ होती हैं। पण्डिता क्षमा गार्गी एवं मैत्रेयी की परंपरा को आगे बढ़ाने वाली संस्कृत कवयित्री हैं। उन्होंने कथाओं को भी पद्य में लिखा। चरित काव्य के अंतर्गत क्षमा ने तुकारामचरित, रामदासचरित तथा ज्ञानेश्वर चरित का ग्रन्थन किया। संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर आचार्य प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इनके योगदान को रेखांकित करते हुए कहा- दलित विमर्श, स्त्रीविमर्श तथा स्वराज विमर्श- इन तीन स्तरों पर क्षमा राव का आधुनिक साहित्य को प्रदेय अभूतपूर्व है। पण्डिता समाराव आधुनिक युग की लेखिकाओं में सुविख्यात है।

3- चालुक्य वंश की महारानी विजयट्टारिका भी लौकिक संस्कृत साहित्य का एक जाना माना नाम है। दक्षिण भारत की भारतीय महिलाओं ने लगभग 150 (एक सौ पचास) काव्यों रचना की, जिनमें गंगा देवी, शीला भट्टारिका, तिरुम लाम्बा, देवकुमारिका आदि प्रमुख हैं। उक्त सभी काव्य रचनायें पद्य शैली में हैं।

वर्तमान काल में लेखनरत कवियत्रियों में मिथलेश कुमारी, बनगाला भवालवर, पुष्पा दीक्षित इत्यादि प्रतिदिन संस्कृत साहित्य के संवर्धन में निरन्तर अपना योगदान दे रही हैं। सर्वशब्ता सरस्वती विनयावास विजयान की लौकिक संस्कृत में भूमिका साक्षी रही है।

स्त्रियों के योगदान का मूल्यांकन वैदिक संस्कृत साहित्य में करना हो या आधुनिक संस्कृत साहित्य में वह किसी भी साहित्य में पीछे नहीं है। महिलाओं में बढ़ती चेतना और जागरूकता ने उनकी काव्य प्रतिभा को और अधिक पल्लवित किया है। वैदिक से आधुनिक युग तक ऋषिकाये, कवियित्री, लेखिकायें संस्कृत साहित्य के संवर्धन अतुलनीय योगदान दिया है। संस्कृत लेखिकाओं की सुदीर्घ परम्परा रही है। महिलाओं ने संस्कृत साहित्य का जिस तेजी से विस्तार किया है वह नारी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य का प्रतीक है। उनका योगदान संस्कृत साहित्य इतिहास में अमर है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. प्राचीन भारत में नारी - डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्रथम संस्करण 1987 भोपाल।
2. वैदिक कालीन समाज - डॉ. शिवदत्त ज्ञानी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
3. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी - डॉ. गजानन्द शर्मा, रचना प्रकाशन इलाहाबाद।
4. वेदों में नारी - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य एवं डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी विश्वभारती अनुसंधान परिषद कानपुर।
5. वूमेन इन दी सीक्रेट लॉज - शकुंतला राव।
6. पोजिशन ऑफ वूमेन इन हिंदू सिविलाइजेशन - डॉ. एस.एस. अल्लेकर वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी 1938।
7. <https://www.setumag.com>
8. <https://shodhgangotri-inflibnet-ac-in>
9. <https://samskaleenjanmat-in>
10. <https://www-rajmer-com>

पंचायती राज संस्थाओं में पटना जिला की महादलित महिलाओं की बढ़ती भागीदारी एवं भूमिका: एक अध्ययन

• पुष्पा

सारांश- सशक्तिकरण एक व्यापक शब्द है जिसमें अधिकारों एवं शक्तियों का स्वाभाविक रूप से समावेश है। शक्तिकरण एक लक्ष्य और संयोजित विकास की दशा भी है। महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन में प्रतिनिधित्व दक्षता में अभिवृद्धि कार्यक्षेत्र और अन्यत्र उनके साथ किये जा रहे बुरे व्यवहार की समाप्ति, सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति आदि ऐसे कार्य हैं जिनकी पूर्णतः के द्वारा शक्तिकरण के लक्ष्य को पाया जा सकता है। भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता से पूर्व सभी कालों में दलित की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति दयनीय थी। जबकि राजनैतिक स्तर पूरी तरह गौण था। स्वतंत्रता के पूर्व से ही दलित व्यक्तियों की स्थिति में सुधार के लिए अनेक आन्दोलन आरम्भ हुए परिणाम स्वरूप दलित जातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति में कुछ सुधार आना आरम्भ हुआ, लेकिन दलित महिलाओं की स्थिति में आमूल परिवर्तन नहीं हुआ। महिला सशक्तिकरण में पंचायत की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है, पंचायत के आरम्भ में ग्राम पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी नगण्य थी। देश के इतिहास में 73वाँ संशोधन ऐतिहासिक कदम रहा। 74वाँ संशोधन पंचायती राज एवं स्थानीय निकाय में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हुई। महिलाओं को पंचायती राज में 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। बिहार प्रथम राज्य बना जिसमें महिलाओं को पंचायती राज में 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। इससे पंचायती राज में महिलाओं विशेषकर महादलित महिलाओं के भागीदारी अवसर प्राप्त हुआ।

मुख्य शब्द- पंचायती राज संस्थाएँ, महादलित महिलाएँ, भूमिका एवं प्रस्थिति।

सशक्तिकरण एक व्यापक शब्द है, जिसमें अधिकारों एवं शक्तियों का स्वाभाविक रूप में समावेश है। यह एक ऐसी मानसिक व्यवस्था है जो कुछ विशेष आंतरिक कुशलताओं और शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिसके लिए समाज में आवश्यक कानूनो, सुरक्षात्मक प्रावधानों और उनके भली-भाँति क्रियान्वयन हेतु सक्षम-प्रशासनिक व्यवस्था का होना आवश्यक है। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य ऐसी

सामाजिक प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं के लिए सर्वसम्पन्न और विकसित होने हेतु संभावनाओं के द्वारा खुले हो, नए विकल्प तैयार हों, भोजन, पानी, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, कानूनी हक और प्रतिभाओं के विकास हेतु पर्याप्त रचनात्मक अवसर प्राप्त हों। सबसे ज्यादा जरूरी है कि महिलाओं को स्थानीय स्तर पर सशक्तिकरण प्रदान किया जाय। भारत के गाँवों में बसने वाली महिलाओं विशेषकर महादलित महिलाओं की स्थिति दयनीय है। महिलाओं को प्रथमतः पंचायती स्तर पर सशक्तिकरण प्रदान किया जा रहा है।

भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता से पूर्व सभी कालों में दलित जाति की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति दयनीय थी। जबकि राजनैतिक स्तर पूरी तरह गौण था। स्वतंत्रता के पूर्व से ही दलित जातियों की स्थिति में सुधार के लिए अनेक आन्दोलन आरम्भ हुए तथा इसके लिए अंग्रेज सरकार द्वारा कानून बनाए गए। इसका यह परिणाम हुआ कि दलित जातियों की सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति में कुछ सुधार आना आरम्भ हुआ, लेकिन दलित महिलाओं की स्थिति में किसी प्रकार का आमूल परिवर्तन नहीं हुआ।

महिला सशक्तिकरण में पंचायत की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी की वकालत की थी, क्योंकि वह जानते थे कि जब तक महिलाओं को बराबरी नहीं मिलेगी तब तक उन्हें उनके मूल अधिकार नहीं मिल सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद ग्राम पंचायत की स्थापना का कार्य आरम्भ किया गया लेकिन शुरू के वर्षों में ग्राम पंचायत में महिलाओं की भागीदारी नगण्य थी। कुछ वर्षों के बाद उन्हें प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। लेकिन इससे महिलाओं के अधिकांश संख्या ग्राम पंचायत में प्रतिनिधित्व करने से वंचित रही। देश के इतिहास में 73 वाँ संविधान संशोधन ऐतिहासिक कदम रहा। इसके बाद जब 74 वाँ संविधान संशोधन हुआ तो पंचायती राज एवं स्थानीय निकाय में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हुई। महिलाओं को पंचायती राज में 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। बिहार प्रथम राज्य बना, जिसने महिलाओं को पंचायती राज में 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। इससे पंचायती राज में महिलाओं विशेषकर महादलित महिलाओं के भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ।

अध्ययन विधि- वर्तमान शोध 'पंचायत राज संस्थाओं में पटना जिला की महादलित महिलाओं की बढ़ती भागीदारी एवं भूमिका' में दो शोध प्रारूपों अन्वेषणात्मक एवं वर्णात्मक का सहारा लिया गया है। तथ्य संकलन हेतु सूचनादाताओं के चयन में सुविधाजनक निदर्शन का उपयोग किया गया है। इस निदर्शन की सहायता से 200 महादलित महिलाओं का चयन किया गया। सूचनादाताओं से तथ्यों के संकलन के लिए अनुसूची का उपयोग करते हुए साक्षात्कार विधि का उपयोग किया गया।

विश्लेषण- प्रस्तुत शोध में आँकड़ों को सारणीबद्ध करने के बाद उसे विश्लेषण किया गया। इसमें महादलित महिलाओं की सामाजिक- आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया गया है। साथ ही महादलित महिलाओं की सहभागिता एवं नेतृत्व के द्वारा पंचायती राज के क्रियाकलाप का विश्लेषण किया गया है।

सारणी संख्या 01**आयु**

आयु	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
21-25	23	11.5
26-30	30	15.0
31-35	31	15.5
36-40	76	38.0
41-45	22	11.0
45 से ऊपर	18	9.0
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं को छः आयु श्रेणी में विभाजित किया गया है। सारणी से स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं की सर्वाधिक (38.0 प्रतिशत) संख्या (36-40) आयु वर्ग में जबकि सबसे कम (9 प्रतिशत) उत्तरदाताओं की संख्या 45 से ऊपर की आयु में है। (21-25) आयु वर्ग में उत्तरदाताओं की संख्या 11.5 प्रतिशत है। इस विश्लेषण से पता चलता है कि मध्य आयु वर्ग में अधिकांश महादलित महिलायें पंचायती राज में सहभागिता करती हैं।

सारणी संख्या 02**जाति**

जाति	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
चर्मकार	77	38.5
धोबी	58	29.0
पासी	35	17.5
दुसाध	20	10
कुरियार	11	5.5
योग	200	100.0

जाति के आधार पर विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि महादलित महिलाओं में सबसे अधिक 38.5 प्रतिशत चर्मकार जाति की महादलित महिलाओं में सबसे अधिक 38.5 प्रतिशत चर्मकार जाति की महादलित महिलाएँ पंचायती राज में सहभागिता करती हैं जबकि सबसे कम 11 प्रतिशत कुरियार जाति की महादलित महिलायें हैं। धोबी जाति में 29 प्रतिशत महिलायें हैं जबकि पासी जाति में 17.5 प्रतिशत महिला तथा दुसाध जाति में महिलाओं की संख्या 10 प्रतिशत है।

सारणी संख्या-3**शैक्षणिक स्तर**

शैक्षणिक स्तर	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
अशिक्षित	23	11.5
प्राथमिक	50	25.0
मैट्रिक	70	35.0
इंटर	42	21.0
स्नातक	15	7.5
योग	200	100.0

उत्तरदाताओं के शैक्षणिक स्तर में विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक 35 प्रतिशत उत्तरदाता मैट्रिक स्तर में हैं जबकि सबसे कम 7.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का

शैक्षणिक स्तर स्नातक है। अशिक्षित उत्तरदाताओं की संख्या 11.5 प्रतिशत है जबकि 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं की शिक्षा प्राथमिक स्तर तक है। इन्टर स्तर की उत्तरदाताओं की संख्या 21 प्रतिशत है।

सारणी संख्या-4
उत्तरदाताओं को राजनीति में प्रवेश करने के लिए प्रेरक तत्व

प्रेरक तत्व	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
जनता की सेवा	103	51.5
इच्छा से	58	29.0
लोकप्रियता	39	19.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं की राजनीति एवं समाज कल्याण के क्षेत्रों में आने के लिए प्रेरक तत्वों का वर्गीकरण किया गया है। सारणी से स्पष्ट होता है कि 51.5 प्रतिशत उत्तरदाता जनता की सेवा के लिए राजनीति में प्रवेश किया है जबकि 29 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी इच्छा से राजनीति एवं समाज कल्याण के कामों में आई है तथा 19.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपनी लोकप्रियता में वृद्धि करने के लिए राजनीति एवं समाज कल्याण के कामों में प्रवेश किया है।

सारणी संख्या-5
समाज कल्याण एवं राजनीति में प्रवेश करने की अवधि

राजनीति में प्रवेश की अवधि	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
3 वर्ष से कम	51	25.5
3-6	57	28.5
7-10	68	34.0
10 वर्ष से ऊपर	24	12.0
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं का समाज कल्याण एवं राजनीति में प्रवेश करने के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक 34 प्रतिशत उत्तरदाता (7-10) वर्ष से समाज कल्याण एवं राजनीति के क्षेत्र में है जबकि सबसे कम 12 प्रतिशत उत्तरदाता 10 वर्षों से अधिक अवधि से इस क्षेत्र में है। 3 वर्ष से कम अवधि से 25.5 प्रतिशत उत्तरदाता है। 28.5 प्रतिशत उत्तरदाता (3-6) वर्ष के अवधि से राजनीति के क्षेत्र में है। इस विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता 6 वर्ष से कम अवधि से समाज कल्याण एवं राजनीति के क्षेत्र में है।

सारणी संख्या-6
उत्तरदाताओं का ग्रामीण समस्याओं के समाधान में रुचि

समाधान की सीमा	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
सामान्य	56	28.0
अधिक	129	64.5
बिल्कुल नहीं	15	7.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं का ग्रामीण समस्याओं के समाधान में रुचि से संबंधित आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक 64.5 प्रतिशत

उत्तरदाताओं की समस्याओं में समाधान में एकदम रूचि नहीं है। 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं में समस्याओं के समाधान में रूचि सामान्य है। इससे स्पष्ट होता है कि महादलित महिलाओं में ग्रामीण की सेवा करने की भावना अधिक पाई जाती है इसलिए वे ग्रामीणों कि समस्याओं के समाधान में बहुत अधिक रूचि लेती है।

सारणी संख्या- 7

ग्राम सभा की बैठक में महादलित महिलाओं का भाग लेना

ग्राम सभा में भाग लेना	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	116	58.0
बहुत अधिक	45	22.5
कभी-कभी	39	19.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं का ग्राम सभा की बैठक में भाग लेने की स्थिति का विश्लेषण किया गया है विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक 58.0 प्रतिशत उत्तरदाता ग्राम सभा की बैठक में बहुत कम भाग लेती है। ग्राम सभा की बैठक में बराबर भाग लेने वाली उत्तरदाताओं की संख्या 22.5 प्रतिशत है इससे स्पष्ट होता है महादलित महिलाओं में अधिकांश को ग्राम सभा की बैठक में भाग लेने का समय नहीं मिल पाता है या इनमें रूचि की कमी पाई जाती है।

निष्कर्ष- 73वाँ संविधान के जरिए हर समाज के लोगों को प्रतिनिधित्व का अधिकार मिला, विशेषकर दलित समाज को प्रतिनिधित्व का अवसर मिला, क्योंकि दलित समाज को पंचायती राज में प्रतिनिधित्व का अवसर नहीं हमल पाता था। ऐसे में संविधान संशोधन कारगर हथियार साबित हुआ। 50 प्रतिशत पंचायती राज में आरक्षण के बाद महादलित महिलाओं को पंचायती राज में प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्राप्त हुआ। महादलित महिलाओं का पंचायती राज में सभागिता की दर में तेजी से वृद्धि हो रही है। अब महादलित महिलाएँ जनकल्याण के कार्यों में भी सम्मिलित हो रही हैं। अब इनमें राजनीति के प्रति जागरूकता में वृद्धि हो रही है। लेकिन अधिकांश महादलित महिला आर्थिक दृष्टि से दयनीय होने के कारण पंचायती राज में अपनी सहभागिता नहीं दे पा रही है। महादलित महिलाओं में शिक्षा का अभाव पाया जाता है। अधिकांश महादलित महिलाएँ अधिक शिक्षित नहीं होने से उन्हें सरकार के द्वारा चलाई जा रही योजनाओं की जानकारी नहीं होती है फिर भी महादलित महिलाओं में पंचायती राज के कार्यकलापों के प्रति जागृति में वृद्धि हो रही है।

संदर्भग्रन्थ सूची-

1. मीना, टी. आर (2002), पंचायती राज एण्ड जेन्डर इशु-दलित ओमेन इम्बावमेंट, करेला एक्सपेरिमेंस, मैनेजमेंट इन गर्वनमेंट 34(2)
2. महादलित आयोग (2009-2010), तृतीय प्रतिवेदन, तीसरी मंजिल, इंदिरा विकास भवन (बिहार, पटना)
3. डमर फारूकी (2010), महिला सशक्तिकरण में पंचायती राज की भूमिका कुरुक्षेत्र अक्टूबर
4. जसबीर कौशिक (2010), पंचायती राज से भारत में बदलाव का बयार, कुरुक्षेत्र, अक्टूबर

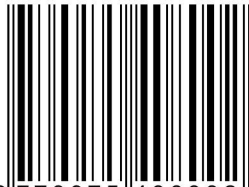
5. सोनीकुमारी (2014), पंचायती राज प्रणाली में जनसहभागिता, कुरुक्षेत्र, जनवरी
6. डॉ. हिमांशु शेखर (2014), पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, कुरुक्षेत्र, जनवरी
7. प्रोफेसर जे.पी. रमन प्रसाद सिंह (2014) भारतीय एवं संस्थाएँ, अग्रवाल पब्लिकेशन



Journal of Center for Research Studies Rewa (M.P.) India

Registered under M.P. Society Registration Act, 1973
Reg. No. 1802, Year 1997

ISSN 0975-4083



9 770975 408002

Editor- Professor Braj Gopal, Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications
Rewa- 486001(M.P.) and Printed at Glory Offset, Nagpur